श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सुख यहां

३, ४ भाग

प्रवक्ता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द महाराज'

सम्पादक—
पवन कुमार जैन ज्वैलर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक—
खेमचंद जैन सर्राफ, मंत्री श्री सहजानद शास्त्रमाला, १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

द्वितीय सस्करण १०००
सन् १९८०

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिर के संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आड़ती, सरधना
(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के सरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, सहारनपुर
(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, सोनीपत
(५) श्रीमती सुवटी देवी जैन, सरावगी गिरीडीह
(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भवरीलाल जैन, पाण्ड्या झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, मंसूरपुर
(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्री नेमिचदजी जैन, मुजफ्फरनगर
(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, ,,
(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बड़जात्या नई मडी, ,,
(११) श्रीमती पूना बाई ध० प० स्व० श्री दीपचन्द जी जैन गोटेगाव

※ मंगल-तन्त्र ※

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्ध चिदस्मि ।
मैं ज्ञानमात्र हू, मेरे स्वरूपमे अन्यका प्रवेश नही अतः निर्भार हू ।
मैं ज्ञानघन हू, मेरे स्वरूपमे अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हू ।
मैं सहज आनदमय हू, मेरे स्वरूपमे कष्ट नहीं, अतः स्वय तृप्त हू ।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्ध चिदस्मि ।

卐 आत्मभक्ति 卐

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तीमे क्षण जाँय सारे ।। टेक ।।

ज्ञानसे ज्ञानमे ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रांतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।१।।

सर्व गतियोमे रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोमे रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।२।।

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमे सहाई ।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।३।।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोसे पारे ।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।४।।

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोमे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दो प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।५।।

※ आत्म-रमण ※

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू, मै सहजानन्दस्वरूपी हू ।। टेक ।।

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य, हू सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ।
हू सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानंद०, मै दर्शन० ।।१।।

हू खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नही ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊं उतरूं रम लू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मै सहजानद०, मैं दर्शन० ।।३।।

* आत्म-कीर्तन *

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥ टेक ॥

मै वह हूं जो है भगवान, जो मै हूं वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ॥ १ ॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥ २ ॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहि लेश निदान ॥ ३ ॥

जिन शिव ईश्वर, ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥ ४ ॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोपर निम्नाकित पद्धतियो मे भारतमें अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा।

॥ ॐ ॥

सुख यहां तृतीय भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

✦✦✦✦
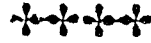
ज्ञानं सुखं न चान्यत्र ज्ञोहं ज्ञानमहं सुखम् ।
सर्वाशामहितां त्यक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१॥

ज्ञान और सुख अन्य कुछ चीज नही है । मै ही ज्ञान हू और मैं ही सुख हू । हम बाहर क्या ढूंढना चाहते है ? जगतके जीव बाहरमे क्या ढूंढा करते है सो बतलावो । सुख और ज्ञानसे बढकर क्या ढूढते हो ? किसकी जानकारी कर रहे हो ? अब क्या होना चाहिए ? हम कथा और उपन्यासकी पुस्तकें पढते है, तो हम ज्ञान अन्य जगह ढूंढते है और सुख अन्य जगह ढूंढ़ते है । उपन्यास पढते है तो यही इच्छा रहती है कि अभी आगे और पढ लें । अब आगे क्या है यह और जान लें । और भी समझनेकी, जाननेकी चेष्टायें करते है । सुख प्राप्त करनेके लिए विवाह करते है, सतान उत्पन्न करते है, धन कमाते है, महल बनवाते है, सभा सोसायटी करते है, राज्य बनाते है ये सब किसलिए करते है ? सुखके लिए, तो जितने भी यत्न बाहरमे करते है वे सुखके लिए करते है । पर अध्यात्मयोगी ऋषिजन बतलाते है कि सुख अन्यत्र न मिलेगा । किसी अन्य जगह सुख नही है । सुख कहाँ मिलेगा और मिलेगा कैसे ? सुख कोई अलग चीज थोडे ही है । हमे दुःखमयी विकल्पोसे हटनेकी जरूरत है, सुख रूप तो हम स्वय है । जीवोका और स्वरूप क्या है सो बतलाओ ।

इस शरीरमे क्या मिलता है ? अरे शरीरके भीतर देखो मांस लगा है । वह मांस तो

जीव नही है । हड्डी, वीर्य, मल, मूत्र इत्यादि वे भी कोई जीवकी चीज नही । जीव क्या है ? उसमे कौनसा तत्त्व है ? इसके अन्दर विचारो तो वहाँ आँखसे देखनेमे कुछ नही मिलेगा । जो ज्ञानरूप परिणति है, वह आनन्दरूप परिणति है तथा जो राग द्वेषरूप परिणति है वह दुःखरूप परिणति है । जो एक विलक्षण चैतन्यस्वरूप है उसका नाम जीव है । यह आत्मा तो ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है । ज्ञान और आनन्द बाहर कहाँ ढूंढता है ? जिसको यह मर्म ज्ञात हो गया कि मैं ज्ञानमात्र हू, आनन्दरूप हू, तो ऐसा जिसे विश्वास हो गया, ऐसा जिसको परिचय हो गया वह ही योगी कहलाता है, वह ही ज्ञानी कहलाता है, वह ही साधु कहलाता है ।

ज्ञान और सुख ये अन्यत्र नही है । इस ही रूप मैं हूँ । अन्य जगह मेरा ज्ञान नही । फिर आशा कैसी लगी है ? अच्छा बतलाओ—आपका ज्ञान और आनन्द किसी दूसरी जगह है क्या ? किसी चीजको बतलाओ । मेरी कोई चीज इस मुझसे बाहर हो तो बतलाओ ? जो बाहर हो वह हमारा नही और जो हमारा है वह हमसे दूर नही । ये दिखने वाली चीजें तो कुछ भी हमारी नही है । जिस घरमे बसना रहता है ऐसा घर द्वार वगैरा ये भी बाहर ही तो है । जिस कुटुम्बमे हम रहते है वह भी हमसे बाहर ही तो है । अरे ज्ञान और आनन्द जो तुम्हारी चीज है उसको ही प्राप्त करो । यह तो तुमसे बाहर नही है । तब फिर बाहर की कौनसी चीजोको दखकर तुम स्वहितकी आशा करते हो ? यह कैसा उन्माद है ? बतलाओ तो । आप कहेंगे कि भोजन करते हैं तो सुख मिलता है । भोजन करनेसे अगर सुख मिलता है तो एक बार भोजन कर लें और सुख मिल जाय तो फिर दुबारा भूख क्यो लगती ? भैया ! भूख लगनेका रोग ही फिर न रहे, क्षुधाका साधन जो शरीर है वह ही न रहे, केवल आत्मतत्त्व रह जाय वहाँ ही पूर्णानन्द है, वहां ही योगी जन सदा रहा करते है ।

भैया, बाहरी पदार्थोमे किसकी आशा रखते हो ? किसीसे कुछ मिलता भी नही है । जो कुछ हमे मिल रहा है वह हमारे अन्दरसे मिल रहा है । विषय भोग, भोगकर जो कुछ भी हमे मिलता है सो आकुलताएँ ही मिलती रहती है । विषयोमे सुख नही मिलता है । बडे पुरुष होते है वे विषयोके भोगे बिना ही विषयोका त्याग करके अपने आप ही सुखका अनुभव करते है, मगर जो महापुरुष है वे ब्रह्मचर्यसे सुखका अनुभव करते है । और जो पशुवत् होते है वे अपने विषयोंमे सुखको नही पा सकते है । जो निम्न श्रेणीके मनुष्य होते है वे वे विषय कामनाओसे ही सुखका अनुभव करते है वहाँ ख्याल बनानेसे ही उन्हे काल्पनिक सुख उत्पन्न होता है किन्तु विषयोमे सुख नही होता है ।

भैया, सुख स्वरूप हम स्वय है, इसलिए सारी अहित आशाओको छोडकर सारी

अकल्याण करने वाली आशाओंको छोडकर मैं आनन्दस्वरूपको देखू । अपने आनन्दस्वरूपको देखनेसे ही आनन्द मिलेगा, दूसरी जगह आनन्द नही मिलेगा । यह प्रभुकी शान्त मुद्रामय मूर्ति दुनिया भरमे यह बतला रही है कि विकल्प न करो, इसी प्रकार ज्ञानानुभव करो, इसी मे हित है, कोई विकल्प न करो । अपने आत्मामे समाधि लगावो, ऐसा उपदेश यह प्रभुकी मूर्ति देती है । यहाँ कोई स्थान अपने आने जाने योग्य नही इससे बद्ध आसनसे बैठे रहो । यहाँ कुछ काम करनेको नही है सो हाथपर हाथ रखकर समाधि लगा लो । दुनियामे कौनसी ऐसी चीज है जो देखनेके लायक है ? कोई भी तो नही है । इसलिए नेत्रोको बंद कर लो । भगवानकी मूर्तिसे हमे यह शिक्षा मिलती है कि हम यह भावना करें व यत्न करें कि बाह्य पदार्थोंसे जितना हट सकें, हटें । विकल्पोसे निवृत्ति लेकर रहे तो उसमे भला है । सो मैं अब बाह्यपदार्थोंकी आशाको त्यागकर अपने आप सुखी होऊँ ।

ज्ञायकोजोमरोह् की जीविताशां करोमि किम् ।
स्वातन्त्र्यं तत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥४—२॥

देखो मैं एक ज्ञानस्वरूप हूँ, इसीलिए तो हमारे और प्रभुके स्वरूपमे कोई अन्तर नही है । जो प्रभुका स्वरूप है वही हमारा और आपका स्वरूप है । अन्तर पड गया है तो केवल एक दृष्टिका अन्तर पड गया है । मैं शुद्ध, पवित्र आनन्दमय अपने स्वरूपको देखू और जो राग द्वेष बाधक है उनसे अलग रहूं, इस वृत्तिसे मेरा रागद्वेष छूट जाये तो हमारी प्रभुता प्रकट है । जैसे कोई पत्थर है, मान लो संगमरमर हो, यह इच्छा है कि उसमे बाहुबलि स्वामीकी मूर्ति बने । बाहुबलि स्वामीकी मूर्तिका नक्शा लिया । किसी कारीगरसे कहा जाय कि देखो भैया, बाहुबलि स्वामीका ऐसा नक्शा बनाना है, मूर्ति बनानी है । खूब दिल भर करके फोटोको देखकर कारीगर कहेगा कि अच्छा बन जायगी । अब बतलावो वह कारीगर उस पत्थरसे कैसे बाहुबलि स्वामीकी मूर्ति बनायेगा ? बाहरसे कुछ चीजें नही लायगा । बाहर से कुछ लेकर मूर्ति नही बनायेगा । उस मूर्तिको उसने ध्यान लगाकर देख लिया है । उस पत्थरमे, वह है, जहाँ है । अब केवल ढकने वाले पत्थरोको निकालना है । मिट्टी लगाकर मूर्तिको तैयार नहीं करना है वह मूर्ति जिस रूपमे निकलेगी वह तो पत्थरके अन्दर है । अब कारीगर तो छेनी हथौडीसे आवरक पत्थरो को काटकर अलग करेगा । कारीगरको मूर्ति बनानेमे कुछ चीजोको मिलाना नहीं है । केवल मूर्तिके ढकने वाले पत्थरोको छेनी हथौडी आदिसे हटाना है । मूर्ति बनानेके लिए कुछ लानेका काम नहीं है । लाना क्या है ? वह तो मूर्ति खुद ही है । केवल ढकने वाले पत्थरोको हटानेका काम है ।

इसी तरह यदि ज्ञान करना है तो मोहका हटाना मेरा काम है। अपनेमे ये जो राग द्वेष आदि विकार, अज्ञानता, ईर्ष्या आदि विकार आ जाते है उनको हटाना है। इन सब विकारोको हटानेके लिए ऐसा विश्वास हो जाय कि मैं भगवानके समान हू। ये विकार पर-भाव है, हटाये जा सकते है। कहते है कि प्रभु घट-घटमे विराजमान है। प्रभु अलगसे कोई जीवमे नही, स्वय ही जीवमे प्रभुता है। वह स्वय प्रभु समान है। उसका आवरण करने वाले जो रागादिभाव है, उनको यह करना चाहता है, इससे भगवान व्यक्त नहीं हो पाता। यदि और कुछ अपनेमे दृष्टि करे तो उसमे अपनी दयाका भाव प्रकट होगा। तो उसे प्रकट करनेके लिए लाना कुछ नहीं है। केवल हटाना ही हटाना है। रागादिभाव हटाना है भैया रागसे अगर लाभ मिलता है तो रखो और अगर न मिलता हो तो हटावो। राग मिटनेकी चीज है कि पकडनेकी चीज है ? राग तो मिटानेकी चीज है।

जैसे कोई आदमी एक तो अपराध करे और दूसरे सीनाजोर बने तो यह डबल अपराध बना। एक तो राग करता है यह है अपराध, और दूसरे रागकी पकड कर रहा है यह है महा अपराध। तो डबल अपराध कर रहे है। तो यह भावना रखो कि बाहरी पदार्थोंसे प्रीति छूटे, राग करनेकी मोह करनेकी भावना छूटे। वैराग्यकी भावना आवे, तभी शांति व संतोष होगा। बिना राग द्वेष मोह आदि परिणामोके त्यागे वैराग्यकी भावना नही आती है। अगर राग द्वेष मोहमे फसे रहे तो क्या ऐसा जीवन कोई जीवन है ? अरे प्रभूकी भक्ति आए, अपने निज प्रभूके दर्शन होवें तो उससे कषायें छूटेंगी। बस यही सत्य जीवन है।

यहाँ तो लोग मदिरमे प्रभुके दर्शन करने जाते है तो भगवानसे विनय करते है कि हे भगवान हमें पुत्र दो, हमे सुखी करो। अरे ये तो भगवानके दर्शन नही करते है। ये तो बिल्कुल उल्टा बिगाड करते है।

भैया, भगवानके दर्शन तो इसलिए करना चाहिए कि हम प्रभुमे प्रार्थना करें कि हे नाथ मैं आशावोको त्यागूं। हाय, लेना नही, देना नही, व्यर्थमे ही विकल्प बनाये हुए है। राग कर रहे है, द्वेष कर रहे है। हे नाथ ! ये राग द्वेष मिटें ऐसी भावना प्रभुदर्शनके समयमे होना चाहिए। और अगर ऐसी भावना न हो तो बिल्कुल उल्टा काम है। जैसे किसी धनीके पास जायें, और कहे कि हमे ज्ञान दे दो तो उल्टा काम है और अगर किसी ज्ञानी पडितके पास जायें व कहे कि हमे धन दे दो तो यह उल्टा ही तो है। अरे यहाँ साधु पंडित ज्ञानीके पास तो नास्ताको भी कुछ नही है। यदि धनीके पास जावो तो वहाँ ज्ञान न मिलेगा। जो जैसी चीज है उसे वैसा माने तो भला है। है और कुछ और माने

और कुछ, यह तो ठीक नही है । प्रभु राग द्वेष रहित है, सारे विश्वका जाननहार है, पुत्र मित्र इत्यादि उसके पास नही है । प्रभुके तो ध्यानमे ही ऐसा पुण्य बनता है कि सब सम्पदा स्वयमेव मिलती रहती है । उस प्रभुके पास अन्य कुछ नहीं है । वह प्रभु तो ज्ञान मात्र है ।

प्रभुके स्वरूपको निरखकर यदि यह भाव करें कि हे प्रभो तेरे ही जैसा तो मेरा स्वरूप है । मेरा यह स्वरूप प्रकट हो और ये राग द्वेष मोह इत्यादि भाव न हो तो कुछ मिलेगा । अगर राग द्वेष मोह इत्यादिका भाव न हो तो यही ज्ञान है, यही आनन्दकी बात है । माँगनेसे पुत्र इत्यादि नही मिलते है जो भगवानसे माँगता है उसके ही पुत्र हो यह कोई जरूरी नही । जो नही मांगते है उनके दर्जनो बच्चे बच्चियाँ हो जाते है । तो ये होना है तो होते है और अगर नही होना है तो नही होते है । भगवानसे मागनेसे कुछ नही होना है । भगवानसे यदि शांतिका मार्ग मांगें तो कुछ मिल जायगा । सो भगवानके दर्शन करके यह भाव बने कि हे प्रभो यह विषयोकी इच्छा, राग द्वेषका परिणाम, यह कषायोका भाव, ये सब मेरे समाप्त हो । कब ये समाप्त होगे, ऐसी भावना करना चाहिए तभी इस प्रभुके दर्शन होगे । तो यहाँ कहते है कि मैं ज्ञानस्वरूप हू, अजर हू, मेरा जन्म नही होता । मै अमर हूं, मेरा मरण नही होता । फिर इस पृथ्वीमे जीनेकी क्या आशा बनाऊं ? देखो यहाँ आक्रमणकी बात सुनकर सब घबडाते है । अब जिन्दा रहेंगे कि नही ? मेरा यदि यह भाव बने कि मैं तो सत् हू, मेरा क्या बिगडता ? मैं एक जगह छोडकर दूसरी जगह पहुंच गया विनाश तो नही है । यदि ऐसी भावना हो तो दुःख कब है ? मै तो अजर हू, अमर हू । तो फिर जीनेकी आशा क्या करूं ? स्वतन्त्र हू । इस कारण सब आशावोको त्याग कर मै अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी होऊं ।

अदृश्यो ज्ञायकोहं कां कीर्तिमिच्छानि काविह ।
स्वातन्त्र्यं तत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–३॥

जिन प्राणियोके मन लग जाता है उन प्राणियोके सबसे बडा रोग यह लग जाता है कि वह कीर्ति और यशकी चाह करने लगता है । और जिसके मन नही है ऐसे प्राणीको तो मात्र विषयोकी ही बात लगी रहती है किन्तु जिसके मन होता है उन जीवोको कीर्ति या यशकी चाह हो जाती है । तो भाई कीर्तिको कौन चाहता है ? हम तो अदृश्य है । मै दूसरोके द्वारा देखनेमे नही आ सकता जब हमे दूसरे देख ही नही सकते तो कीर्ति कौन चाहे ? जिनको हम कीर्ति दिखाना चाहते है वे हमे कुछ देते तो नही । फिर किसको दिखाना चाहिए ? तुम तो अदृश्य हो । अपने आपको विचारो कि मैं तो अदृश्य हूँ और केवल

ज्ञानस्वरूप हू इसलिए यह मैं अदृश्य और ज्ञानस्वरूप इस लोकमे किस कीर्तिको चाहू ?

भैया, कीर्तिके सम्बन्धमे साहित्यिक लोग यह कहते है कि कीर्ति तो आज तक कुमारी ही रह रही है क्योकि इस कीर्तिको कोई बर नही सका। इसका पति नही बन सका। जिसको कीर्तिकी चाह है उसे कीर्ति नही मिलती और जिसको कीर्ति चाहती है उसकी कीर्तिको चाह नही। अतः कीर्तिकी शादी हो ही नही सकी। अब तो कीर्ति कुमारी ही रह गयी। जो कीर्ति चाहते है उन्हे कीर्ति नही मिलती और जिनकी कीर्ति छायी हुई है उनको कीर्तिकी चाह नही। सबसे बडी कीर्ति भगवानकी छायी हुई है देखो भक्त भगवानकी उपासना करते है; प्रभुका नाम लेते है, प्रभुका गुणानुवाद करते है। यह तो कीर्तिका एक माप है। सबसे बडी कीर्ति तो भगवानकी यह है कि हर एकके मुखसे भगवानका नाम निकलता है। तो कीर्ति भगवानकी जैसी कहा हो सकती है। पर भगवान कीर्तिको नही चाहते है वे तो वीतरागी है, सर्वज्ञ है। उन्हे कीर्तिकी चाह ही नही। अरे जो कीर्तिको चाहता वह स्वय अशुद्ध है। तो अशुद्ध न होना हो तो कीर्तिको न चाहो।

अपने स्वरूपमे ही दृष्टि दो कि मैं शुद्ध हू, ज्ञानस्वरूप हू। इस लोकमे कीर्तिको क्या चाहू ? यहाँ नामके लिए मरना कीर्तिके लिए मरना निपट अज्ञान है। अब किसीको वश करना हो या किसीसे काम लेना हो तो उसकी बडी सुगम औषधि यह है कि उसकी प्रशंसा कर दो। जो काम डाँटकर नही ले सकते हो वह काम प्रशसा करके ले सकते हो। कोई बच्चा बडा शरारती है, उसको दण्ड देकर सारी शरारत मिटाना कठिन है। उसकी प्रशंसा करने वाले शब्द बोल दो। तू तो राजा है, तू बडा भला है। तुझे ऐसा न करना चाहिए। तो ऐसा कहनेसे वह शरारत छोड देगा। किसी मनुष्यको कितना ही डाँट डपटकर काम लेना चाहो तो वह बात बनना कठिन है। बस उसकी प्रशसा कर दो, कुछ गुणानुवाद गा दो जितना चाहो काम ले सकते हो, हाय इस कीर्तिके पीछे पडकर लोग बरबाद हो रहे है, अपने चैतन्यप्राणका घात कर रहे है।

गुरु जी सुनाते थे कि टीकमगढमे एक सुनारिन थी। वह अपने पतिसे बोली कि हमे ३० तोलेके बखौरे बनवा दो। बहुत दिनोसे लडाई चल रही थी। सुनारने क्या किया कि किसी तरह कर्जा ले करके ३० तोलेके बखौरे बनवा दिये। बखौरे तो पहिन लिये, पर देशमे रिवाज था मोटी धोती पहिननेका। मोटी धोती पहिननेके कारण हाथ पैर ढकें रहते थे। सो किसीने उस स्त्रीसे यह न कहा कि ये बखौरे बडे अच्छे बने हुए है। उसको मन ही मन बडा गुस्सा आया कि बडा हठ करके तो यह गहना बनवाया था, पर किसीने न पूछा। उसके मनमे बडी तेजीसे गुस्सा बढा। सो उसने अपने झोंपडीमे आग लगा दी। जब घरमे आग

लग गयी तब घबडायी । अब तो वह हाथ पसार-पसारकर लोगोको आवाज देकर बुलाने लगी कि अरे दौडो, झोपडी जली जा रही है । बहुतसे लोग आने लगे । स्त्री उनसे कहती—अरे वह रस्सी पडी है, वह कुआ है, पानी खीचकर ले आवो । झोपड़ी जली जा रही है । इतनेमे एक स्त्रीने हाथमे बखौरा पहिने देखा । उस स्त्रीने कहा—जीजी, यह बखौरा कब बनवाया था ? यह तो बडा सलोना है । वह स्त्री बोली—अरी रांड, अगर पहिले ही इतनी बात बोल देती तो घरमे मै आग क्यो लगाती ?

भैया, सारा जगत इज्जतके पीछे मर रहा है । किसको इज्जत दिखाना चाहते हो ? किसको अपनी महत्ता दिखाना चाहते हो । तुम तो अदृश्य हो । तुमको कोई जानता ही नही । तुम तो ज्ञानस्वरूप हो । अपने आपको विचारो कि मैं तो अदृश्य हू, ज्ञानमात्र हू । इस लोकमे मै क्या कीर्ति चाहू ? यदि कीर्तिकी चाहका त्याग हो जाय तो वास्तवमे आजादी मिले । कीर्तिकी चाह रहे तो आजादी खतम हो जाती है क्योकि कीर्ति चाहोगे तो उसे परके अनुकूल यत्न करना ही पडेगा । इसलिए इस कीर्तिकी चाहकी त्यागमे ही स्वतंत्रता है और इससे बढकर कोई सुख नही है । स्वतत्रता ही एक महान सुख है । सो स्वतत्र ज्ञानघन आनन्दमय अपने स्वरूपको निरखकर अपनेमे अपने आप सुखी होऊ ।

ज्ञायकस्याप्यवद्धस्य विषयाशैव बन्धनम् ।
स्वातन्त्र्य तत्परित्यागे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४–४।।

देखो यह जीव ज्ञानमात्र है, अमूर्त है । किसी पदार्थसे बंध नही सकता । इसका किसीसे संयोग नही है, बन्धन भी नही है । लोगोने इसकी जो अपने आपकी आशा लगा रखी है—यह विषयोकी आशा ही बन्धन बन गयी है । जैसे आप यहाँ बैठ गये है तो पुत्रोसे बंधे नही, स्त्रीसे बधे नही, धन वैभवसे बधे नही, पर इन पदार्थोंकी ओर आपकी रुचि है, आशा है तो आप स्वयं बँध गये । अब आप इनको छोडकर कही जा नही सकते । क्या हमे किसीने बाँध रखा है ? क्या किसी ने जकड रखा है ? अरे किसीने कुछ नही किया, केवल ख्याल बना लिया है कि ये मेरे इष्ट है, ये मेरे अनिष्ट है, ऐसे व्यर्थके ख्याल बना लेनेसे ही वे पराधीन हो जाते है ।

विषयोकी आशा ही एक बन्धन है । जो फंसता है वह विषयोकी आशासे ही फसता है । गृहस्थीका बन्धन कहाँ है ? आशा ही केवल बन्धनका आधार है । इसलिए वास्तविक बन्धन आशा है । बाहरी चीज बन्धन नही है । सो विषयोकी आशा ही इस जीवका बंधन है । आशाका बन्धन छूटे तो स्वतंत्रता मिले, नही तो स्वतत्रता न मिलेगी । आशाके पीछे ही

सबको कष्ट भोगना पडता है। कितना भी अटूट परिश्रम करो, ये जितने भी क्लेश है, नट-खट है, नृत्य है वे सब इसी आशा पर ही अवलम्बित है। आशा मिटे तो सारे क्लेश खत्म। विषयोकी आशाका त्याग हो तो आजादी है अन्यथा आजादी नही है। यह वास्तविक स्वतन्त्रताकी बात यहाँ कही जा रही है। यह जीवोकी स्वतन्त्रताकी बात चल रही है। जब यह जीव परकी आशा न रखे तब यह जीव स्वतन्त्र कहलाता है। आशा रखी तो बस बन्धनमे बंध गया। तो बंधन आशा ही है। अन्य कोई बन्धन नही। सो इस आशाका परित्याग होनेमे ही वास्तविक स्वतंत्रता मिलती है।:

त्यागसे ही आजादी होती है, ग्रहणसे आजादी नही होती। पदार्थोंके संग्रहसे स्वतन्त्रता नही मिलती, किन्तु उनकी आशाके त्यागमे ही स्वतन्त्रता मिलती है। अभी आप सब तो गृहस्थीमे है, परिवारमे है, बच्चोमे है। बहुतसी बातें करनी पडती है। धन कमाना, रसोई बनाना चार आदमियोकी बात पूछना इत्यादि सारी बातें करनी पडती है। यह सब करते हुये भी यदि भीतरमे सबसे निराले अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर रहे और स्वतन्त्र-स्वतंत्र सारे पदार्थ है, ऐसी प्रतीति रहे तो कुछ झगडा न रहे, क्योंकि सम्यग्ज्ञान जग गया। अन्य पदार्थोंको स्वतंत्र-स्वतन्त्र देखनेसे उनकी आशाका त्याग होता है। जहाँ किसीको अपना माना वहाँ आशा करोगे और जहां अपना न माना वहाँ आशाका क्या काम ? सो वस्तुस्वरूपका यथार्थ बोध हो तो वहाँ आशा नही ठहरती। सम्यग्ज्ञान करके उन विषयोकी आशाका त्याग करके ही स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।

भगवान रामचन्द्रजी के परिवारके पुराने पुरखोमे से एक वज्रभानु भी हुए थे, जिनकी शादीके बाद उनका मोह स्त्रीसे हो गया था। जब स्त्रीका भाई लिवानेके लिये आया तो वज्रभानु भी अपनी स्त्रीके साथ ससुराल चल दिया। रास्तेमे एक जगल पडा। जगलमे एक मुनिराज शांत मुद्रामे ध्यानमे बैठे नजर आये। वज्रभानु उन मुनिराजको देखकर मनमे सोचने लगा कि देखो यह युवक मुनिराज सब ओरके विकल्पोसे हटकर अपनेमे ही ध्यान लगाये है और कितने सुखी नजर आ रहे है और यह मै पापी स्त्रीका १० दिनका वियोग नही सह सकता। मैं साथ ही जा रहा हू। कुछ और विवेक जगा। टकटकी लगाकर देखने लगा। मनमे आया कि मुझे भी ऐसा होना चाहिए। व्यर्थमे लगावमे कोई सार नही है। उस समय उसका साला उदयसुन्दर उससे मजाक करता है—क्या तुम भी त्यागी बनोगे ? वह जानता था कि मोही त्याग कहाँ कर सकता है ? वज्रभानुने कहा कि अगर मै मुनि बन गया तो क्या तुम भी मुनि बन जावोगे ? उसका तो मन था ही। वह मुनि बन गया। वज्रभानुको देखकर उदयसुन्दरको भी वैराग्य हो गया। दोनोको विरक्त देखकर स्त्रीका भी मन पलट

गया । वह भी साध्वी, आर्यिका हो गयी । अब तीनो स्वतन्त्र हो गये, तीनो जुदा हो गये ।

एक जगह रहे तो क्या, विहार करें तो क्या, साधु तो स्वतत्र ही होते है । जब तक स्नेह है तब तक बन्धन है । मोह समाप्त हो, विषयोकी आशा न रहे तो वहाँ खेद नही है । विषयोकी आशाका त्याग होनेपर ही स्वतत्रता प्रकट होती है । सो आशाको त्यागकर अपनेमे अपने आप स्वय आनन्दमग्न होऊं । भैया ! किसीसे कुछ आशा न करो । सभी पर है, सभी अपने आपमे ही अपने काम करते है । उनसे मुझे कुछ नही मिलता है । मै तो अपने ख्यालो मे ही मस्त हू और वे अपने ख्यालोमे मस्त है । किसीको कोई दूसरा कुछ आदान-प्रदान नही करता । फिर किसकी आशा करें ? इस आशाको त्यागकर हम वास्तविक आनन्द लें ।

आशा त्यागो हि मे बन्धुर्मित्र त्राता गुरुः पिता ।
तस्यैव शरणं सत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-५॥

आपका असली बन्धु कौन है ? क्या सहोदर पुत्र आपका बन्धु है ? वह भी वास्तविक आपका बन्धु नही है । वह भी एक पृथक् जीव है, आप भी एक पृथक् जीव है । इस दुनियामे सब भिन्न-भिन्न होते है । बडी उम्र हो जानेपर अलग ही हो जाते है, और अलग नही होते तो इन्कमटैक्स कम लगे इस गरजसे होना पडता है । फिर उनका आपसमे मन भी नही लगता, क्योकि जहाँ उनकी शादी हुई वे अपनी स्त्रीसे प्रीति रखते है । स्त्रीसे बोलचीत होने लगती है, पिता-भाईसे प्रेम नही रह जाता है । वे अलग हो जाते है और फिर आजके साझेमे भाईको भाई नही सुहाता । वे यदि अपने भाईसे स्नेह भी करते तो भी उनका कुछ नही करते । पुण्यका उदय है तो भाई सेवक बना हुआ है । कोई किसीको कुछ देता नही है, और कोई किसीका मित्र नही है । बन्धु तो मेरा आशात्याग ही है और आशात्याग ही मेरा मित्र है । मित्र उसे कहते है जो विपत्तियोसे बचाये । विपदाओसे बचाने वाला तो यह आशा त्याग ही है ।

आशाका गड्ढा एक ऐसा गड्ढा है कि इस आशामे कितना ही परिग्रह डालते जाओ, ज्यो-ज्यो संचय करते जाओगे त्यो त्यो आशाका गड्ढा चौड़ा होता चला जायगा, बढता जायगा । यहाँ तो इस पृथ्वीका कितना ही बडा गड्ढा हो, कूड़ा-करकट डालें तो वह भर जाता है, इसी प्रकार कितना ही धन सचय कर लें, पर आशा उससे अधिक ही बढ़ती जायगी ऐसी गदी यह आशा है । आशा करने वाला विपदाओमे ही पड़ा रहता है । उसको बचाने वाला कौन है ? उसको बचाने वाला केवल आशाका त्याग है ।

मेरा वास्तविक मित्र आशाका त्याग है और रक्षक भी आशाका त्याग है । जो आशा करता है उसे अन्य जीवोका आश्रय लेना पड़ता है और इस आश्रयसे ही विपदायें आती है ।

यदि उन आशाओंका त्याग कर दो तो विपदायें दूर हो जायेंगी। आशाका त्याग करना यही वास्तविक रक्षक है। हमारा गुरु कौन है? जो मुझे हितमे लगावे, सच्चे मार्गमे पहुचावे, वह हमारा गुरु है। जब तक आशा है तभी तक खोटा परिणाम है। यदि आशाका त्याग होता है तो इससे दृष्टि निर्मल होती है। आशाका त्याग होनेसे ही सच्चा हित मिल जाता है। इसलिए मेरा गुरु भी आशाका त्याग है। मेरा पिता कौन है? पिता कहते ही उसे है जो पालन-पोषण करे, विपत्तियोसे हटावे, प्रगतिकी ओर ले जाये। तो मेरा पिता कौन है? शरीर वाले पिताकी बात नही कह रहा हू। इस शरीरकी अन्तर आत्माका जो प्रभु है उसे कह रहा हू कि जो पिता है वह कौन है? वह पिता भी आशाका त्याग है। यदि आशाका त्याग हो तो आत्मबल बढता है, आत्माकी प्रगति होती है, कर्मोंका क्षय होता है, जगत्के बन्धन छूटते हैं। आशाके त्यागमे ही समस्त सुख निहित है। आशाके त्यागका ही प्रकरण चल रहा है।

भैया! सभामे एक सेठजी बैठे थे, सन्यासी भी बैठा था। संन्यासी कह रहा था कि त्याग करनेसे जीव संसारसे पार हो जाता है। दो एक दिन बादमे संन्यासी किसी दूसरे गाँव जा रहा था। मान लो बिहारीसे बंधा ग्राम जा रहा था। बीचमे एक नदी मिली। नदी पार करनेके लिए नाविकने संन्यासीसे कहा कि एक आना लेंगे। सन्यासीके पास तो कुछ था नही। सन्यासीने कहा कि अब तो हम इसी पार रहेगे। किसी पार सही, पार ही तो है। उस पार नही जायेंगे। एक सेठ भी बँधा जा रहा था। तो उस सेठने एक आना सन्यासीका और एक आना अपना दिया। अब तो नावसे वे दोनो नदी पार हो गये। सेठने कहा—संन्यासी महाराज! आप तो कहते थे कि जो त्याग करता है वह इस संसारको पार कर जाता है, यहाँ तो आप एक छोटीसी नदी भी पार न कर सके। सन्यासीने कहा—भाई, यह त्यागका ही तो परिणाम है कि इस पार आ गये। दो आनेका त्याग किया इसीसे इस पार आ गये।

त्याग करनेसे हानि कुछ नही, बल्कि वृद्धि होती है। धन घटता है पापोसे, ऐबोसे। त्यागसे धन बढता है। वह तो जितना भाग्यमे है वह आता ही है। सब प्रकारकी आशावोका त्याग हो तो अपना ज्ञानस्वरूप ही अपनी शरण है। ऐसा त्याग हो और अपने आपके स्वरूपको देखो। अपने आपके स्वरूपमे निवास हो, किसी परकी आशा न बने, यही ज्ञान ही आत्माका सच्चा ज्ञान है। अपने प्रभुका स्मरण रहे तो सुख प्राप्त करनेका उपाय प्राप्त हो सकता है।

नैराश्येऽपि हि नैराश्यं तस्य का तुलना भुवि ।
अतो नैराश्यमालम्ब्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–६॥

जगत्के अन्य जितने भी पदार्थ है वे सब स्वतत्र है, जुदा है। सबका स्वरूप न्यारा न्यारा है। जितने भी जीव है वे सब अपने-अपने स्वरूपमे है और जितने दिखने वाले पौद्गलिक पदार्थ है वे सब भी अपने-अपनेमे स्वतंत्र है। स्वतंत्रके मायने यह हैं कि सब अपनी-अपनी स्वरूप सत्तासे है। वे सब कोई किसी दूसरेकी सत्तासे नही है। इसी कारण मैं कुछ विचारता हूं तो उस विचारके कारण आपमे कुछ बात पैदा नही होती। आप कुछ सोचते है, करते है, उसके कारण अन्यमे कोई बात पैदा नही होती। हम अपना ही काम करने वाले है, आप अपना ही काम करने वाले है। जगत्के सारे जीव अपना-अपना काम किया करते है। यही एवज है कि एक जीवका स्वामी दूसरा जीव नही है। किसी पर तुम्हारा अधिकार नही है। जब ऐसी बात है तब किसकी आशा रखना कि हमे इससे लाभ मिलेगा। आशा करना व्यर्थ है।

भैया, कभी आशाके अनुसार कोई काम बन गया तो यह न सोचो कि हमने ऐसी आशा की थी इससे काम बन गया। बाहरमें तो जब जिसका जो होता है होता ही है। वहाँ हमारा किसीसे मेल खा जाय यह दूसरी बात है। हमने आशा की, इसलिए यह काम बना यह बात बिल्कुल गलत है। हम तो वहां केवल अपना विचार ही बना सके, विकल्प और ख्याल ही कर सके, इसके सिवाय बाहरमे कुछ नही किया। जो मोही जीव है. अहंकारसे पूर्ण वासनाए बनाए हुए है कि यह मेरा मकान है, यह मेरा घर है, यह मेरी दुकान है, यह मेरा कुटुम्ब है। ये मेरे परोपकार करने वाले है। आशाए रखना ही अज्ञान है। यही जीवका मोह है। ज्ञानी जीव तो यह विश्वास रखता है कि मै तो अपना ज्ञानस्वरूप कर सकता हूँ और इससे अधिक अगर बिगड गया तो राग द्वेष कर लिया, अपनेको सता लिया, अपनेको ही कर लिया। जैसा बन पाया वैसा कर लिया। मै दूसरोका कुछ नही कर सकता और इसी तरहसे दूसरे मेरा कुछ नही कर सकते। ऐसा ज्ञान जब जगता है तो परपदार्थोंकी आशा छूट जाती है।

तब वास्तविक ज्ञान क्या है ? आशा न रखना। आशा कर करके ही दुःखी हो रहे हैं। लोगोने बचपनसे लेकर अब तक कितनी ही आशाएं नही की, पर हे आशा ! बतला तू अब तक किसीकी हो सकी ? नही हो सकी। री आशा, तेरे लिए क्या-क्या काम नही किया ? कहाँ-कहाँ नही घूमा ? कौन-कौनसी चीजोमे निगाह नही दौडाई ? सब कुछ कर डाला, बता अब तक राजी हुई कि नही ? राजी हो गई तो ठीक है, नही हुई तो तू जा, जो कुछ

होना है होगा, तू जा। उसे आशाका क्या काम जिसने ज्ञानको पहिचान लिया। इन आशाओने ही इस जीवको भटका रखा है। आशा न करे तो इसीके मायने वैराग्य है। ज्ञानी जीव तो आशासे सदा दूर रहता है। इस पृथ्वी पर उसकी कोई तुलना नही की जा सकती है जो नैराश्यकी भी आशा नही करता। सबसे महान् वह है जो किसी की आशा नही रखता। सो भैया, आशामे तो अब तक बहे, उससे कोई लाभ नही हुआ। अब मैं आशासे हटकर अपने भीतरके ज्ञानस्वरूपको देखूँ जो सबसे निराला है, स्वय आनन्दमय है, ऐसी बातमे तो प्रभुके दर्शन होते है। मैंने अगर आशाका आलम्बन न लिया तो इस उपाय मे आनन्दका मार्ग मिल सकता है। आशा करके तो आनन्द नही मिलेगा।

एक कथानक आता है पुराणमे कि एक पुरुष श्रावकोके यहाँ छाछ पीने गया। छाछ पीकर उसने मुह पर हाथ फेरा तो थोडासा मक्खन मूछोमे लग गया। उसने सोचा कि अगर ५-७ घरोमे जाकर छाछ पीऊँ तो कुछ लाभ हो सकता है। अब तो ५-७ श्रावकोके यहाँ छाछ पीकर मक्खन जोडने लगा। २-३ वर्षमे उसने काफी घी तैयार कर लिया। जहाँ भी वह छाछ पीने जाता, हाथमे उसके एक कटोरी रहती थी, उसीमे मूँछोमे लगा हुआ मक्खन इकट्ठा कर ले। पीछे डबलेमे इकट्ठा कर ले। इस तरहसे लगभग एक सेर या डेढ सेर घी तैयार कर लिया। माघका महीना था। जाडेके दिन थे। एक झोंपडीमे रहता था। छीके पर मक्खन रखा था। वह नीचे आग ताप रहा था। तापते-तापते ही उसे आशाने घेर लिया। सोचा—करीब डेढ सेर घी तैयार कर लिया है, कल बाजारमे उसे ४-५ रु० मे बेचूंगा। उतने रुपयेमे खोम्चाकी चीज ले आऊँगा। दो दिनमे ही १०-१५ रुपया कमा लेंगे। एक बकरी ले लेंगे। दूध घी बेचकर गाय ले लेंगे। फिर गाय, बैल आदि ले लेंगे, फिर एक जमीदारी खरीदेंगे, फिर धनी हो जायेंगे, फिर शादी कर लेंगे। मेरे बच्चे होगे। कोई बच्चा आकर बुलायेगा कि पिताजी चलो माँ ने तुम्हे भोजन करनेके लिए बुलाया है तो मैं खानेके लिए न जाऊँगा। मना कर दूगा कि अभी नही जाता। लडका फिर आयेगा और कहेगा कि चलो माँ ने रोटी खानेके लिए बुलाया है तो मैं कहूगा कि हट बे, मै अभी नही जाऊँगा। फिर लडका खानेको बुलाने आयेगा तो कहूगा—हट बे गधे, कितनी बार कह दिया कि मै अभी नही जाऊंगा। ऐसा कहते हुए जब उसने झटकेसे पैर फटकारा तो छीके पर टगे हुए घी के डबले पर लात पड गयी। अब तो डबला फूट गया और मक्खन जल गया। अब बाहर आकर वह चिल्लाता है कि हाय मेरी जमीदारी खत्म हो गई, मेरे गाय, बैल, भैस आदि खत्म हो गये। मेरे लडके बच्चे सब खत्म हो गये। जब बाहरके लोगोने यह सुना तो सोचा कि अभी कल तक तो यह भीख माँगता था, माँगकर छाछ पीता था, आज इसकी

जमीदारी कहांसे आ गयी ? गाय, बैल, भैंस, लड़के बच्चे इत्यादि कहांसे आ गये ? लोगोंने उससे पूछा तो सारी कल्पनाकी बातें उसने बता दी। इतनेमें एक सेठ बोला—अरे केवल ऐसा सोचा ही तो था। अब क्यों दुःखी होते हो ? एक चतुर आदमीने कहा—सेठ जी ! यही हालत आपकी भी है। जब आपका इस संसारमें कुछ नहीं है तब आप कैसे मानते हो कि ये मेरे हैं। अरे जो कुछ तुम्हारे पास है वह तुम्हारा कुछ नहीं है। केवल ख्याल ही तो बना लेते हो कि यह हमारी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन-वैभव है। अरे वे सब पदार्थ जुदे-जुदे हैं। केवल ख्याल बना लेनेसे, केवल कल्पनाएँ कर लेनेसे वे आपके तो नहीं हो जाते।

भैया ! यह ख्याल भी अज्ञानसे बनता है, मोह ममतासे बनता है। जब ऐसा ख्याल बन जाता है तो आशाएं बन जाती हैं। आशाएं बन जानेसे दुःख होते हैं। जगत्के ये सब जीव एक आशाके ही रोगी हैं। आशा न होती तो इस जगत्में दुःख ही क्यों रहता ? भैया, अपने प्रभुके स्वरूपकी ओर झुको, जितना भी हो सके आशाओंसे दूर रहो। सुख धन बढानेसे नहीं होता है। सुख तो अपने भीतरकी बात है। सुख बाहरसे नहीं आता। आशा जिसने छोड दी वह सुखी है और जो आशामें लगा है वह दुःखी है। सो भैया ! आशाओंको त्यागो, अपने स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

वीततृष्णस्य केऽप्यर्था क्लेशदाः सुखदा नहि।
तनोऽर्थाः स्युर्न वास्ताशः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-७॥

जिसके तृष्णा लगी है उसको जो कुछ मिलता है वह सब क्लेशोंका ही देने वाला है। जिसके तृष्णा न रहे तो पासमें कोई भी पदार्थ हो उसको क्लेश नहीं होता अथवा जिसके तृष्णा लगी है उसके पास कुछ न हो तब भी क्लेश भोगता है। तो यह देखते हैं कि ये सब पदार्थ क्लेशोंके ही कारण हैं। देखो जितना संग मिल गया, घर परिवारमें उतनी ही जान आफतमें रहती है कि नहीं ? अपनी अपनी बात देख लो। एक दो अकेले हैं तो उनकी जान फसावमें नहीं है, मगर अकेले दुकेलेमें भी तृष्णा रखे तो उसे दुःख ही मिलते रहते हैं। जिसके तृष्णा नहीं है वह सुखी है और जिसके तृष्णा लगी हुई है वह दुःखी है। तृष्णा करना एक अज्ञान है।

यहाँ कोई चीज हमारी आपकी नहीं है। इस शरीरके अन्दर जो जीव है उस पर दृष्टि दो तो सब अलग है कि नहीं ? अलग है। घरसे, वैभवसे, परिवारसे यह जीव न्यारा है कि नहीं ? जो इस देहके अन्दर विराजमान है, जो देखने जाननेका ही काम करता है, जो नाना प्रकारके विकल्प विचार किया करता है वह जीव सब पदार्थोंसे न्यारा है कि नहीं ?

सबसे यह जीव न्यारा है । कैसे न्यारा है ? जिस दिन मृत्यु हो जाती है । सब कुछ छोड़कर यहांसे जाना पडता है कि नही ? उस समय क्या यह मिन्नत चल जायेगी कि मैंने बहुत तो कमाया, हजार रुपया साथमे भेज दो । बहुत बहुत हमने पुत्रोसे प्रेम किया, बडे लाड प्यार से उन्हे पाला, चलो बेटा कोई हमारे साथ, तू तो हमारा लाडला पुत्र है । जायेगा क्या ? कोई नही जायेगा । सबको छोडकर ही जाना होगा क्योकि कोई भी चीज तुम्हारी नही है । जो चीज तुम्हारी है वह तो तुम साथ ले जावोगे और जो चीजें अपनी नही है उनको साथ कैसे ले जाया जा सकता है ? यह देह आपकी है ? आप इसे साथमे ले जायेंगे क्या ? नही ।

सो भैया, यह निश्चय रखो कि यह शरीर तक तो मेरा है नही, ये धन परिवार इत्यादि तो क्या साथ जायेंगे ? आपका जो धर्म, आपने जो संस्कार बनाये है वे आपके साथ जायेंगे । अपनी ज्ञान ज्योति के निकट जो राग द्वेष है उनको अलग हटाकर शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा रहनेका जो संस्कार बनाया है वही साथ जायेगा और जो बुरे काम किए, बुरे परिणाम किए वह दुर्वासना भी साथ जायेगी । जैसे दूसरोको सताया, हिंसा किया, विवेक कुछ नही किया, देवी देवतावोंके आगे किसी जीवको मार डाला । मारा, एक पाप तो यह किया और इससे मेरे कुटुम्बके लोग खुश रहेगे ऐसा विचार किया तो एक पाप यह किया । कितना बताऊँ ? देवी देवतावोके नाम पर किसी जीवकी बलि कर दी तो कितना बडा पाप है ? उसको बता नही सकते । महान् पाप है । ऐसा अज्ञानी पापी तो जन्म-जन्ममे अटपट योनियोमे पैदा होता है और बार-बार दूसरे जीवोके द्वारा मारा जाता है । ऐसा उसका पाप है और फिर देवी देवतावोका देह वैक्रियक है । वे देवी देवता तो किसी जीवको मारना नही चाहते । मांस तो उनका भोजन ही नही, उनके तो कठसे अमृत झरता है । पहिले आप उन देवी देवताओको देखते है, फिर भगवान्को देखते है तो मानो भगवान् उन देवी देवताओसे छोटे हो गये । सो ऐसा अविवेक न करें ।

भैया ! गहराईसे इस बातको सोचो कि जो बुरा संस्कार बनता है वह मरनेपर साथ जाता है कि नही ? जाता है । मगर रुलानेके लिए साथ जाता है । यह धर्म साथ जाता है तो केवल सुखके लिए जाता है । पाप तो दु.खके लिए जाता है और धर्म सुखके लिए जाता है । यहांकी सब चीजें जो-जो मिलती है वे कुछ भी साथ नही जाती है । यह धन आपने नही कमाया है, यह तो यो ही मिल गया । पूर्वजन्ममे अच्छा परिणाम किया था उस समय बद्ध पुण्यके उदयसे आपको सब कुछ मिल गया है, इसे आपने कमाया नही है । आपने तो परिणाम किया था, यह तो यो ही मिल गया है और यों ही चला जायेगा । जिसको कहते है मुफ्तमे मिला और मुफ्तमे ही चला जायेगा । सब मान, गम, धन, वैभव इनको आप करते

है क्या ? क्या आपके करनेसे मिल गये ? ये तो यो ही मिलते और यो ही बिछुडते रहते है। ये मुफ्तमे ही मिल गये और मुफ्तमें ही चले जायेंगे। आपके साथ अतमे क्या रहेगा ? घर-द्वार तो रहेगा नही। क्या रहेगा ? केवल पाप जो इसके कारण परिणाम बुरे करने पडे, वे पाप हो साथ जायेंगे।

एक चोर एक राजाके अश्वशालामे चोरी करने गया, वहाँ एक बडा बढिया घोडा था। उसको ले लिया, सोचा कि पशुवोके बाजारमे ले जाकर बेच दूगा। बाजार ले गया, खडा कर दिया। अब ग्राहक आये बोले—घोडा कितनेमे दोगे ? था तो ३०० रु० का, पर कोई यह न जाने कि घोडा चोरीका है इसलिए शानमे आकर बोला कि इसका मूल्य ६००) रु० है। अब कौन खरीदे ? दसो ग्राहक इसी तरह निकल गये। एक ग्यारहवाँ ग्राहक जो बूढा चोर था आया। वह बचपनसे ही चोरी करता था। उसने पूछा कि इसका मूल्य क्या है ? बोला ६००) रुपये। अब तो उसने पहिचान लिया कि यह घोडा चोरीका है। चोर चोरीकी चीजको परख लेता है। बोला—इसमे कौनसी तारीफ है कि इसका मूल्य ६००) रुपये है ? कहा—देख लो, इसकी चाल बहुत बढ़िया है। उस बूढे चोरके पास एक मिट्टीका हुक्का था वह तो उसको पकडा दिया और आप चाल देखने घोडे पर चढ गया। चाल देखनेके लिए चला। घोडे पर बैठकर वह उसे उडा ले गया। अब थोडी देरके बादमे वही पुराने ग्राहक आते है, पूछते है कि क्या घोडा बिक गया ? घोडे वालेने कहा—हाँ भाई घोडा बिक गया। बोले– भाई कितनेमे बिक गया ? बोला– जितनेमे लाये थे उतनेमे बिक गया। पूछा कि मुनाफा क्या मिला ? बोला—मुनाफा मिला एक दो आनेका मिट्टीका हुक्का।

सो ऐसी ही बात हम आप सबकी है। जो-जो मिलता है सब मुफ्त मिलता है। इसमे आत्माकी कमाई कुछ नही। जीव तो उनको छूता भी नही है। जीवसे तो सब चीजें न्यारी है। ये सब मुफ्तमे ही मिली है और मुफ्तमे ही मिटेंगी। आप लोगोने देखा होगा कि दसो बीसो व्यक्तियोने जो कुछ भी मुफ्तमे प्राप्त कर लिया होगा, छोड करके चले ही गये होगे। धन, स्त्री, पुत्र आदिके पीछे जो मोह किया, तृष्णा किया, वह पाप साथ रहता है। चीजे कोई भी साथ न रहेगी। सब निकल भागेंगी। मगर तेरे परिणाम ही तेरे साथ रहेगे। सो भैया ! आशाको छोडो। इस आशाने तो इन प्राणियोको बहकावेमे डाल दिया है। इस आशासे दूर रहो तो इस हालतमे सुखी रहोगे और यदि इस आशाको ही चिपकाये रहे तो हर हालतमे दुःखी रहोगे। इन आशावोको दूर कर अपनेमे अपने आप स्वय सुखी होवो।

सतृष्णस्य सदाकुल्यमर्था· सन्तु न सन्तु वा।
धीसार न भवेदिच्छा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–८॥

देखो भैया ! ये पदार्थ हो या न हो, पर यदि पदार्थोंमे तृष्णा रही तो आकुलताएँ ही है और यदि तृष्णा न रहे तो निराकुलता है । सारा दारमदार तृष्णा पर ही है । तृष्णा है तो दुःख है और तृष्णा नही है तो दु.ख नही है । देहातोमे तो लोग खेती करके और ऊँची नीची जमीन पर सोकर आनन्द लेते है, पर शहरोमे, नगरोमे बडे आदमियोको देखा होगा कि सब कुछ उनके पास है, मोटर चल रही है, फर्म चल रही है, मिल चल रहा है, हजारो आदमी काम कर रहे है, फिर भी वे सुखसे नही सो पाते है । प्रायः देखनेमे मिलता है कि वे लोग तीन-चार घटे मुश्किलसे सोते है । और सोतेमे भी कुछ न कुछ बडबडाते हैं । किसान तो रात-भर सोते हैं । अनाज उपज जाय इतना ही मात्र वे सोचते और सुखी रहते है । वे सादा भोजन करते और मस्त होकर गाते रहते है ।

सादा भोजन करके अपने हितका यत्न करो । तृष्णा न रहे तो सुख है । कोई देहाती ही कही शहरमे जाकर गुलाबजामुन चख आये तो उसके उसका स्वाद लग गया । यदि स्वाद लग गया तो फिर दुःख ही होगा और अगर सीधे सीधे चल रहे है तो जो कुछ खाते है उसी मे मस्त रहते हैं । जो लखपति है, करोडपति है तृष्णा करके ही अपनेको बरबाद किया करते है । अरे, इस तृष्णा पर लात मारो । यदि सतोषमय जीवन बिताओगे तो आनन्द मिलेगा । यदि तृष्णावोसे युक्त जीवन रहा तो आनन्द न मिलेगा ।

देखो भाई और जीवोकी अपेक्षा हम और आपने कितनी बुद्धि पायी कितना ऊँचा दिमाग पाया, कितने अच्छे विचार पाये, कितना अच्छा ज्ञान पाया, कितनी अच्छी सद्बुद्धि पायी ? फिर भी अपने जीवनको अगर सफल न बना सके तो मनुष्यजन्म पाना व्यर्थ है । वह जीवन पशुवोके ही समान है । यदि अपने जीवनको सफल न कर सके तो कभी शांति न मिलेगी । अगर इच्छायें करते है तो इच्छावोकी पूर्ति हो जाने पर वे भी गम नही खाते है । वे निरन्तर इच्छाए ही उत्पन्न किया करते है । इन इच्छावोके कारण ही उन्हे क्लेश मिलते है । तो भैया, इन इच्छावोको अपने ज्ञानसे ही मिटा दो । भोगोसे तो इच्छाएँ न मिटेंगी । भोगोसे तो दु ख ही रहेगा । जब तेज इच्छाएँ होगी तभी भोग होगा । भोग होनेसे ही अधिक इच्छाएँ बढेंगी । अरे इच्छावोकी ओर जायेंगे तो इसका फल दु.ख ही है । अगर इच्छाओको बाहर कर दें तो दु ख दूर हो जाये । इच्छावोको दूर करनेका उपाय है कि वस्तुवो का सही स्वरूप समझ लें कि मेरा कही कुछ नही है । किसीमे कुछ नही मिलता । मैं तो ज्ञानका भण्डार हू । अगर यो प्रभुकी भक्ति हो तो क्लेश मिट जायेंगे, इच्छाये मिट जायेगी । इन इच्छाओंको दूर करनेका दूसरा उपाय नही है ।

पूर्णं कस्यापि कृत्यं कि चिकोर्ष्येऽद्वन्द्वता कदा ।
न चे त्यक्त्वा हि सर्वाशां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४—९।।

किसी ने कोई काम किया तो वह जीव जैसा कामको करेगा वैसी ही उत्कंठा रहेगी । उन कामोके कदाचित् हो जाने पर भी कुछ और करनेकी अभिलाषा जगती है। इस कारण यह बात जब ठीक रही कि किसीका काम पूर्ण हो गया हो तो भी उसे शांति नही मिलती । इससे ही यह साबित है कि काम पूरा किसीसे नही होता और मोह अवस्था मे काम किसी भी हालतमे पूरा हो ही नही सकता ।

एक किवदन्ती है कि एक बार नारदजी सैर करनेके लिए नर्क गए । वहाँ उनको खडे होने तकको भी जगह न थी । इतने जीव नर्कमे भरे थे कि उनको भीडकी वजहसे खडे होने तकको जगह न थी । जैसे कि कभी जेलमे खडे रहने तककी गली नही मिलती है वैसे ही नारदको वहाँ पर खडे होने तक को भी जगह न मिली । वहाँ से वे भागे और ऊर्ध्वलोक की सैर करने गये । स्वर्ग की सैर करने गये । वहाँ पर बैकुण्ठमे देखा कि अकेले विष्णुजी महाराज बैठे है । नारद बोले हे भगवान् बिष्णु आप बडे ही पक्षपाती है । नर्कमे तो सारेके सारे जीव भेज दिये और यह सारा बैकुण्ठ खाली पडा हैं । बिष्णुजी बोले हम पक्षपाती नहीं है । यहाँ कोई आता ही नही है ; यदि कोई आता हो तो इजाजत है तुम्हे कि उसे ले आओ । वह खुश होकर मृत्युलोक आये और सोचने लगे कि किसे लिवा ले जायें ? मार्गमे कोई बूढा आदमी मिला, सोचा कि अब तो यह मरना ही चाहता है, इसे ही लिवा ले जाये । नारद ने उस बूढे आदमीसे कहा कि चलो तुम्हे हम स्वर्ग ले चलें । सब लोग जानते है कि मरे बिना कोई स्वर्ग नही जाता । वह बूढा बोला कि अरे मैं ही तुम्हे मिला मरनेके लिये ? मैं नही जाऊंगा, किसी दूसरेको जाकर लिवा लो । दो चार बूढोको टटोला पर सबने जवाब दे दिया, बूढोसे नारद निराश हो गये । एक जवानसे कहा कि चलो तुम्हे स्वर्ग ले चले । जवानकी बात जानते ही हो । जवान बोला कि अभी लडकीकी शादी पडी हे, दुकान खोलनी है, सारा बन्दोबस्त करना है, तो जवानोने भी इसी तरह मना कर दिया ।

सोचा कि अब किससे कहे ? अच्छा चलो अब बच्चोके पास चलें । शायद बच्चोमे से कोई तैयार हो जाय । एक मंदिरके चबूतरे पर १८-१९ वर्षका बच्चा तिलक लगाये बैठा था । नारद बोले बेटा ! चलो तुम्हे बैकुण्ठ ले चलें । वह बैकुण्ठ जानेको तैयार हो गया । नारदने कहा कि वहाँ चलनेके लिए सारे झंझट त्यागने होगे । वह बोला कि नारद जी हमारी सगाई हो रही है, कल बारात जायेगी । नाते रिश्तेदार भी ज्यादा आ रहे है ।

तो आप कृपा करके ४-५ वर्ष गम खा जाइए, फिर आना तो चलेंगे। उसका विवाह भी हो गया। ५ वर्षके बादमे नारद जी आये, बोले बेटा अब चलो। बोला—महाराज, अभी एक साल हुआ बच्चा हुआ है, तनिक खिला ही लें। अभी तक एक साल तक शर्मके मारे मैं छू ही नही सका। अब आप ५ वर्ष गम खावें, फिर आना तब चलेंगे। ५ वर्ष बीत गए। फिर नारद आये, बोले बेटा चलो। बोला महाराज लडकेको पढा लें, योग्य कर लें, यह कम से कम अपने पैरोंके बल खडा तो हो जाय। आपसे निवेदन है कि आप २० वर्षके बाद जरूर आना। अब २० वर्षके बादमे फिर नारद आये, बोले—बेटा चलो। बोला—महाराज लडकेकी सगाई हो गई। अब अपने नातीको तो देख लें। कृपा करके आप १०-१५ वर्षके बादमे जरूर आना। १०-१५ वर्ष बीत गए। नारद आए, बोले—चलो बेटा, अब चलो। बोला—महाराज, मुश्किलसे धन कमाया, लाखोंकी सम्पत्ति जोडी, मगर दुर्भाग्यसे पुत्र कुपूत निकल गया और नाती उससे भी अधिक कुपूत निकला। अगर मैं चलूं तो सारी सम्पत्ति बरबाद हो जायेगी। तो महाराज कृपा करके आप अगले भवमे जरूर आना। अब तो वह मर गया और मरकर उस घरकी कोठरीमे सांप हुआ जिसमे वह सम्पदा गाडता था। अब वहाँ भी नारद पहुचे, कहा—चलो बेटा दूसरा भव भी आ गया, अब तो चलो। तब वह सांप फन उठाकर कहता है—महाराज, यहाँ पर धन गडा हुआ है, यदि मैं इसकी रक्षा नही करता तो सारी सम्पदा बरबाद हो जायेगी। वहाँसे नारद जी विष्णु भगवान्‌के पास आए। बोले—महाराज, मेरी ही गल्ती थी, जो मैंने कहा था कि आप किसीको नही बुलाते। मैंने बहुत कोशिश की, बूढे, जवान, बच्चे सबसे कहा, मगर कोई यहाँ आनेके लिए तैयार नही हुआ।

किसीका कोई काम नही पूरा होता, किसीकी कोई बात नही पूरी होती, किसीका कच्चोमे मोह है, कोई कहता है कि ५ साल बाद जायेंगे, ५ साल भी हो जाते हैं, जीवन भी पूरा हो जाता है, किन्तु विषयोसे कोई मुख नही मोडता। इस तरहसे कोई यहाँ आनेके लिए तैयार नही होता है। भला बतावो किसीका काम भी पूरा होता है क्या ? करनेको कुछ न कुछ पडा ही है। अब यह इच्छा है, अब यह इच्छा है, इस तरहसे काम पूरे हो ही नही पाते है। जिन्दगी अगर इच्छाओंसे ही बिता दी तो ऐसा मनुष्यभव पाना व्यर्थ रहा। अब करनेकी बात क्या है कि अपनी इच्छावोंको त्यागकर अपने स्वरूपको देखो, अपने भगवान् मे चित्त लगावो, अपने आनन्दमय प्रभुकी भक्तिमे ही रहो और अपनेमे अपने आप सुखी हो। किसी अन्यसे सुखकी आशा रखना व्यर्थ है।

प्रवृत्तावेव नानात्वं निवृत्तावेकरूपता ।
शांतिमार्गे निवृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१०॥

देखो करना और हटाना—ये दोनो बातें दुनियाके अन्दर है । करना तो होता है नाना तरहका और हटाना होता है एक तरहका । हटनेके कई प्रकार नही है, पर करनेके कई प्रकार है । कोई काम करनेको पडा हो और करे तो कोई किसी यत्नसे, कोई किसी यत्नसे, नाना प्रकारसे करता है और कुछ न करना याने जो विश्रामकी हालत है वह केवल एक प्रकारकी है । सो प्रवृत्तिके नानारूप है और निवृत्तिका केवल एक ही रूप है । करना तो नाना तरहसे है, पर आलस्य न होना, सब कार्योंसे विरक्त होना, सबके एक ही किस्मका है । अभी साधुवोमे जो नाना भेष होगे, कोई साधु जटाधारी, कोई साधु डंडा लिए हुए, कोई भस्म लगाये हुए, कोई तिलक लगाये हुए, कोई अन्य प्रकारका है, सो ये जो नाना रूप बन गये हे, नाना रूप साधुपनेके बन गये है, सो भैया । प्रवृत्तिमे साधुता नही है । साधुता का तो केवल एक काम है—निवृत्ति करना । निवृत्तिको ही साधुता कहते है ।

घरसे प्रेम न रहे, घरसे हट गये, धन वैभवसे हट गये, कई प्रकारके खाने-पीनेसे हट गये, किसी किसीका तो यह खाना पीना भी छूट जाता है । बहुतसे कपडे मजूर न हो तो छोड दिए, कोई कोई बिल्कुल ही छोड देता है । इस प्रकारसे निवृत्ति लेना यह तो साधुका काम है, पर कोई दूसरी चीज लपेटना, छल करना साधुका काम नही है । इसलिए साधुके भेष नाना नही होते । राग न झलकता हो, प्रवृत्ति न हो, दूसरी चीजोका हटाना ही बना रहे तो उसे साधुता कहते है । तो भैया, प्रवृत्तिके नाना रूप है, किन्तु निवृत्तिका एक रूप है । अब यह देख लो कि दद फदमे शान्ति मिलती है या सबसे हटकर रहनेमे शांति मिलती है ।

भगवान्का स्वरूप क्या है ? भगवान्का स्वरूप है केवल ज्ञानानन्दमय रहना, सबसे जुदा रहना । देखो भैया, केवल भगवान्के एक विश्वास पर ही नही रहोगे तो जगह जगह ठोकर खावोगे । देहातोमे देखो, एक गांवसे दूसरे गाँवमे जावो, मान लो सतगवांसे लडवारी जावो तो रास्तेमे कमसे कम १५-१६ चबूतरे मिलेंगे । कोई दूल्हा ले जायें तो १७ जगह सिर पटकेगे और दु खी होते रहेगे । एक भगवान पर ही विश्वास हो तो वह एक भगवान का आलम्बन सारे सकटोसे बचायेगा । यो ही ये जो १५-१६ रास्तेमे मिले, यह फला बाबा है, ये फला देवी है इत्यादि ये कुछ नही, और हो तो वे सब उस भगवानके ही सेवक है । उन सैकडो देवी देवतावो पर ही विश्वास माना तो ये तो उस भगवानसे भी बडे हो गये तुम्हारी निगाहमे, कोई किसी नामका देव है, कोई किसी नामका देव है । बतलावो ये सब

उस भगवान्से बडे है क्या ?`अरे ये है ही कुछ नही। तुम्हारी कल्पना है और हो भी कोई व्यन्तर तो वे सब भगवान्के ही सेवक है। भगवान्से जिसकी प्रीति है, रुचि है वह नि.शक है, निर्भय है। विश्वास आपका एक हो, दूसरा न रहे। किसी बातमे आप अडिग न रहे तो कुछ सिद्धि ही नही है। कहा करते है कि हिन्दू और मुसलमान दोनो बन्धु कही चले जा रहे थे। रास्तेमे एक नदी मिली। रास्तेमे नदी तैरकर जाना था। सो मुसलमानका एक ही विश्वास था। अल्ला-अल्ला करते वह तो पार हो गया। अब हिन्दू भाई नदीमे थोडा आगे बढा, बोला—हे विष्णु भगवान् ! रक्षा करो, और थोडा आगे बढकर बोला—हे ब्रह्माजी रक्षा करो। विष्णुजी आ रहे थे, पर जब सुना कि ब्रह्माको पुकार रहा है तो वापस लौट गये। फिर थोडा आगे बढा, बोला—हे भैरव जी ! रक्षा करो, शंकरजी ने यह सोचा कि यह हमें चाहता नही, यह तो भैरवको पुकार रहा है वह भी वापस लौट गये। इसी तरहसे बीसो देवी देवतावोको पुकारा, कोई न आये और लौट गये। इस तरहसे वह हिन्दू भाई नदी मे बह गया, कहीका कही चला गया। एकका विश्वास नही है तो यही परिणाम होता है। भैया, एक ही का विश्वास करो। ज्ञानस्वरूप एकके सिवाय दूसरा भगवान् कैसे हो सकता है ?

अपना स्वरूप नजरमे आना चाहिए तो भगवान्का भी स्वरूप समझमे आयेगा। एक ही जगह चित्त डालना है। अपना भगवान् ही रक्षा कर देगा। परिवारकी जो जीव चिंता करते है वे मूढ है। उनके साथ कर्म है कि नही। अरे उनके साथ कर्म तो कहो उससे भी बढकर है तभी तो अपने बालकोसे ही वे मोह बनाये रहते है। उन बालकोको ही गोदमे लेकर खिलाते पिलाते। बाम्बे वगैरासे उनके खेलने कूदनेका सामान मगाते। रात-दिन बुरी तरहसे उन बालकोके पीछे परेशान रहा करते है, बच्चोके पीछे तकलीफ उठाया करते है। अब यह बतलावो कि आपका भाग्य अच्छा है कि आपके लडकोका भाग्य अच्छा है ? अरे वे तो उन बच्चोकी नौकरी कर रहे है। सेवा सुश्रूषा कर रहे है। इसमे तो उन बच्चोका भाग्य ही अच्छा है। उनके हो पुण्यका उदय है जिससे उन बच्चोके पीछे ही वे चिन्ता किया करते है, विकल्प किया करते है। बच्चे जैसे आप भी थे, पर अब वह पुण्य उठता गया। इन बच्चोमे भी कुछ बडे होने पर पुण्य न रहे तो ऐबकी बातें आ जाती है और सारा पुण्य खत्म हो जाता है।

सो भैया, यथार्थ अपने आपको सोचो। जो जीव है वे सब अपना अपना उदय लिए हुए है। उनके अनुसार ही उनका जीना, मरना, सुखी दुःखी होना निर्भर है। हम उनके मरने जीनेमे, सुखी दु खी होनेमे हाथ नही बँटाते है। और अन्य कोई भी देवी देवता हमारे

उनके सुख दुःखका कर्ता हर्ता नही है। फिर क्यों वे देवी देवतावोमे ही अपना सर रगडते है। पचासो प्रकारकी उन देवी देवतावोसे ही अपनी आशा रखते है। क्या वे उन देवी देवतावोमे ही मस्तक रगडनेसे सुखी हो जायेंगे? भरोसा केवल एकका रखो। इस शुद्ध चैतन्य प्रभुका स्वरूप ही अपने आपमे बसा हो। परमात्माका भरोसा रखो, बाकी तो सब अज्ञानकी बातें है। अपने आपको संभालो, अपने आपमे निवृत्तिकी भावना लावो।

भैया, आनन्दका मार्ग निवृत्तिमे ही है, रिटायर होनेमे है, जुदा होनेमे है। किन्तु प्राय: यहाँ हाल यह हो रहा है कि ज्यो-ज्यो उम्र बढती जाती है त्यो-त्यो तृष्णा भी बढती जाती है। विरले ही लोग ऐसे होते है जो वृद्धावस्था तक ज्ञानकी ओर लगे रहते है। वे ही व्यक्ति ज्ञानमे लग जाते है जिन्होने बचपनसे ही धर्मसाधना की हो। शरीर तो जीर्ण हो जाता है, पर तृष्णा जीर्ण नही होती। जो बूढे हो जाते है उनको बच्चे लोग बब्बा बोलते है। बब्बाका असली शब्द है बाबा। अरियाकर बोलते है तो जी को अलग कर देते है। असली शब्द है बाबाजी। बाबाजी के मायने पार होना अर्थात् आत्माका गृहजालसे हटकर मोक्षमार्ग के तट जाना। मगर वे बाबा जी न रहकर जावा जी रहते है, किन्तु उनको जावा जी कहा जाय तो नाराज होते है और अगर बाबा जी कहते है तो खुश होते है।

भैया, सब संकट प्रवृत्तिमे है। यह जितना ही गंदा दिमाग होता है उतना ही भ्रम रहता है। सो अगर दुःख मिटाना है तो अपने शुद्ध ज्ञानकी ओर आना चाहिए। शुद्ध ज्ञान की प्राप्तिके लिए प्रथम तो देव, शास्त्र, गुरुका सच्चा निर्णय तो कर लो। देव कौन हो सकेगा? देवके मायने भगवान। शास्त्र कौन हो सकेगा? शास्त्रके मायने भगवान बननेका उपाय और गुरु कौन हो सकेगा? गुरुके मायने रास्ता बताने वाला, ज्ञान सिखाने वाला। हम ठीक-ठीक निर्णय कर लें कि देव कौन हो सकता है? शास्त्र कौन हो सकता है? और गुरु कौन हो सकता है? जो कल्याणके लिए आदर्श है वे देव है और जिसमे देवत्वप्राप्तिका उपाय लिखा वह शास्त्र है। जो जीवोके लिए कुछ सिखाते है, जो कल्याणका उपाय बताते है वे गुरु है। ऐसे देव, शास्त्र, गुरुके प्रति भक्ति जगे कि ऐसे ही रूपमे शान्ति है, ऐसा ही स्वरूप उत्कृष्ट है; इस ही स्वरूपमे कल्याण है, इसमे ही हमे लीन होना चाहिए।

जीवका स्वरूप विचारकर कल्याण भाव जगे वे देव है। जो पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण आनन्दमय है वही तो देव है। ज्ञान और आनन्दस्वरूप वह भगवान है। हाथ पैर वालेको लेकर मत बोलो कि वह भगवान है। शरीरके आकारको देखकर मत कहो कि यह भगवान है। यह ज्ञानज्योति और आनन्दस्वरूप अपना भगवान है। ऐसा ही होनेका, रागद्वेष मिटाने का जिसमे वर्णन है वह शास्त्र है और जो हमे सिखाता है वह गुरु है। अब बतलावो जो

देवी देवता रास्तेमे बने है वे देवमें शामिल है कि शास्त्रमे शामिल है कि गुरुमे शामिल है ? ये किसीमे भी तो शामिल नही है । लोग अपने हितकी बात नही सोचते । ये जगत्‌के प्राणी तो बिल्कुल बच्चासा बन रहे है ।

जैसे किसीने बच्चेसे कहा कि कौवा तेरा कान ले गया तो वह बच्चा उस कौवेके पीछे दौडता है, चिल्लाता है । अरे कौवा मेरा कान ले गया । कोई आदमी बोला—अरे कहाँ दौड रहा है ? तो बच्चा बोलता है कि अभी बात न करो, फुर्सत नही है, मेरा कान कौवा लिए जा रहा है । तब वह आदमी बोला—अरे कौवा कहाँ तेरा कान ले गया ? तेरा कान तो लगा हुआ है । देखा तो कान लगे थे । उसने समझ लिया कि कान तो मेरे लगे हैं, कौवा नही ले गया है ।

इसी प्रकार जब जिन्होने जिसको जैसा बहका दिया वह सत्य मान रहा है, उसीके पीछे चल रहा है, फिर दुःखी हो रहा है । हे सुखार्थियो, ऐसा विश्वास रखो कि भगवान वही है जो पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्णानन्दमय है, जिसमे कोई आकुलताए नही है, सदानन्दमय है, जिसका कुछ और काम करनेका स्वभाव नही है । और जो कुछ अटपट खटपट न किया करे तो वही विश्वका ज्ञाता है । जो आत्मा सत्यानन्दसे पूर्ण रहता है वही भगवान है । बात कुछ कठिनसी लग रही होगी किन्तु कठिन है नही । तुम्हारी बात तुम्हे ही कही जा रही है । जैसा तुम्हारा स्वरूप है तैसा ही प्रभुका स्वरूप है । अपनी आत्माकी कीमत नापो, दीन हीन न समझो । तुम स्वय चैतन्य प्रभु हो, प्रभु स्वरूप हो, अपनेको दीन हीन न समझो । तुममे ही वह शक्ति मौजूद है, तुममे ही वह तत्त्व मौजूद है कि जिसको निहारनेसे सारे पाप धुल जाते है और उत्कृष्ट प्रभुका स्वरूप प्रकट हो जाता है । सो अपने भगवानको पहिचानो अर्थात् उस ज्ञान और आनन्दस्वरूपको अपना प्रभु समझो, उसका ही भरोसा रखो, उससे ही जीवन पार होगा ।

भैया, जो सन्मार्गकी ही बातें बतलाने वाले, धर्मका ही मार्ग दिखाने वाले हो उनकी उपासना करें और अपना सही स्वरूप नजरमे लावें । अपने सत्यस्वरूपकी उपासना करके, आराधना करके, भक्ति करके अपने अज्ञानको मिटाओ तो सुखका सही मार्ग मिल सकता है । नही तो सुखका सही मार्ग नही मिल सकता । मोहमे तो आकुलताएँ ही है तबाही है, बरबादी ही है. यही मोहका फल है । मनुष्यसे मिटकर चिडिया बन गया तो उसमे मौज किया, सूकर बन गया तो उसमे मौज किया । जिस जगह जीव जाता है, जिसके संगमे रहता है वह वही मोह करता है । उसीमे ही यह जीव फंसा है । अरे यह जीव तो प्रभुके ही समान है ।

सो अपना सत्य ज्ञान जगावो और व्यर्थके जो अशान्ति और क्लेश है उनको मिटावो यही सच्चा ज्ञान है ।

लोभादधस्ततः क्लेशोऽतस्तृष्णालुः सदाकुलः ।
वीततृष्णः स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–११॥

लोभसे पाप होते है । लोभ एक ही किस्मका नही है, सैकडो किस्मका है । शरीरमे लोभ हो, धनमे लोभ हो, समाजमे इज्जत चाहनेका लोभ हो, कितने ही प्रकारके लोभ होते है पर सब प्रकारके लोभोसे पाप ही पैदा होते है । जीव अपना स्वभाव देखे तो यह पता पडेगा कि यह तो सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप है । इसका किसी भी पदार्थसे कोई कोई सम्बन्ध नही है । सबमे बडा सकट इस जीवको है तो यह है कि परपदार्थोंमे अपना मन लगाये है । यह संकट मामूली नही है । इस जीवको यह एक बडा संकट है । कुछ प्रयोजन नही, परपदार्थ है, न कोई साथ आता है और न साथ जाता है फिर भी उसमे यह कल्पना हो कि यह मेरा है तो यह उसकी भूल है । बस ऐसा ख्याल हो जाना ही इस जीव पर बडा संकट है । पर मोही जीव इस संकट को सकट नही मानते और उसमे ही फूले हुवे फिरा करते है । सो कुछ ही समयमे इसका भी खोटा परिणाम निकलता है कि रोते-रोते मरना पडता है । सब पापोकी जड लोभ है ।

एक कथानक है कि कोई पडित जी बनारससे पढकर घर आये । भावना तेज बढी । पढ लिख कर आये तो अपनी स्त्रीसे बहुत बडी-बड़ी बातें करने लगे कि मै बहुत बडा पंडित हू, काशीसे पढकर आया हू, मैं शास्त्री पास हू । तब स्त्रीने केवल एक प्रश्न पूछ दिया कि पापका बाप क्या है ? अब पुस्तकोमे उलट पुलट कर देखते है तो उसमे कही नही लिखा कि पापका बाप क्या है ? बहुतसे ग्रन्थ देख डाले, न तो व्याकरणमे, न शास्त्रोमे न दर्शनशास्त्रमे, कही भी पापका बाप लिखा हुआ ही न मिला । उसने मनमे सोचा कि हमारे गुरूने खूब पढाया तो है पर एक चीज उसने छिपा ली है कि पाप का बाप नही बताया है । जैसे कोई लौकिक गुरू होता है वह अपने शिष्यो को सब कुछ बता देता है पर कुछ न कुछ कुञ्जीकी बात अपने बचावके लिए वह नही बताता है । ऐसा ही उसने सोचा कि सब कुछ तो गुरुने पढा दिया पर एक चीज मुझे नही पढाई, यह मेरे साथ बहुत बडा छल किया है । सोचा कि अब मैं गुरुके पास चलू और उनसे उत्तर पूछूं । तो वह काशीको पैदल ही चल दिया । रास्तेमे ही एक जगह शाम हो गई । किसी तरहसे नगरके किनारे पहुंचे । नगरके किनारे एक बडा घर था, उसी घरके चबूतरे पर वह लेट गया ।

जब सुबह हुआ तो उस घरकी मालकिन वेश्या नीचे उतरी । देखते ही पूछा, अरे

तुम कौन हो ? कहांसे आए हो ? बता दिया मैं शास्त्री हूँ, मै अमुक हू। मेरी स्त्रीने यह प्रश्न किया कि पापका बाप कौन है ? तब मैं गुरुसे पूछनेके लिए जा रहा हूँ। वेश्या बोली कि आप थक गये है, हमारा बड़ा अच्छा भाग्य है कि आप यहाँ आये है। कृपा करके आप भोजन करके चले जाना। उस पंडितने कहा कि आप कौन हो ? वह बोली आपकी सेविका वेश्या हूँ। ब्राह्मण बोला कि अरे वेश्याका नाम सुनते ही पाप लग गया। फिर तो चबूतरे पर सोनेका भी पाप लगा, भोजन तो होगा ही कैसे ? वेश्या बोली—महाराज, जहाँ सोये हो वह तो पत्थर है। वहाँ सोनेसे क्या पाप लगा ? और अगर आपको पाप लग गया है तो आप ५ अशर्फियाँ ले लीजिए, सो आप अपना यज्ञ रचा लीजिए, प्रायश्चित्त हो जावेगा उस पडितने पाँचो अशर्फियाँ ले ली। वेश्या बोली—कृपा करके आप भोजन बना लीजिए, कहा—बहुत ठीक। भोजनका सामान वेश्याने धर दिया। अब तो सिगडी बाहर जलने लगी। वेश्या बोली—महाराज ! आप जैसे बाहर बनाते तैसे हो अगर भीतर बना लें तो क्या हर्ज ? आखिर जैसे ईंट पत्थर यहाँ है तैसे ही वहाँ है। अगर कोई दोष लगता हो तो ये ५ अशर्फियां रखी है इनसे प्रायश्चित्त कर लेना। सो भीतर चला गया। अब भीतर सिगडी जलने लगी। वेश्या बोली— महाराज ! आप सब कृपा करते जा रहे है हमारे ऊपर, एक कृपा और कीजिए। आपके हाथमे और हमारे हाथमे कुछ फर्क है क्या ? फर्क तो नही है। आप जल रहे है, आप तकलीफ न करें, मै ही बनाए देती हू। यदि दोष लगता हो तो ये ५ अशर्फियाँ रखी है प्रायश्चित कर लेना। पडित जी ने ५ अशर्फियाँ वे भी ले ली। वेश्याने खाना बना दिया। अब वेश्या बोली—महाराज ! आपने सब कृपा मुझपर की, अब आप करुणा करके इतनी और कृपा कीजिए कि अपने मुँहमे मुझसे ग्रास ले लीजिए तो मेरा जन्म कृतार्थ हो जायगा। यदि कुछ दोष लगता हो तो ये ५ अशर्फियाँ रखी है। पडितजी ने कहा—ठीक है। अब तो वेश्याने मुहमे ग्रास तो नही रखा, पर मुहपर एक तमाचा मारा। बोली—मूर्ख ! पापका बाप पूछने तू बनारस जा रहा है। यह तो यही सीख ले। यह लोभ ही पापका बाप है। लोभको पापका बाप बखाना।

जितने झगडे होते है उनकी जड लोभ है। इस लोभके ही कारण मनुष्य बेमनुष्य हो जाता है। किसी भी प्रकारका लोभ हो, लोभ हो जानेसे संकटमे घिर जाता है। सब सकटो का कारण तो यह लोभ है। लोभसे ही पाप होते है और पापोसे हो घिर क्लेश होते है।

एक आदमी बाजारमे गया और पूछा कि भाई नारियलका क्या भाव है ? वह बोला—चार आनेमे एक। वह बोला—दो आने लोगे ? दुकानदार बोला—भाई तुम्हे दो आने का लेना हो तो नागपुर चले जाओ। नागपुर वह गया। वहा जाकर भाव पूछा। दुकानदार

बोला–दो आने का एक। बोला–नही चाहिए। एक आना लोगे ? बोला– भाई एक आनेका लेना चाहो तो बम्बई चले जाओ। वह बम्बई गया। पूछा—नारियलका क्या दाम है ? बोला—एक आनेका एक। कहा– आधा आना लोगे ? दूकानदारने कहा– भाई आध आनेका लेना हो तो ये भी क्यो लगाओगे, पास ही मे तो देहातमे पेड है, चढकर तोड लेना। वह देहात चला गया। पेडपर चढकर नारियल तोडने लगा। सो डाली तो हाथसे पकडे रहा और पैर छूट गये, वह लटक गया। इतनेमे एक हाथी वाला निकला। वह हाथी वालेसे बोला– हमे उतार लो, हम तुम्हे ५०० रु० देंगे। वहाँ तो दो पैसे बचा रहे थे और अब यह हालत। हाथी वाला नीचे आकर पकडने लगा। हाथी पर खडे होकर भी नही आया, कुछ ऊपर था। हाथी वाला उछलकर पकडने लगा। यह तो उछला और उसी समय हाथी कुछ खिसक गया। वह हाथी वाला भी ऊपर उसकी टाँगसे टंग गया। अब हाथी वाला उस दूसरे व्यक्ति से कहता है कि भैया डालीसे हाथ नही छोड देना, हम तुमको ५०० रु० देंगे। अब एक ऊँट वाला निकला, ऊँट वालेसे दोनो बोले—भाई हम लोगोको उतार लो हम तुम्हे पाँच-पाँच सौ रुपये देंगे। अब ऊँट वाला नीचेसे आकर उनको उतारने लगा। कुछ ऊँचा पडता था, वह भी ऊँचा पडनेसे ऊपर टंग गया। ऊँट भी खिसक गया। ऊंट वाला ऊपर वालेसे कहता कि तुम छोड नही देना, हम तुम्हे ५०० रु० देंगे। अब एक घोडे वाला निकला। तीनो बोले - हम सब पाँच-पाँच सौ रुपये देगे, हमे उतार लो। वह भी उसी तरहसे पकडने उछला तो वह भी घोड़के खिसक जानेसे ऊपर टग गया। वह भी ऊपर वालेसे बोला कि भाई छोडना नही, हम तुम्हे ५०० रु० देंगे।

तो भैया! लोभसे देखो तो कितनी हैरानी हुई ? लोभका पाप बहुत बुरा होता है। देखा होगा लोगोको कि बाजारमे सब्जी खरीदने गये, जरा अधिक सयानापन किया तो जरा सी बातमे कहते हे, ठगे गये, खराब सब्जी ले आये, दाम भी खूब दे आये। होता है ना भैया! कभी ऐसा भी ? इस लोभका परिणाम केवल व्याकुलता होती है, क्लेश होता है। सो भैया जो तृष्णा करने वाले जीव है वे सदा व्याकुल रहते है।

अब बताओ ऐसा उपाय कि जिससे तृष्णा न रहे। तृष्णा रहनेसे ही मोही बाहरी चीजोको पकड़े रहता है। तृष्णा रही तो उसका गुजारा कैसे होगा ? रक्षा कैसे होगी ? तृष्णा न रहे तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। ऐसा कोई उपाय दिखाओ कि जिसमे तृष्णा न रहे। वह उपाय अन्य कुछ नही है। यही उसका उपाय है कि अपना यथार्थस्वरूप जान लें। यदि अपने यथार्थस्वरूपको जान लें तो तृष्णा लोभ आदि मिट जावेंगे। ये जगत्के जीव हम

और आप इस मोह और तृष्णामे ही प्रसन्न हो रहे है, अहंकार रख रहे है । तुम देख लो कितने ज्यादा दु खी हो रहे है ? कितनी बडी बुद्धिमानी है देख लो कि हम सब पापको ही अधिक चाहते है । ऐसे बुद्धिमान् भी होते जा रहे हैं और दुःखी भी होते जा रहे हे ।

खुद कैसे बडे है ? खुद तो अ।नेसे कितने दूर हो गये हे ? खुद परको तो देखते जा रहे है और अपने आपको नही देख रहे है । यही कारण है कि लोकमे भ्रमते फिरते है । ऐसी प्रवृत्तिसे शांति नही मिलती है । शांति तो प्राप्त हो सकती है तब, जब जैसा साफ अपना यथार्थस्वरूप है वैसा ही अपना उपयोग बनावें । मैं कैसा हू ? मैं सबसे न्यारा हू कि मिला-जुला हू ? मिला-जुला तो हू नही । कुछ भी तो एकसी बात नही देखी जाती है । हम यहाँ बैठे है, आप यहां बैठे हे । हमारा विचार हममे चलता है, तुम्हारा विचार तुममे चलता है । हमारे सोचनेसे तुममे कुछ नही होता और तुम्हारे सोचनेमें हममे कुछ नही होता । सबकी अलग-अलग बात है । मैं सबसे न्यारा हू, ऐसा समझ लो न्यारा अपनेको । देह तकसे भी न्यारा अपनेको समझ लो । केवल ज्ञानस्वरूप यह मैं हूं । इस मेरेका जगत्मे किसीसे कुछ सम्बन्ध नही है । यह मैं खुद ही ख्याल बनाकर सम्बन्ध मानता हू और प्रसन्न होता हू ।

मैं तो सबसे जुदा हू, ज्ञानानन्दमय हू, ऐसा परिचय हो जाय तो यह बात उसके घर ही कर जायेगी कि मेरा जगत्के अन्य पदार्थोंसे कुछ प्रयोजन ही नही । ये मेरा क्या कर देंगे ? कुछ भी तो मेरा ये न कर देंगे । ऐसी बात यदि घर कर जाय तो तृष्णा न हो सकेगी । लोभ भी वहां न हो सकेगा । मेरा स्वभाव तो तृष्णारहित है, ज्ञानस्वभाव है और झगडा काहेका मच रहा है ? यह सारा झगडा अज्ञानसे मच रहा हे । जैसे स्वप्नमे झगडें मचाना केवल कल्पना करके है इसी तरह धर्मकी आंखो जागते हुए भी मोह आदिके स्वप्न मचाया करते है । मोह छोडो तो शान्तिका उपाय मिलेगा । यह मोह अशान्तिको बढाता है इस मोहकी अजब गति हो गई है । मेरा स्वभाव तो तृष्णारहित है । ऐसे स्वभावमे रहकर मै अपनेमे अपने आप स्वयं सुखी होऊं ।

तृष्णाबन्धश्च संसारोऽताष्ण्यं मुक्ति. स्वतन्त्रता ।
वीततृष्ण स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–१२॥

ससार और मुक्ति इन दो का स्वरूप इसमे कहा जा रहा है कि ससार तो ऐसा है कि इसमे तृष्णा होगी और बन्धन होगा और मुक्ति कैसी है कि तृष्णा कही न रहे, पूर्ण स्वतन्त्रता आ जाय । सत्य-स्वतन्त्रताका ही नाम मुक्ति है । बतलाये कोई किसीके आधीन है क्या ? कोई भी किसीके आधीन नही है । कोई किसीको पकडे नही है । सब जीव जुदा-जुदा बैठे है पर हो क्या गया कि सबने समझ लिया कि सबसे मिले हुए है । ऐसी तृष्णाका ही

बंधन पडा हुआ है । चीजें तो सब अलग-अलग है । यह सबसे न्यारा है, इस देहसे भी न्यारा है । अगर किसीसे कहा जाय कि सब बखेडाको छोडकर चलो आत्मारामभे भ्रमण करो तो कोई भी तैयार नही होगा । कोई भी इस बन्धनसे छूट नही सकता ।

देखो भैया, किसीसे कोई रस्सी नही बंधी है, कोई किसीसे चिपटा नही है, कोई किसीको चिपकाए नही है, फिर भी कोई बन्धसे छूट नही सकता । कोई अपने स्वरूपाराममे जानेके लिए तैयार नही हो सकता । दूसरोको ऐसा लगता है कि इसमे क्या दिक्कत है ? मगर कहा जाय कि चौधरी जी, सिंघई जी आप चले जायें, तो सामने एक दिक्कत आ जावेगी सारी दिक्कत यह है जो तृष्णाका बन्धन पडा हुआ है, यह बन्धन भावात्मक है, यह द्वन्द्वात्मक बन्धन नही, केवल अपने अज्ञानसे उठा हुआ बन्धन है । यह बहुत विचित्र बन्धन है । रस्सी मे रस्सीको बांध दिया जाय तो दो चीजें है, इसलिए बन्धन हो गया । मगर यहाँ इसको बन्धन ही नही है । यहाँ तो केवल ख्याल बनानेका बन्धन है । किसी दूसरी चीजने नही पकडा है । जिस घरमे बच्चे है वे बच्चे बन्धन है कि नही है ? घरमे स्त्री बन्धन है कि नही है ? नही । वे अपने अज्ञानसे मोही बन्धनमे बध जाते है । अगर अपनेमे अज्ञान है तो कही भी जायें सब जगह बन्धन है, और अगर बन्धन है तो सब जगह दुःख है । जहाँ पर दुःख है वहाँ पर पाप है । अतः मोहरूपी पापसे बचनेके लिए मोहका त्याग करो ।

एक गाँवमे एक बेवकूफ नामका आदमी था । उस बेवकूफको सब लोग मूरखचंद कहने लगे । जो आ जाता वही पूछता, क्या आ गये मूरखचद ? क्या जावेंगे मूरखचद ? इन सबसे वह बहुत चिढने लगा । गुस्सेमे आकर उसने गाँव छोड दिया । जो देखे वही उसे मूरखचंद कहने लगा । गाँव छोडकर तीन चार मीलपर एक कुवां था । उस कुवेंकी पाटपर वह पैर लटकाकर बैठ गया । कुवेंकी पाट जो मेडसी होती है, जिसे मुनाबरे बोलते है उसी पर वह बैठ गया । सो अब वहाँसे एक मुसाफिर निकला । उस व्यक्तिको जो कुवेंकी मुनाबरे पर बैठा था, देखकर बोला—अरे मूरखचन्द तुम कहाँ बैठे हो ? उस व्यक्तिने सोचा कि इस व्यक्तिको मैं जानता नही, फिर भी वह मेरा नाम जानता है, मुझे मूरखचद कहता है । वह उसके गले लगकर पूछता है कि तुमने मेरा नाम मूरखचंद कैसे जाना ? उसने कहा—भाई तुम खुद मूर्खपनेका काम करते हो, जो कुवेंकी पाटपर बैठे थे । सो तुम्हारा नाम तो स्पष्ट है ।

सो भैया, जिसके जैसी मोहकी आदत पड गई है वह चाहे घरमे रहे, चाहे जहाँ रहे वह मोह ही करेगा । सो जब तक ज्ञानके प्रकाशकी बात भीतरकी आत्मामे स्वच्छ नही बना ली जायेगी तब तक इसको शान्ति नही मिल सकती । अब अपनी-अपनी सोचिए । जब मैं पैदा हुआ तबसे अब तक घरमे रहा, कही रहा और क्या-क्या बातें देखी, कितनी बाते सोची,

अनेक कर्तव्य कर डाले, बच्चोमे, पोतोमे, भाइयोमे ही रहे । बीसो तो ब्याह रचा डाले होगे, दस पाँच तीर्थ कर डाले होगे, समाजके बडे-बडे काम कर डाले होगे, सब कुछ कर डाला है, पर आजकी बात कहते है कि आत्माके भीतरकी रोकडबहीमे कितनी रकम आई है ? सो बतलावो । भीतरमे देख लो क्या शान्ति मिली है ? कुछ भी तो शान्ति नही मिली है । शान्ति तो उसको मिल जाती है जिसने अपने स्वरूपका ज्ञान कर लिया हो ।

शान्ति तो केवल ज्ञानमे है । जब ज्ञान होता है तब तृष्णायें नही रहती हैं, बन्धन नही रहता है । तृष्णायें और बन्धन न रहना बस यही स्वतन्त्रता है, इसका ही नाम मुक्ति है । भाई तृष्णारहित रहना तो आत्माका स्वभाव ही है । आत्माका जो सहजस्वरूप है उसमे न तो क्रोध है, न मान, माया, लोभ है, किसी भी प्रकारका विकार नही है । उपाधि साथमे लगी, सो विकार लग गये । जैसे स्फटिकमणि स्वच्छ है, निर्मल है, हरा, पीला किसी भी रगकी नही होती है, पर यदि कोई रगीन कागज लगा दिया जाता है तो वह मणि भी उस रगकी प्रतीत हो जाती है । इसी तरह हम बिल्कुल स्वच्छ है, ज्ञानमात्र है, ज्ञाता द्रष्टा है, पर हमारे साथ जो उपाधियाँ लग गयी है, उनसे ही अनेक राग लग गये है । उन रागोसे ही ख्याल बनाकर हम अनेक तर्क वितर्क किया करते है । तर्क वितर्क तो उपाधियोसे आ गये । उपाधियोसे युक्त अपने आपके स्वभावको देखो तो बेकार है । मैं तृष्णावोसे रहित हूँ, तृष्णायें करना मेरा स्वभाव नही है । सो मैं तृष्णावोसे रहित अपने स्वरूपमे रमूँ और समस्त दु खो से दूर होऊँ ।

ताष्ण्र्येऽताष्ण्र्येऽपि वस्तूनां वियोगो नार्थकृत्तत ।
वीततृष्ण स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१३॥

चाहे पदार्थोंमे तृष्णा हो और चाहे न हो, दोनो ही हालतोमे वस्तुवोका संयोग वियोग फलदायी नही है, अर्थकारी नही है । जिसमे तृष्णा नही है वस्तु कही चली जाय, पदार्थ यहाँके वहाँ हो जायें, नष्ट भ्रष्ट हो जायें पर ज्ञानीको कुछ भय व भ्रम नही है । संयोग वियोगका उस पर कोई असर नही है । अगर तृष्णा है तो पदार्थोंका सयोग वियोग होने पर उस तृष्णा वाले पर असर हो जायेगा, जिसकी तृष्णा लगी है । वह पदार्थ मिटेगा तो उस पदार्थ ने कुछ असर नही किया, उससे असर नही आता । भीतरमे जो तृष्णा है उसका असर आया करता है । किसी भी परवस्तुका सयोग वियोगका असर आत्मामे न आयेगा । उस पदार्थको विषय करके आत्मामे ख्याल परिणमन उसी आत्माका हो जाता है । किसी प्रकारका भ्रम उसकी आत्मामे लग जाता है । परवस्तु ख्याल करने वाला ही स्वयकी परिणतिसे दुःखमे होगा । वह चाहे आनन्दमे हो, परवस्तुका असर उस जीवपर नही

है, पर ज्योही वह ख्याल बनाता है तो उस ख्याल बनानेका असर उस जीव पर है, इससे वह दुःखी रहता है ।

दुनियामे देखो सैकडो आये और चले गये । दुनियाका ढंग तो देख लिया । इस पृथ्वी पर कैसे-कैसे वीर पैदा हुए, इतिहासमे कौरव पांडवका जमाना देख लिया, आप सबने श्रीरामका जमाना देख लिया, उसके बहुत पहिले चलो तो ऋषभदेवका जमाना देख लिया, जो महापुरुष हुए वे इस पृथ्वी पर कैसे-कैसे सद्व्यवहार कर गये या जो कुछ कर गये सो देख ही लिया । उनका कुछ भी तो अब नजर नही आता है । बहुत पहिलेकी बात तो देख ली, अब अपने घरके दादा, बाबा इत्यादिको बाते देख लो । किसका कहाँ क्या रह गया ? इस जगत्मे कोई रहेगा नही । यहाँ तो आना जाना चलता ही रहता है ।

भैया ! एक वृक्षसे पत्ती गिरी तो गिरती हुई पत्ती वृक्षसे कहती है, 'पान गिरता यो कहे सुनो वृक्ष बनराय । अबके बिछुडे कब मिले, दूर पडेंगे जाए ।।' वह पत्ती कह रही है कि हे बनराज वृक्ष ! अब आपसे मेरा बिछुडना हो गया है तो अब यह तो बताओ कि आप से बिछुडना हो रहा है, हम दूर पड जायेंगे, अब कब मिलना होगा ? तब वृक्ष कहता है· 'तब वृक्ष यो बोलियो सुन पत्ता इक बात । या घर या ही रीत है इक आवत इक जात ।।' एक आता है और एक चला जाता है । नई पत्तियाँ आ जाती है और पुरानी पत्तियाँ चली जाती है । यही इस जगत्की रीति है । जिस तरहसे जो घरमे बच्चा है वह जवान होगा, फिर बूढा होगा, फिर खत्म होगा । इस जगत्मे कोई ऐसी चीज नही है जो जमकर रह सके, मेरी होकर रह सके । सोचो जब कुछ नही है, फिर मोहमे फसे रहे, रागमे फसे रहे, यह मेरा फलां है, मेरा हितकारी है, यह मेरा कल्याणकारी है– ऐसी जो कल्पनाए बना रखी है उनसे क्या लाभ होगा ? यह मोही प्राणी इन कोरी कल्पनाओमे ही रहकर परेशान होता है । शांतिका उपाय आत्मज्ञान है । आत्मज्ञानके बिना शांति नही हो सकती है ।

पूर्यते पुण्यकामार्थैर्न किञ्चिन्मे ततो हि तान् ।
त्यक्त्वात्मन्येव तिष्ठेयम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखो स्वयम् ।।४–१४।।

पुरुषार्थ चार होते है– (१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम और (४) मोक्ष । सभी लोग जानते है । सब धर्मोंमे बताया गया है कि पुरुषार्थ चार होते है । इसमे से धर्म नाम तो पुण्य है । जीवो पर दया करना, परोपकार करना, सेवा करना, त्याग, वृत्ति, सयम आदि ग्रहण करना ये सब पुण्य कहलाते है । अर्थ पुरुषार्थ नाम है धन कमानेका । व्यापार आरम्भ करना कहलाता है अर्थपुरुषार्थ । अपने कुटुम्बकी, देशकी खबर रखना, पालन करना और अपने खाने पीनेकी तथा अपने विषय इत्यादिके भी कार्य करना ये सब कार्य कामपुरुषार्थ

कहलाते है। कर्मोसे छूटनेका उपाय करना ही मोक्षपुरुषार्थ है। इन चारोमे से मोक्षपुरुषार्थ से ही इस आत्माका पूरा पडता है अर्थात् आत्माको इस मोक्षपुरुषार्थसे ही लाभ है। जो तीन पुरुपार्थ और है (१) पुण्य, (२) अर्थ और (३) काम, इन तीनो पुरुषार्थोंसे मेरा कुछ भी पूरा नही पडता। पुण्य किया तो देव हो गये, राजा महाराजा हो गये या धन सम्पदा मिल गई। देव देवियाँ हो गये तो विपयोके साधन ही तो मिले। जिन विपयोमे रति करके पाप कमाये जायेगे और उन पापोके फलमे दुर्गतिको पाना होगा। यह पुण्यसे ही मिला।

मोक्षपुरुषार्थमे दृष्टि नही है तो पुण्यसे क्या मिला? कुछ भी नही। उस पुण्यसे भी पूरा न पडेगा। कुछ वर्षोंके लिए, एक भवके लिए मोक्ष मान लिया और क्या होगा? पुण्य से कुछ पूरा न पडेगा।

धन कमानेसे क्या पूरा पडेगा? धन कमानेसे मान लो लाखोकी सम्पदा जोड ली, तो उस सम्पत्तिसे, उस सम्पदामे कुछ सुख सहायता मिल जाय, ऐसी बात तो नही है। धन से भी पूरा नही पडेगा। इस यत्नमे रहकर अन्तमे बीमार ही होते हैं, झंझट ही लगते हैं, परेशान ही होते है और कुछ समय बाद अकल्पित क्लेश ही होते है। कारण कि बडा यत्न करके लाखोका धन कमाया, अब वह छूट रहा है। धनमे तो आरम्भसे लेकर अन्त तक दुःख ही दुःख है। कहां धरें? बैंकमे धरें तो उसको भी शका रहती है। अभी सरकारको जरूरत हो तो कहे कि बैंकोका हिसाब किसीको नही देना है अथवा कुछ गडबड हो जाय तो यो ही गये। अब कहां धरें? लोगोको ब्याज इत्यादि पर रुपया उठानेमे विश्वास नही। यदि धन घरमे ही धरा रहे और घरसे ही कोई पुरुष जबरदस्ती ले जाय तो क्लेश होगा। इस प्रकार धनकी रक्षा करनेमे भी तो क्लेश ही है। ऐसा भी नही है कि वह सम्पदा सदा तुम्हारे ही पास बनी रहे। क्या कभी मरण नही होगा? अवश्य होगा, अचानक होगा। मरते समय वियोगका दुःख जरूर होगा, अचानक होगा। मरते समय वियोगका दुःख जरूर होगा तो धन से भी पूरा नही पडता।

क्या कामसे, विपयभोगोसे पूरा पडेगा? इन विषयोसे भी पूरा न पडेगा। इन विषयो से आत्मबल घटता है। मोह और रागके प्रसगोसे आत्मा बरबाद होती है। मेरा पूरा पडना तो दूर रहा, उल्टा पतनकी ओर ये राग द्वेप मोह ले जाते है मुझे। तो इन कामोसे भी पूरा नही पडेगा। फिर क्या करें? जिनसे मेरा उल्टा काम बिगडता है, लाभ कुछ नही मिलता है, उनको तो त्यागना ही अच्छा है। तो इनको कैसे त्यागा जाय? विषयभोगोको त्याग दो, अपना ज्ञान संभालो, इन कामोसे भी पूरा नही पडेगा।

देखो भैया, स्पर्शन इन्द्रियका विषय है कामसेवनका। कामसेवनसे मनुष्यको लाभ है

या नही ? अरे इन विषयभोगोसे लाभ नही है, इनसे तो शक्ति क्षीण होती है, उपयोग उलझ जाता है। एक मोही जीवको अपनी आत्मा सौप देते है। कुछ लाभ मिलता है क्या ? इस रसनाइन्द्रियके विषयोसे लाभ कुछ मिलता है क्या ? स्वादमे आकर पक्का खाना खावें, मिठाई खावें, और-और भी चीजें खावें, इससे तृप्ति हो जायगी क्या ? स्वाध्याय, आत्मज्ञान अगर ठीक रखते है तो परमार्थ भोजन वही है। इस ज्ञानभोजनसे ही तृप्ति होगी। स्वाध्याय नही करते, इसीसे दिल दुःखी रहता है। देहका भोजन तो हृष्ट पुष्ट रखने वाली चीजोका करना चाहिए। रसीली चीजोका भोजन करनेसे तो सब गडबड हो जाता है, खोटे विकार होते है, आलस्य आने लगता है। इससे भी क्या जीवका पूरा पड़ता है ? घ्राणइन्द्रियके विषयकी बात देखो। व्यर्थके इत्र लोग लगा लेते है। अरे उससे सुगन्ध आ गई तो कौनसा स्वाद मिल गया ? पापबंध कितना किया, सुगन्धकी भी तो तृष्णा होती, फिर नाक भी बेकार हो जाती। ऐसी ही आंखोकी बात है। आंखोसे देख लिया सुन्दर रूप, उससे तो कुछ मिल नही जाता। लाभ क्या होता है ? कुछ भी है तो नही। उल्टा पराधीन बन जाते है। ऐसी ही है कामकी बात, मनके विषयकी बात। इन कामोके विषयसे पूरा नही पडेगा। तब तो इनको त्याग दो। ज्ञानस्वरूप ही अपनेमे देखो और विषयोसे प्रीति छोड दो, यह तो हुआ विषयोका त्याग।

अब रही धनकी बात, सो इस धनको तो पुण्यपर सौंप दो। धन आनेको होगा तो खुद आयगा, उसकी अधिक चाह मत करो। धन अधिक होनेपर भी देना तो पडेगा ही। इस धनके कमानेमे भी क्लेश करने पडते है। धन सचित हो जाए तो उसकी रक्षा करनी कठिन है और फिर समयके अनुसार सबको देना पडेगा। जैसे आजकल जरूरत है तो किसीने १० लाख दिया, किसीने ५ लाख दिया सरकारको। सो भैया, धन आता है दूसरोको देनेके ही लिए। धन कुछ खा नही लिया जाता है। तो इस धनको तो पुण्यपर सौप दो। धन आता हो तो आवे, न आता हो तो न आवे। जब पुण्यका उदय होगा तब धन जरूर आयगा। धनके लिए कोई परिश्रम नही करना पड़ता है। किसीसे ईर्ष्या करना बेकार है कि यह तो लखपति है और मेरे पास कुछ नही है, यह मालोमाल बैठा है, ये तो व्यर्थकी बातें है। अरे धनसे आत्मामे कोई लाभ नही होता। सबकी अपने कर्मोंके अनुसार ही परिणति होती है। जिसका जैसा भाग्य है वैसे ही धन मिलता है। सबके भाग्यकी बात है। भाग्य अपने परिणामसे बनता है और फिर वह धन दूसरोके ही काममे आयगा।

धन मिला तो वे धनी पुरुष स्वय ही उदार हो जाते है और वे बिना सकोचके दूसरो की रक्षा करते है। खैर, इस धनका विकल्प करनेसे क्या ? आता हो तो आवे और अगर न आता हो तो न आवे। इस धनसे जीवका कुछ पूरा नही पड़ेगा। पुण्यके काम होते है तो

हो । अन्तरमें यह विश्वास रखो कि मेरा स्वरूप तो ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है और यही धर्म है, यही असलियत है । ज्ञाताद्रष्टारूप जो धर्म है वही मेरा पालन करेगा । उसका ही आश्रय लें। पुण्य होता हो तो हो, मगर पुण्यसे पूरा न पडेगा । ऐसी दृष्टि रखो । इस तरह इससे अपने को न्यारा करनेमे अपनी आत्मा दृढ हो जाती है । सो अपनी आत्माके उपयोगको दृढ करो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो ।

भूतो भवेषु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।
मायाविनो किमाशासे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥–१५॥

बतलाओ परपदार्थोके संगम करके कुछ सतुष्ट हुए ? कुछ संतुष्ट न हुए । अब तक इतनी उमर हो जाने पर भी यदि किसीसे पूछें कि अब तुम्हे सतोष हो गया क्या ? अब आगे सुखकी आवश्यकता तो नही रही ? तो कौन ऐसा बता देगा कि तुष्ट हो गये है और उसे अब सुखकी कोई आवश्यकता नही रही । कोई तुष्ट नही हुआ । नदियोके भरनेसे समुद्र क्या कहेगा कि अब पानी मत लाओ ? अरे उसमे तो जितना ही पानी आयेगा उतना ही समुद्र महान् कहलायेगा । नदियोके गिरनेसे समुद्र तुष्ट नही होता । जलती हुई अग्निमे तृण डाल देनेसे अग्नि तुष्ट नही हो जायगी । वह तो जितना ही ईंधन पाती जायगी उतना ही जलाती जायगी । अब उसे ईंधनकी जरूरत नही है ऐसा अग्नि कभी न कहेगी । अग्निको ईंधन मिल जानेसे सतोष नही होता है ।

इसी तरह विषयोके साधन मिलनेसे क्या संतोष हो जायगा ? संतोष नही होगा । जो आज ऐसा सोच रहे है कि मुझको इतना मिल जाएगा तो फिर मुझे न चाहिए कुछ, तो मिल जाने पर क्या वे सतोषसे रहेगे ? सतोषसे वे नही रह सकते है । गुजारा तो सब परिस्थितियोमे चलता ही है पर ऐश आरामकी ओर-ओर बडी बातें चाहनेसे इनको सुख नहीं रहता है । जो वर्तमानमे धन मिला हुआ है उससे भी सुख नही रहता है क्योकि यह चाह रहती है कि और मिले । इस भावनासे जो गाँठमे है उसका भी सुख भोग नही पाता है आगेके सोचनेसे वर्तमानमे भी सुख नही भोग सकता है । आपकी इच्छाए तो अनादिसे ही बाधा डालने वाली है । इन भोगोसे, कामसे अनर्थ ही तो होगा । फिर ये समस्त सम्पदाए मायारूप है । आज यहाँ कल वहाँ, ये मेरी निजकी चीजें नही है । इन चीजोका मैं क्या विश्वास करूं । इनका तो विश्वास ही करना व्यर्थ है । किसी भी परपदार्थकी आशा न हो, क्योकि ये परपदार्थ इतने जड है कि इनकी आशा जहां करी तो आत्माको कुछ भी नही मिलता है । सो इस मायामय सम्पदाकी मै क्या आशा करू ? उनकी आशा छोडकर मैं अपनेमे अपने आप ही स्वय सुखी होऊ ।

यह सम्पदा शांतिका तो कारण नही है। जिसके पास सम्पदा है उसके खलबल मचा देती है। इसे कहते है निन्यानवेका फेर। जब कुछ नही है, १० रु० की ही पूंजी है तो ऐसा कुछ सोचो कि १० रु० मे ही मेरा काम बने। रोज कुछ लोग खोम्चा ही फेर लेते है। १० रु० मे खोम्चा हो ही जाता है। गांवमे फेरी लगा दिया तो गांवमे सब खाने वाले है ही। जिसकी गांठमे दाम हो खरीद ही लेगा। खरीद लेनेसे उस बेचने वालेका भी काम हो गया। गुजारे का काम चल गया। इस तरहसे जब आमदनी बढती जाती है तो उसकी आशा भी बढती जाती है। इसी तरह और भी बढ करके अगर कोई काम करता है तो आशा बढती जाती है। धीरे-धीरे यह असंतोष भी बढता जाता है। यह माया मोह हो जाना बुद्धिके ही बिगाड़का कारण है। बिगाड़ करना धोखा देना इससे तो उसको कुछ फायदा नही। बाह्यकी चिंता छोड कर अपने स्वरूपको देखो और अपने स्वरूपको देखकर सुखी होओ।

पुण्यापुण्यफलं दृश्यमदृश्या चिच्चमत्कृतिः।
वीततृष्णस्य स्वस्थस्य स्यात् स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–१६॥

लोकमे जो कुछ देख रहे है वह सब पुण्य पापका फल है। जो जीव सुखी दुःखी देख रहे, जो व्यवहार देख रहे, जो जीव कुछ नजर आ रहे है ये सब पुण्य पापके फल हैं अर्थात् पुण्य भाव हो उसका फल है; पाप भाव हो उसका फल है। जो सत्य है वह तो पुण्य पापका ठाठ है, मगर जो वास्तविक ठाठ है, चैतन्यका जो चमत्कार है वह इन्द्रियगम्य नही। उसका अनुभव उस पुरुषको होता है जो तृष्णावोसे दूर है और अपनी आत्माकी ओर झुका है उसे ही चैतन्य चमत्कारका अनुभवका होता है। वही वास्तविक अपनी विभूति है। इन बाह्यसयोगोके लिए जो ललचाते है, जो इससे अपना बड़प्पन मानते है यह उनका मात्र मोह है। उनको अपने नाथका पता नही है। इसलिए बाहर ही बाहर सब कुछ खोजना चाहते हैं, पर ये सब हेय है। पुण्य और पाप जो भी परिणाम व फल है उनसे विविक्त आत्माका चैतन्यस्वरूप अनुभवमे होगा तो शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा। पाप तो बहुत भयावह है ही पापके फलमे जो चीज मिलती है सब लोग जानते है कि सब दुःख देने वाले प्रसगही मिलते है। पर पुण्यका जो भाव है और उसके परिणाममे जो कुछ संगत होता है वे भी सतोषकी चीजें नही है। पुण्यका फल क्या है? इन्द्रिय विषय। बाह्यमे कुछ इष्ट पदार्थ मान लिए जाते है जिनको देखकर हम अपना मौज मानते है। यह हुआ रौद्र ध्यान, यही तो पुण्यका फल है। ज्यादासे ज्यादा देव हो गये, राजा महाराजा हो गये, पर इन बातोके हो जाने पर भी कुछ सारकी चीज मिलती है क्या? दुःख वहीका वही है।

तृष्णावोके साधन हैं। देखलो यह पुण्यका फल है।

थोडा धन है तो मामूली उडान है और जब धन बढ जाता है तब तृष्णावोकी उडान भी बढ़ जाती है। गरीब आदमी जो रोज-रोज मजदूरी करता है और गुजर करता है उसकी उडान चलेगी तो सोचेगा कि सौ पचास रुपयेकी पूंजी होती तो कुछ चिंता न रहती, कुछ दिन मज ्री न करनी पडती तो अच्छा गुजारा चलता। तो उस गरीब की उडान इतनी ही हो पाती है मगर जो लखपति है, करोडपति है, जिनको सम्पत्ति मिली है उनकी इतनी ही उडान है क्या ? अरे वे कोई चीज बनवायेंगे। और और भी जगह उनका वधन होता है, वे फसे रहते हैं, उनको झंझटें ही रहती है। यहां पुण्यका फल और पापका फल दोनो बराबर हैं। उनमे ही फमकर वे मग्न हो जाते है। पापका फल तो विपत्ति है। सो विपत्तियोमे प्रभुकी याद रह सकती है, भगवानका ख्याल हो जाता है, पर पुण्यके फलमे सम्पदा है, आराम मिल जाय तो उसमे ही मग्न हो जाते है और प्रभुकी याद नही रहती है।

प्रभुकी यादमे जो शान्ति मिलती है वह किन्ही भी परपदार्थोंके समागममे है ही नही और प्रभुको भूल गये तो वहाँ अशान्ति ही रहेगी। विषय सुख शान्तिको भोगे जाते हैं, पर उनसे होती है अशान्ति। वे भोजन करते है तो शान्तिसे करते है कि अशान्तिसे करते है ? अशान्तिसे। अशान्ति न हो तो भोजनका श्रम क्यो करें ? देखो भोगनेकी विधि भी अशान्ति पूर्वक है। तो क्या भोगोसे कुछ शान्ति मिल जाती है ? अरे भोगोके प्रसंगसे तो शान्ति होती ही नही। जब भोगोमे लगे रहेगे तब तो अशान्ति ही रहेगी। यही भोग तो रोग है अथवा जब मनमे खेद है तभी भोगोमे प्रवृत्ति है और मनमे अशान्ति हो तो भोगोमे प्रवृत्ति नही रहती। जैसे जिसके फोडा हो, घाव हो, फट गया हो, वह ही तो मलहम पट्टी करेगा। इसी तरह जिसके खेद है, भोगोकी वाञ्छा है वही पुरुष भोगोमे प्रवृत्ति करेगा और जो शान्त है, वह भोगोमे प्रवृत्ति न करेगा।

स्नेह कौन करेगा ? जिसके कुछ वेदना है, भीतरमे तकलीफ है, कष्ट है, उसको भूलने के लिए, उसका निवारण करनेके लिए उसका इलाज स्नेह माना है कि मोह करे, राग करे, स्नेह करे, मगर यह प्रवृत्ति तो खेदके कारण होती है, आकुलतावोके कारण होती हैं। तो यह जो कुछ ठाठ लोकमे है, जिसके कारण लोग इतराते हैं ये सब ठाठ हेय हैं। इनमे कोई सारकी चीज नही है। यहाँ चित्त फंसाने लायक कुछ नही है। चित्तमे बसने लायक तो आत्मा ही है, प्रभुका स्वरूप है, चैतन्यचमत्कार है, जो कि इन्द्रियोसे गम्य नही है, किन्तु ज्ञान द्वारा सहजगम्य है।

सो भैया, कर्तव्य यह है कि इन ठाठोसे मोह त्यागकर अपना जो साक्षात् प्रतिभास-

स्वरूप है, जो कि आनन्दमय है, उसमे ही रुचि करनी चाहिए। यह स्वरूप ही सार है, यह स्वरूप ही सर्वस्व है, यह स्वरूप ही हितरूप है, ऐसा लक्ष्य बनना चाहिए और उस आत्मस्वरूपकी ओर झुकना चाहिए। इन बाहरी पदार्थोमे कुछ अन्तर पडता है तो पडे, इष्ट संयोग कम होता हो, होवे। उन पदार्थोके आनेसे तो विकल्प ही बढते हैं। ये विकल्प अर्थकारी नही है, किन्तु अनर्थकारी है। ये विकार भी उपाधिके निमित्तसे आते हैं। इनसे मेरा कोई फायदा नही है। लाखोकी सम्पत्ति बढनी होगी तो खुद बढेगी, विकल्प करनेसे नही बढ़ेगी। मेरा केवल इतना ही काम रहे कि निजके स्वरूपको देखें। बाह्य चीजोसे दृष्टि हटा लें। बाहरी पदार्थोके लिए इतनी आकुलताएँ करना बिल्कुल व्यर्थ है, अनर्थकारी है। उन कल्पनावोको त्याग कर, इन वाह्य समागमोसे दूर रहकर अपने आपके स्वरूपमे रुचि करो, अविनाशी निजस्वरूपमे रुचि करो। मिटने वाली चीजसे प्रेम है तो यह खतरनाक है, खतरेसे भरा हुआ है। इसका परिणाम दुःख ही है।

इस विनश्वर सम्पदाके कमानेमे क्लेश, रक्षा करनेके समयमे क्लेश, रक्षा करते हुए जब नष्ट हो जाती है तब क्लेश होते हैं। यह जो सम्पदा है वह प्रारम्भ, मध्य और अंतमे सर्वत्र क्लेशका कारण बनती है। इसलिए इस सम्पदाका भीतरसे मोह छोड़ो अर्थात् सत्य ज्ञान बनाये रखो। सारे पदार्थ स्वतत्र हैं, वे स्वय अपने स्वरूपमे है इसलिए कोई पदार्थ किसी दूसरेको कुछ करता नही है। कोई पदार्थ किसी दूसरेका मालिक नही है। सारे पदार्थोको स्वतत्र देखो। स्वतत्र देखनेका प्रयोजन है कि अपने आपमे स्थित होओ। आनन्द पानेका दूसरा उपाय नही है। जगत्मे कितने ही झंझट लग जाते हैं। शान्ति तो तब मिलेगी जब अपने आपके सहजस्वरूपमे दृष्टि होगी। इसलिए तृष्णावोको छोड़कर अपने आपमे स्थित होवो।

वतते मेऽद्य किं सम्पज्जन्मजन्मार्जित यश.।
दूरमास्तां विपन्मूल स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१७॥

पूर्वजन्ममे पायी हुई सम्पदा आज कुछ है क्या? पूर्वभवमे जो समागम मिला था वह आज है क्या? किसी का पता है क्या? पूर्वभवमे माता कौन थी? पिता कौन था? भाई कौन था? बहिन कौन थी? यह कुछ किसीको पता है क्या? अथवा यह नही सही, कीडे मकौडे पूर्वभवमे थे तो कहाँ पर थे? किस स्थान पर थे? अपनेको कुछ पता नही। लोग मरनेपर श्राद्ध करते है। श्राद्धके मायने असौजके महीनेमे कृष्णपक्षमे पंडाके आगे जाकर कहते है कि आज इतना अनाज हमारे बापको पहुंचा दो, इतने कपडे भेज दो। अरे देखो मरने पर वे श्राद्ध करते है। इससे तो अच्छा यह था कि बाप जब जिन्दा था तो सुखसे पानी तो पिला दिया करते। जब तक बापकी जिन्दगी रही तब तक तो बहुत-बहुत गालियाँ

दी, समय पर खाना नहीं दिया, पानी नही पिलाया । अब बापके मर जानेपर श्राद्ध करते, तीर्थोंमे जाकर कहने कि इतना मेरा अनाज बापके पास भेज दीजिए, कपडा भेज दीजिए । यह सब व्यामोह ही तो छाया हुआ है कि जो मर गया है वह तो मर ही गया, उसके लिए दूसरोमे प्रार्थना करते है कि अनाज पहुंचा दो, कपड़ा पहुचा दो । कोई क्या मरे हुए बापके पास कुछ भेज सकता है ? बहुतसे लोग कहते है कि दूध पीनेके लिए गयाको भेज दो जिससे कि मरा हुआ बाप दूध वहा पीता रहे । अरे भाई जो मर गए हैं उनके पास दूध पीनेके लिए गया भेजना है ।

भैया, पूर्वजन्ममे जो कुछ समागम किया था आज वह नही है और आज जो कुछ समागम कर रहे है वह पूर्वजन्ममे न रहेगा । जैसी सम्पदाकी बात है तैसी ही कीर्ति और यशकी बात है । तो सोचो पूर्वजन्ममे कुछ अच्छा व्यवहार करके जो यश प्राप्त किया था वह कुछ आज है क्या ? इसी तरह इस जन्ममे जो कुछ यश प्राप्त कर लिया जाय, वह सब अगले भवमे न रहेगा । पहिली बात यह है कि ये सब असार चीजें है, अहित हैं । इन से मेरा कुछ हित नही है । इनमे राग न करो । यह ज्ञान अपने ज्ञान स्वरूपमे लगावो । जब ऐसी स्थिति होगी तब संतोष प्राप्त होगा और जब यह ज्ञान राग द्वेष सयोगमे ही फसा रहेगा, बाहरी पदार्थोंमे ही विचरता रहेगा तो इससे तो असंतोष ही प्राप्त होगा । उससे तुम्हारा हित नही है । अपना ज्ञान बाहरी पदार्थोंमे उलझाते रहे तो सुख दुःख मान मोह आदि ये ही सब बनते रहेगे ।

सो भैया, वह यश और सम्पदा सब विपदायें ही देती हैं । सम्पदा वालोको ही अधिकतर विषयभाव आया करता है । अनेक प्रकारकी झझटें उनके सिर पर आती है । अब देखिये चीन और भारतमे आजकल आक्रमणकी बात चल रही है, चीन और भारतके आक्रमणोके कारण शहरोके लखपति करोडपति लोगोके दिल कांप रहे है । तो भैया धनके पीछे हमेशा शका बनी रहती है ना ? अभी कोई दूसरे ही चढ आये तो दूसरोके आ जाने पर यही सम्भावना रहती है कि अब तो मेरी सम्पत्ति गई । फिर साम्यवादी मुल्क चढ रहा है तो उसमे अधिक सदेह रहता है । जब कि देहातोमे लोगोको युद्धकी बातें सुनकर दिल दहल जाता है । तो उन शहर वालोको क्या कहना है ? युद्धके इन प्रसगोमे अधिकतर बात ऐसी है कि सम्पदा न रहेगी हाथ, किन्तु आत्मसाधनामे बाधा न आये, इसके लिए भी कई लोग दहलते हैं ।

इस सम्पदासे तो विपदाएं ही मिलती हैं । दो भाई थे । वे कमाने के लिए विदेश चले गये । उन दोनो ने इतना अच्छा कमाया कि लाखोका धन कमा लिया । अब सोचा कि

लाखोका धन विदेशमे कमा तो लिया, अब इसे ले कैसे जायें ? ले जानेकी चीज तो छोटी होनी चाहिए। तो सब धन सम्पदा बेचकर दो लाल अथवा रत्न खरीद लिए। अब रत्न ले कर जा रहे है। रत्न बडे भाईके पास थे। बडा भाई सोचता है कि समुद्रमे जहाजमें बैठे चले जा रहे है किन्तु घर पर एक मुझे मिलेगा और एक इसको मिलेगा। सो ऐसा करें कि पानीमे जा रहे है। भाईको एक ऐसा धक्का दे कि वह पानीमे गिर जाय और दोनोके दोनो रत्न हमे मिल जायें। ऐसा उसके भाव आया। फिर बादमे सभला और उसने विचार किया कि इसी छोटे भाईकी बुद्धि से ही तो ये रत्न पैदा हुए, यह मैं क्या सोच रहा हू ? इस भाईके प्रति ऐसा मुझे न करना चाहिए। अब वह बडा भाई कहता है कि भैया आप इन दोनो रत्नोको अपने पास रख लें। इन रत्नोके पीछे मैंने बडे विकल्प किए। इन्हे मै नही रखना चाहता। सो छोटे भाईको दे दिये। अब छोटा भाई थोडी देरमे सोचता है कि हमारी ही बुद्धिसे ये रत्न कमाये गये है, घर पहुचते ही ये बँट जावेंगे। तो ऐसा करें कि जरासा काम है। धक्का देकर भाईको गिरा देवें तो दोनो रत्न हमे प्राप्त हो जावेंगे। ऐसा सोचा ही था कि वह झट सभल गया। छोटा भाई बडेके पैरोमे गिर गया, कहता है कि ये दोनो रत्न रखनेके काबिल नही हैं।

खैर, किसी तरह घर पहुचे। दोनो भाइयोने सलाह की कि रत्न हम दोनो न रखें, छोटी बहिन रखे। छोटी बहिनको रत्न दे दिये। अब दोनो रत्न छोटी बहिनके धरोहरमे थे। वह सोचती है कि इनके रख लेने मात्रसे ही मुझे लाभ नही, ये तो धरोहर है, फिर ले ही लेंगे ये भैया। नही तो इन दोनो भाइयोको खत्म कर दें कुछ खिला पिलाकर, जिससे ये रत्न मेरे हो जायें। थोडी देरके बादमे वह भी कुछ सभली। बोली—भैया, ये रत्न तो मैं अपने पास न रखूगी। इन दोनो रत्नोमे बडा पाप है। अब विचार किया कि सबकी जननी अर्थात् माता जो है उसको दे दिये जायें। वे दोनो रत्न माँ को दे दिए। अब वह माँ सोचती है कि ये रत्न मेरी धरोहरमे है। हम तो इन्हे छिपाकर रखें क्योकि जब धन रहेगा तो कोई भी लोग मेरी अच्छी तरहसे जिन्दगी बितायेंगे। अब तो माँ को लोभ आ गया, गंदे विचार आ गये कि सबको मार डालू कुछ खिला-पिलाकर। इस प्रकारके गंदे विचार आ जानेके बाद माँ भी झट ही सभली। माँ बोली—मै इन रत्नोको अपने पास नही रखूगी। इन रत्नोसे मेरे ऐसे विचार हो गये। इसी प्रकार छोटा भाई तथा बहिनने बताया कि मेरे विचार ऐसे हो गये थे। बडे भाईने भी बताया कि मेरे विचार भी ऐसे हो गये थे। अब तो यह विचार हुआ कि दोनो रत्न समुद्रमे फेंक दिये जायें तभी ठीक है। दोनो रत्न समुद्रमे फेंक दिये गये, तब वे सब मजेमे हो गये।

यह जो सम्पदा मिलती है उससे जुदा रहनेकी भावना रहनी चाहिये। किसीने अधिक माग लिया तो क्या वह किसीके पास चली गई ? यह सम्पदा तो आने जाने वाली चीज़ है, चचल है। यदि सम्पदा रहती हो तो रहे और न रहना हो तो न रहे इसलिए कहते है धनकी वांछा नही करनी चाहिये। इस सम्पत्तिसे अलग ही अलग रहनेकी भावना करनी चाहिये।

हे प्रभु ! मेरी यह कब कामना सफल होगी कि समस्त परपदार्थोंसे हटकर आपकी ओर ध्यान लगाऊं ? यह मैं कब इन वैभवोके विकारोसे हटकर आपमे रुचि लगाऊ ? हे प्रभो ! बाह्यपदार्थोंके विकारोमे मेरी रुचि न जाए। मेरा जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है उस चैतन्यस्वरूपमे ही दृष्टि दूं, यही मेरा लक्ष्य रहे। इस स्वरूपके आलम्बनके प्रतापसे ही कर्मों का क्षय हो सकता है। परमात्मा बननेके लिए एक ही काम करने योग्य है कि अपने आपका परिचय करे और अपने ही स्वरूपमे रमण करें। शांति प्राप्त करनेका मुख्य उपाय यही है कि हम भगवान्के दर्शन करें। प्रभुके दर्शन करनेके लिये केवल प्रभुके शुद्ध स्वरूपको ही निरखना है। उस प्रभुको सोचते हुएमे अपने स्वरूपमे दृष्टि दूं, जिसके प्रतापसे समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं। भैया, अपनेमे यह भावना करो, जब प्रभुके दर्शन करने जावो तो उस प्रभुमे ही दृष्टि देकर उससे यह वर मांगो कि हे प्रभु ! मुझे ऐसा वर दीजिये कि मैं अपने सत्यस्वरूपमे दृष्टि लगाऊ। यहाँ लोग अक्सर करते क्या है कि भगवान्की देहरीमे सिर नवा कर कहते है कि भगवान् मेरे बच्चोको खुश रखो। हे भगवान् ! मुझे सुखी करो। कोई-कोई तो ऐसा स्पष्ट कह भी देते है। दूसरोके विनाश तकके लिए लोग भगवानसे प्रार्थना करते है। यह कोरी बात नही कहते है। यदि सुनना चाहो तो सुन भी सकते हो, छिपकर चुपचाप रहकर।

भैया, देखो अपने निजस्वरूपको भूलकर मोही प्राणी बाह्य पदार्थोंमे ही चित्त गडाए रहते है। यह तो विवेककी बात नही है। इन बाह्यपदार्थोंमे तो हटकर रहना चाहिए। जो हितकी बात हो उसमे ही अपना लगाव रखना चाहिए। इसके लिए भैया रोज-रोजका उपाय तो यह है कि स्वाध्याय करो। यही ज्ञान प्राप्त करनेका मुख्य उपाय है। ज्ञान ही ग्रहण करने की चीज है, ज्ञान ही रक्षक है और ज्ञान ही शरण है। भैया ! अपने ज्ञानको स्वच्छ बनाओ और स्वय सुखी होओ।

स्वात्मचिन्तापि चिन्तैव चिन्ता स्वानदबाधिनी।
सर्वं चिन्तां विमुच्यातः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१८॥

हम आप जितने भी जीव है, इन सबका स्वरूप ज्ञान और आनन्द है। जैसे इन

दिखने वाले पदार्थोंका स्वरूप जान पाते है कि इसमे रूप है, इसमे रस है, इसमे गंध है, इसमे स्पर्श है, इसी प्रकार इस आत्माको जानना चाहिये कि कौनसा ऐसा तत्त्व है आत्मामे, जो इसका अनाद्यनन्त रूप हो। आत्मामे रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि तो कुछ मिलेगा नही। इस आत्मामे तो ज्ञान और आनन्द ही मिलेगा। यद्यपि इस आत्मामे सुख-दुःख, राग-द्वेष, विषयकषाय इनका अभाव ही मिलता है, किन्तु ये सब भाव जीवोमे जीवके अस्तित्वके कारण नही है। जीवोमे जीवकी सत्ताके कारण जो भाव है वे ज्ञान और आनन्द है। जब यही निश्चय हो कि जीवका स्वरूप ज्ञान और आनन्द है, यह स्वरूप स्वयं आनन्दमय है, इसको आनन्द पानेके लिए दूसरोकी उपेक्षा नही करनी है और न दूसरे पदार्थोंसे हमको आनन्द ही आता है। दूसरोंकी अपेक्षा करनेमे तो आनन्दमे बाधा आती है। इस जीवके स्वभावमे आनंद है। भैया! राग द्वेषके आवरणसे दबनेके बाद भी कुछ न कुछ आनन्द बचा रहता है। उस बचे खुचे आनन्दसे यह मोही जीव मान रहा है कि मुझे तो बाह्यपदार्थोंसे आनन्द आता है।

जब तक यह दृष्टि रहेगी कि मुझे परवस्तुओंसे आनन्द आता है तब तक शांति न मिल सकेगी। परवस्तुओंके सयोगका कोई विश्वास नही है कि यह संयोग कब तक रहेगा? बाबा दादा इत्यादिसे सयोग हुआ है, ठीक है; किन्तु इनका वियोग भी जरूर होगा। जो-जो भी आपको प्राप्त होता है उन संयोगकी चीजोमे विश्वास न करो। यह समझते रहो कि जहाँ पर सयोग है वहाँ वियोग नियमसे होगा।

भैया! इस संयोगमे कोई सार नही है। अरे ये चीजें तो बिछुड जायेंगी। बुद्धिमानी तो यह है कि सयोगके समयमे हर्ष न मानो। यदि विषय कषायोमे ही रहे तो सयोगके समय मे भी आकुलता रहेगी और वियोगके समयमे भी आकुलता रहेगी। जैसे कोई आदमी एक दो महीनेसे बीमार पडा हो और कठिन बीमारीमे रहा हो, अनेक वैद्य डाक्टर आवें, पर वह पुरुष ठीक न हुआ हो। उस पुरुषका यदि मरण हो जाता है तो घर वालोको विशेष शोक नही होता, क्योकि घर वालोको दो-तीन महीने पहलेसे ही यह मालूम हो जाता है कि अब यह बचेगा नही। इसलिए दुःख कम होता है। और यदि कोई हट्टा-कट्टा जवान व्यक्ति अचानक ही मर जाता है तो उससे घर वालो पर बहुत बडा धक्का लगता है, बड़ा दुःख होता है, क्योकि पहिलेसे यह नही मालूम रहता कि अभी इसका मरण होगा। अब तो यही निर्णय होना चाहिए कि जो कुछ मिलता है उसमे वियोग जरूर होगा। गृहस्थको ऐसा ज्ञान बनाए रहना एक बहुत बडा तप है। यह विचार हो कि इन चीजोमे हम आसक्ति न करेंगे, संयोग होने पर मौज न मानेंगे तो भैया वियोग होने पर दुःख भी न होगा।

आत्मामे आनन्द किसी भी परवस्तुसे नही आता है। आनन्द स्वभाव है आत्माका।

उस आत्मामें स्वभावसे ही आनन्द प्रकट होता है। परवस्तुओंसे आनन्द मिलना तो दूर रहा, उन वस्तुओंके आलम्बनसे कितना ही आनन्द नष्ट हो जाता है। यह तो आनन्दके स्वभावकी महिमा है कि बचा हुआ आनन्द फिर भी रहता है। उस समय मोहीको ऐसा लगता है कि मुझे इन विषयोंसे आनन्द हुआ।

ज्ञानी पुरुष इन विषय सुखों पर लात मार देते हैं। जैसे कोई रईसका बालक है। छोटी ही अवस्थामें उसका पिता गुजर जाय तो सरकार उसकी जायदादको कोर्ट ऑफ वोर्ड कर लेती है और उस लडकेको ५०० रु० महीना या कुछ भी हो खर्चा बांध देती है। मानो ५० लाखकी सम्पदा सरकारने ले ली है और ५०० रु० महीना बांध देती है। जो कुछ भी फायदा होता है, सरकार ले लेती है। उस लडकेका पालन-पोषण सरकार ही करती है। पर लडका जब १४ वर्षका हुआ, १६ वर्षका हुआ तो वह सोचता है कि ५०० रु० महीना खर्च को मिलता है, सरकार बडी दयालू है। उसे अभी तक पता नहीं कि लाखोंकी सम्पत्ति सरकारने ले ली है। और जब १८-१९ वर्षका हुआ तो वह यह जानकर कि मेरी लाखोंकी जायदाद सरकार लिए हुए है, सरकारको नोटिस कर देता है कि मैं बालिग हो गया हूँ, मेरी जायदाद दी जाय। सोचता है कि मेरी जायदाद अधिक है। यह जो सरकार ५०० रु० महीना भेजती है उसकी मुझे जरूरत नहीं है। मेरी जायदाद सरकार मेरे सुपुर्द कर दे। जब वह अपनी जायदाद अपने कब्जेमें कर लेता है तब वह अपनी जायदादको देखकर खुश रहता है।

इसी तरह जगत्के जीवोंकी अनन्त आनन्दकी विभूति है, मामूली नहीं क्योंकि स्वयं ही आनन्दसे भरा इस जीवका स्वरूप है। 'आनन्द ब्रह्मणो रूपम्।' ज्ञानी संत पुण्य कर्म सरकार द्वारा हडप किये गये वैभवको ही चाहता है। पुण्यके उदयसे मिले हुए सुखका तिरस्कार करता है अर्थात् उन कर्मोंके उदयकालमें सुखाभास मिलता है, उसमें रुचि करनेसे आत्मीय आनन्द सब निकल जाता है। उसका घाटा हो गया विषयप्रेममें। जब तक उस जीवके मिथ्यादृष्टि है तब तक पुण्य कर्मोंके बडे गुण गाता है। कर्मोंको ही वह बहुत अच्छा मानता है। समझता है कि कर्मोंकी कृपासे ही सारा वैभव मिला, सारा सुख मिला।

अभी बूढोंसे पूछो कि मजेमें हो? तो कहेंगे बहुत मजेमें हैं। हमारे लड़के हैं, नाती हैं, सब कार्य करते हैं और हम मौज मनाते हैं। उनका मौज केवल पुत्र नाती तक ही सीमित हो गया। वह दूसरोंके भी गुण गाता है। फलाने तो बहुत अच्छे हैं, उनका ऐसा काम चलता है। अगर इस जीवके मिथ्यादृष्टि हो जाती है तो वह इधर उधर ही भटकता रहता है। यदि जीवको सम्यग्दृष्टि हो जाती है तो यथार्थज्ञान हो जाता है, कर्मोंको नोटिस

दे देता है । वे जीव जिनको सम्यग्ज्ञान हो गया, वे विषय कषायोको नही चाहते, उनकी दृष्टि तो आनन्द वैभवमे रहती है, बाहर ही बाहर उनकी दृष्टि नही रहती है ।

है तो यह आनन्दमय स्वरूप, ज्ञानघनस्वरूप, मगर परपदार्थोमे ही पडकर यह जीव दुःखी हो रहा है । इन विकल्पोने ही इसके विकासमे बाधा डाल दी । कोई दूसरे पदार्थ उसके आनन्दमे बाधा नही डालते है । केवल उन पदार्थोके प्रति विकल्प बनानेसे ही बाधाएं आ जाती है । कोई परपदार्थ उसे दु खी कर ही नही सकते । सब स्वतन्त्र स्वतन्त्र जीव है । किसीका परिणमन किसी अन्यसे नही होता है । किसी एक पदार्थका असर दूसरे पदार्थमे नही होता है । दूसरे पदार्थका निमित्त बनाकर उनमे ही विकल्प बनाकर वे स्वय असर उत्पन्न कर लेते है । देखने वाले लोग कहते है कि आफिसर साहब और जज साहब जरूर मजेमे होगे, पर वे मजेमे नही होते । उनकी बात उनमे है । उनके सामने जानेमे किसीका दिल घबडाता है, कोई भयभीत होते है । जो लोग यह कहते है देखो जज साहबमे कितना तेज है कि उनके सामने खडे होनेमे भय लगता है, डर महसूस होता है । प्राय: सारे मनुष्य ऐसा ही स्वय ख्याल बनाने वाले है, ऐसा अनुभव करने वाले है सो कहते है, परन्तु बात है यह कि जज साहबका निमित्त बनाकर वे अपनेको भयभीत बना लेते है । जज यद्यपि कुछ नही करता । देखो स्वय ही तो वे कल्पनाए बनाकर दु खी हो जाते है । वे अपनी गल्तीको नही देख रहे है । पर दूसरोके कार्योको, दूसरेकी गल्तियोको सब देख रहे है । इससे दूसरा कोई दुःखी नही होता, स्वय ही सब अपनी गल्तीसे दुःखी हो रहे हैं ।

ये लौकिक जीव परपदार्थोसे ही अपनेमे बाधा डालकर आनन्द नही प्राप्त कर पा रहे है, क्योकि जब किसी परकी आशा रखोगे तो उसकी चिंता बढेगी । चिंताओके बढनेसे ही वे दुःखी हो जाते है । चिंताए ही आनन्दमे बाधा डालती है । इस कारणसे चिंताओको छोडकर अपने स्वरूपको देखो तो अपने आपमे आनन्द प्राप्त कर सकते हो ।

यह जीव अपनेमे ही परिणमन कर पाता हैं । अपनेसे बाहर कुछ नही कर सकता है । जैसे देहातोमे घर पास-पास बने है तो एक घरकी स्त्री दरवाजे पर खडी होकर दूसरे घरकी स्त्रीको हाथ फटकार फटकार कर गालिया देती है । वह अपने ही दरवाजे पर खडे होकर बोल रही है । न एक कदम आगे बढे और न एक कदम पीछे । सुनने वाले लोगोका जत्था लग जाता है । न तो वे स्त्रियां एक दूसरेको मारें पीटें, केवल हाथ फटकार-फटकार कर गालिया देती है । केवल गालियां ही वे एक दूसरेको दे लेंगी । कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्रीका कुछ कर तो न लेगी । वे स्त्रियां स्वय ही अपनेमे विकल्प बना-बना कर गालियां दे रही हैं । वे दोनो ही दरवाजेपर खडी होकर एक दूसरेको गालियां दे रही है, पर एक स्त्री

दूसरी स्त्रीका कुछ नही कर सकती। केवल कल्पनाए बनाकर, ख्याल बनाकर वे दु:खी हो रही है।

इसी प्रकार जगत्के जितने भी जीव है वे सब अपने अपने कषाय करके अपने ख्यालो के अनुसार अपना परिणमन करते है। पिता सोचता है कि मैं पुत्रको पढाता हू पर ऐसा सोचना व्यर्थ है। पुत्र स्वयं अपने भाग्यसे पढना लिखना है। उस पुत्रका भाग्य अधिक अच्छा है। उसका भाग्य अधिक अच्छा है तभी तो पिताजी उसकी चिंता करते है। उसकी बडी संभाल करते है। पुत्रका भाग्य तो उस पिताके भाग्यसे अच्छा है। जहाँ पुत्र १ वर्षका हुआ उसके लिए बाम्बेसे खिलौने मगाते हैं, उसको खिलाते पिलाते हैं, पालन पोषण करते है। पिताके भाग्यसे लडकेका भाग्य अच्छा है। अच्छा तुम्हीं बताओ कि इसमे पिताका भाग्य अच्छा हुआ कि लडकेका भाग्य अच्छा हुआ ? अरे! इसमे तो लडकेका ही भाग्य अच्छा हुआ। पिता तो उस लडके की चाकरी कर रहा है। पिता यह सोचता है कि हम नही होगे तो इस लडकेकी कौन सेवा करेगा ? घरको कौन सेवा करेगा ? इस प्रकारकी फिकर पिता रखता है।

किसी गावमे एक गरीब ब्राह्मण था। वह परेशानीसे लाचार था। गांवमे जावे और दो तीन सेर आटा ले आवे और बसर करे। यह उसका रोजका काम था। एक दिन वह गावमे ही आटा माग रहा था। एक सन्यासी निकला, बोला कपट कर रहे हो ? बोला किसी तरहसे भीख माग करके खाते हैं और घर वालोको खिलाते है, बडी परेशानी है। सन्यासीने कहा—बेटा चिंता छोडो। अब हमारे साथ १५ दिनके लिए चलो, अब तुम्हे इस घरमे आराम कहा मिलेगा ? तुम कहाँ घर वालोको खिलाते हो ? घर वालोको खिलाने वाला तो और कोई है। अच्छा अब तुम चिंता छोड दो। वह सत्यवान पुरुष उस सन्यासी के साथ १५ दिनके लिए चल दिया। घर वालोने यह सोचा कि घर वाला वापिस नही आया, किसी जानवरने खा डाला होगा। किसीने मजाक भी कर दिया कि हाँ तुम्हारे घर वालेको गांवके बाहर किसी शेरने खा डाला।

अब घर वालोने यह सुना तो रोना शुरू कर दिया। अब माँ वगैरा रोने लगी। जब समाचार मिला तो पडौसी भी जुड गये। पडौसी घर वालोको समझाते है कि भैया वह तो मर ही गया, अब रोनेसे तो वह बच्चा नही आ जायगा। सो किसीने उसके घर वालोको अनाजका दान किया, किसीने ४ बोरा अनाज, किसीने २ बोरा अनाज, किसीने घी का कनस्तर दे दिया, किसीने कपडेके थान दे दिये। अब तो उसका घर भर गया। वे आनन्दसे बढिया खाने लगे, मौज उडाने लगे। अब वह ब्राह्मण साधुसे कहता है कि महाराज १५ दिन

हो गये अब तो हमे जाना चाहिए। देखें तो जाकर कौन मरा है, कौन जिन्दा है क्योंकि घर के लोग भूखे रहे होंगे। साधुने कहा—अच्छा जावो, जाकर देख आवो, मगर छिप करके देखना।

अब वह ब्राह्मण अपने घर आया, देखा कि सब लोग मौज उडा रहे है। कहाँ तो कुछ खानेको न था और कहाँ पकौडी, पूडियाँ उडा रहे है। सोचा कि अच्छा मौज आ गया यहा तो। सारा घर सम्पदासे भर गया है। अब वह घरके अन्दर गया। घर वालोने सोचा अरे घर वाला तो मर गया था, वह अब घरके अन्दर आ गया है। अब तो शायद यह भूत बनकर आया है। उसको भूत जानकर चूल्हेमे लगे हुए लूगरसे उसको खदेडा। वह डरके मारे भागा। साधुके पास वह फिर लौट आया। सन्यासीसे बोला– महाराज घरकी बहुत ही अच्छी दशा हो गया है। घरके सब लोग आरामसे थे। पहिले तो खानेको नही था, पर अब सब पूडी पकौडी उडा रहे है। मै जब घर गया तो घरके लोगोने मुझे चून्हेके लूगरसे भगा दिया। सन्यासी कहता है कि तुम्हे अभिमान था कि घरके लोगोका पालन-पोषण हम ही करते है। अब उन्हे मौज है, इसलिए उन्होने तुमको भगाया। जब तक तुम घरमे रहे तब तक परेशानियोसे दिन गुजरे थे, पर जबसे तुम हटे तबसे उनकी अच्छी स्थिति हो गयी है। अब वे सब मजेमे हो गये तो तुम्हे पूछे ही कौन ?

भैया, सब स्वतत्र-स्वतत्र जीव है। तुम किसकी चिता करते हो ? भीतरमे यदि सम्यग्ज्ञान हो तो चितावोमे फर्क पड जाता है। यदि ज्ञान नही है तो चिताए हो जाती है। करने लायक काम तो यह है कि भीतरमे ऐसा ज्ञान बने कि मैं ज्ञाता द्रष्टा हू, जानन-हार हू, आनन्दस्वरूप हू—इतना ज्ञान होनेसे आकुलताए नही रह जाती है। यदि अज्ञान का कुछ असर हुआ तो आकुलताए रहती है। यदि सम्यग्ज्ञान करो तो आकुलताए छूटे। यदि चिताए छूटें तो यह जीव अपने आप सुखी हो सकता है। चितावोमे बने रहनेसे तो आत्माका कल्याण नही होगा। यदि चिताएं छूटे तो अपनी आत्माका आनन्दस्वरूप देखने से आ जाये और की तो बात ही क्या यदि कल्याण भी करते हो और आकुलतावोकी कल्प-नाए बनालो तो आकुलताए छा जाती है। जगत्से तो इतना ही प्रयोजन रखो कि मै तो जान गया। जानने तक ही मेरा काम है। इसके आगे मेरा काम नही है। इसके आगे और मत सोचो। इसके आगे यदि सोचा तो दुःख ही है। अपने आपको जानलो और देख लो और इसके आगे मत सोचो।

एक भक्त था। साधुके पास बैठ गया। भक्तने सोचा कि साधुसे नियम कुछ ले लें। साधुने कहा—मदिर रोज दर्शन करने जाया करो। बोला—महाराज, मंदिर तो दूर पडता

है। साधु बोला—अच्छा अगर दूर पडता है तो घरसे जो चीज नजदीक हो उसका दर्शन कर लिया करो। भक्त बोला—महाराज, हमारे घरके सामने तो कुम्हारका घर पडता है। उस कुम्हारके घरके भैंसेका चांद ही घरसे निकलने पर सबसे पहिले दिखाई पडता है। तो साधु बोला कि उस चादका ही रोज दर्शन कर लिया करो और फिर खाया करो। उसने यह मान लिया। अब वह उस भैंसेके चादका ही दर्शन करके खाना खावे। एक दिन कुम्हार मिट्टी लेने बाहर चला गया, वह झट कुम्हारके यहा पहुचा। जब वह वहा पहुचा तो भैंसा न था। मालूम करके वह खान पर पहुच गया। उसी समय खानमे अशर्फियोका एक हडा कुम्हारको मिला। जब अशर्फियोका हडा मिला तो इधर-उधर देखा कि कोई देखता तो नही है। उस भक्तने उस भैंसेका चाद देख लिया। कुम्हारने भक्तजी से कहा—अरे सुनो, बोला—बस देख लिया। भक्तसे फिर कहा—सुनो, कहा—बस देख लिया। अब वह किसीकी भी न सुनें। बस देख लिया, बस देख लिया यही वह कहे। तब वह कुम्हार भक्त जी के घर ही अशर्फिया उडेलकर कहता है कि कही कहना नही, ये आधी तुम ले लो।

भैया, कितना भी वैभव मिले, केवल यही विश्वास रहे कि देख लिया, जान लिया। इसके आगे और कुछ नही करना चाहिए। इस वृत्तिसे कोई रहता है तो आनन्द मिलता है। यदि अपने ज्ञानकी दृष्टि रहे तो यही पुरुषार्थ है, इसमे ही आनन्द है। जो कुछ वैभव है वह तो तितर-बितर हो जायेगा, सब चला जायेगा। उससे सुख न प्राप्त होगा। केवल अपने आत्माकी ओर दृष्टि हो तो वही अपना रक्षक है, बाकी तो सब गैर है।

वित्त विषयदस्युः क्व मित्र शत्रुः क्व पाटवम्।
तन्मूलाशा न मे यस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-१६॥

जगत्के प्राणी पचेन्द्रियोके वशमे होकर पराधीन हो रहे है। तो इनका स्वरूप ज्ञानमय, आनन्दमय है। पर अपने इस महान् स्वरूपको न जानकर, उस ही आनन्दस्वरूपका अनुभव न कर बाहरमे ही आनन्द ढूंढ रहे है और पचेन्द्रियमे आकर अपने हित और आनद की बात खोज रहे है। अपने कल्याणका मार्ग खो रहे है। ये विषय ही ज्ञान वैभवसे अलग कर दुर्गतिमे ले जाने वाले है, ठग है और चोर है। यदि किसी भी प्रकारके विषयोकी इच्छा न हो तो यह आत्मा आनन्दस्वरूप है ही, ज्ञानस्वरूप है ही। प्रत्येक विषय कषायकी विकृतियोने इस जीवको उल्टा बना दिया है। जगत्मे इसके अतिरिक्त यह जीव मित्र और शत्रु की कल्पनाएँ करता है। जो विषयोके साधक है उनको तो यह जीव मित्र मानता है और जो विषयोके बाधक है उनको यह जीव अपना शत्रु मानता है। मित्र और शत्रुकी कल्पनाएँ ही इस जीवको इस प्रकार चला रही है। घरके परिवारके लोगोमे इसकी क्यो रुचि है?

यह धन वैभवके कषायोसे ही सताया जा रहा है। ऐसा यह मोह, ऐसे ये गंदे विचार, इनमे ही ये जीव पडे हुए है। सो इनको यह विकल्पोकी गदगी खुद ही सुहा रही है। जो विषयो के साधक है वे इसको सुहा जाते हैं। वे ही इनके बन्धु बन गये, वे ही मित्र बन गये। और जिनके कारण विषयोमे बाधा आवे उनको यह मोही प्राणी दुश्मन मान रहा है।

कभी कोई साधु चला जा रहा है, उसे किसी शिकारी ने देख लिया तो वह साधु भी शिकारीका दुश्मन बन गया। शिकारी सोचता है कि यह मेरा असगुन है। तो उसके विषयोमे बाधा आयी ना? इसलिये उसे भी दुश्मन मान लिया। और फिर उसके आगे क्या सोचते है कि यदि विषयोमे ही अपने को लिप्त कर डाला और किसी प्रकारका छल करके विषयोके साधन अच्छी तरह जुटा लिए तो उसमे वे अपनी चतुराई समझते है। इस मोही प्राणीकी यह क्या चतुराई है? केवल विषयोके साधनको जोड लिया और विषयोके बाधकोका नाश कर दिया। करता तो कुछ नही है यह अन्यमे, केवल ख्याल बनाता है।

हे आत्मन्, जरा अपने हितकी बात तो सोचो कि इन विषयोसे किसीका पूरा पडा है? इस जीवनमे विषयोमे ही जुते, बडी उम्रके हुए, वृद्ध हो गए, बाल पक गये, शरीरमे झिरियाँ पड गयी। बतावो कौनसा लाभ इस मनुष्यभवको पाकर पाया? वे अपने जीवन के क्षण व्यर्थमे ही गुजार देते है। वह विषयोका ही तो असर है। ये विषय ही इस जीवके वास्तविक दुश्मन है। इन विषयोको जिसने जीता है वही ज्ञानी है, वही विजयी है। जगत् के सभी जीव अपने समान है। तुम्हारे और सब जीवोके स्वरूपमे कोई अन्तर नही है। सभी जीवोका स्वरूप अत्यन्त जुदा है। सभी जीव मेरे स्वरूपके अत्यन्त समान है। फिर इन जीवोमें यह छटनी कर लेना कि यह मेरा है, यह पराया है, यह गैर है ऐसी छटनी कर लेना क्या यही पारमार्थिक चतुराई है? यह सब मोहकी लीला है। जो विषयोके साधक प्रतीत होते है, उनको ही इस जीवने अपना मान लिया और जो विषयोमे बाधक है उनको ही इस जीवने दुश्मन मान लिया, पराया मान लिया। ऐसी वृत्ति कर लेना ही अज्ञान है।

भैया! विषयोकी आशा जिनके लगी रहती है उनके ही दुनियामे शत्रु और मित्र होते है और जिनके विषयोकी आशा नही लगी होती है उनका जगत्मे न तो कोई मित्र ही होता है और न कोई शत्रु ही होता है। यह सब कल्पनाजाल है, केवल आशाओ तक ही यह रहता है। जिनके आशा नही रहती, उनका सब जाल समाप्त हो जाता है।

समय तेजीसे गुजर रहा है, आयु प्रतिदिन घटती जा रही है, मृत्युका समय निकट आता जा रहा है, क्यो आशाओमे फर्क न डाला? क्योके त्यो आशाओके दास ही बने रहे तो फिर दुर्लभ नर-जीवन व्यर्थ ही गवाया ना? जो कुछ भी बाहर दिखते हैं सब छूट जाते

है, यहाँसे चले जाते है । आशाएँ करके इस भवको बिगाड लेना, जन्म-मरणकी परम्परायें कर लेना, यह तो चतुराई नही है । कुछ ही दिनमे सब चीजें साफ हो जाती है । यहाँ पर कोई चीज विवेककी नही, सारकी नही । यदि परमे मोह ममत्व बसाये रहे तो जीवन बेकार है ।

जीवनका सार तो प्रभुभक्ति और आत्मध्यानमे है । इन कामोके अलावा और कोई काम यहाँ सारका नही है । सो अपने जीवनमे यह देख लो कि प्रभुभक्ति तुम्हारे कितने उपयोगमे है ? आत्मध्यानमे मैने कितना यत्न किया है और कितना नही किया है ? इस तरह नफे और टोटेका हिसाब लगाओ । धन बढ गया तो यह नफेकी बात नही । अरे, धन बहुत बढ गया और एकदम छोडकर चले गये तो मुनाफा क्या मिला ? वैभवका बढ जाना मुनाफा नही है । परिवारका बढ जाना आत्महित नही है । नफा तो वह है जिसके कारण शान्ति रह सके । ऐसा यत्न कर लें तो यही एकमात्र सार बात है । सो सीधी बात है कि प्रभुभक्ति और आत्मध्यान यदि बनाते हो तो जीवन सफल है, नही तो पशुवोके और मनुष्योके जीवन मे कोई अन्तर नही है ।

भैया, बाल बच्चे मनुष्योके होते हैं तो क्या पशुवोके नही होते ? विषय भोग यदि मनुष्य करते है तो क्या पशु नही करते ? जो कुछ लौकिक मनुष्य करते है वह पशु भी तो करते हैं । बल्कि पशु उन मनुष्योसे कई बातोमे अच्छे हैं । पशुवोका आहार पूरा हो जाये तो उन्हे संतोष हो जाता है । मगर मनुष्योका आहार पूरा हो जाये, फिर भी उन्हे सतोष नही होता है । उन्हे इच्छा यही बनी रहती है कि कोई रसीली चीज मिल जाये । आहार हो जाने पर भी चाट बाट हो तो अभी एक तोला खानेकी इच्छा बनी ही रहेगी । तो यहां पशुवोमे और मनुष्योंमे फर्क आ गया । पशुवोको कल परसोके भोजनके लिए फिक्र नहीं, पर मनुष्योको कल परसोके भोजनके लिए फिक्र बनी रहती है । परिग्रहका सचय मनुष्योमे ही लगा रहता है, पर पशुवोको जो कुछ भी मिल जाये उसमे ही सतोष हो जाता है और भी देख लो पशुवोको डर अधिक नही रहता है । जब कोई लाठी लेकर आ जाये तभी थोडा पीछे हटते हैं । पर मनुष्योको सदा भय बना रहता है । सम्पदाकी रक्षा करेंगे, अपने बाल-बच्चोकी रक्षा करेंगे । सदा उनको भय हो बना रहेगा । तो मनुष्योसे पशु अच्छे ही रहे ।

भैया, पशुवोसे मनुष्य तब अच्छे है जब कि मनुष्योमे धर्म आ जाये । धर्म ही मनुष्यकी विशेषता है । यदि धर्मका पालन करें तो पशुवोसे मनुष्य भले है, नही तो मनुष्योसे पशु ही भले हैं । यहां प्रायः विषयोमे ही धुन लगाये है और अपना समय गुजार रहे हैं । यहांसे चले जायेंगे, कुछ हाथ न लगेगा । इस कारण मनुष्यभव पाकर मुनाफा तो तब समझो जब

अपनेमे प्रभुकी भक्ति आवे । अपने आत्माके सहज स्वरूपमे जो कि एक चैतन्यशक्ति मात्र है ऐसा अनुभव हो जाये कि मैं ज्ञानमात्र हू, आनन्दघन हू, सबसे निराला हूं, ऐसा अनुभव हो जाये तो जीवन सफल हो सकता है । तभी मनुष्यभव पानेमे मुनाफा है, नही तो टोटा ही बैठता है । कहते है कि जब विषयोकी आशा न रहे, आशावोंका त्याग हो तभी शान्ति मिल सकती है ।

निर्वाण भोगवैरस्यं बन्धो भोगेषु गृद्धता ।
स्वायत्तमेव निर्वाण स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२०॥

थोडे ही शब्दोमे यदि यह कहना हो कि निर्वाण क्या है और बंध क्या है ? मुक्ति क्या है और बंधन क्या है तो उसका उत्तर है कि भोगोमे विरक्तता आ जाय, भोगोसे राग हट जाय तो यही मुक्ति है । और भोगोमे आसक्ति आ जाय तो यही बन्धन है और कोई दूसरा बन्धन नही है । आप जकडे हुए हो । अपने बारेमे जैसे कोई विचार करता है कि मुझे झझट लग गई, इतने बाल-बच्चोमे फिक्र बन गई और इतने कामोमे झझट बढ गया, इन सब कामोने मुझे फांस लिया, इन बाल बच्चोने मुझे फांस लिया, तो जरा सही तो विचारें कि हमे किसने फांस लिया ? आप कहेगे कि हमे बाल-बच्चोने फांस लिया, स्त्रीने फांस लिया । नही, किसी दूसरेने नही फांसा है । विषयोकी जो आशा बना रखी है, जिस विषयवृत्तिके भावसे विवाह किया, उस विषयकी इच्छाने फांसा है, स्त्रीने तुझे नही फांसा है । आपकी स्त्रीने, आपके बाल बच्चोने आपको नही फांसा है । आपके विषयकषायोने ही आपको फांस लिया है ।

यदि बधन हटाना है तो कषायोसे वैराग्य हो जाये । बंधन सुगमतया ही हट जावेगा । इन विषयकषायोमे कुछ सार नही है, इनमे कुछ हित नही है, ऐसा समझो । यही मुक्ति है । जिसके भोगकी इच्छा नही है उसके बधन नही है । भोग विरस लगने लगें यही निर्वाण है । भोगनेकी आसक्ति आ जाये, बस यही बधन है । सब जीव अपनी-अपनी परेशानियां अनुभव कर रहे है । यह क्यो कर रहे हैं ? उनको अपनेका पता नही कि मैं क्या हू ? मेरा करनेका काम क्या है ? यह तो सोचा ही नही और इन इन्द्रियोके बहकानेमे आ गये, मनके कहनेमे लग गये, बस परेशानियां हो गयी । इन परेशानियोको मिटाने वाला केवल ज्ञान ही है । ज्ञानसे परेशानियां मिट जाती है । अन्य किन्ही चीजोसे परेशानिया न मिटेगी । सारी व्यवस्था आय आदिकी बना लें तव निवृत्ति हो जायेगी, ऐसा जो सोचा करते है उनकी निवृत्ति नही हो पाती है । वर्तमानमे जो कुछ प्राप्त है उसमे ही रास्ता निकाल लो । अपने कल्याणकी बात तो सोच लो ।

मैं अभीसे अहितकी चीजोको त्यागकर निवृत्तिमे लगू । जब वर्तमान भाव ही खोटा है, वर्तमान भावमे ही जब परिग्रहकी आशा हो तब भविष्यमे इस आशाके कारण क्या आशा रखी जा सकती है कि निवृत्ति हो जायेगी ? अरे धनके कारण निवृत्तिकी आशा करना तो दूर रहा, पर वर्तमानमे कोई विपत्ति आ जाये और उस विपत्तिमे धर्मकी ओर झुकें तो विपत्तियो के कम होते ही धर्मभावना खत्म हो जाती है । जैसे कोई बीमारीमे अधिक फस गया तो वह अपने मनमे निर्णय कर लेता है कि इस बीमारीसे बच गया तो मेरा जीवन धर्मके लिए है और जब बीमारीसे थोडा ठीक हुए तो वह धर्मकी भावना खत्म हो जाती है ।

एक कथानक है कि एक पुरुष खजूर खानेके लिए खजूरके पेड पर चढ गया । बडा लम्बा खजूरका पेड होता है । वह चढनेको तो चढ गया, पर जब उतरने लगा तो डरा कि कैसे उतरू ? उसने सोचा कि-भगवान् मैं कैसे उतरू ? बोला—भगवान्, यदि मैं उतर गया तो सौ आदमियोको भोजन खिलाऊँगा । फिर साहस किया, कुछ जरासा उतरा तो बोला—१०० तो नही, पर ५० को जरूर खिलाऊँगा । और उतरा तो बोला कि १० को जरूर खिलाऊँगा । इसी तरहसे और नीचे उतरा तो बोला—५ को जरूर खिलाऊँगा । ऐसा कह-कर जब बिल्कुल नीचे उतर गया तो बोला–अरे उतरे तो हम है । मैं क्यो दूसरोको जिमाऊँ ? सो भैया ! ऐसे ही सब अपनी विपदाओमे सोचते है । जब यह जीव विपदावोमे फसा होता है तब उसको धर्मकी सूझती है और जहाँ सकट हटे तहाँ यह जीव भगवान्की भक्तिको भूल जाता है । यदि यह जीव भगवान्का ध्यान रखे तो निराकुलता रहती है और निराकुलतासे ही उसका जीवन पार हो जायेगा । यदि प्रभुभक्ति नही है, आत्माका ध्यान नही हैं तो जैसा जीवन गुजर रहा है वैसा ही सब पर्यायोमे जीवन गुजरता जायेगा ।

भैया, स्त्री पुत्रमे कुछ भी शरणकी बुद्धि न रखो । जो अपनी आत्मा है वह स्वय ही ब्रह्मस्वरूप है । उस आत्मामे मात्र प्रकाश है । ऐसा शुद्ध ज्ञानस्वरूप, ज्योतिमात्र वह आत्मा है । अपने प्रभुकी उपासना करो और पूजा करके यह भाव करो कि मैं ज्ञानज्योति मात्र हू । यह मैं तो प्रभुस्वरूप ही हूँ । ऐसा ही अपने प्रभुस्वरूपका ख्याल करो । ५ पापोसे दूर रहो । किसी जीवकी हिंसा न करो । बुरे विचार न करो, किसीकी झूठी गवाही न दो । जरा जरा सी बातोमे विचलित हो जायें, पापवृत्तिमे उतारू हो जायें तो बतावो इस आत्माका क्या महत्त्व रहा ? किसी जीव पर जी ललचा गया तो आत्माका क्या महत्त्व रहा ? यदि किसी स्त्री पर कुदृष्टि डाली या कामवासनाके भाव बनाये तो उसने स्वय अपना घात किया । यदि परिग्रहके ही स्वप्न देखते रहे, अपने आपकी दृष्टि न की तो वहाँ अपनी बरबादी ही है ।

भैया, यदि परमात्मस्वरूपकी कुछ भी उपासना नही की, इन बाह्य पदार्थोमे ही

कुदृष्टि रही तो समझो कि तुमने अपनी बर्बादी ही कर डाली है। यदि विषयकषायोंमें ही जीवन रहा तो जीवन व्यर्थ है। इसलिए अपना उपयोग जगावो, ज्ञान जगावो। भैया! मोह ममताको छोडकर अपने आत्मस्वरूपकी ओर झुको। क्या तुम अपने आत्मस्वरूपकी ओर झुक नही सकते? घर गृहस्थीमे रहते हुए भी भीतरमे ज्ञान जगाना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि मेरी मदद करने वाला दूसरा नही है। न पुत्र रक्षा करेंगे, न मित्र रक्षा करेंगे, न स्त्री रक्षा करेगी, अपने ज्ञानस्वरूपमे ही विश्वास हो। यदि ज्ञान और आचरणके माफिक तेरा भविष्य बन गया तो तेरा रक्षक तू ही है।

आप बिगडते चले जा रहे है तो यहाँ मदद देने वाला कोई भी न होगा। ऐसा जानकर मोह ममताको त्यागो। इसके त्यागनेमे ही शूरवीरता है। यदि मोह ममता न त्याग सके तो खुदकी ही बरबादी है। अपने स्वरूपको बिगाडकर क्यो अपने आत्माके महत्व को खो रहे हो? इसमे तो दु:ख होगा, खुदको ही दुःख होगा। खुदके दुःखोको मेटनेका उपाय है मोह ममताको त्यागना। दूसरा और कोई उपाय नही है। भगवान्के दर्शन हम किसलिए करते हैं? यह सीखनेके लिए कि प्रभुमे किसी प्रकारके विषय कषाय नही है, किसी प्रकारका विकार नही है, इसी कारण ये सर्वोत्कृष्ट, सर्वज्ञ व आनन्दमय हुए। प्रभुकी भक्ति और आत्मज्ञान ही आपके आधीन बातें है। निर्वाण अपने आधीन है। जो अपने आधीन नही है उसमे रति मत करो। यदि अपने आपको न देख सके तो सुख न मिलेगा। यदि खुद अच्छे हो तो सुख हो सकता है।

भोगमोक्षेपिणोऽनेके वांछाहीनो हि दुर्लभः।
स एव सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२१॥

इस लोकमे जितने भी लोग दीख रहे है वे कुछ न कुछ वाञ्छा लिए हुए हैं। वाञ्छारहित पुरुष इस लोकमे दुर्लभ है। इच्छाएँ अनेक प्रकार ही होती हैं। कोई धनकी इच्छासे मलिन हो रहा है, कोई विषयोकी इच्छाका भिखारी बन रहा है, तो कोई परोपकार के भावोको लेकर नाना प्रकारकी सेवाओकी इच्छा करके भ्रमण कर रहा है। इच्छाएँ सबके साथ लगी हुई दिख रही है। जो जीव भोगोसे विरक्त होकर त्याग मार्गमे आया उसके भी मोक्षकी इच्छा लगी है। कोई भोगोको चाहता है, कोई मोक्षको चाहता है। जिनको हम समझते है कि ये बडे महान् है, इनके महती तपस्या है, विरक्ति है उनके भी मोक्षकी इच्छा पायी जाती है। ये इच्छाएं प्रायः सबके साथ लग रही है।

क्या इस लोकमे ऐसा भी कोई पुरुष होगा जिसके किसी भी प्रकारकी इच्छाए न हो? मोक्ष तक की इच्छा न हो? ऐसे भी पुरुष होते है, पर कोई बिरले। जगत्का जैसा

स्वरूप है, आत्माका जो स्वरूप है उसका यथार्थ ज्ञान करके वह मात्र ज्ञाता द्रष्टा ही रहता है। उसे क्या चाहिए ? कुछ भी न चाहिए। चाहिए का कोई प्रश्न ही नही है। चाहिए नामका परिणमन इस आत्मामे नही है। चाहिए इस आत्माका स्वभाव नही है। जो स्वभाव नही है उसका करने वाला भी मैं नही हू--ऐसा ज्ञान बिरले ही ज्ञानीके होता है। इसलिए ऐसे बिरले ही पुरुष होते है कि जिन्हे कुछ न चाहिए, जिनका केवल इस लोकमे देखना और जानना रहता है—ऐसे पुरुष दुर्लभ है। ऐसे तो अनेक देखे जाते है जो किसी न किसी प्रकारकी चाह लिए रहते है। सब दुःखोकी जड चाह है।

मूलमे तो मात्र चाह उत्पन्न होती है पर परम्परामे और अनेक सकट बढते चले जाते है। कौन मनुष्य कितने दलबलमे फसा है, कितने झझटोके फसा है ? इसको बतानेकी जरूरत ही क्या है ? सब अपने आपको देख लें कि हम कितने झंझटोके बीच फसे है। सबके झझट अपने अपने प्रकारके है। एक अनपढ गृहस्थ उसके झझट उसकी किस्मके है, एक पढा हुआ गृहस्थ उसके झझट और किस्मके है। एक अफसरके झझट और किस्मके है, एक नेताके झझट और किस्मके है, जो राज्य करता है उसके झझट और प्रकारके है। सबके झझट अलग-अलग प्रकारके है।

ये सारे झझट क्यो लग गये ? इसका क्या कारण है ? कारण केवल एक है। उनके कुछ न कुछ चाह है, इच्छा है। इस इच्छाके कारण ही उनको अनेक प्रकारके झझट लग जाते है।

एक साधु था। लगोटी पहिने हुए रहता था। एक लगोटी अपनी अलग रख देता और एक पहिने रहता था। उसकी लगोटीको चूहे काट जाते। सोचा यह तो रोजका दुःख हो गया। कपडे चूहे काट जाते है। इनकी रक्षा कैसे करूँ ? उसने सोचा कि बिल्लीके पाल लेनेसे चूहे आयेंगे ही नही, सो उसने एक बिल्ली पाल ली। अब बिल्लीको तो कुछ खाना पीना चाहिए ही। इसलिए दूधके लिए एक गाय पाल लिया। दूधके लिए गाय पालना जरूरी समझा। जब गाय पाल लिया तो उसे चराने वाला भी कोई चाहिए। उसने एक नौकरानी रख ली। बहुत दिनोके बादमे नौकरानी और साधुके कुसगसे एक पुत्र पैदा हुआ। अब तो साधुका घर भर गया। बिल्ली हो गई, बिल्लीके दो तीन बच्चे हो गये, गाय हो गई, गायके एक बछडा हो गया। स्त्री हो गई, स्त्रीका एक पुत्र हो गया। इस तरहसे साधुका सारा घर भर गया। अब किसी दिन साधु दूसरे गाँव गया। वे सारेके सारे भी सब सगमे गये। रास्तेमे एक नदी मिली। नदीमे पानी काफी था। सब नदीमे निकलने लगे, एकाएक नदीमे बाढ आ गई। साधुके पैर जम न सके। सभी अर्थात् बिल्ली, बिल्लीके बच्चे

गाय, गायका बछडा, स्त्री, स्त्रीका बच्चा सभी उस साधुसे चिपकने लगे, सभी बहने लगे, साधु भी बहने लगा। जब इतनी विपत्तियाँ साधुके सामने आ गयी तो उसने समझ लिया कि सब विपत्तियोंका कारण केवल एक लंगोटी है। इस लगोटीके ही कारण ये सारी विपत्तियाँ सहनी पडी। उसने लगोटीको खोल कर फेंक दिया याने सबके ममत्वका त्याग कर दिया। जब उसने लंगोटीको फेंक दिया तो सारेके सारे नदी पार हो गये। साधुने फिर सबका मोह त्याग दिया।

यदि सारे झंझटोंसे छूटना हो तो मोहको त्याग दो। इस मोहके कारण ही सारे झझट लग जाते है। आराम तो एकाकीमे है। आराम अकेले मे है। आपका जीव किसी दूसरे के साथ पैदा होता है क्या? अथवा मरने पर किसी को साथ ले जायेगा क्या? हजारो लाखोका कोई वैभव जोड ले और मरते समय यदि वह यह कहे कि इसे हमने कमाया है, हमारे साथमे एक चवन्नी ही भेज दो तो चवन्नी तो दूर रही, एक धागा भी साथमे न जायगा।

यह जीव अपने ही स्वरूपको लिए हुए है, जगत्के सब पदार्थोंसे न्यारा है—ऐसा अपने इस स्वरूपका ख्याल करो, अपनी ही ओर दृष्टि दो, मोह ममताको त्याग दो तो कुछ शरण भी मिलेगा और अपने को भूल जायें बाह्यपदार्थोंकी इच्छावोमे ही फस जाये तो बाह्य पदार्थ तो शरण होते ही नही। शरण तो अपने अन्तरगमे ही मिलेगी। बाह्यपदार्थोंमे शरण नही मिलेगी। ये बातें सभी अपनी-अपनी है। यदि बाह्यकी आशा छोड दो तो आकुलताएं दूर हो जावेंगी। जिसने बाह्यपदार्थोंकी आशा नही तयागी, उसको आकुलताए ज्योकी त्यो है।

सुख दुःख भोगने वाले, तर्क वितर्क करने वाले यदि भीतरमे यह ख्याल बना ले कि मैं एक जीवपदार्थ हू, इस जीव नामक पदार्थका दुनियामे कोई सम्बन्ध नही है, कोई किसी की कुछ मदद नही कर सकता ऐसा यदि ख्याल बनाते है तो उनका कल्याण है। जब कोई दूसरे सहायक बन जाते है तो यह तो उनके पुण्यका उदय है, उनके भाग्यका उदय है अथवा यह कह लिया जाये कि उनके शुद्ध आचार विचारका प्रताप है जो दूसरे लोग कुछ कुछ सहायक बन जाते है। अपना शरण तो अपना स्वरूप है कोई दूसरा अपनी शरण नही है। इसलिए किसकी आशा करते हो? सभी जगह धोखा ही मिलेगा, क्योकि कोई भी परपदार्थ मुझमे आता नही है, मुझमे कुछ करता नही। अपने आपके करनेसे स्वय हुआ करता है। सब प्रकारकी बाधाओको छोडकर अपने सहजानन्दमे आऊं और इसी वृत्तिसे अपने आपमे सुखका अनुभव करूँ। यह अपने पतेकी बात है। यही तो धर्मकी बात है।

भैया! अपना-अपना अपनेमे है। जो अपना स्वभाव है वही धर्म है। अपना स्वभाव

है वही धर्म है। अपना स्वभाव है ज्ञान और दर्शन। जानना, देखना, ज्ञातादृष्टा रहना अपना स्वभाव है। यह स्थिति बन पाये तो धर्मात्मा है, यह समझ लीजिए। यदि यह स्थिति नही बन सकी तो वह धर्म नही है। इन वांछाओंको त्यागो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

ज्ञाने रतस्य धर्मार्थकाममोक्षे जनौ मृतौ।
हेयादेयेऽपि चिंता न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२२॥

जो किसी प्रकार अपने ज्ञानस्वभावका ,विश्वास कर लेता है, सारे पदार्थोंका विकल्प छोडकर, परम विश्राम से रहकर ज्ञानका अनुभव जिसके हुआ करता है ऐसा ही यत्न करके जो अपने ज्ञानमे रत होगा उसको फिर किसी प्रकारकी चिंता नही रहती। चिंता तो तब है जब ममता है। जिसका शुद्ध ज्ञान होगा उसको बाहरकी चीजोमे ममता नही रहती है। जब तक ममता रहेगी तब तक शांति नही रहेगी क्योंकि ममता व्यर्थकी है। ममता बरबाद ही करने वाली है, उससे कल्याण नही होता है।

भैया! इस लोकमे आपका क्या है? अच्छी तरह निर्णय कर लो। शरीर तो आप का होगा नही यह भी धोखा दे देता है। यह आत्मा चली जाती है और शरीर यहीका यही रह जाता है। जब तक यह शरीर है तब तक दुःख ही दुःख है। अपने इस शरीरसे बडा प्रेम करते है। लड्डू भी खूब खिलावें, मिठाइयाँ भी खूब खिलावें, सब कुछ करते, मगर अंतमे खांसीमे आकर, बीमारियो आकर दुखी बन जाते हैं। इस शरीरसे इतना प्रेम करते और यही दुखोका कारण बनता है। इस शरीर पर भी क्या कोई अपना अधिकार है? नही। कोई नही चाहता कि बाल सफेद हो जायें, शरीरमे झिरियाँ पड जायें। खिजाब लगा कर बालोको काला करते हैं। कुछ भी करें, पर इस शरीर पर अपना कोई अधिकार नही है।

जब आयुका क्षय हो जाता है तब यहाँसे विदा होना ही पडता है। लाखो यत्न करें पर यहाँ कोई नही रह सकना है। मत्र तंत्र कुछ भी हो पर यहाँसे बचाने वाला कोई नहीं है। यह तो बताओ कि इस लोकमे है क्या तुम्हारा? तुम्हारा इस लोकमे कुछ भी तो नही है। अटकी बातोकी कोई दवा नही, मिथ्यात्वकी कोई दवा नही, कल्पनाओंका कोई इलाज नही। ऐसी ही चुपचाप मान लेनेकी बात है कि वास्तवमे मेरा इस जगत्मे कुछ नही है। कोई बनावटकी बात नही करता है, किन्तु भीतरमे ज्ञान जगाओ कि यह मैं अकेला ही हूँ। इस मेरेमे जगत्का कोई पदार्थ नही है। जो भीतरमे ऐसा मान लेगा तो उसकी आकुलताएँ समाप्त हो जायेंगी। आकुलताएँ तो मिथ्यात्व भावसे लगी है। यदि इन तकलीफोसे छुटकारा

प्राप्त करना है तो अपने ज्ञानको जगाओ और दूसरा काम नही है ।

जङ्गलमे एक साधु महाराज नग्न दिगम्बर ध्यानस्थ थे । गर्मीके दिन थे । वहांसे एक राजा निकला । उस साधुकी तकलीफको देखकर राजा वही बैठ गया । जब साधुका ध्यान टूटा तो राजा बोला—महाराज ! आप इस प्रकारकी धूपमे इस प्रकारसे क्यो परेशान हो रहे है ? आपके पास यहां पर खाने-पीनेका भी प्रबन्ध नही, आपको धूप भी बहुत लग रही होगी । कमसे कम एक छतरी तो आपको दे ही दूं जिससे आप ऊपरकी धूप तो बचा सकेगे । साधु बोला—ऊपरकी धूप बच जायगी, पर नीचेकी तपन कैसे मिटेगी ? राजा बोला—महाराज ! जूते बनवा दूगा । साधुने कहा—भाई ! नीचेसे जूते, ऊपरसे छाता और शरीर नगा, यह भी तो ठीक नही है । राजा बोला—महाराज ! मैं वस्त्र बनवा दूंगा, सुन्दर वस्त्र मंगा दूंगा । साधु बोला—जब मै वस्त्र पहिनकर रहूँगा, वेशभूषामे रहूगा तो फिर मुझे कौन पूछेगा ? तब राजा बोला—महाराज ! तीन-चार गांव मैं लगा दूंगा, जिससे खूब खाना पीना और आरामसे रहना । साधुने कहा—अच्छी बात है । साधूने कहा—फिर खाना कौन बनायगा ? राजाने कहा—महाराज ! आप चिंता न करें, दुख न उठावें, मैं आपकी शादी कर दूंगा, सब ठीक हो जायगा । साधुने कहा—अच्छा जब सब साधन हो जायेंगे तो फिर मैं पैदल ही क्यो चलूगा ? राजाने कहा—महाराज ! मोटर दे दूंगा । तो मोटरका खर्च कैसे चलेगा ? राजाने कहा—महाराज ! मोटरके खर्चके लिए मैं ५ गांव लगा दूंगा । साधुने कहा—फिर बच्चे होगे तो उनकी शादी वगैरा कौन करेगा ? राजाने कहा—अच्छा १० ग्राम और लगा दूंगा । साधुने कहा—अगर घरमे कोई मर गया तो फिर कौन रोवेगा ? राजाने कहा—महाराज ! मै और सब कुछ तो कर सकता हू, पर मैं रो नही सकता । रोना तो आपको ही पडेगा । जिसके ममता है वही रोवेगा । सो भैया ! मुफ्तकी इस ममतासे दुःख ही रहेगें । तत्वकी वृत्ति कुछ भी नही रहेगी ।

भैया ! घर गृहस्थीमे रहते हुए सारे काम चलने दो, घर गृहस्थीके काम करो, दुकान का काम करो, किसी भी कामके लिए अभीसे निषेध नही किया जा रहा है । मगर भीतरमे यह उजेला तो बना रहे कि दुनियामे सब धोखा है । यहां मेरा कुछ नही है । अगर हो सके तो ये सब बातें भीतरसे मान लो । भैया ! यह सोचो कि यहांपर मेरा कुछ भी तो नही है । यहां तो केवल भ्रमजाल है । ममताके प्रसंगमे केवल पाप ही रहेगे । तो भैया ! मोहकी बात मोहकी ही है और ज्ञानकी बात ज्ञानकी ही है । ज्ञानी सभी जीव हो सकते है, केवल अपने ज्ञानको जगावें । मनुष्यकी तो बात क्या ? गाय, भैंस, सूकर, गधा, सांप और नेवला इत्यादि सभी संज्ञी जीव ज्ञानी हो सकते है । पुराणोमे दृष्टान्त देखो, ये सभी जीव ज्ञानी दिखाये गये

है।

एक गृहस्थ कैसे ज्ञानी हो सकता है? गृहस्थ घरमे रहता हुआ भी अपनेको पृथक् समझे। जिस प्रकार जलके मध्य कमल बिलकुल पृथक् है उसी प्रकार गृहस्थीमे रहते हुए भी पृथक् रहना चाहिए। कितना भी पानी कमलके पत्तोमे डाला जाए, झट अलग हो जाता है। स्वरूप तो सर्वदा अलग है। उसी प्रकारसे एक गृहस्थको ज्ञानयुक्त रहना ही धर्म बताया है। यह ज्ञान ही एक अमृत है। यदि इस ज्ञानरसका पान हो जाए तो जीवन सफल है। दिखाने का कोई काम नहीं है। जो करेगा वही प्राणी सुखी होगा।

ये जगत्की चीजें दिखनेमे सब मायारूप है। इनमे कोई सारकी चीज नही है। सब इन्द्रजालवत् विनाशीक है। कोई शक्ल-सूरत वाला सदा रहे ऐसा यहाँ कोई नही है। इसके अतिरिक्त ये मोही जीव ऊपरसे चिकने चाकने भले लगते है, मुद्रा भी अच्छी है, ठीक लग रह है। मगर भीतरमे आत्मा कैसी है? प्रत्येक संसारी जीवकी आत्मा कुछ न कुछ मलिन है। वे अपने आपमे ही सब समझ सकते है। इन बाह्य पदार्थोंके देखनेसे कोई लाभ नही है। अपने ज्ञानस्वरूपमे रमो। यदि आपने अपने शुद्ध स्वरूपको समझ लिया तो सुखी हो जाओगे। जो ज्ञानमे रत होगा उसके चिन्ताएँ न रहेगी। विषयोकी भी चिन्ता न रहेगी। वह ज्ञानी पुरुष अपने आपमे ही आनन्दमग्न हो जाएगा।

भैया! बाह्य पदार्थोंकी ओर ध्यान न दो, केवल ज्ञातादृष्टा मात्र रहो। कर्ममुक्त भगवान्की विनयभक्ति करनसे आत्मदेव भगवान्की भक्ति आयगी। मोक्ष तो विनय करनेसे ही मिलता है। भगवान्की प्रार्थना ऐसी हो कि भगवान्के गुणोका स्मरण करके अपने ज्ञानको सभालें तभी मुक्तिमार्ग प्राप्त कर सकते है। चारो पुरुषार्थोंकी भी चिन्ता ज्ञानी जीवको नही होती है। उसे जन्म और मुक्तिकी भी चिन्ता नही रहती है। यहाँ तो केवल अपने सभालने का काम है। अपनेमे विकार भाव न आना, अपनेमे किसी भी प्रकारके मलिन भाव न उत्पन्न हो, इसी प्रकारके व्यक्तिको ज्ञानी जीव कहते है। इसके फलमे वर्तमानमे भी सुख रहता है और भविष्यमे भी सुख रहता है, ऐसा समझना चाहिये।

हेय और अहेय रूप कल्पना भी चिंता है। किसी भी वस्तुका विकल्प जिसे नहीं रहता है वह परमहंसकी अवस्था है। परमहंसकी क्या अवस्था है? पर मायने उत्कृष्ट, अहं मायने मै अर्थात् ज्ञानी जिसकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था हो। ऐसा ही वह भगवान् है अथवा परमात्मा, अन्तरात्मा व बहिरात्माका जिसे विशद बोध है वह परमहंस है। यदि ज्ञान है तो जीवन सफल है, नही तो जीवन व्यर्थ है। इस कारण अपनेमे ज्ञान बढानेकी कोशिश करो तो जीवन सफल हो जायेगा। सो भैया, ममताको हटाकर भीतरमे ज्ञान बनाओ और अपने

मे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो ।

लाभेऽपि भूतिकीर्तीनां तत्त्यागेन बिना न शम् ।
प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४-२३।।

कहते है कि सम्पत्ति और कीर्ति कितनी ही आ जाये तो भी शाति तो उनके त्याग बिना और ज्ञानस्वरूप आत्माकी परख बिना नही हो सकती है । शाति धनसे उत्पन्न नही होती । ख्याल बना रखा है, मोहमे ही पडे हुएमे शांति मिलनेकी आशा करते है, यह निरा भ्रम है । शान्ति तो ज्ञानसे उपजती है । शांति ईंटोसे नही, पत्थरोसे नहीं, सोना चादीसे भी नही उपजती है । शाति तो केवल ज्ञानसे ही प्रगट होती हे । यह ज्ञान, ज्ञान ही है, इसमे दूसरी चीज नही है । यह तो सबसे जुदा है ही । वह तो स्वय त्यागरूप हे । सो ज्ञाता दृष्टा तो त्यागसे ही बनेगा । यदि त्याग है तो शाति प्राप्त होती है । जैसे कोई जबरदस्ती आ जावे और जबरदस्ती करके धन छीन लेने आए तब यदि धनका ममत्व न रहे तो जब उससे निबटारा हो जाता है तो उसमे ही शातिका स्वाद आता है । यदि हृदयसे त्याग पैदा हो तो कितना भी दु ख हो जाये, पर शाति अडिग रहेगी । शान्ति बाहरी पदार्थोंसे आती ही नही ।

एक बुढिया थी, उसके ७ लडके थे । उनमे से एक लडका गुजर गया । उस लडकेके गुजर जाने पर बुढिया मा बहुत व्याकुल हुई । बुढियाको लडकोने बहुत समझाया कि मां अभी हम ६ लडके है, हम सबको ही देखकर सतोष करो । क्यो इतना अधिक रोती हो ? मां बोली—हम क्या करे, हमारे सामने तो वही एक नाचता है । इस प्रकारसे वह दु.खी होती थी । दूसरा लडका गुजर गया । बुढिया बहुत परेशान हुई । लडकोने फिर समझाया कि मां क्यो दु.खी होती हो ? अभी हम ५ लडके है । हम ५ लडकोको ही देखकर सतोष करो । बुढिया मां तब कहती कि हम क्या करें ? हमारे सामने तो वही दो बालक नाच रहे है । लडके बहुत समझाते, पर बुढिया न मानती । अब उनमे से एक और गुजर गया । अब चारोने उस बुढिया मां को बहुत समझाया कि मां क्यो अधिक रोती हो ? अभी हम चार लडके है । हम चारको ही देखकर सतोष करो । पर बुढिया मां यही कहती कि हम क्या करें, हमारे सामने तो वही तीन बालक नाच रहे है । अब वह बुढिया मा बराबर उन्ही लडकोके पीछे शोक करती । बच्चे बराबर समझाते, पर मां सदा दु:खी रहा करती थी । इसी तरहसे जब एक ही पुत्र रह गया तो मां बहुत ही अधिक दु:खी होती थी । वह लडका बराबर समझाया करता था कि मां ज्यादा शोक न करो, अभी हम तो है, हमको ही देखकर सतोष करो । वह बुढिया मां कहती कि पुत्र हम क्या करें ? हमारे सामने तो वे ही ६ पुत्र नाचते है । जब वह ७वां पुत्र भी खतम हो गया । इस प्रकारसे सभी पुत्र उसकी

आँखोके सामने ही मर गये और बुढ़िया माँ ने सुख न पाया।

इस तरह वर्तमान व भविष्यमे भी मोही प्राणी आनन्द नही पाता है। भैया, दुनिया आनी-जानी है। आज आया, कल चला गया। इस जगत्मे जो आया है सो जायेगा। यदि केवल यही दृष्टि बनी रहे तो सुख है। तो यहाँ पर यह बताया जा रहा है कि यह जीव ख्याल बनाकर ही दुःखी होता है। चीजके आने-जानेका दुःख नही है। यदि इस जगत्के जीवके विवेक जगे तो ठीक है। यह आत्मा धनके कमाने वाला नही है। उस धनके आनेका तो कारण कर्मका उदय है। और भैया, धन आ जानेसे ही कोई बड़प्पन नही है। किसीके पास धन ज्यादा इकट्ठा हो गया तो उससे कोई बडप्पन नही है। यदि उदारता है, त्याग है, खोटे परिणाम नही है और आत्माको दृढ बनाओ, मजबूत बनाओ तो यही बड़प्पन है, यही सुख है।

धन होनेसे बडप्पन नही है। बडप्पन अपनी उदारतासे ही होता है। कितना भी लाभ हो जाये, कितनी भी कीर्ति हो जाये, पर बिना त्यागके शांति नही प्राप्त हो सकती है। अभी देखो ये सारे जगत्के प्राणी दुःखी नजर आते है। भिखारीको देखो वह भी दुःखी रहता है, एक लखपति करोडपतिको देखो तो वह भी दुःखी रहता है। यही हालत सारे प्राणियोकी रहती है। जो बच्चा माँ की गोदमे रहता है, यदि माँ गोदीसे उतारकर नीचे रख दे तो वह भी रोकर गोदमे भागता है। वह समझता है कि अब मै नीचे रख दिया गया। इसीसे वह दुःखी होता है। इसी प्रकारसे जिनके लाखो करोडोकी सम्पत्ति है वे भी अपना अपमान महसूस कर दुःखी हो रहे है। अहंकार सब जीवोके पीछे लगा हुआ है। इस अहकारसे सब जीव बरबाद है। अरे जगत्मे जो कुछ होना है वह हो रहा है। जो कुछ होता है बाहरमे ही होता है, उससे तुम्हारा कोई भला बुरा सम्बन्ध नही है। इसलिए जो कुछ होता है सब ठीक ही है, होने दो।

एक बादशाह और वजीर थे। दोनो जंगलमे चले जा रहे थे। बादशाह जो कुछ भी वजीरसे कहता तो वजीर यह ही कहता कि बहुत अच्छा हुआ। जो होता है वह अच्छा होता है। बादशाहके ६ अगुलिया थी। सबके ५ होती है। इसीसे वे छगा कहलाते थे। जगलमे बादशाहने वजीरसे पूछा कि मेरे ६ अंगुली है वह कैसे है? तो वजीरने कहा कि बहुत अच्छा है। अब बादशाहको गुस्सा आ गया, इसलिए कि मैं तो छंगा हूँ फिर भी यह कहता है कि बहुत अच्छा है। गुस्सेमे आकर वजीरको बादशाहने उस जगलके ही एक कुवेंमे गिरा दिया। अब बादशाह अकेले रह गये। अकेले ही चले जा रहे थे। दूसरे देशमे हो रहा था नरमेध यज्ञ। उस यज्ञमे योग्य और सुन्दर नरकी बलि दी जाती थी। वहाँसे चार पंडे

छूटे । वही बादशाह मिल गये । यह भी खूब सुन्दर ही थे । इनको पकडकर वे ले गये । एक जगह खूंटीमे ले जाकर बांध दिया । पर यज्ञमे कम या ज्यादा अंग वालेकी बलि नही दी जाती थी । इसलिए जब किसी पडेने देखा व बताया कि इसके तो ५-६ अंगुली है, तब पडे लोगोने उसे डडे मारकर भगा दिया । खुश होकर बादशाह चले आये । मनमे सोचते कि वजीर अच्छा कहता था कि बहुत अच्छा हुआ यदि ६ अंगुलियाँ है तो । ६ अगुली है, इसलिए मैं बच गया । अब बादशाह खुश होकर उस कुवेंके पास गया जहाँ कि वजीरको ढकेल दिया था । वजीरको बादशाहने कुवेंसे झट निकाल लिया । बादशाहने वजीरसे कहा कि तुम बडा अच्छा कहते थे । ६ अगुलियाँ थी, इसलिए आज मैं बच गया, यही सोचकर मैंने तुमको निकाला है । अच्छा बतावो मैंने तुमको कुवेंमे ढकेल दिया था सो कैसा हुआ ? वजीरने कहा कि यह भी अच्छा हुआ । कहा—कैसे ? वजीर बोला—ऐसे कि यदि मैं भी साथमे होता तो हम भी पकडे जाते । आप तो ६ अगुलियोसे बच जाते और हम ही मारे जाते ।

भैया, ममता करनेमे, चिता करनेमे, घबडाहट करनेमे क्या तत्त्व रखा है ? वे तो बाहरी चीजे है । ज्ञान बनाओ और देखते रहो अपने आपके स्वरूपको, बस यही ठीक है । क्या-क्या संकट इस जीव पर नही आते ? वर्तमानमे किसी सकटको बुरा सकट क्यो समझें ? इससे हजार गुना, लाख गुना, करोड गुना संकट सहना पडे तो भी घबडाना नही चाहिए । कोई भी परेशानी हो, किसी भी प्रकारका संकट हो, पर सकटोसे न घबडावो, यही ज्ञानका काम है । यदि अपने ज्ञानको सही न रखा तो खुद ही दुःखी होगे । कोई दूसरा तुम्हारी एवज पर दुःखी नही होगा । सो चाहे कितना भी लाभ हो, कितनी ही सम्पदा आवे, कितना ही यश फैल जावे, पर यदि राग द्वेष नही मिटे तो शान्ति नही प्राप्त हो सकती है । सो आत्मा का जो यह ज्ञानस्वरूप है वह स्वरूप ही स्वय ज्ञानमय है । इसमे किसी दूसरेका प्रवेश नही है । सो अपने स्वरूपको देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो ।

मुमुक्षुर्यो बुभुक्षुश्चालम्बताम् हि शिवाशिवम् ।
इच्छाहीनः स्वविश्रान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–२४॥

दो तरहके प्राणी होते है इस लोकमे । एक तो भोगकी इच्छा करने वाले और दूसरे मोक्षकी इच्छा करने वाले । दो तरहके प्राणी इस लोकमे मिलते है । सो जो भोगकी इच्छा करने वाले है, वे तो सभी मलिन चीजो का आश्रय करते है और जो मोक्षकी इच्छा करने वाले है वे सिर्फ विशेष चीजोका आलबन करने वाले है । कहते है भैया ! इच्छाएँ जो आत्मा के अदर है । किसीको मोक्षकी इच्छा लगे, किसीको भोगोकी इच्छा लगे और चिंताएँ जितनी होती है वे सब दुःखके लिए ही होती है । यदि ये इच्छाएं दूर हो तो अपनेको विश्राम

मिलता है । जब तक किसी भी बातकी इच्छाएं रहती है तब तक दुःख होते है ।

भैया ! यही देख लो कि खेतोमे २० मन उर्द उपजे, घरमे आये । अभी तक था २७ का भाव, अब सुनते है कि २२ का भाव हो गया तो दुःखी हो गये । उर्द वहीके वही है, घरमे रखे है, पर ख्याल बना लिया कि १०० रु० का नुक्सान हो गया । यह ख्याल ही बनाकर दुःखी हो जाते है । अभी घरमे सोना चादीका गहना है, कोई बेचना नही है, घरमे रखा है । अभी तक भाव १०० रु० का था, अब सवा सौ का हो गया, लो घर बैठे ही ख्याल बनाकर प्रसन्न हो गये और जब सुना साढे बासठका हो गया तो वे दुःखी हो गये । परके समागमसे ही ख्याल बनाकर प्रसन्न हो जाते और परके समागमसे ही ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते है । इन बाह्य पदार्थोसे जिनसे कोई फायदा नही है, उन्हीके पीछे दुःखी हुआ करते है, पर अन्तमे सारी चीजें छोडकर चले जाते है । इन चीजोसे लाभ तो होता नही है, टोटा ही टोटा इनमे बना रहता है । क्या है इन टोटे वाली चीजोके पीछे पडनेसे ? आखिर इन्हे अन्तमे छोड देना ही पडेगा । ऐसी अन्तरंगमे बुद्धि जागे तो शान्ति प्राप्त हो सकती है । अतः रंगमे यथार्थ ज्ञान जगाना चाहिए ।

जब यथार्थ ज्ञान अन्तरंगमे जागेगा तभी शान्ति प्राप्त होगी, यदि अन्तरंगमे ज्ञान न जग सका, स्त्री पुत्रके पीछे ही मोहमे पड़े रहे, कुटुम्ब, परिवारके पीछे ही पडे रहे तो इससे उपद्रव ही आवेंगे । इनमे गिरने पडनेसे कोई हितकी बात नही मिलेगी । कही बडा लडका गुजर गया, कही छोटा लडका गुजर गया, यही सारी बातें हुआ करती है । इन सारी बातो के होनेसे सकट ही आते है, क्लेश ही आते है । संसारकी जो रीति है वह तुम्हारे लिए न्यारी नही होगी । किसीके लिए पद्धति नही बदल जायगी । यह तो ससार है, पुण्य पापका ठाठ है, जन्म मरणके चक्कर है, यह तो ऐसा होगा ही । अब बुद्धिमानीकी चीज तो यह है कि अपने ज्ञानके अनुसार विचार बनाओ । अपने माफिक दुनियाको मत निरखो । दुनिया जैसी है वैसी देखो । हम आप जैसा सोचते है जैसा विचार करते है वैसा ही देखना चाहते है । बस इसीमे दुःख है, और कोई दुःख नही ।

इस जीवकी जितनी इच्छाए होती है, वे सब जीवके क्लेशके लिए ही होती हैं । धर्म मे और क्या किया जाता है ? चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे साधु हो, सभी ज्ञानी अपनेको सबसे पृथक् देखते है और अपनी इच्छाओको नष्ट करनेका यत्न करते है । कहते है कि अपना लोटा ही छानो, कुआं नही छनेगा । सुखी होनेका उपाय केवल एक ही है कि जो जैसा है उसे वैसा ही जानो । क्यो जी, जो कुछ आप चाहे यदि वह मिल जाय तो क्या आप खुश रहेगे ? खुश कदापि नही रह सकते हो । मुझे कुछ नही चाहिए । ऐसी इच्छा हो तो यही सुखका उपाय

है।

भैया ! तुम्हारे आधीन कौनसी चीज है ? अरे ! कोई भी चीज तुम्हारे आधीन नहीं है। तुम्हारे आधीन तुम ही हो सकते हो। अपना ज्ञान जगाओ और तो सब बाकी असार है। शान्तिका उपाय तो केवल इच्छाओंका अभाव है। जैसे घरमे ४ बालक अमरूदके पीछे आपसमे लडने लगें। एकके हाथ अमरूद है तो दूसरे उसे छुडाते है, मारते है, पीटते है। अगर वह बालक अमरूदको फेंक दे तो वह परेशानियोसे मुक्त हो जाय।

सब कुछ मिल जाय, घर-द्वार मिल जाय, गाय-भैंस सभी कुछ मिल जाय तो इससे ही सुख नही प्राप्त होता है। रोज यहां देखते है कि यहां कुछ रह नही जाता है, इन सबके कारण ही जीवनमे संकट बने रहते है। यदि ये इच्छाए न हो तो सकट कभी न आवें। इच्छाओके अभावसे ही संकट दूर होते है। विषय भी उससे होते है जिसके इच्छा हो। इन इच्छाओके ही कारण विषय हो जाते है। यह सारा ससार पडा हुआ है। यहाँ पर कल्याण की कोई चीज न मिलेगी। कल्याणकी चीज तो केवल अपने आत्म-प्रदेशमे ही मिलेगी। इस आत्मामे यथार्थ ज्ञान है, सब स्वतन्त्र वस्तुवें हैं, सब न्यारी-न्यारी है। किसीका किसीसे कुछ सम्बन्ध नही है। यदि ऐसा विचार न बना तो शांति नही प्राप्त हो सकती है।

अभी धनिकवर्गोको देख लो। लोगोके देखनेमे वे चिकने चाकने बडे भले लगते है, पर वे मोहमे रहकर दु'खी हुआ करते है। यदि धनिक लोगो की आत्मा देखो तो खोखली ही हो गयी है। उन्हे सुख और आनन्द नही प्राप्त होना है। जिसने धनका विकल्प किया, घरके २-४जीवोमे ही विकल्प किया तो वह सदा दु'ख ही पाता रहता। सुख किसी दूसरेके द्वारा नही प्राप्त होगा। किसी की आशा न करो। आशा तो केवल अपने प्रभुकी ही करो। वह प्रभु ही तुम्हारी शरण होगा। वही तुम्हारी रक्षा करेगा। अन्य कोई तुम्हारी रक्षा न करेगा।

जिसके मोह नही है, जिसने सारे विकल्प त्यागकर अपने प्रभुके ऊपर ध्यान दिया है उसे कभी क्लेश नही प्राप्त होगे। अरे मोह करनेसे कोई फायदा नही होगा। यदि मोह करना है तो अपने प्रभुसे करो, अपने ज्ञानस्वरूपसे करो। बाह्यसे मोह करना छोड दो। आत्मस्वरूपके मोहको मोह नही कहते, मोक्षमार्ग कहते है। विषयोमे आसक्ति छोड़ दो तो अपने आप सुखी हो सकते हो।

देहादिक पृथक् कृत्य ज्ञाने तिष्ठानि केवले।
स्यानि भोगयशोवाञ्छां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२५॥

यह देह भी अपनी नही है और की तो बात ही क्या है ? जब देह भी अपनी नहीं

है तो फिर दूसरे अपने कैसे होगे ? इस देहसे पृथक् अपनी इस आत्मा को समझो। अपने को केवल ज्ञानस्वरूप मानो। कुटुम्ब परिवार इत्यादिके मोहको छोड दो। २४ घटे पडे है। इन २४ घटोमे प्राय सारा ही समय विकल्पोमे ही लगा देते हो। २४ घटोमे से ५ मिनट का समय तो आत्मस्वरूपकी दृष्टिमे लगावो, किसी भी अन्य बातोका ख्याल न करो, अपने इस शरीर तकको भूल करके अपने आत्मस्वरूपका चिंतन करो, प्रभुभक्तिमे ही वह नियत समय बितावो तो शांति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञानज्योति और शांति आत्मस्वरूपमे ही है। बस आत्मामे ज्ञानके बिना अन्य कुछ नही होता। केवल अपने आपका अनुभव हो तो आनन्द प्राप्त होगा। अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनसे ही सारी इच्छाएँ समाप्त हो सकती है। बाहरी पदार्थोमे अपना उपयोग न लगावो। बाहरी पदार्थोमे शांति नही है, आकुलताएँ ही मिलती है। हमे बाह्यपदार्थोके प्राप्त कर लेने पर ही खुशी नही माननी चाहिए। खुशी तो अपने आपके आत्मस्वरूपको देखकर होनी चाहिए। अपने आत्मस्वरूपको देखो, मोह ममताको छोडो तभी शांति प्राप्त हो सकती है। इस धन-वैभवके पीछे पडनेसे कभी शांति नही मिलती है। इस धन-वैभवमे कुछ भी तो सार नही है। यदि धन-वैभवमे सार होता तो बडे-बडे महापुरुष ६ खण्डकी विभूतिको त्यागकर जगलमे क्यो रहते ? परचीजोकी मोह ममतामे कुछ नही है। बाहरी पदार्थोकी मोह ममतामे पडनेसे तो दु.ख ही है। सो अपनी इस मोह ममताको त्यागकर अपने आपके स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

इद ज्ञान न मे ज्ञानं दर्शन च न दर्शनम्।
चिन्तयाल न मेऽन्तर्वाक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–२६॥

हमारा और आपका स्वरूप आनन्दसे भरा हुआ है। जैसे पुद्गलके बारेमे पूछा जाये कि इस पुद्गलमे क्या चीज है ? तो कहा जा सकता है कि इसमे रूप है, रस है, गध है और स्पर्श है। इसी तरह पूछा जाये कि आत्मामे क्या चीज है ? तो बहुत खोज कर लो खोज करने पर यही समझमे आयेगा कि आत्मामे ज्ञान है और आनन्द है। या यो कह लो कि ज्ञान और आनन्दका ही नाम आत्मा है। वह आत्मा ज्ञान और आनन्दसे पृथक् नही है ज्ञानानन्द निराधार नही है। उसका आधार यह आत्मा है। हमारा और आपका स्वरूप आनन्दसे परिपूर्ण है। परन्तु आज स्थिति देख रहे है कि आनन्द नही नजर आता है।

भैया, सभी लोग किसी न किसी क्लेशकी बातोसे अपना उपयोग बना रहे है।

इसका क्या कारण है ? कारण भी बहुत सीधा है जो जल्दी बतानेमे ही आ जाता है । उसको दूर करनेका उपाय अत्यन्त सीधा है । अतः जल्दी संभालमे आ जाता है । अभी देख लीजिए, हम और आप अकेले-अकेले है कि नही ? केवल अपने स्वरूपको देखो । अपनी स्वरूप सत्ता का विचार करो कि मैं अकेला हू कि नही, किसी जीवसे मिला हुआ है क्या कोई ? किसी दूसरे पदार्थसे जुडा हुआ है क्या ? नही, बिल्कुल अलग है । चाहे वह किसी भी स्थितिमे हो, मुक्त स्थितिमे हो, स्वतत्र स्थितिमे हो, जीव सब अलग है । जीवका स्वरूप जीवमे है, वह किसी द्रव्यसे मिला हुआ नही है । फिर यह मिला-जुला क्यो हो गया ? ऐसा जुडा हुआ क्यो बन गया, इसका कारण है कि इस जीवके जाननेको एक कला है जो और द्रव्योमे नही पायी जाती है । और विकारो रूप परिणमनकी योग्यता है । इस कारण इसने अपनेको अकेला न जानकर दूसरे पदार्थोंसे मिला जुला मान रखा है । बस यही भूल ही सारे दुःखोका कारण बनी हुई है । यह तो सोचनेकी बात है, कही बाहर देखनेकी बात नही है । गुपचुप, छिप-छिपकर जो अपने अन्तरज्ञानका प्रकाश करेगा और उस प्रकाशके साथ चलेगा तो उसका भला है । भैया, जब भी भला होगा, अपने आपके विचारसे होगा । बाह्य पदार्थोंसे भला न होगा । धन वैभव तो प्रकट पराये है, पर ही नजर आते है । उनका क्षेत्र जुदा है, तुम्हारा क्षेत्र जुदा है । किसी भी प्रकार उनसे मेल नही दिखता है । वे प्रकट पराये है, और जो दूसरे जीव है, जिन्हे परिवार मानते है, मित्र जन मानते है वे भी प्रकट जुदा है । किसी जीवका किसीसे कोई बधन गुथा हो, गाठ लगी हो, एक हो गया हो तो बतलावो । दूसरे जीव अपनी जगह है, हम आप अपनी जगह है, कुछ सम्बन्ध नही है । इतना भी नही है कि हम उनको जैसा बनाना चाहे वैसा ही बन जावे । यह भी सोच लो कि जैसा हम चाहे वैसा वे काम भी कर लें । उनसे कुछ भी सम्बन्ध नही है । ये चेतन बाह्यपदाथर्थ मेरे कुछ नही है । जब जीव चला जाता है तब इस शरीरको कोई घरमे नही रखना चाहता है । यह एक मोटीसी बात है । अपने-अपने शरीरको पकड कर देखो कि यह शरीर मित्रजनोके ही द्वारा अनमे जलाकर खाक कर दिया जाता है । तो यह शरीर भी नही रहेगा, खाक कर दिया जायेगा । केवल अपने आपमे अपना ठीक ज्ञान करो तो यही सारे सुखोका कारण है । यदि सुख प्राप्त करना है तो वास्तविक ज्ञान प्राप्त करो । ज्ञान ही वास्तवमे सुखोका कारण है । ज्ञानसे ही सुख मिलता है । शांति किन्ही भी बाह्य चीजोसे नही मिलती । केवल एकमात्र ज्ञानसे ही शांति एव संतोष प्राप्त हो सकता है । यह देह भी अपनी नही है । जिन कर्मोंसे सुख दुःख मिलते है वे कर्म भी अपने नहीं हैं । वे भी अपनेसे जुदा है । उनका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है । पदार्थ जुदा है, उनका परिणाम उनमे है । उनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही । फिर भी उनका

कर्म अनित्य है, मिटने वाला है, असार है, मायारूप है। ये कर्म भी मेरे नही हैं। यह सुख दुःखकी जो मेरी परिणति है क्या वह मैं सुख दुःख हूं ? मैं तो वह हू जो सदासे हू, सदा रहूगा। मेरी भी वह चीज है जो सदासे है और सदा तक रहेगी। जो आया है वह मिट जायेगा। जो मिट जायेगा वह मेरा कैसे हो सकता है ? मेरा तो वह है जो मेरे साथ सदासे है और सदा तक रहेगा। ये सुख दुःख क्या सदासे है ? क्या सदा तक रहेंगे ? जो सुख दुःख हैं वे भी मिट जाने वाले है। ये सुख और दुःख भी मेरी चीजें नही हैं।

अब और आगे वढिये। यह तो जान रहे है कि यह मेरा घर है, यह शरीर है, यह चौकी है, यह हाल है, और और भी जानकारियाँ होती है, ये तो मेरी होगी ना ? ये जानकारियाँ भी मेरी नही है। ये परिणतियाँ भी हो जाती है। ज्ञानावरणका क्षयोपशम अन्तरग कारण है, सो कुछ ज्ञान होता है और साथमें राग-द्वेष लग रहे है। सो इन रागद्वेषोने तो इस ज्ञान की पद्धतिका यंत्र बदल लिया है। जिस प्रसंगका छोटा मोटा ज्ञान कर रहे हैं यह छोटा मोटा ज्ञान भी, छोटा मोटा जानन भी मेरा नही है। मेरी तो वह वस्तु है जो मेरे साथ अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहेगी। जो मेरा सहज है वह मेरा है। सहज कहते है 'सह जायते इति सहजम्।' जो साथ उत्पन्न हो वही सहज है। मैं कबसे हू ? मैं अनादि से हू। मेरमे जो अनादिसे है वही मेरा है। छुटपुट ज्ञान आदि मेरे नही है।

भैया, इस छुटपुट ज्ञानका भी जीवको अभिमान हो जाता है। इसका कितना अहंकार होता है ? इस पर बडे-बडे सामाजिक कलह हो जाते है। घरमे अनबन हो जाती है। कोई पूछे भाई यह बहुत बडा झगडा क्यो हो गया ? किस चीजका विवाद था कि इतना वडा झगडा हो गया ? तो वह कहेगा कि झगडा खड़े हो जानेकी चीज कुछ नही थी। बात बिल्कुल थोडी सी थी। वह बताई नही जा सकती है। बताओ कैसे झगडा हो गया ? इसी प्रकार परतत्त्वमे आत्मबुद्धिके कारण ससार बन गया। ये छोटी जानकारियाँ भी कुमतिके सगसे हमारे आपके वैभवमे बाधक बन गयी है। यह ज्ञान भी मेरा नही है।

इस समझकी प्रतिभारूप शब्दावलि जो समझके साथ-साथ अन्तरगमे लगी हुई है वह भी मेरी नही है। जो कुछ भी भीतरमें बोलना होता है ऐसे अन्तरगकी वाणी भी मेरी नही है। इस अवस्थामे हम और आपके जो ज्ञान जगता है वह सब ज्ञान कुछ न कुछ शब्दो की वाणीको लेकर जगता है। जिससे कि शब्दाद्वैतवादियोने एक दर्शन ही निकाल दिया कि सारा जगत् शब्दमय है क्योकि कुछ भी जानो, जाननेके साथ साथ कुछ न कुछ शब्द अन्तरगमे आ खडे होते है ; वह अन्तरंगशब्द भी, वह अन्तरग वाणी भी मेरी नही है, फिर और किसीका अहकार ही क्यो करते है ?

भैया, यह सब अपने ज्ञानप्रकाशकी बात है, अपने भलेकी बात है। जो भीतरमे ऐसा ज्ञानप्रकाश कर ले, कोई जाने तो जाने, न जाने तो न जाने, किसीको बताना नही, किसीको दिखाना नही, अन्तरगमे ऐसा भेदज्ञानका प्रकाश है तो यह ज्ञानस्वरूप स्वयं सुखी हो जायेगा। सोई कहते है कि यह ज्ञान भी मेरा नही, यह दर्शन भी मेरा नही। ये ऐसे वचन भी मेरे नही। मेरे आपके इस ज्ञानका आधारभूत जो शक्ति है, चैतन्यमात्र है, ऐसा चैतन्यमात्र अपनेको देखो और अपनेमे अपने आप सुखी होओ।

यशस्वी वैभवी वा स्यां शान्तिस्तत्रापि नो यतः।
ईंधनं तदशान्त्यग्नेः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२७॥

मैं महान् यश वाला भी हो जाऊँ, महान् वैभव वाला भी हो जाऊँ पर उस यशसे और वैभवसे शान्ति नही मिलती है। शान्तिका सम्बन्ध तो शुद्ध ज्ञानसे है। आप देख लो, राष्ट्रोमे जिनकी विशेषता है। उन मिनिस्टर पदाधिकारी आदिके वातावरण क्या बता रहे है? जितने क्लेश है उन्हे वे ही जान रहे है। हम आपका यहाँ केवल सग्रामकी बात सुनकर दिल दहल जाता है और एक सम्भावनामे चाहे वह मिथ्या ही हो, किन्तु उन मिनिस्टरो पर क्या बीत रही है सो वे जानते है।

भैया! इष्टके विरुद्ध सम्भावना जल्दी मनके घरमे आ जाती है। जैसे घरमे कोई प्रिय बीमार हो तो उसके प्रति झट ख्याल आ जाते है। अरे यह मर तो नही जायगा। इस प्रकार सोचकर दुःखी होते है। पर यदि किसी दूसरे घरमे कोई बीमार है तो जाकर कहते है कि अरे घबडावो नही, अभी ठीक चल रहा है। अपना यदि कोई बीमार हो गया हो तो मर जायेगा, यह हमे छोड जायेगा क्या? ऐसा सोचकर दु खी होते है।

ऐसा ही देशके बारेमे है। जब उल्टी सम्भावना करते है तो दिल दहल जाता है। फिर शांति कैसे रहेगी? हम आप तो यहाँ इतना दहल रहे है, पर जिसका साक्षात् सम्बध है, जो कीर्तिवान हुए उनका तो कहना ही क्या है? यश हो जाने पर क्या सुख मिलता है, क्या शान्ति मिल जाती है यशकी बात झूठी हो तो भी यश चलता है। यशका यथार्थतासे तो सम्बन्ध नही है। कितना भी यश हो जाय तो भी यशमे शान्ति नही है। कितना भी यश हो जाय तो भी यशसे शान्ति नही मिलती है। इसलिए यशके लिए आकुलतायें होना या मनमे अधैर्य रखना—ये सब बातें मूढताकी है।

गुरु जी सुनाया करते थे कि टीकमगढमे कोई सुनार सुनारी थे। टीकमगढको ही वह बताया करते थे। सुनारिनने सोनेके ३० तोलेके बखोरे बनवानेका हठ कर लिया। बेचारे

गरीब सुनारने किसी तरहसे कमी करके बखोरा बनवा दिये । मगर इस देशका रिवाज लंबी और मोटी धोती पहिननेका है, जिससे कि सारा अंग ढक जाता है । सो सारा अंग ढके होने के कारण बखोरे दिखाई ही न पडे । इसलिए किसीने भी उसकी प्रशंसा न की । बहुत दिन हो गये, किसीने भी प्रशसा न की तो वह मन ही मनमे कुढने लगी । उसको अधिक गुस्सा आ गया । जब किसीके तीव्र गुस्सा आ जाता है तो अपना भी नुक्सान करनेकी मनमे बात बेठती है । जैसे अपने घरमे बातचीतमे ही सास-बहूमे झगडा हो गया तो गुस्सेमे आकर घर का ही डबला फोड देती है । तो उस सुनारिनने क्या किया कि जिस झोंपडीमे रहती थी, गुस्सेमे आकर उस झोंपडीमे ही आग लगा दी । आग लगा देनेके बादमे ही उसे चिन्ता हो गयी कि अरे घर जला जा रहा है । दौडो, रस्सी वह पडी है, बाल्टी वह पडी है । सभी पडोसी अपने-अपने घरसे निकल आये । जब हाथ फटकार कर वह कह रही थी तो बखोरे एक स्त्रीको दिख गये । बोली—अरी जीजी, ये बखोरे कब बनवाये ? ये बखोरे तो बडे सोने है, बड़े सलोने है । वह बोली—अरी रांड, इतनी बात यदि पहले कह देती तो हम अपना घर ही क्यो जलाते ? आप बतलावें कि इस यशमे यहांके लोगोकी बरबादी हो रही है कि नही हो रही है ? कहते है ना कि यह तो लम्बासा ऐंठ जाता है । पैसेमे नही, जमीनमे नही, खाने-पीनेमे नही, वे बातोमे ही ऐंठ जाते हैं । ये जो जानकारियां बन रही है, ये भी मेरी चीजें नही है । ये भी माया रूप बन रही है । अरे उन जानकारियोकी क्या चाह करते हो ? क्या उस यशकी चाह करते हो ? चाह करो अपनी उस आत्माकी, आंतरिक तपस्याकी, चित्त मे शुद्ध दृष्टि लानेकी । जिन्होने आत्माको सिद्ध किया, निर्वाण प्राप्त किया उन्हे भी कौन जानता था ? मगर वे निर्वाणको गये । जो इस लोकमे बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए ऐसे आदिनाथ भगवान भी निर्वाण होने पर उन सबके आनन्दमे कुछ अन्तर नही माना है । तो अपने ज्ञानस्वरूपका परिचय होनेके लिए ज्ञान शुद्ध होना चाहिए । यहां कोई जानने तो आयेगा नही, मगर अन्तरंग शुद्ध होगा जिसका, शांति तो वही पावेगा ।

अब तो काम करने लायक यह बात है कि भीतरमे ज्ञान शुद्ध हो । भीतरमे ज्ञान शुद्ध होनेसे ही अपना बेडा पार है । जो अपने अतरंगको शुद्ध नही कर सकता है उसकी क्या कीमत है ? यश तो झूठा भी फैल सकता है, अशुद्ध यश भी फैल सकता है । बहुतसे लोगो को धोखेबाजी, राग इत्यादि रुचते हैं, लोग बहकावेमे आ जाते है, उससे कोई सुख नही । उसी प्रकार वैभव भी कितना ही बढ जाये, सौ हो गये, हजार हो गये, लाख हो गये, अरब हो गये, यह सब क्या है ? यह पुद्गलका ढेर है, उससे कोई जीव लिपटा तो नही है । मरने

के बाद कुछ भी तो हाथ नही लगता है। वह तो केवल ख्यालका ही धन है। ख्यालमें ही सगी है। चीजें कुछ नही है। चैतन्यस्वभावको लक्ष्यमें लेकर सोचो, यह जो अपना स्वरूप है, अपनी परिणति है, इसके आगे अपनी बात कुछ नही है।

भैया, बाहरी चीजोसे आनन्द नही आता, शांति नही मिलती। यह बाह्यविषय तो अशान्तिरूपी अग्निका इंधन है। यश क्या है? अशान्तिरूपी अग्निका ईंधन है। जैसे ईंधन जलते रहनेसे अग्नि शान्त नही होती है, अग्नि बढती ही रहती है इसी प्रकार यश होते रहने से यशकी दृष्टिमे अशान्ति बढ जाती है, अशान्ति कम नही होती है। जैसे अभी तक तो हमें दस-बीस लोग जानते थे, अब हजारो लाखो जानने लगे। इससे कहो एक समय ऐसा आयेगा कि इस यशके ही पीछे मर जावेंगे।

बडे महाराज सुनाया करते थे कि बनारसमे एक वयोवृद्ध विद्वान् पडित थे। वह बहुत ही विद्वान् थे। विद्वान् होने पर भी वे रात दिन अध्ययन करते थे, ग्रन्थोको देखते थे। धीरे-धीरे पंडित जी की ख्याति फैल गई, अच्छे विद्वानोमे से हो गये। कुछ लोगोने पूछा, इतना विद्वात् होने पर भी आप इतना परिश्रम क्यो करते है? पंडित जी बोले कि यदि कभी किसी शास्त्रार्थमे हम हार गये तो कुवेमे गिरकर मर जाना पड़ेगा। कभी शास्त्रार्थमे हार न जायें इसलिए अध्ययन करते है। कुछ दिनोमे ऐसा ही घटित हुआ। किसी विद्वान्से शास्त्रार्थमे हार गये और कुवेंमे गिरकर मर गये। तो यह यश भी अशांति रूपी अग्निका ईंधन है।

इस यशके पीछे हजारो रुपया पैदा किये। जब हजारो हो गये तो लाखोकी फिक्र बढी। और जब लाखो हो गये तो सोचा कि अभी और होने चाहियें। करोडकी फिक्र बढी। कभी भी इस धनसे शांति न मिलेगी। जब करोड हो गये तो अरबकी चिंता बढेगी। क्या अरब हो जानेसे शांति हो जायेगी? शान्ति कदापि न मिलेगी। यदि शांति मिल जाती हो तो बतलावो। यश और वैभव तो अशांति रूपी अग्निके ईंधन है। सो इन दृष्टियोको छोड़ो और भगवानकी भक्तिका सहारा लो। अपने आपके आत्मध्यानसे पूरा पडेगा। अपना आत्म-स्वरूप ही हितरूप है।

आर्तकारणमाशैव कमाशासेऽत्र को मम।
दूरमास्तो न मेऽर्थो हि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२८॥

इस लोकके सब जीव केवल एक ही चीज चाहते है कि दुःख न हो। व्यवहारमें कितने ही कर्म किए जायें, कुछ भी चाहा जाये, पर सबके मूलमे यही बात है कि दुःख न हो। सबका एक ही ध्यान है कि दु.ख न हो। जो विषयोमे लगते है उनका भी यही विचार

है कि दुःख न हो। विषयोंकी इच्छासे जो वेदना उत्पन्न होती है उसको मिटानेका भाव रहता है। वह वेदना कैसे मिटे ? तो सारे लौकिक जनोंको यह उपाय सूझता है कि विषय भोग लें तो इसकी वेदना मिट जायेगी। सो विषयोमे लगते है वे अपना दुःख मिटानेके लिए। और जो ज्ञानीजन है, जिनका यथार्थज्ञान विशद रहता है कि विषयोसे तृप्ति नहीं होगी, विषयोसे पूरा न पडेगा। ऐसा जिनके स्पष्ट ज्ञान होता है वे विषयोका त्याग कर देते है और अपने अन्तरज्ञानमे प्रवेश करनेका यत्न करते है कि दुःख न हो।

भैया, जीवोमे यावन्मात्र परिणमन हैं, प्रयत्न है, वे सब एक ही ध्येयके लिए है कि दुःख न हो। दुःखोका कारण है क्या ? सीधा साफ कारण आशा है। जिनको भी दुःख लगता है उनके आशा पायी जाती है। यदि आशा न हो तो क्लेश हो ही नही सकते। हाँ आशाके रूपोमे फर्क हो सकता है। किसीकी कुछ आशा, किसीकी कुछ आशा। जो जैसी स्थितिमे है उससे बढकर आगेकी आश सबके अन्दर लगी हुई है। भिखारी है उसके दो दिनके खानेका सामान है। यदि उसे दो-चार दिनको और सामान मिले तो उतने तक ही वह आशाकी कूद लगाता है। जो हजारपति और लखपति है वह भी करोडपति बननेका स्वप्न देखता है। सब ऐसी ही आशाए लगाये बैठे है। इन आशावोके होनेके कारण ही जब वैभवमे कोई बाधा आये, डकैतोके आक्रमण होते नजर आये तो दुःखी होते है। आशाकी वजहसे जो वर्तमानमे रहा सहा प्राप्त वैभव है उसका भी सुख नही पाया जा सकता है। सर्वत्र देखो दुःखोंका कारण एक आशा ही है। परन्तु इस आशाको सीमातीत जो आलम्बन करता है वह तो लोकमे भी निंद्य होता है। और देखो वह तो दुःखी है ही, किन्तु जो कुछ थोडी बहुत आशा करते है वे भी दुःखी ही है।

दुःखोका कारण आशा ही है। बच्चा दुःखी होता है तो यह निर्णय निकालो कि इसको किसी चीजकी आशा लग गयी, इसलिए दुःखी हो रहा है। जवान दुःखी हो, बूढे दुःखी हो उनका भी यह निदान है कि इनको किसी चीजकी आशा लग गयी है, इसलिए दुःखी है। तो जिस पदार्थकी आशा लग गयी वह पदार्थ तो अपने आपमे अपनी जगह पर है, उन पदार्थोंकी आशा करनेसे वे पदार्थ आशावानकी ओर झुकते नही है। वे तो टससे मस नही होते है। कुछ उसके लिए कोई हाव-भावकी प्रवृत्ति नही करते है। ये पदार्थ तो अपने स्वरूपमे है। ये आशाएँ व्यर्थ की जा रही है। इन आशावोका फल यह होगा कि दुःखी रहना पडेगा।

भैया, लोकमे दो प्रकारके रूपोसे आशाएँ की जा रही है—(१) चेतन (२) अचेतन। धन-वैभव, मकान, महल, सोना, चांदी ये तो सब अचेतन है। इनकी आशा रखते है। इसके

बदले ये विचारे जड पदार्थ मुझको कुछ खुशी नही दिखा सकते । वे तो स्वयं जड़ है । उनको उठाया जा सकता है, भेदा जा सकता है, फैका जा सकता है, पर उनमें स्वयं तो कुछ दम नही है । एक तो वे ऐसा अलग रहते हैं कि अब भी सबको अलग लग रहे है । ऐसे उन जड पदार्थोंकी कीमत लोग बना बैठे है, क्योकि प्राय: सब लोग उनमे लगे बैठे है । केवल उनकी ओरसे देखो तो उनकी क्या कुछ कीमत नही ? जैसे बाजारमे भाजी न मिले, भाजी का टोटा पड जाये तो सडी भाजी भी अधिक मूल्यसे बिकने लगती है । सडी भाजी और अच्छी भाजीमे फिर कोई अन्तर नही रह जाता है । चाहने वाले लोग उस सडी भाजीपर ही टूट पडते है । वह सड़ी चीज भी ऊँचे भावसे विकती है तो चीजका कुछ भाव नही होता । भाव तो चेतनमे है, चीजोमे कुछ भाव नही है ।

कोई कहे कि गेहूका क्या भाव है ? तो उसका अर्थ यह हुआ कि गेहूके बारेमे लोगों के भाव क्या है ? सो चीजोका जरा भी भाव नही । कोई भाव पूछे तो उसका अर्थ यह है कि चीज चाहने वाले लोगोका क्या भाव है ? लोगोके क्या ख्याल हैं ? लोग कितना उसकी ओर झुक रहे है ? सीधा अर्थ तो यह है । जिन पदार्थोंकी आशा लगाये हैं सारे पदार्थोंका इस गरीबकी ओर ध्यान नही है । यह व्यर्थ ही अपनेमे आशाएँ लगाता हुआ दुःखी बनता रहता है ।

ज्ञानी विवेकी कहते किसे है ? जो परकी आशा न करे उसे ज्ञानी विवेकी कहते हैं । धन बढा-बढाकर कोई महान् पुरुष बन सकता है क्या ? इतिहासमे देख लो, पुराणोमे देख लो, युक्तिसे सोच लो, जो भी महान् हुए है उनकी आशा खुद महान् हुई है तो महान् हुए है । तुम्हारी महत्ताको तो इस आशाने बरबाद कर दिया है । दु.खोका कारण केवल आशा ही है । यह मैं कैसी भी आशाएँ करूँ, तो कुछ मेरा है क्या ? खूब सोच लो जिसका आपको भरोसा है कि ये मेरे है, कितना भी भरोसा रख लो कि ये मेरे पिता है, ये मेरे भाई हैं, पर उनसे तुम्हारा जरा भी सम्बन्ध नही है । वस्तुस्वरूपकी इजाजत ही नही है कि कोई किसीका बन जाये । आपकी कल्पनाएँ बडी हे कि वस्तुका स्वरूप बडा है । यदि कल्पनाओसे ही काम होने लगेगा तो एक साधारण आदमी ही सारी दुनियाको वशमे करना चाहेगा । फिर तो सारा मामला ही खत्म हो जाये ।

वस्तु स्वय बनती और मिटती है तथा रहती है । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपकी सीमा मे है । अपने ही सत्त्वमे है । अपने आपमे ही उनकी परिणति बनी रहती है और आदिसे अन्त तक वे अपनेमे रहते है । खोटे बने तो अपनेमे और भले बने तो अपनेमे । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे बाहर नहा होता । तब फिर कौन पदार्थ किसके हो जायेगे ? दु:ख मिटानेका

उपाय मुफ्त है। सस्ता है, कुछ धन नही लगता। कुछ परपदार्थ उसमे नही पडता। केवल ज्ञानदृष्टिकी बात है। कितने ही संकट हो, सारे संकट ज्ञानके ही जगनेसे समाप्त हो जायेंगे। भगवान रामचन्द्रजी के पूर्वजोमे से एक वज्रभानुकी कहानी है। वज्रभानु अपनी स्त्रीमे बहुत आसक्त था। एक बार वज्रभानुका साला उदयसुन्दर वज्रभानुकी स्त्रीको लिवाने गया। वज्रभानु भी स्त्रीके पीछे-पीछे चल दिया। मार्गमे शान्तमुद्रामे बैठे हुए एक साधु महाराजको देखा। देखते ही ज्ञानदृष्टि जगी और मोहके सारे सकट उसके मिट गये।

भैया! क्या सकट है? कितने संकट हैं? ये सब ख्यालके सकट हैं। ख्याल मिटे, ज्ञानदृष्टि जगे तो सारे सकट समाप्त होगे। इन सकटोमे कुछ दम ही नही है। इन जीवोने तो केवल ख्याल बना लिया है और सारे सकट खडे कर लिए हैं। ये तो धन वाले है, ये तो इज्जत वाले है, ये तो पडितजी हैं, ये तो इतने रुपये कमाते हैं, हम गरीब हैं– ऐसे ख्याल बनाकर वे दु खी हो जाते है। तो इन कल्पनाओके ही कारण तो ये सारे सकट आ गये। सभी मोही जीव अपने आपमे कुछ न कुछ अपनेको बिगाड करके, ख्याल करके उथल पुथल मचा रहे है। इस समय नही फिर सही, अपना ज्ञान जगाओ, अपने वातावरणको शुद्ध बनाओ, तभी शान्ति मिल सकेगी। बाहरकी रूपरेखा कुछ न कुछ बना लेनेसे भीतरकी बातों मे क्या फर्क आ जाता है? भीतरका फर्क तो फर्क मिटानेसे ही मिटेगा, फर्क मिटानेके उपाय से ही फर्क मिटेगा। सारे सकट ज्ञानसे ही मिटेंगे। परवस्तुके भेदज्ञानसे ही सकट मिटेंगे।

भैया! प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है। यदि अपना स्वतन्त्रस्वरूप समझमे आ गया तो मोह मिट गया और जहाँ मोह मिट गया तहाँ शान्ति हो गयी। बतलाओ, कौन जीव अपना है और कौन पराया? सब जीव अपने है और सबके सब पराये है। स्वरूप देखो तो अपने ही समान है और यदि विलक्षण देखा जाय, सत्य देखा जाय तो सब पराये है, सब पर है। एक मोहका अन्धकार ऐसा इस जीवके छा जाता है कि इन सब प्रभुस्वरूप जीवोकी एक छंटनी कर ली जाती है। यह मेरा है, यह पराया है आदि। यह अज्ञानका फल है। कोई भी पदार्थ मेरा नही है, सब पराये हैं, सब मेरे उपयोगसे पृथक् है, ऐसा विश्वास करके मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी हो सकता हू, आनन्दमय हो सकता हू।

बहिर्बहिर्भ्रमो व्यर्थो ज्ञान तत्त्वमिद स्फुटम्।
इतोऽन्यन्मे सहाय न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२९॥

यह जीव जा रहा है, पैरोसे जा रहा है क्या? इस जीवके पैर ही नही है। पैरोसे नही जा रहा है। यह उपयोगसे जा रहा है, बुद्धि द्वारा जा रहा है। कहाँ जा रहा है? कहाँ घूम रहा है? तो बाहर ही बाहर घूम रहा है। बाहर देखो तो बढ़िया बगीचा, बढिया मैदान,

सुहावने दृश्य सब कुछ बाहरमे नजर आ रहे हैं। पर यह अन्तरगमे बसा हुआ स्वरूप कैसा है, यह नहीं नजर आ रहे हैं। उपयोग बाहर ही बाहर घूम रहा है। उपयोगका बाहरमे घूमना व्यर्थ है अर्थात् यह आत्मकल्याणका साधन नही है। यह तो अशांतिको ही बढाता है।

जैसे कोई रोटा भाजी खाता था। वह अच्छे ग्रामके निकट पहुच गया तो दाल रोटी खाने लगा। अब वे रोटा विरस लगने लगे। शहरमे पहुच गया, मिठाइयोके भोजनसे भेंट हो गयी तो रोटी दाल भी फीकी लगने लगी। और भी बढ़ते चले जावो तो केवल भोजनकी ही ई बात नही, धन-वैभव चाहिए, यश चाहिए। अभी २० है, फिर ५० चाहिए। फिर १०० चाहिएँ, फिर हजार चाहिए। अब भी संतोष नही है, लाख चाहिए। इस प्रकारसे बाह्य दृष्टि से कभी सतोष न हो सकेगा। अभी नाम चलता है, कोशिश यह करते है कि कई पीढियो तक नाम चले। इस तरहसे भी सतोष नही होता है। जैसे सब चेतन है वैसे यह भी चेतन है। इसका नाम कही खुदा है क्या? जिस नामके द्वारा इन सब जीवोमे से छटनी कर लेते हैं वह नाम तो शक्ल सूरतका है। आत्मपदार्थका कोई नाम नही है।

किसी भी पदार्थका कोई नाम नहीं है। ये जितने भी नाम है सब तारीफोके नाम है। अब आप कहेगे कि चौकी तो नाम है। अरे चौकी नाम क्या? यह तो उसकी तारीफ है कि चार कोनो वाली। कोई कहे कि यह घडा तो नाम है। अरे घडा भी नाम नहीं है। यह भी एक तारीफ है। जो घडा जाय वह घड़ा है। यह है उसका अर्थ। तो यह भी विशेषण ही है। व्याकरणमे कृदन्तका प्रकरण आता है उसमे उणादि प्रकरण है कि भीतर की धातु कुछ नजर आवे। मान लें और गड़बड कुछ भी प्रत्यय लगे तो शुद्ध अर्थ निकाल लें। वह भी विशेषणमे ही निकाला गया जो कि नाम नही है। ऐसे पदार्थोंका नाम बनवाये जाना, नाम मानते जाना, यही तो अधकार है।

हम सुखी कैसे रह सकते है। हमारे भीतरमे तो सारा विकार ही, अंधकार ही भरा है। रात-दिन प्रवृत्ति तो बाहर ही बाहर जा रही है। बाहरमे है कुछ नही, पर जोरसे भगे जा रहे है। यह जो बाह्यका घूमना है वह व्यर्थका है। यह मैं स्वय आनन्दमय ज्ञानतत्त्व हू। मैं पुरुष नही हू, मैं स्त्री नही हूँ। मेरेमे कोई लिंग भी नही है। यह मेरेको बताने वाला जो शब्द 'मै' है उसमे लिग नही है। चाहे कोई स्त्री कहे, चाहे कोई पुरुष कहे, सभी अपने को 'मै' कहते है। जैसे मैं जाता हू या मै जाती हूँ। हिन्दीमे क्रिया ही बदली, कर्ता नही बदला। इगलिशमे देख लो। कहेगे कि 'आई गो।' तो स्त्रियाँ क्या कहेगी? 'आई गो' ही तो कहेगी। इसमे लिगका अन्तर कही भी कुछ नही है। अरे यह आत्मा तो एक पदार्थ है।

उसमे लिंगोकी कोई बात नही और आकार भी कोई नही। यह तो मात्र ज्ञानप्रकाशमे ही है।

भैया, इस आत्माका क्या आकार है ? कुछ भी तो आकार नही हैं। अपने ही स्वरूप मे अपनेमे अपनेका प्रकाश होगा। चीटीके शरीरमे है तो ज्ञानप्रकाश प्रदेशरूपमे सीमित हो गया। पुरुषके रूपमे है तो उसके उतने विस्तारके आत्मप्रदेशमे ज्ञान फैल गया। स्वय किस आकारमे है यह जीव ? कैसे बतलाया जाये ? इस जीवका अनुभव भावोसे होता है। इस पिडके रूपसे, क्षेत्रके रूपसे, कालके रूपसे जीवको ज्ञानका अनुभव नही होता है। पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है। जैसे यह घडी है तो यह एक पिड हो गयी। जिसे हम पकडते है, धरते है, देखते हैं, और जितना ही अपनेको यह घेरे है, औकोपाई किए है, उतना ही क्षेत्र हो गया, जितना लम्बा-चोडा वगैरा क्षेत्र है, इसमे जो रूप रग है, नई पुरानी है इत्यादि वह काल हो गया और इसमे जो शक्ति है वह इसका भाव हो गया। इसी तरह जीवोमे द्रव्य हुआ एक जीवपिंड, क्षेत्र हुए उसके प्रदेश, उसका विस्तार, काल हुई उसकी जो भी परिणति है और भाव हुए उसके गुण। अनादि अनन्त स्वतःसिद्ध सनातन अहेतुक सहज जो शक्ति है वह इसका अभेद भाव हुआ। हम जब अपने ज्ञानस्वरूपको देखते हैं, जानते हैं तो ज्ञानको ज्ञान रूपमे जानते है। ऐसा जब ज्ञान और ज्ञेयका अभेद होता है तब अपने आपका अनुभव होता है।

इस ज्ञानभावको छोड़कर जब हम यह कहते है कि यह जीव कितना लम्बा चोडा है ? यह वृक्ष कितना लम्बा चोडा है ? यहाँ फैला, वहाँ फैला। अपने आपको देखो कि मै कितना लम्बा-चोडा हू ? यह जीव कितना लम्बा चोडा है ? अंगूठेसे सिर तक नापा साढे ५ फिट लम्बा, ढाई फिट चौडा। अरे यह इसकी लम्बाई-चोड़ाई पर ही दृष्टि है। इतने वर्ग हो गया, इतने घनक्षेत्र हो गया, प्रदेश देख लिया, हिसाब हो गया, इससे इस जीवके स्वरूप का अनुभव न होगा। यदि कालकी मुख्यतासे देखोगे कि यह अमुक कार्य कर रहा है, यह घमड कर रहा है, यह शांत बैठा है, यह कषाय कर रहा है, यह आग बबूला हो गया इत्यादि तो इस कालकी दृष्टिमे भी कुछ लाभ नही होगा। खूब परिणतियाँ होती जाती है, पर उनकी दृष्टिसे लाभ न होगा।

भैया, द्रव्य, क्षेत्र, काल ये तीन जाननेके लिए तो हैं, पर अनुभवके लिए, ध्येय बनाने के लिए ये विषय नही है। ध्येय बनानेके लिए भाव है, चैतन्य प्रतिभास, दर्शन, शक्ति, प्रकाश, ज्योति अर्थात् जानने वाली ज्योति, स्वरूप ज्योति। सो जब ज्योतिके द्वारा ज्योति ज्योतित रहती है उस समय ही जीवका अनुभव है। यह ज्ञानतत्त्व है। ज्ञानदृष्टि वालोको

यह बिल्कुल स्पष्ट है इसकी दृष्टि, इसका आलम्बन, इसकी उपासना ही इसके लिए सहाय है, और कुछ भी इसके लिए सहाय नही है। यहाँ किसका भरोसा रखते हो ? मरनेके बाद भारत छोडकर फिर और किसी अन्य साम्यवादी देशमे पैदा हो गये तो उस जीवके लिए यहाँका क्या कुछ रहा ? उल्टा यह इस देशके विरुद्ध भाव कर लेगा।

भैया, लोकव्यवस्थाके लिए सचयादिक तो ठीक है, पर व्यवस्था तक ही हम रहे। अपने परमार्थभूत ज्ञानस्वरूपको न जान सके तो हमें शान्ति नही हो सकती है। ये बाहरी समागम तो सब अशान्तिके कारण है, क्योकि ये भिन्न हैं व विनाशीक हैं। अभिन्न व अविनाशी तो ज्ञानतत्त्व है। सो इस ज्ञानतत्त्वके अतिरिक्त और कोई सहाय नही है। केवल अपने आपका आलम्बन ही अपना सहाय है, शरण है। बाहरमें शरण ढूंढना सब व्यर्थ है। सब पदार्थोके पास शरणके लिए पहुंच जावो, पर सभी जगह ठोकर ही मिलेगी, धक्का ही मिलेगा, कही भी शरण न मिलेगी। शांति कही भी न मिलेगी। पुत्र अगर सपूत हो गया तो उससे भी धक्का लगता है और अगर कुपूत हो गया तो उससे ही धक्का लगता है। पुत्र अगर सपूत हो गया तो यही सोचोगे कि इसे किस प्रकार अच्छी तरहसे रखें। उसके ही पीछे मोहमे रहकर कमानेका श्रम करोगे व सदा आकुल रहोगे। दूसरोके लगावके विषयसे ज्यादा दुःख पहुचते हैं। इसलिए दूसरोकी आशा न करो। आशा करो तो केवल अपने स्वरूपकी ही करो। आशा केवल अपने प्रभुकी ही करो। सो अब आशावोको त्यागकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

मूढोऽन्यममृत मत्वा भ्रमेन्मे त्विह निश्चय: ।
ह्येकत्वममृतं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-३०॥

लोग कहते है कि अमृत पी लो तो अमर हो जाओगे। अमृतके पी लेनेसे जीव अमर हो जाता है, लोग ऐसा कहते है। तुम यह तो बतलाओ कि वह अमृत क्या है ? कोई पानी सा अमृत है या लड्डू है ? आखिर अमृत क्या चीज होती है ? कैसा होता है ? अमृत कोई रस वाली चीज है या कोई ठोस पदार्थ है ? वह अमृत क्या होता है ? जरा ध्यान लगाकर कुछ कल्पना तो करो कि वह अमृत क्या मिलेगा ? कौनसी चीज अमृत हो सकती है ? ऐसा कौनसा पदार्थ है जिसके पी लेनेसे मृत्यु न हो ? ऐसा सम्भव है क्या ? कुछ सम्भव नही। मोही पुरुष अमृतके बारेमे कुछ भी कल्पनाएँ कर लेते है और इस लोकमे उस अमृतके लिए घूमते रहते हैं अथवा किसी भी चीजको अमृत मानकर उसका सेवन करते है और जन्म मरण की परम्परा बढाते है।

अमृतका निश्चय तो ज्ञानी जीवको है। वह सोचता है कि आत्माका जो एकत्वस्व-

रूप है, चैतन्यलक्षण है वही अमृत है। उसकी ही दृष्टि हो तो अमरत्व है। अब देखो आजकल चीन भारतके आक्रमणका वातावरण चल रहा है। जब भी कोई बात आक्रमणके प्रति आती है तो दिल कांप जाता है, क्योंकि देह तक ही दृष्टि डाली है। इतना ही मैं हू, इतना ही केवल सोच रखा है। यह देह मिट जाए तो सब मिट जाए। इस देहमे मोह होने से ही मृत्युकी बात आते ही अपना दिल कांप जाता है। सो अपने स्वरूपकी दृष्टि हो कि मैं तो एक चैतन्यपदार्थ हू। मेरा तो किसीसे कुछ सम्बन्ध ही नही है। मै तो सबके स्वरूपसे न्यारा हू, अविनाशी हू। मेरा तो नाश ही नही है। मान लो कि यदि मैं यहाँ न रहा, अन्यत्र कही चला गया तो यह मैं पूरा हू। चाहे यहाँ होऊं चाहे दूसरी जगह होऊं।

भैया! साहस बना लो, यहाँके बाह्यपदार्थोंसे मुह मोडना होगा। धन वैभवमे अपना मन लगाना और सत्य अमृतका पान करना—ये दोनो बातें एक साथ नही हो सकती हैं। या तो मोह बना लो, दुःखी होवो, घबडा लो या मोह छोडकर अपने आपके स्वरूपको देखो। जो पथ चाहो चल लो। लोग मर जानेका इतना दुःख नही मानते जितना परचीजोके छूट जानेसे कल्पनाएँ बना लेनेसे दुःखी हो जाते है। सो दुःखी ही क्यो होवें अमृत पी लें और अमर हो जावें, पर अमृत कोई अलग चीज ही नही है। अमृत तो वह ज्ञानस्वरूप है जो मरे नही, जिसका विनाश न हो, जिसका वियोग न हो उसका नाम अमृत है।

वह अमृत है ज्ञानस्वरूप। सो जब हम यह निर्णय कर लें कि मैं तो अविनाशी हू, ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानमात्र हू, सदा इसीमे तन्मय हू, ऐसा विश्वास कर लो तो कुछ भी भय नही रहता है। भय होना तो संसारी और लौकिक जनोका काम है। जो योगी पुरुष है, ज्ञानी पुरुष है, उसको भय कभी होता ही नही है, क्योंकि उसको मोह नहीं है। जिसके मोह होता है वही डरे। जैसे जिसके पास सम्पत्ति है, धन है, मकान इत्यादि है और उनमे ममता है तो उनको डर रहता है और जो ममतारहित है या फक्कड है, जिसके पास कुछ नही है वह नही डरता है। उसके डरनेका कोई कारण ही नही है।

गुरुजी सुनाते थे कि शिष्य गुरु थे। उनको कही सोनेकी एक ईंट मिल गयी। गुरु जी आगे चलते जाते और शिष्य पीछे-पीछे चला। शिष्य अपने सिर पर वह सोनेकी ईंट रखे था। जहाँ जङ्गल आवे, गुरु शिष्यसे कहे कि जरा सभलकर चलना। चलतेमे पैरोकी ज्यादा आवाज न हो, पत्तियो पर पैर रखकर नही चलना। इस प्रकारसे वह गुरु डरता जाता था और शिष्यको परेशान करता जाता था। शिष्यने सोचा इस विडम्बनासे हम कैसे छूटें? हमे तो यह ईंट लादनी पडती है, हमी परेशान होते है। सो एक बार मार्गमे शिष्यने

धीरेसे उस ईंटको कुवेंमे पटक दिया। आगे जङ्गल मिला तो गुरु कहता, बच्चा धीरे-धीरे आना, यहाँ डर है। तो शिष्य बोला—महाराज! डरको तो मैंने कुवेंमे पटक दिया। तुम अब खूब आरामसे चलो। तो डर किसमे है? इसलिए मोह ममतामे ही डर होता है।

मोह ममतासे ही डर लगता है। यदि मोह न हो तो किसी प्रकारका डर नही। शरीरका मोह है कि हाय हम मर न जायें। तो यहाँ पर डर लग गया, क्योंकि उसके मरने का भय लग गया और यदि यह विचार बनें कि मैं तो ज्ञानमात्र हू, मैं कभी असत् हो ही नही सकता हूं तो फिर अपने शुद्धस्वरूप पर दृष्टि होनेके कारण सारा डर खत्म हो गया, अमर हो गया। मरनेका फिर भय ही नही रहा। ऐसा जो हो गया वही अमर कहलायेगा। किसी भी कल्पनागत बाहरी चीजमे अमृत नही मिल सकता, पर निश्चय हो कि अपना जो ज्ञानस्वरूप है वही अमृततत्त्व है। सो उस अपने अमृततत्त्वको पीकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो।

रागद्वेषपरित्यागे कर्म मे किं करिष्यति।
त्यागो हि केवल ज्ञानं, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-३१॥

इस लोकमे देख रहे हो ना, कोई किसी प्रकार दु.खी है, कोई किसी प्रकार दुःखी है। दु खका कारण क्या है? निमित्त कारण है कर्मोदयका उदय। ये कर्म ही नाना प्रकार की अवस्थायें जीवकी बनाते है। निमित्तदृष्टिसे यह कहा जा रहा है कि कर्मने जीवको पशु बना दिया, पक्षी बना दिया, कीडे मकौडे बना दिया, मनुष्य बना दिया। जीव जो रागद्वेष करते है उनका निमित्त पाकर कर्म बन जाते है और उन कर्मोंके उदयसे दु ख बन जाते है। यदि रागद्वेष न हो तो कर्म नही बन सकते हैं, दुःख नही हो सकते है।

कोई अपना राग द्वेष मिटा ले तो कर्म उसका क्या- करेंगे? ये राग द्वेष ही उन प्राणियोके कष्टके कारण हो जाते है। रागके मायने प्रेम सुहाना। ये जब बाह्य चीजें सुहावनी लगी तभी तो अपना उनसे कुछ भला माना। इन बाह्योमे पडनेका कारण है मोह। मोह किया तो राग हो गया। भीतरमे राग न हो, मोह न हो तो फिर राग द्वेष कब तक होगे? यदि राग द्वेषको त्याग दो तो कर्म ि. क्या करेंगे? कैसे त्याग करे राग द्वेषोका? क्या यह राग द्वेषोका त्याग है। ज्ञान स्वय त्यागस्वरूप है और त्याग क्या कहलाता है?

देखो कोई किसीकी चीज लिए है और भ्रम ऐसा हो जाय कि यह चीज मेरी ही है तो भ्रममे ही वह नि·शक होकर उस अपनी मानी हुई चीज पर टूट पडता है। और अगर किसी प्रकारका चिन्ह देखकर यह ज्ञान हो जाय कि यह मेरी नही है, यह तो दूसरेकी है तो उसका भ्रम छूट जायगा। ऐसा ज्ञान हो जाने पर उस वस्तुसे उसका मोह छूट जायगा, ऐसा

ज्ञान होनेका नाम ही आन्तरिक त्याग है। भीतरमे त्यागकी बात हो, बाहरमे चीजोका त्याग हो जाय, इतना ही नही, इससे आगे और कदम बढे कि उसका विकल्प भी न हो तो वही त्याग कहलायेगा।

त्याग वह नही कहलायेगा जिसमे किसी प्रकारका विकल्प बना रहे। कोई खानेकी चीज छोडी और उसके एवजमे अन्य कोई खाने पीनेकी चीजका भरोसा बना रहे तो वह त्याग नही है। वास्तविक त्याग तो वह है कि उस चीजके बारेमे कल्पनाएँ ही न उठें और न उसकी एवजका ख्याल बनावें। ऐसा त्याग तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। शुद्ध ज्ञानमे किसी तरहका विकल्प नही होता है। वह शुद्ध ज्ञान स्वय त्याग है और ऐसा त्याग स्वयमे है, क्योंकि मेरा स्वरूप तो ज्ञान ही ज्ञान है। जीवका और क्या स्वरूप है ? यह जीव ऐसा विलक्षण पदार्थ है कि वह सर्वत्र ज्ञानसे तन्मय होता है। इसको कहते है कि जैसे नमककी डली है उस डलीमे प्रत्येक जगह खारा ही खारा स्वाद है, नमकका कोई भी भाग जीभ पर रख लो तो खारा, किसी भी तरहसे खावो तो खारा। नमकमे सारा खारपन ही रहता है। इसी तरह इस आत्मामे सर्वत्र ज्ञानकी ही वृत्ति है।

यदि नमकसे नमककी क्षारता भंग हो जाय तो नमक कैसा ? उसी प्रकार आत्मासे ज्ञान भंग हो जाय तो फिर आत्मा कैसा ? आत्मा तो एक ज्ञानघन वस्तु है, ज्ञानस्वरूप है। इस आत्मामें सर्वत्र ज्ञान ही भरा हुआ है। यह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हू, ऐसी ही वृत्ति रहे, इष्ट अनिष्टकी बुद्धि न रहे, किसी भी परपदार्थको अगीकार करनेकी भावना न रहे तो यही है उत्कृष्ट त्याग। ऐसा त्यागकर ज्ञानमात्र ही रहकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

रागो योगेऽपि हेयश्चेदसम्बन्धे पुनर्न किम्।
अयोगे रागता चेद्धा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-३२॥

प्राप्त वस्तुमे भी राग न हो तो यही एक अपना विवेक है। किसी चीजमे राग करते हो तो क्या चीज तुम्हारी है ? तुम एक पदार्थ हो, अपनी सत्ता लिए हुए हो, सो तुम, तुम ही हो; तुम्हारी कोई अन्य चीज नही है। फिर राग करना मूर्खता है, क्योंकि तुम्हारी चीज कुछ है ही नही। अपनेसे बाहरमे तुम व्यर्थकी दौड लगा रहे हो। बाह्य चीजोका आश्रय कर राग हो गया। रागके कारण ही ये सारे दुःख है। घरकी, स्त्रीकी, पिताकी, मित्रोकी अनुरक्ति रखना ही राग है। इस रागसे तो दुःख ही होगा।

सुख तो एक परम समाधि दशामे है। सबसे हट गये, विकल्पोसे परे हो गए, ज्ञान-ज्योति मात्र अपना अनुभव कर लिया तो समझो आनन्दका मार्ग मिल गया। आनन्द किसी

परवस्तुसे नही मिलेगा । राग छोड दो तो आनन्द मिल जायगा । किसी भी वस्तुसे राग हो तो आनन्द मिलेगा ही नही । जैसे विद्यार्थी लोग पाठ रटते है, याद करते है यह तो अच्छी बात है । मगर जो उनमे व्याकुलताएँ है वे किस कारणसे है कि राग उनमे लग गया है कि मैं पास हो जाऊँ । बहुतसे ऐसे कुशाग्र बुद्धि वाले भी लडके होते है जो केवल पढनेका ही यत्न करते है । पास फेलकी उन्हे कोई चिन्ता नही रहती है । वे अत्यन्त सरल सीधे सादे होते है । वे केवल पढना ही अपनी जिम्मेदारी समझते है । इसीसे वे खुश रहते है ।

बहुतसे विद्यार्थी ऐसे होते है जिनका आशय केवल पढ़ना व जानकारी करना ही होता है, उन्हे प्रसन्नता भी रहती है और सफलता भी मिलती है और बहुतसे विद्यार्थी ऐसे भी होते है जो इस विचारसे पढते है कि पास होना जरूरी है, यदि पास नही होगे तो साल बेकार हो जायगा, आर्थिक नुक्सान भी हो जायगा । इस प्रकारके विद्यार्थियोको आकुलताएं ही हो जाती है, क्योकि उनके राग है । घरमे ही देखो तुम्हारे माँ-बाप कितना तुम्हारे पीछे खर्च कर रहे है ? वे सारे कष्ट तुम्हारे पीछे उठा रहे है तो उनका तुम्हारे प्रति राग है, इसी से उनमे आकुलताएँ है । आकुलताएँ तो रागसे ही है । यदि राग न हो तो आकुलताएँ ही क्यो हो ?

एक देहाती था । उसका लड़का शहरमे किसी कालिजमे पढता था । वह लडका बोर्डिग हाऊसमे रहता था । उसके पिताने सोचा कि चलें लडकेसे मिल आवें, कुछ नाश्ता वगैरा दे आवें, पैसे दे आयें । सो वह घुटनो तक धोती पहिने, तनीदार मिर्जाई पहिने और सिर पर एक साफा बाँधकर कालिज गया । बोर्डिग हाऊसके लडकोसे बुलवाया कि फलाँ नामका एक लडका है उसको बुला दीजिए । अब वह लडका आ गया । साथमे ४–६ जो दोस्त थे वे भी आ गये । वे सब तो अच्छी पोशाकसे, वेश-भूषासे आए, कोट पैन्ट, बूट, टाई लगाकर और उसका पिता उसी देहाती सूरतमे मिलने आया । अब दोस्त लोग पूछने लगे कि कहो मित्र ये तुम्हारे कौन है ? जो खाना-पीना भी लाये है ? सो वह शानमे आकर बोला कि यह तो हमारा मुनीम है, चाकर है । ऐसा उस लडकेने इसलिए कहा कि साथके बैठने वाले लोग जान न जायें कि इनका पिता ऐसा देहाती है । इतनी बात सुनकर बापका मन लडकेसे हट गया । उसने सोचा कि यह मेरा लडका होकर भी हमे नौकर बताता है । तबसे उस बापने लडकेकी कोई खबर नही ली । पिताका तभीसे उस लडकेके प्रति जो राग था, वह दूर हो गया ।

जब तक राग है तब तक बंधन है और जहाँ राग छोड़ दिया वहाँ बंधन छूट गया । ज्ञानकी बातें यदि उपयोगमे नही आती है, मोह रागके ही चक्कर बने रहे तो उससे

मनोबल मिटता, वचनबल खत्म होता, कायबल भी क्षीण होता और धनबल भी खत्म होता। किसीसे राग करनेमे आत्मामे प्रगति नही है। सो भाई जिन पदार्थोंका संयोग है उनका राग हेय है। जो चीज पासमे नही है इसका क्या राग करना ? जो चीज पासमे है उसका भी राग नही करना चाहिए। पास है तो होने दो। राग करनेसे लाभ कोई नही है। राग करने से तो आकुलताएं ही बनती है। पास हुई चीजमे भी राग नही करना चाहिए। फिर यदि न हुई चीजमे रागद्वेष बना रहे तो यह बडे खेदकी बात है। इस मोही जीवको देख लो कि चीजके न होते हुए भी इसके अधिक राग होता है। आकुलताए बनी रहती है। ऐसी आकुलताओसे हटनेका उपाय है वस्तुस्वरूपका सम्यग्ज्ञान करना। मिली हुई चीज हो या न हो, यह जीव तो ख्याल बना करके राग बना लेता है। सो यदि हिम्मत बन सके तो इन ख्यालोको छोड दो। ख्यालोको छोडनेसे ही सुखी हो सकते हो।

शुद्धात्मान विहायान्यचिन्ता पापोदयस्ततः।
अन्यचिन्तां पृथक्कृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-२३॥

एक शुद्ध निज आत्माका चिंतन हो यह तो है विवेककी बात और अपने आत्मतत्त्व को छोडकर अन्य किसी चीजकी चिंता न हटी तो यह है पापका उदय। चिंतावोसे आत्माको कोई लाभ नही है। चिन्तावोसे तो बुद्धि भी बिगडती है। सो अन्य चिन्तावोके वातावरणो से दूर होनेपर ही कुछ लाभ मिल सकेगा। यदि चिन्ता (चिन्तन) ही करना है तो अपने आत्मस्वरूपकी चिन्ता करो कि मैं ज्ञानस्वरूप हू, आनन्दमय हू। केवल दृष्टिके फेरसे सारे संकट छा गये है। सो इस बाह्यदृष्टिको मिटावो, शुद्ध दृष्टि करो तो ये सारे संकट समाप्त हो जावेंगे। सो मैं अपने ज्ञानस्वरूपको सभाल कर रखू, इस आत्माको ही अपना रक्षक बनाऊ तो इस तरहकी भावनाओसे, पुरुषार्थसे चिन्ताए दूर हो सकती है। चिन्ताए न होनेका यही उपाय है। यह लडका बहुत अच्छी तरहसे रहे, दुकान अच्छी तरहसे चले, समाज और राष्ट्र के मैं कुछ काम कर डालूं तथा अन्य-अन्य विषयक भी चिन्ताएं होती है। ये चिन्तायें सब पापोके उदयका कारण होती है व पापोका बन्ध कराने वाली है जिससे भविष्यमे पापोदय होगा व क्लेश होगा। अत: बाह्यदृष्टिको मिटावो। बाह्यदृष्टि ही चिन्तावोका कारण है।

गुरु जी सुनाया करते थे कि एक गांवमे एक युवक रहता था। वह बडा बलवान् था। राजाका हाथी जब निकलता था तो हाथीके पैरोमे बधी हुई साँकलको वह पैरोसे दाब लेता था तो हाथी खडा हो जाता था। राजा बहुत परेशान कि जब भी हाथी यहाँ आता है तो यह हाथीकी साँकल पर पैर रखकर हाथीको रोक लेता है। इसको कुछ चिन्ता नही है, इसीसे यह ऐसा बलवान है कि हाथीको यह खडा कर लेता है। अगर इसके चिन्तायें

बना दूं तो इसकी पहलवानी सब रह जायेगी। हाथीको फिर न रोका करेगा। राजाने सोचा कि कोई न कोई चिन्ता इसके लगा दूं। उस राजाने उसको बुलाया, उसकी मां को भी बुलाया। कहा देखो उस मंदिरमे रोज चिराग जला दिया करो तो मेरे राज्यकोषसे तुम दोनोको खानेको अन्न सामग्री मिला करेगी। उसने स्वीकार कर लिया। अब उसे केवल दीपक जलानेकी चिन्ता हो गयी। जब दोपहर हो जाती तो शामको चिराग जलानेकी चिन्ता लग जाती। केवल इतनी ही चिन्तामे उसका सारा बल घट गया। अब वह राजा अपना हाथी लाता तो सांकल पर पैर रखकर वह दावे तो हाथी झटका देकर निकल जाता। अब उसके पैरसे दाबनेका कुछ असर नही पडता।

भैया, चिन्तासे केवल शारीरिक बल ही नष्ट होता है ऐसा नही है, चिन्तासे आत्मबल भी क्षीण हो जाता है। सो भैया, चिन्तावोको त्यागो। जब तक मोह है तभी तक चिन्ता है। इन चिन्तावोसे यदि छूटना है तो मोह को त्यागो। यह बात निश्चित है कि इस मोहके कारण ही सारी चिन्ताएं लग जाती है और इन चिन्तावोके कारण ही सारी आकुलताएं बनी रहती है। इसलिए सब प्रकारके मोहको त्यागकर अपनी आत्माके निकट रहो। किसी भी चीजमे मोह न रहे क्योकि वे सब पदार्थ तुमसे बिलकुल जुदा है। कोई भी चीजें तुमसे मिली हुई नही है। उनकी आशा न करो। उनमे मोह करनेसे पूरा नही पडेगा। इसलिए बाह्यपदार्थोकी चिन्ताएं छोडकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

पराशाजीविनो मूढः स्वातन्त्र्य मन्यते बुधः।
शं स्वातन्त्र्य विना नातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–३४॥

जो परपदार्थोकी आशा रखकर जीवित है, वे मोही है। परकी आशा करनेके मायने है परपदार्थोसे ही अपने सुख एव हितकी आशा मान रखी है। जब तक यह आशा है तब तक मन चचल है। जिससे सम्यग्ज्ञान नही है अर्थात् परपदार्थोका जो स्वतन्त्र स्वरूप नही जानता वही परकी आशा करता है। वस्तुका स्वरूप आचार्योने बताया है—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे युक्त यह पदार्थ है। इस लक्षणमे सब प्रकारका उपदेश समाया हुआ है। पदार्थ स्वय अपनी परिणतिसे उत्पाद करता है और अपने पूर्वपर्यायका व्यय करता है। फिर पदार्थ अपने स्वभावसे शाश्वत ध्रुव रहता है। यह स्वय पदार्थोका स्वभाव है कि वे बनें बिगडें और बने रहें। किसी परपदार्थके कारण कोई दूसरा पदार्थ नही बनता है। किसी दूसरे पदार्थके कारण दूसरे पदार्थ नष्ट नही होते है और किसी दूसरे पदार्थके कारण कोई दूसरा पदार्थ ध्रुव नही है। अपने ही स्वरूपसे वह उत्पन्न होता है, विपयोको प्राप्त होता है और सदाकाल बना रहता है। इससे यह शिक्षा मिली कि मै भी

एक पदार्थ हू । सो अपने स्वरूपसत्त्वके कारण परिणमनशील हू, क्योंकि यदि परिणमन न होता तो इसके सत्त्व नही रह सकता था ।

जो भी पदार्थ है वे नियमसे परिणमनशील है । मैं हू तो मेरा काम भी हो रहा है । वह काम चाहे परपदार्थोका निमित्त पाकर विभावरूप हो और चाहे शुद्ध स्थिति पाकर उसके स्वभावरूप हो, परिणमन जरूर होता है । मेरा स्वरूप परिणमन मेरे ही स्वरूपमे मेरे अस्तित्वके कारण होता है । मुझमे कोई दूसरा परिणमन कर देता हो, ऐसी बात नही है । हाँ विभावपरिणमनमे परपदार्थ निमित्त होता है । जैसे यही गैस है, कल हवा चलनेके कारण फक-फक कर रही थी, आज कचरा अटकनेसे अंधेरा उजेला कर रही है, इसी तरह इस जीव के असभव बननेके दो कारण है—भीतरका भावकर्म और बाह्यमे द्रव्यकर्म । कर्मका उदय होनेसे भावकर्म बन गये । द्रव्यकर्मके उदयमे भावकर्म हो गये । ऐसा निमित्तनैमित्तिक भाव है । फिर भी प्रत्येक जीव खुद ही बुरा बनता है । कोई दूसरा उसे बुरा नही बनाता । यह जीव यदि मुक्त होता है तो खुद ही मुक्त हो जाता है । दूसरा जीव उसे मुक्त नही कर देगा । यद्यपि निमित्तनैमित्तिक भाव बना रहा, फिर भी प्रत्येक पदार्थ अपनी ही परिणतिसे परिणमता है । इस वस्तुस्वरूपका जिन्हे ज्ञान नही है परकी आशासे ही वे अपना हित समझते है ।

जगतमे अनन्त जीव हैं । उन अनन्त जीवोमे सबको इस मोही जीवने छोड दिया और उन चार व्यक्तियोको ही पकड लिया जो चार घरके बीचमे रहते है । उनकी इतनी ही सारी दुनिया है । किन्तु ज्ञानी पुरुष सारी दुनियाके समस्त जीवोको अपने ही सामान निरखता है या फिर उसका कोई नही है, केवल वही है । अनन्त जीवोमे से ये घरके दो चार जीव मेरे है ऐसी छटनी ज्ञानी जीव नही करता है । यह ससार बडा गोरखधंधा है कि पर को छोडते भी नही बनता और उनका बनाव बिगाड भी कुछ किया नही जा सकता । कोई जीव किसी अन्यको ग्रहण कर सकता है क्या ? उन पर अधिकार रख सकता है क्या ? ये तो बाहरी पदार्थ है । जब तक निकट है तब तक है और जब नही है तब नही हैं ।

भैया, बाहरी पदार्थोंमे राग हो अथवा उनका समागम हो तो भी यह जीव केवल अपना ख्याल बनाता है । ख्यालके आगे इस जीवकी अन्य कुछ करतूत नही । सो यह जीव बाह्यपदार्थोको बिगाड नही सकता और न सुधार सकता है, किन्तु इतना शुद्ध उपादान नही है कि ऐसा साहस बने कि बाहरी पदार्थोंको छोडनेका भाव रखें सो छोडते भी नही बनता । ग्रहण तो वैसे होता ही नही है । वस्तुत. तो जीव न परको ग्रहण करता और न छोडता, केवल परविषयक ग्रहण त्यागके भाव बनाता है । कैसी भी स्थिति हो, आनन्द प्राप्त होगा तो यथार्थ ज्ञानसे ही होगा । छोड़ना तो सबको ही पडेगा, सदा कुछ नही रहेगा । यह तो

लौकिक संग है। कोई अभी मिटेगा, कोई बादमे मिटेगा। चीजें कभी भी मिटें, पर उनके मिटने पर जरूर वियोग होगा। ज्ञानी पुरुष वस्तुवोके सयोगके समय भी यह समझना है कि इस वस्तुका वियोग जरूर होगा। इस काल सयोगमे भी वह हर्ष नही मानता। ज्ञानी जीव परवस्तुसे अपने स्वरूपको पृथक् समझता है। वह जानता है कि मैं मैं हू और यह, यह है, पृथक् है। ऐसा ज्ञानी जो कि यथार्थ ज्ञानी है वह परकी आशासे जीवन नही मानता।

अज्ञानी जीव यह समझते है कि परवस्तुवोसे ही हमे प्रसन्नता मिलती है, उनसे ही हमारी जिन्दगी चलती है। सो उस भ्रममे ही उसे आकुलताएँ मिलती है। पर ज्ञानी जीवके आकुलताएँ बिल्कुल नही होती है। ज्ञानी पुरुष अपनेको स्वतन्त्र जानते है, अपनेको सबसे प्यारा केवलज्ञान आनंदभावस्वरूप, सबसे निराला, एक विलक्षण किन्तु सबके स्वरूपके समान मानते हैं। यह है और परिणमता रहता है। इसमे किसी दूसरेका दखल नही है। दूसरोके विरोधी कार्य देखकर यह गुस्सा भी हो जावे, तब भी वह गुस्सा किसी दूसरेकी परिणतिसे नही होता, वह स्वय ही अपना विचार बनकर अपनेमे विचार कर रहा है। इसी तरह सारी उसकी परिणतियाँ उसके ही परिणमनसे हो रही हैं। दूसरे मेरे आधीन नही। मैं भी दूसरो के आधीन नही हू। जब स्वतन्त्रदृष्टिसे अपनेको देखें तो परमे विकल्प ही न प्रकट हो। यदि ऐसी स्थिति हो तो सुख प्राप्त हो सकता है। इस कारण मैं अपने ही स्वरूपको निरखता हुआ अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होनेका प्रयत्न करूं।

देवभक्तावपि ध्यान भाव: स्वस्यैव वर्तते ।
स्व: स्वस्मै शरणं तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४-३५।।

यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि कमसे कम प्रभुभक्ति तो शरण है, प्रभु तो शरण बनेगा। फिर क्यो कहा जा रहा है कि एक पदार्थका दूसरा पदार्थ शरण नही है। मेरे लिए मैं ही शरण हू, दूसरा कोई शरण नही है। भगवानकी भक्तिमे तो भक्त ससारसे पार हो जाते है प्रभुकी शरण तो सच है। इसके समाधानमे यह कहा जा रहा है कि प्रभुकी भक्ति जो करते है, आप पहिले इसका ही निर्णय कर लें। प्रभु तो अपनी ही जगह विराजे है प्रभु तो अपने ज्ञान और आनन्दमे मग्न है। प्रभुको हम कुछ कर लिया करते है क्या? अगर हम प्रभुको कुछ कर देते है तब तो हमारी बडी ऊँची नवाबी हो गयी कि हम तो भगवानको भी कुछ कर देते हैं। भगवानका हम कुछ बिगाड सकते है क्या? नही। भगवानमे हम कुछ सुधार कर सकते है क्या? नही। भगवानकी हम निंदा कर सकते है क्या? नही। भगवान की हम प्रशंसा कर सकते है क्या? नही। भगवानको हम प्रणाम कर सकते है क्या? नही। भक्त भगवानको अपने उपयोगका विषयमात्र बनाकर भजन कर सकते है उनका परिणमन

और भी कुछ करते हैं क्या ?

आप कहेंगे कि निन्दक भगवानकी निन्दा तो करते हैं—भगवान बुरा है, वह अच्छा नहीं है, दुष्ट है । अरे जो निन्दा करते है अपने ही कषाय उगल रहे है । वे भगवानकी कुछ निन्दा नही कर सकते हैं । भगवानका कोई दूसरा कुछ नही करेगा । जिसमे जैसी अज्ञानता है, मूढता है उतना ही वह अन्तर्विकार व्यक्त कर रहा है । परिणाम प्रकट कर रहा है । भगवानका वह कुछ नही कर रहा है । इसी तरह भगवानकी कोई प्रशंसा करता है तो वहाँ भी वह भगवान्की प्रशंसा नही कर रहा है, किन्तु वह भक्त सत्य है; सरल है, शुद्ध ज्ञानका प्रेमी है, भगवानका जो शुद्ध स्वरूप है उसको रुच गया है सो अपनी जो विशुद्धि है उसको ही व्यक्त कर रहा । वह भगवानकी भक्ति नही कर रहा है, किन्तु अपनी विशुद्धि व्यक्त कर रहा है ।

भैया, प्रभुभक्तिमे भी जो ध्यान बनता, वह ध्यान प्रभुका है कि तुम्हारा है ? वह ध्यान तुम्हारा ही तो है । प्रभुके पूजनमे जो कुछ भी परिणाम बनें वे तुम्हारे हैं कि उस प्रभुके है ? वे परिणाम भो तो तुम्हारे ही है । प्रभुके गुणस्मरणरूप परिणाम तुम्हारे ही है । प्रभुकी भक्तिमे जो भाव बनते है वे भाव तुम्हारे ही है । वे भाव प्रभुके नही हैं । इसलिए भक्तिके समयमे भी जो शरण बना, वह खुद ही खुदके लिए शरण बना । लोकमे भी देखो—जब तक तुम अच्छे हो तब तक तुम्हारे लिए सब लोग अच्छे है, पड़ोसी भी अच्छे हैं और तुम यदि बुरे हो गये, खोटे हो गये, विरोधी हो गये तो पडौसी भी तुम्हारे लिए बुरे हो गये । यदि हम चाहते है कि लोग-बाग अच्छे रहे तो इसका उपाय क्या है कि हम स्वयं अच्छे रहे । इस लोकमे जो कुछ भी मुझे मिला वह मेरे आचरणसे ही मुझको मिला, दूसरेसे कुछ नही मिला ।

निश्चयमे खुद ही खुदके लिए शरण है । दूसरा कोई मेरे लिए शरण नही है । कोई चाहे कि खुद बुरे बन जायें, पाप करें, दूसरे जीवोकी हत्या करें, अथवा दूसरोकी स्त्रीको सतायें, बुरी दृष्टि करे और फिर भी लोग उसको मानते रहे, प्रेम करते रहे यह तो नही हो सकता । खुदका ही आचरण खुद ही का शरण हुआ । दूसरोका कुछ परिणमन शरण नही हुआ । प्रत्येक स्थितिमे यह आत्मा अपना उत्तरदायी है । इसका जिम्मेदार कोई दूसरा आत्मा नही है । खुद ही खुदके लिए शरण है । परका विकल्प छोडकर अपनी ही जिम्मेदारी समझकर अपनी भूमिकाको शुद्ध बनाओ और ऐसा ही शुद्ध रहनेका यत्न करो, इससे ही अपने आपमे सुखी हुआ जा सकता है । यही यत्न निश्चय रखो ।

किं स्वानुकूलनेऽन्येषां किं स्वस्यान्यानुकूलने ।
शं स्वानुकूलने स्वस्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-३६॥

मैं दूसरोंको अपने अनुकूल बना लू ऐसा भाव स्वयं जीवमे रहता है और मैं दूसरोंके अनुकूल बन लूं यह भी भाव जीवके रहता है। दूसरोंको अपने अनुकूल बनायें तो उसमे भी आत्मा सुखी नही, क्योंकि इन यत्नोमे परकी दृष्टि है, परकी आशा है। जिस-जिस वृत्तिमे परकी दृष्टि है अथवा परकी आशा है उन-उन वृत्तियोमे सुख नही हो सकता है। हम चाहते है कि ये जीव मेरे अनुकूल बन जायें अर्थात् ऐसी मशा रहती है कि इन लोगोकी मेरी इच्छा माफिक प्रवृत्ति हो जाये, पर ऐसा नही हो सकता है।

कोई सोचे कि ये मेरे भाई हैं, ये तो मेरी इच्छाके विरुद्ध चल ही नही सकते। ये मेरे मित्र है, ये मेरे विरुद्ध नही हो सकते है, स्त्री पुत्र मेरे है, ये मेरे विरुद्ध नही चल सकते है, ऐसा सोचना भ्रम है। जब तक आपके कारण उन्हे सुख है तब तक अपने आपका मतलब हल करनेका वे यत्न करेंगे। मैं इनका स्वामी हू इनका अधिकारी हूँ यह सोचना बिल्कुल झूठ है। वे आपके अनुकूल चल ही नही सकते हैं। वे अपने विषयकषायके कारण, अपनी खुदगर्जीके कारण अपने कषायके अनुकूल चलते है। जब सबका एक ध्येय होता है, प्रवृत्ति भी परस्पर अनुकूल हो जाती है सो वहाँ भी एककी वजहसे दूसरेकी प्रवृत्ति नही है, किन्तु कषायसे कषाय मिल गई सो मित्रता मान लेते है।

कभी किसी मुनिसंगमे हजारो मुनि साथमे रहते थे और उनमे एक मुख्य आचार्य थे। हम आपको तो यहां पर एक घरमे चार आदमी सभालनेमे मुश्किल पडता है और वहाँ हजारो मुनियोमे एक आचार्य था। वह कैसे सबको संभालता था। भैया, वे मुनि अगर आत्मकल्याणकी इच्छा रखते है, मोक्ष प्राप्त करने, निर्विघ्न रहनेका ही उनका प्रयोजन है तो उन्हे संभालना नही पडता था। यदि वे मुनि भ्रष्ट होते उनको आत्मकल्याणकी इच्छा न रही, केवल पेटपूर्तिकी ही इच्छासे रहे होते तो उन्हे संभालना पडता, पर वे स्वयं अपने आत्मकल्याणकी इच्छा करते थे इसलिए उन हजारो मुनियोको संभालना नही पडता था। सर्व आगमानुकूल प्रवृत्तिका व निवृत्तिका भाव रखते थे। परस्पर उनका व्यवहार विनयपूर्वक होता था। सबकी दृष्टि एक थी।

किसी घरमे अगर चार भाइयोकी दृष्टि एक है तो वे संभलते हुए रहते है, और यदि उनके ध्येयमे विवाद हो जाय तो उन्हे संभालनेमे बडी कठिनाई पडती है। जब कोई साधु अपनी मान प्रतिष्ठामे रहता है, अकल्याणके भावोमे प्रवृत्ति रहती है तब तक उसे संभालनेमे बडी परेशानी होती है, पर उसका तो लक्ष्य एक होता है, कल्याणकी भावना रहती है यदि

उन सबका संग व्यवस्थित रहता है, वे स्वयं आत्मकल्याणकी इच्छासे ऐसी प्रवृत्ति रखते है तो आचार्यादिके अनुकूल हो जाता है। दूसरोको अपने अनुकूल करनेमे क्या लाभ है? लाभ तो अपने आपके अनुकूल होनेमे है अर्थात् जैसा अपना सहज स्वरूप है उस स्वरूपके निरखने मे है। सो मैं अपने स्वरूपको निरखकर अपनेमे अपने लिए आप स्वयं सुखी होऊ।

सुखी होना या दुःखी होना यह होता है अपनी करतूतसे। दूसरोकी करतूतसे न सुख होता है और न दुःख होता है। दूसरोके करनेसे या कहनेसे न बुरे हो सकते है और न धर्मात्मा हो सकते है। खुदका आचरण जैसा है वैसा ही सामने आयेगा। दूसरोके आश्रय पर तुम्हारा भविष्य निर्भर नही है। तुम्हारा भविष्य तो तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। दूसरे उसमे क्या कर सकते है? पुराणमे कितनी ही कथायें आती है। किसीके पापका उदय हुआ तो उसको कितना ही धन दे दिया, कितनी ही सम्पदा उसके पास रख दी तो भी सुखको प्राप्त न हो सका। दूसरेकी करतूतसे दूसरोको सुख नही प्राप्त हो सकता है। अन्य चेतन या अचेतन पदार्थ उसके सुखका कारण नही बनेगा। कहो ऐसी भी कुबुद्धि आ जाय कि वह उन हितैषियोको बैरी मानने लगेगा और उन हितैषियोके विरुद्ध होकर वह यत्र तत्र चला जायगा।

भैया, पापोके उदयमे कोई सहायक नही होता और पुण्यका उदय है तो उसे कोई दुःखी नही कर सकता। जैसा धवल सेठने श्रीपालको मारनेके लिए कितने प्रयत्न किये, पर वह सेठ श्रीपाल का बाल बाँका न कर सका। राम, लक्ष्मण, सीता जगलमे रहे, सो जगलमे क्या रोज-रोज ही उनको आराम मिलता रहा? नही। किसी किसी दिन तो राजा महाराजा भी भगवान् रामकी सेवा करनेके लिए जगल जाते थे, पर कभी-कभी बहुत कष्ट भी होते थे। १२ वर्ष तक वनमे रहे, उनको वैसे तो कोई कष्ट नही रहा। ऐसे दिन भी हुए तो होगे कि ककरीली जमीन पर लेटे होगे। भाजी फलका ही भोजन किया होगा। पुण्यका उदय विशेष था सो ऐसे दिन बहुत कम रहे होगे जब कष्ट उठाना पडा होगा। कष्टके दिनोमे चूकि तीनो को एकसा भाव था, तो वे भी दिन आरामसे गये, सुखसे ही गये।

आराम इसका नाम नही है कि गद्दी मिले और आरामसे पडे रहे। कितना ही काम करो और चित्तमे प्रसन्नता है तो आराम है और अगर चित्तमे प्रसन्नता नही है तो आराम नही है। चित्तमे प्रसन्नता होती है सहज ज्ञानसे। भ्रममे ही न पडे रहे, वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें तो उसको आराम मिल सकता है। परवस्तुकी आशा रखी, अपने अधिकारमे करने की इच्छा की तो ऐसे भावसे आराम नही मिल सकता। सो दूसरोको अपने अनुकूल करने का विकल्प किया और अपनेको दूसरेके अनुकूल करनेका विकल्प बनाया तो उससे आराम नही रहेगा, व्यवहारमे तो ऐसा कुछ करना पड़ता है, पर परमार्थसे इन बातोसे आत्माको

तत्त्वकी बात कुछ नही मिलती। आत्मतत्त्वकी बात तो यह है कि जैसा आत्माका स्वरूप चैतन्यमात्र है, उसको ही अपने उपयोगमे लावो, उसकी ही दृष्टि रखो तो शांति प्राप्त होगी। यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो शांति न प्राप्त होगी। भीतरसे यह निर्णय होना चाहिए कि मेरे लिए मैं ही हू, मै ही ज्ञानज्योतिमात्र हू, मै ही सर्वस्व हू। इस अपने स्वरूपका ही मुझे भरोसा हो तो इसकी ही उपासनासे सुख प्राप्त हो सकता है।

न हानिः सहजे ज्ञाने किन्तिवदानी न सा दशा।
अतश्चिन्तानिरोधेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–३७॥

यह जीव ज्ञान तो करता है। पर ऐसा ज्ञान हो कि जाननेका यत्न न करना पड़े और अपने आप जानता हुआ रहे। तो उस जाननेमे जीवको लाभ है और जो जान-बूझकर किसी चीजको जानता है तो उस ज्ञानमे राग द्वेष मिला हुआ है। किसी बातको जान-बूझकर अपनी तरफसे कोशिश करके जानता है तो उसमे राग द्वेषका पुट है और जो कोशिश करके नही जानता, किन्तु अपने आप स्वय ज्ञान हो जाये तो उसमे राग द्वेष नहीं है, उसमे लाभ है। उसमे जीवको हानि नही। ऐसा जो सहज ज्ञान है उस ज्ञानमे हानि नही, पर इस समय तो ऐसी दशा हम आप लोगोकी है नही, जान बूझकर जाननेका यत्न करते है, राग द्वेष भरे हुए है। सो जब तक सहज ज्ञानकी दशा नही होती तब तक जीवको शांति नही होगी।

जैसे धनसे शान्ति नही होती है। सौ हो गये, हजार हो गये, फिर लाख हो गये, कभी शान्ति नही होती है। इसी तरह जो जान बूझकर ज्ञान किया गया है उस ज्ञानके साथ मे आशा लगी ही रहती है। सो उस जीवको अच्छा फल न होकर बुरा फल हो जाता है। अब जैसे मान लिया कि बी. ए., एम. एस. सी. कुछ भी पास कर जाए तो उसके सामने और कुछ न कुछ पढनेको रखा है। अभी एम. ए. होगे। एक विषयमे एम. ए. हो गए, अभी एक विषयमे एम. ए. और करेंगे। अभी डाक्ट्रेट कर लें, और जो जो कुछ है कर लें। जैसी धनकी बात है वैसी ही बाहरी विद्याकी बात है।

बनावटी ज्ञानकी तो यह दशा है और जो स्वय ज्ञान है। सहज ज्ञान है, उसकी प्रारम्भिक अवस्था तो ऐसी है कि कह लो वह संकुचित रह जाता है। पर उस सहज ज्ञान का ऐसा प्रताप है कि उसका प्रसार होगा। वह रस्साकस्सीकी तरह है। जितना प्रतिभास हो जाये डटकर, मेहनत कर उतना ही ज्ञानका फैलाव होगा। सो वह भी लब्धिके अनुसार है। सर्वका ज्ञाता बननेका कारण भेदज्ञान है। सो वह सहजज्ञानके परिचयसे ही मिलेगा।

यहाँ दो विषय हैं। एक आत्महितका विषय है और एक लौकिक सुख साधन

बनाने का, पाप बनाने का विषय है । दोनो ही विषय अलग-अलग है । लौकिक विषयोकी बात तो आजकलकी जो परम्परा है उसमे मिलती है और आत्मज्ञानकी बात आत्मस्वरूपके अथवा द्रव्यस्वरूपके, वस्तुस्वरूपके प्रवगममें मिलती है ।

लौकिक प्रताप तो आजकी विद्यामे देखने है । शांतिका मार्ग और तात्विक बात अपने इस आत्मज्ञानमे दिखती हैं । सो जिसका जैसा रूप है, जिसका जैसा भविष्य है, उसकी वैसी रुचि है । कितने ही लौकिक विद्यामे निपुण होते हैं और कितने ही आत्मविद्यामे निपुण होते है । किसीके दोनो ही बातें एक साथ है । इन सब बातोमे जो सहज ज्ञान है, उससे जीव को कभी भी हानि नही है । पर अभी तो वह दशा नही है । यह सहजज्ञान कैसे बने ? यहाँ तो यहाँ वहाँकी चितायें ही लगी रहती हैं, विकल्प ही मचा करते है । यहाँ वहाँकी चिताए रखने से अपनेमे सहजज्ञान नही बनता है । सो चितायोका निरोध करके अपने आपको जो कुछ भी स्वयं ज्ञान होता हो, वह होने दो । उस ज्ञानसे ही स्वाभाविक आनन्द उत्पन्न होता है ।

सुखं हि सर्वसन्यासस्तु कुर्वे सर्वसंग्रहम् ।
दुःखोपायेन किं श स्यात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४-३८।।

सुख तो सबके त्यागमे है । जितना जो कुछ लपेटा रहेगा उतना ही दु ख बना रहेगा दु'ख तो रागसे है, मोहमे है । जिन लोगोके मोह है वे दुःख ही दुःखमे है । राग करते समय तो दुःख नही मालूम देता है । राग तो करते समय अच्छे लगते है, मेरा घर है, द्वार है, लोग है, इष्ट है, प्रिय है—ऐसा मोह करते समय तो बडा अच्छा लगता है पर इसका परिणाम खोटा ही होवेगा । मोहमे तो रागकी ही धुन रहती है । वहाँ विवेक नही जगता है, पर यह तो निश्चय है कि जहाँ संयोग होगा वहाँ नियमसे वियोग होगा । इसके वियोगकी दो ही बातें है या तो खुद यहाँसे चले जायें या अपने देखते-देखते ही चीजें विनश जायें । सो वियोगमे तो आत्माको प्रकट दुःख ही होगा । जिस सयोगमे राग किया उस समय ही तो आकुलता करता है । उस परिणतिके दुःखमे भी तो तेरे लिए कोई रक्षक नही है । वियोग होते समय तो आँसू बहाकर रोने की नौबत आती ही है ।

जिसने विवेकका परिणाम बना लिया उसको दु.ख नही मिलेगे । उसको तो सुख ही रहेगा और जो अपनेमे अज्ञानका ही परिणाम रखेगा तो वहाँ दु ख ही रहेगा । किसीका कोई साथ देने वाला नही है । कितना ही आज्ञाकारी पुत्र हो, शिष्य हो, भाई हो, पर है तो भिन्न भिन्न स्वरूप चतुष्टय । सो तेरा अन्य रक्षक तो कोई भी नही है । रावणके कितने भाई थे ? कैसा पुत्र था ? बड़ा वीर पुत्र था, पर जब पापका उदय आया तो न भाईने मदद किया और

न पुत्रने मदद दिया। भाई भी विरोधी पक्षमे चला गया। तो जितना भी संयोग है वह सब क्लेशोको ही उत्पन्न करता है। और जितना संन्यास हो जायेगा, त्याग हो जायेगा, कोई आश्रय न रह जाये, खटपट न रह जाये तो इस सन्यासमे ही उसको सुख होगा।

देखो भैया, सुख तो त्यागमे है। पर करते है सबका संग्रह। सुखसे बिल्कुल उल्टे रास्ते पर चलें तो सुख कैसे मिलेगा ? देखो पहिले गाधी जी वगैरह हुए ? क्या उन्होंने सम्पत्ति जोडी थी ? वे दो एक कपडे ही तो पहिनते थे। तो हमारे बुजुर्ग लोग धनका सचय बिल्कुल नही करते थे और भी देखो, बडे-बडे लोगोने धनके संचयका त्याग कर दिया था तो इसका अर्थ यह निकला कि बडप्पन तो ज्ञान और आचरणमे है। बडप्पन धनमे नही है। यदि ज्ञान और आचरण सही है तो वही सबका त्याग है। सुख तो सबके त्यागमे है। पदार्थोमे सग्रहसे सुख नही मिलता है।

भैया, दु खका उपाय करके सुख चाहे तो कैसे सफलता हो सकती है ? बबूलका पेड बो कर अगर आमका फल चाहे तो यह कैसे हो सकता है ? महुवाकी गुठली बो देवें और आमके फलकी आशा करें तो यह तो नही हो सकता है सुख तो अन्तरसे सबके त्याग से ही होगा। केवल अपने आत्मारामको अन्तरङ्गमे जागृत करते रहो, तो सत्य सुख है। गृहस्थीमे रहकर सब कुछ करना पडता है। पर सब कुछ करते हुए भी यदि ज्ञान रहता है तो ज्ञानका फल जो सतोष है वह आ जायेगा। उस ज्ञानीको २४ घन्टेमे कभी न कभी अपने आत्मस्वरूपका ख्याल आता ही है। और अगर ऐसा उपयोग बनने लगे कि किसीका भी विकल्प न हो, केवल अपना ज्ञान सही रहे, स्त्री पुत्र इत्यादिका ख्याल न रहे, उस समय तो सहज आनन्द जग ही जाता है।

ऐसा विशुद्ध उपयोग गृहस्थ कर सकता है कि नही ? बतावो। कर सकता है। वह तो ज्ञानकी चीज है। बाहरकी चीजोसे फँसाव अलग हो तो यो भी कर सकता है और सबके बीचमे रहकर बाहरमे दृष्टि न फँसाकर भी सबको भूलकर अपने आपकी ओर ही रहे, ऐसा भी वह कर सकता है। त्याग जो है वह तो ज्ञानका नाम है। वह ज्ञान यदि बहुत काल तक रखना चाहता है तो उसका उपाय बाह्य पदार्थोंका त्याग है। परन्तु वास्तवमे त्याग तो ज्ञान का नाम है। यदि ज्ञाता दृष्टा हो गये तो समझो कि सबका त्याग हो गया। सो सुख अगर चाहो तो सबका त्याग करो। यदि सग्रहका आशय भी किया तो सुख नही प्राप्त होगा। सो भैया, दुःखके उपायोको त्यागो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

भैया, परद्रव्यकी आशा करनेसे छल, कपट आदि अवगुण घर कर लेते है। एक सेठने बडी भक्तिसे किसी साधुको आहार दिया। उसके फलमें उसके यहां रत्नोकी वर्षा होने

लगी । जब किसी पडौसीने यह वैभव देखा तो सोचा कि यह तो धन कमानेका बड़ा ही अच्छा उपाय है । सो हम भी ऐसा ही करें, साधुको आहार दें । हम भी धनी हो जावेंगे । पहिलेसे ही ऐसी आशा कर ली । एक दिन साधुको आहार देता जाये और ऊपरको देखता जाये कि अब रत्नोकी वृष्टि हो । इस प्रकारसे उसकी आशा बनी रहनेसे रत्नोकी वर्षा न हुई । तो जब तक मूलमे कपट रहे, आशा रहे तो उसमे चमत्कारकी आशा कैसे की जा सकती है ? जब मूलमे दु:खका उपाय रहे, परिग्रहके सचयकी बुद्धि रहे तो इन उपायोसे कहाँसे सुख प्राप्त हो सकता है ? सो भैया, दु:खका उपाय छोडो, सग्रहकी बुद्धिको त्यागकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो ।

परसंगरतो बद्धः स्वस्थो मुक्तोऽग्रहो ग्रह. ।
तस्याग्राह्यस्य ग्राह्यस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-३९॥

जो परपदार्थके संगमे लीन है वे पुरुप बद्ध है । बतलावो कोई पुरुष रस्सेसे, साँकल से बँधा है क्या ? मोडा मोडीसे बँधा है क्या ? वह तो स्वतन्त्र बैठा है । किसीसे बँधा नही है । यदि परपदार्थोंके संगमे बुद्धि लगाये है कि ये मेरे है, इनके लिये खूब धन-वैभव जोडकर रख दूं इत्यादि रूपसे पुत्रादिक परजीवोमे जिसने बुद्धि लीन कर रखी है तो वे तो बंधे ही हैं । वे अपना यह बंधन तोडकर कही नही जा सकते है । तो जीवका बधन तो भीतरका भ्रमभाव ही है । अन्य पदार्थोंके बधन जीवके साथ नही है । वे तो पर है, बधन तो अशुद्ध भावोसे ही हैं । यो भाव कर लिया कि स्वय ही पराधीन बन गये । सो परिग्रहोंमे रत होनेसे ही वे बद्ध हैं और जो परके सगमे रत नही है, जिनकी अपनी निज आत्मामे ही दृष्टि है वे मुक्त हैं, छूटे हुए है ।

बडी कठिन तपस्या है यह कि परमे बुद्धि न की जाय, केवल अपने आपमे ही बुद्धि रहे तथा बडा पाप है यह कि परमे आत्मदृष्टि कर ली, लो बध हो गया । स्त्री-पुत्रादि क्या जीवनभर साथ देंगे ? जीवनभरकी बात तो दूर रही, यही मतलब सिद्ध न होने पर वे जरा सा भी साथ दें सो भी बात नही है । वे तो जब तक दूसरोसे सुख मिलता है तब तक साथ देंगे और यदि सुख नही मिलता है तो साथ नही दे सकते है । यहांके जीव भी तो मलिन है, बद्ध है, उनसे क्या आशा करते हो ? बद्ध जीव कौन है ? जिसने अपनेको परसे बाध लिया हो, वह बद्ध है । उसका यह बाह्यसगम व्यवहारमे निमित्तबधन है । निश्चयतः कोई भी जीव किसी दूसरे जीवका कुछ नही कर सकता है । वस्तुस्वरूकी बातके विरुद्ध कोई भी यह समझे कि ये मेरे है और मानता भी व्यवहारमे है, किन्तु उसमे आसक्ति है तो आसक्तिके फलमे कोडे लगते हैं । तो खावो कोड़े और अगर आसक्ति नही है तो क्लेश नही है । जितने

भी लोग घरके संगमे लीन होगे वे कभी सुखसे नही रह सकते हैं।

बहुतसे लोग कहते है कि मेरा भारी परिवार है। छोटे-छोटे बच्चे है, लोग हैं, उनको तो कैसे छोडना चाहिए ? यदि उनको छोड दें तो पाप है। क्यो भैया, उनको अगर ज्ञाता द्रष्टा रहनेके परिणामके कारण छूट जाते है तो क्या पाप करते है ? यह तो 'नाच न जाने आंगन टेढा' वाली बात है। बातोसे विरक्ति नही होती है, विरक्ति तो स्पष्ट ज्ञानसे होती है।

भैया, सच तो यह है कि मोह ही उन्हे पकड़े है। मोह नही रहा तो उन्हे पकड़े कौन ? पाप तो कलुषित परिणामोसे ही है। अच्छा बतलावो भाग्य उन बच्चोंका अच्छा है कि तुम्हारा अच्छा है ? भाग्य तो उन बच्चोका ही अच्छा है। कैसे ? सो सुनो। लोग सोचते है कि इन बच्चोकी हम खूब खुशामद करें, उनका हम अच्छा पालन-पोषण करें। सो उनकी सेवाके विकल्पसे उनमे ही वे बँधे रहते है। यह निर्णय नही कर पाते कि हम बध रहे है जिनकी हम खुशामद करते है उनका पुण्य बडा है। खुशामद करने वालेका पुण्य बडा नही। वह तो मोह ही करता है। मोहको छोड़कर अपना तो काम केवल एक ही हो कि शुद्ध ज्ञान करें। ज्ञानके सिवाय अन्य कोई प्रवृत्ति करना यह कोई आत्माका कर्तव्य नही है।

यह तो विवशताकी बात हो गयी कि शुद्धोपयोग नही होता तो शुद्धोपयोग करो, उसमे भी यह नही तो यह कर लो। जैसे कि रात्रिको भोजन करनेका त्याग होना चाहिए। यदि भूख ज्यादा सताती हे तो पानी और औषधि रख लो और यदि भूख न सधे तो दूध मेवा रख लो, और यदि भूख न सधे तो साग-सब्जी रख लो, पर अन्नका त्याग कर दो। हमारा कर्तव्य है कि रात्रिको कुछ भी भोजन पान न करें। यदि दूध मेवा इत्यादि भी रात्रि को खाते है तो यह कायरता है। यहां यह बात जल्दी समझमे आ जाती है। अगर भीतरकी बात भी इसी प्रकारसे जल्दी समझमे आ जाये तो यही बुद्धिमानी है। सच ज्ञान आ जाये, मोह हट जाये तो उसके अज्ञान प्रवृत्ति नही हो सकती है।

जब तक गृहस्थ अपने धर्मकी रक्षा नही करता है, अपनेमे निवृत्तिकी भावना नही लाता है तब तक उसकी आन्तरिक कमजोरी है। भाव उच्च ही होना चाहिए। इसी कारण पहिले गृहस्थधर्मका उपदेश हो और पीछे साधुधर्मका उपदेश हो—यह पद्धति जिनशासनमे नही है। पहिले है साधुधर्मका उपदेश और फिर पीछे है गृहस्थधर्मका उपदेश। साधुताकी बात ऐसी है कि साधु अपनी आत्मामे रहे, मोह भावको त्याग दे, गृहस्थीको अंगीकार न करे। अपने आत्माके धर्मको ही करता जाये, उसमे ही वह संतुष्ट रहे। गृहस्थको यह सोचना चाहिए कि मेरे मोह बिल्कुल न रहे। ऐसा ज्ञान हो कि मेरे घरके जो लोग हैं वे मेरे कुछ नही है। यहां ग्रहण करने योग्य कुछ भी चीज नही है। कुछ भी चीजें मेरे लिए हितरूप

नही हैं। सो यथासम्भव यथासमय अपनी आत्मामे ही रमो और सारे विकल्पोको त्यागकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो।

सुखायान्यत्प्रतीक्षैव सुखहत्यामता यतः।
सुखेनास्मि स्वयं पूर्णः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-४०॥

सुखके लिए दूसरे पदार्थोंकी प्रतीक्षा करना, बस यही तो सुखकी हत्या करना है। यह आत्मा तो स्वय सुखसे भरा है। इसका स्वरूप ही आनन्द है। इसको आनन्द कही बाहर से नही लाना है। सो परपदार्थोंसे मुझे सुख मिलेगा, ऐसी आशा करना यही तो संकट है। बाहरी पदार्थोंके चाहनेसे सुख नष्ट होता है और बाहरी पदार्थोंसे सुख न चाहे, तो सुख तो स्वयंमे ही भरा हुआ है। मै स्वय सुखसे परिपूर्ण हू। परन्तु जीवोमे ऐसा मोह लगा है कि अपने आपको रीता समझते है, अपने आपको न कुछ समझते है, अपने आपकी कोई कीमत नहीं मानते है।

मोही जन अहंकारमे आकर तो अनेक झगडे कर डालते है, अनेक क्लेश उठा लेते है, पर अपने इस ज्ञानस्वरूपके देखनेकी जिम्मेदारी नही समझते है। मैं ही मेरेको सुखका दाता हू, मै ही सुखस्वरूप हू, ऐसा मानकर अपने आपकी ओर ये जीव नही आना चाहते है। दूसरे पदार्थोंके ही पीछे खुदका विश्राम नष्ट कर देते हैं। दूसरे स्त्री-पुत्रोके सुखके लिए, उनकी ही वृद्धिके लिए सारे जीवनभर जुतते रहते हैं। सो ऐसी जो पद्धति है यह हितकारी पद्धति नही है।

देखो भैया, प्रातः व सायको प्रभुके दर्शन करनेका नियम क्यो है कि दिन भरके जो उपयोग यत्र-तत्र रहे, यहाँ वहाँ भटके, दिन भर जो पाप बँधे है उन पापोको दूर करनेके लिए हम आप प्रभुके दर्शन करनेके लिए आते है। प्रभुकी मुद्राको देखकर अपने आपमे यह भाव भरते है कि हे प्रभो, मै गल्तियोके मार्ग पर हू। जिन कामोमे मैं लग जाता हू वे सब काम असार है। आपने जिस मार्गको अपनाया था उसमे ही सार है—ऐसा अपने आपमे ख्याल रखनेके लिए और प्रभुके गुणोका स्मरण रखनेके लिए, इस अपवित्र हृदयको पवित्र बनानेके लिए हम आपके दर्शन करने आते है।

हम सब प्रातः दर्शन करने क्यो आते हैं कि रात्रिके समयमे प्रमादकी बुद्धिमे जो हमने पाप किये है और मोक्षमार्गसे विमुख रहे है उन पापोको दूर करनेके भावोसे हम सब आपके दर्शन करने आते है। हम यह ख्याल करते है कि हे प्रभो! करने योग्य काम तो ज्ञानका ही था। केवल हम ज्ञाता दृष्टा रहे, राग द्वेष मोहसे परे रहे, अपने अज्ञानसे भ्रमसे परकी आशा न कर सकें, अनेक प्रकारके प्रसंगोमे अपनेको दुःखी बनाते रहे, वे काम ठीक

नही थे। जो कार्य आपने किये, जिस मार्गसे चलकर आप प्रभु हुए, स्वयं समर्थ हुए, वह मार्ग मेरे चलनेके लायक है। इस तरह दोनो समय अपने आपको सावधान रखनेके लिए प्रभुके दर्शन करनेका नियम है।

सम्यग्ज्ञानमे ही यह शक्ति है कि बाह्य पदार्थोंकी आशाका त्याग कराये। आज यह सब दुनिया अथवा ये मोही लोग केवल परसे हित माननेके भ्रममे बरबाद हैं, जिससे कि सुख नही पाया जा रहा है। दूसरोको तग करके क्या सुख हो सकता है? नही। परमार्थसे तो खुदको ही तग करते हो। ये विषयसे सुख मानते है, परिग्रहोसे आनन्द मानते है, और वैभवके संचय करनेमे, जोडनेमे अपनेको कष्ट दे रहे हैं। अपने सहज चिन्मात्र प्रभुको देखो। अपने ही स्वरूपके समान दूसरे जीवोको मानो। जैसा विश्राम, आराम तुम चाहते हो वैसा ही दूसरे जीवोके लिए सोचो। परमार्थकी बात तो यह है कि हम अपने लिए किसी भी पदार्थ से कुछ आशा न रख, अपने आप पर ही अपने सुखकी जिम्मेदारी मानें तो अपना सुख अपने सामने है।

बतलावो बच्चोसे जो आशा रखते है वे जीवनभर बच्चोके दास रहते है कि नही? आप स्त्रीसे, बालकोसे, पडौसियोसे अपने मतलबकी आशा रखते है। व्यवहारमे ढग खराब है वह तो अलग बात है, मगर भीतरमे अधेरा मच जाता है। आपको अपने आपके इस चैतन्यमात्र, ज्ञानानन्दमय, सबसे प्यारे निजस्वरूपका कुछ भान ही नही रहता है। जो खुद ना बन जाते है वे अपनेको ना समझते है। परसे ही अपना अस्तित्व व रक्षण समझते है। इसी कारणसे उन्हे बहुत क्लेश होते है। सुखके लिए दूसरे पदार्थोंकी प्रतीक्षा न करो अपनी ही ओर झुको और उस ही आनन्दस्वभावमे छककर, लीन होकर सुखी होवो।

उत्तमस्त्याग आशा न प्रतीक्षा यत्र वर्तते।
पराद्दृष्ट्या न सा स्वास्थ्ये स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-४१॥

देखो दो ही तो बाते है—आशा करना और त्याग करना। जहाँ आशा है वहाँ क्लेश है और जहाँ त्याग है वहाँ आनन्द है। पर उत्तम त्याग वही है जहाँ आशा व प्रतीक्षा नही रहती है। घर छोडो और घरकी आशा रखो तो वह त्याग है क्या? नही। कोईसी भी चीज छोड़ो और फिर उसकी आशा करो तो वह त्याग है क्या? नही है। कोई कहे कि इससे अच्छा तो न त्यागना है। सो भी बात बुरी है। यदि आशा रहे तो चाहे बाह्यका त्याग हो, चाहे न हो, आशाका तो स्वभाव ही है कि वह क्लेश ही उपजायेगी। आशा तो दु:ख ही देगी। चाहे छोटी आशा हो, चाहे बडी आशा हो, आशाएँ दोनो ही एक प्रकारकी है, उनमे तो क्लेश ही है। सो उत्तम त्याग वहाँ है जहाँ कोई आशा न हो और न कोई

प्रतीक्षा हो। यदि ऐसी बात बन गई तब फिर आत्महित बन गया।

सो भैया, परद्रव्योमे दृष्टि ही न रखो। अच्छा बताओ यह धन-वैभव कितना ही मिल जाये तो शांति है ? क्या इसका भी कोई निर्णय है ? क्या हजार मिल जाये तो शांति हो जायेगी ? शांति नही होगी। तो क्या लाख मिल जायें तो शांति हो जायेगी ? शांति नही होगी। अच्छा करोड हो जानेपर शायद शांति हो जायेगी। अरे उसमे भी शांति नही होगी। और अगर कोई देश मिल गया तो ? तब भी शाति नही होगी। यही इच्छा हुआ करेगी कि अभी और जमीन जीत लें, अभी और लड लडकर भूमि बना लें। पहिले तो राजा बनानेकी पद्धति थी। अब तो वह बात ही नही रही। अब तो सोसायटी और कमेटी बन गयी है, वे ही राज्य चलाती है। सो इसपर भी जरा-जरासी भूमिके पीछे राष्ट्रोमे झगड़े चलते रहते है। जब तक परकी दृष्टि रहेगी, परके सचयमे हित मानता रहेगा, तब तक यह जीव अपने आपमे नही रह सकता है, वह बाहर डोलता रहेगा।

देखो यह आत्मा बिल्कुल अकेला है, यह जीव बिल्कुल असहाय है। किसी भी समय इस जीवका मरण हो जाये तो वह शरीरको छोडकर अकेला ही चला जायेगा। इस जीवका संगी साथी कोई नही होता। अगर शुद्ध ज्ञानकी बात अपनी ही इस जिन्दगीमे रख लें और अपने ही ज्ञानसे चले अर्थात् यह सब रहते हुये भी उन चीजोका मोह छोड दे और अपना सच्चा ज्ञान बना ले तो सुखी रह सकते है। परन्तु भैया, हो क्या रहा है, जब तक जिन्दा है, घरमे रह रहे हैं तब तक दो मिनटको भी मोह नही छोड सकते और मरने पर सब छोड जाना ही पडेगा। परन्तु जिन्दा रहते हुये गम नही खाते है। जब तक शरीरमे प्राण है तब तक मोह करते ही रहेगे। न सुखसे रह सकेंगे, न खा पी सकेंगे, न कुछ त्याग कर सकेंगे, न कुछ परोपकार कर सकेंगे। जिन्दगी यो ही बिता देंगे।

एक जगह किसी कविने लिखा है कि कजूस लोग सबसे बडे दानी कहलाते है। जो कजूस होते है वे पैसा नही खर्च कर सकते, न खा सकते, न पी सकते, न दूसरोकी सेवामे लगा सकते, ऐसे जो कजूस होते है उनको सबसे बडा दानी कहा है। कैसे दानी बतलाया है कि देखो उस धनमे से कुछ भी अपने लिए खर्च नही करते और अतमे साराका सारा एकदम दूसरोके लिए छोड जाते है। इसीको मान लो, सर्वस्व दान करके चले जाते है। अपने लिए उसमे से कुछ नही किया और साराका सारा दूसरोके लिए छोड दिया। तो यह कितना बड़ा दान है। तो वह कजूस सबसे बडा दानी हुआ।

अरे भैया, हसो न, बात तो ठीक है। वह दानी कैसे हुआ ? उसके परिणाम तो जिन्दगीभर गदे रहे, उसने पाप किए, मलिन परिणाम रखे, वह अगर सबको ले जा सकता

तो क्या एक पाई भी छोडता ? सो सबने इन बातोमे घुटने टेक दिए। किस बात पर कि मरण पर एक पाई भी साथ नही जाती। जब तक जिन्दगी है तब तक माना करते हैं पर घुटने यहा टेक देते है। वे मरने पर कुछ भी साथ नही ले जा सकते है। सो जीवित अवस्थामे जैसे परिणाम किए उन परिणामोके फलमे यह जीव उसी सस्कार मे उसी भावमे लीन है सो ऐसे कंजूस लोग मरकर उस सम्पत्ति पर सर्प बन जाए तो कोई आश्चर्य नही है मगर सर्प होकर भी क्या उस धनको वे खा भी लेंगे ? नही।

मोही जीवके ऐसे संस्कार हैं, उनने वासना भरी है। उनमे ऐसा भाव भरा हुआ है कि परमे ही दृष्टि रहेगी। जब तक इस जीवकी दृष्टि परमे रहेगी तब तक वह अपने आपमे नही आ सकता है और जब तक यह जीव अपने आपमे नही आता तब तक यह सुखी नही हो सकता है। सो परकी दृष्टिको त्यागकर भैया, अपने आपमे आवो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

भोगे योगे न शान्तिस्त्विच्छाहीनो वर्तते हि यः।
शान्त्याधारः स एवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–४२॥

जिसके जब तक इच्छा है तब तक उसे शांति नही है चाहे वह भोगमे रहता हो, चाहे योगमे रहता हो, चाहे त्यागवृत्ति बना ली हो और चाहे घर कुटुम्बमे रमता हो, पर जब तक इच्छा है तब तक उसे शान्ति नही प्राप्त हो सकती है। भैया, शांतिका आधार तो वे खुद ही है, किन्तु शान्ति ढूंढते है परद्रव्योमे। सो जहाँ परमे दृष्टि गई वहाँ अशांति है। जब मोह छाया हुआ है, मूढता सिर पर सवार है, बेटे, पोते इत्यादि मलिन गदे कषाय वालो मे ही मोह ममता लगाये है तो कल्पनावश पराधीन हो जाना प्राकृतिक बात है। उनका बन्धन तो है ही। यह रोग एकको नही है, लोकमे प्रायः सभीको है।

गांवोमे घरके गाय, बछड़े इत्यादि सवेरे जगलमे चरनेके लिए छोड दिए जाते है और वे ही पशु शाम होते ही उसी घर चले आते है तो वे गाय, बछडे इत्यादि भी उस घर से बँधे हैं। कभी कभी किवाड खोलकर वे घरके अन्दर घुस जाते है। अगर घरके अन्दर न घुसे तो दरवाजेमे ही खडे रहकर दरवाजा खुलनेकी प्रतीक्षामे वे खडे रहते है। देखो उन पशुवोको भी मोह सता रहा है। उसी तरह मनुष्यके भी मोह लगा है। मनुष्य भी बाहर बाहर भ्रमण करके आयेगा और घरमे ही विश्राम लेगा। इसलिए वे भी घरसे बँधे हुए है, वे स्वतन्त्र होकर विचार ही नही सकते है। सो इन सब बन्धनोका कारण इच्छा है।

यदि इच्छा है तो न भोगोमे ही शाति है और न योगमे ही शाति है। यदि अन्य वृत्तिसे परका मोह छोड दो तो शाति वहाँ रहती है। मोहमे बसे रहनेसे तो अशान्ति ही

रहती है। घरमे किलकिल मची रहती है। घरमे छोटे-छोटे बच्चे कही रो रहे है, कही माँ उन्हे डांट रही है, कही कुछ हो रहा है। इस तरहसे बैठे-बैठे ही रात दिन दुःख बने रहते है। कही स्त्रीने बच्चोको गालियाँ दे दी, कही बापने बच्चोंको पीट दिया, इस तरहसे परिवार मे क्लेश ही क्लेश रहते है। परन्तु जैसे गोबरके कीडेको गोबरमे ही रहना पसंद है, उसीमे रहकर वह खुश रहता है उसी तरह हम आर लोग जो गृहस्थीमे फँसे हुए है, वही गृहस्थीमे ही रहकर प्रसन्न रहते है। इस माया मोहमे ही अपना चैन मानते है।

जरा घरके ऊपर भी क्लेश देखो। कही एक बच्चा चिल्ला रहा है, कही एक गोदी मे चिल्ला रहा है, कही भाई वचनबाण छोड रहा है तो कही स्त्री मा का झगड़ा हो गया। अनेक परेशानिया गृहस्थीमें रहती है। अगर स्त्री मां के झगडेमे पुरुष स्त्रीका पक्ष लेता है तो लोग उसको कहते है कि यह इसकी असभ्यता है, और अगर मा का पक्ष लेता है तो चैन से नही रह सकता। कितने-कितने सकट इस संगमे हो जाते हैं, परिग्रहमे हो जाते है। सो ये सब सकट कैसे बनें? परमे इच्छा है, लगाव है, आशा रखे है, दूसरोके बीच बस रहे है सो सारे संकट छाये है। कही सुख नही है। सुख तो वही है जहाँ इच्छा न हो।

एक बार किसी महाराजाने किसी दूसरे राजा पर चढाईमे विजय प्राप्त कर ली। उस चढाईमे उस राजाके कुटुम्बके सभी लोग मारे गये। अतमे महाराजाको ऐसा विवेक उपजा कि अब वह राज्य न ले और इसके कुटुम्बमे जो कोई बचा हो उसको ही यह राज्य सौप दे। ऐसा सोचकर राजा अपने वशजको तलाश करनेके लिए निकला। एक आदमी जो घर गृहस्थी छोडकर जगलमे रहता था वही केवल बच गया था। महाराजा उस पुरुषके पास गये, बोले कि जो कुछ चाहते हो ले लो। मतलब उसका यह था कि सारा राज्य जब देनेके लिए तैयार हू तो इससे बढकर और क्या मांगेगा? सो कहा कि जो इच्छा हो ले लो। वह बोला—मैं जो कुछ चाहूंगा वह आप देंगे? तो राजा बोला—हाँ हाँ दूगा।

जङ्गलनिवासीने कहा—राजन्! हमे ऐसा सुख दो कि जिसके बाद फिर दुःख न आवे। भाइयो! बोलो कि है कोई ऐसा सुख कि जिसके बाद फिर दुःख न हो? ऐसा कोई भी सुख नही है कि जिसके बाद फिर दुःख न हो। ज्ञानी पडित बननेमे ऐसा सुख है कि जिसके पीछे दुःख नही है। पडित बननेमे ऐसा तो नही है, अगर परमार्थसे ज्ञानी बन जाय तो वह कुछ बाहरी चीजे चाहेगा ही नही। तो सुख उसे अपने आप हो जायगा। जगत्मे कोई ऐसा सुख नही है जिसके पीछे दुःख न हो। सो महाराजने हाथ जोड दिये कि क्षमा करो, मैं इस चीजको तो नही दे सकता। दूसरी और कोई चीज मागिये।

वह बनवासी फिर राजासे बोला कि हमको ऐसा जीवन दो, जिन्दगी दो कि कभी

फिर मरण न हो । बताओ ऐसी कोई जिन्दगी है कि जिसके पीछे मरण न हो ? महाराजने फिर हाथ जोड दिये, कहा—कुछ और मांगो । उसने कहा—अच्छा और कुछ नही तो हमको ऐसी जवानी दो कि जिसके बाद फिर बुढापा न आवे । सो वह हाथ जोड़कर वापस चला गया । उसने सोचा कि यह तो कुछ नही चाहता है । यह तो अपने आत्माकी मौजमे मस्त है । तो ऐसे ही लोग जो इच्छारहित होते है वे ही शान्तिके आधार है, उनको ही शाति प्राप्त होती है ।

भैया ! दिल्लीमे एक जैन सेठ था । जिस समय सन् ५७ के समयके गदरमे लूटमार हो रही थी उस समय उस सेठने तिजोरियोसे हीरे जवाहरात गहने इत्यादि जो कुछ भी थे खोलकर बाहर रख दिये । चार लूटने वाले आये । सेठ जी बोले—आप लोग परिश्रम न करें, जो कुछ भी घरमे धन था, हमने निकालकर बाहर रख दिया । इतनी बात देखकर चारो लुटेरोके मनमे असर हुआ । वे बोले—सेठजी, अब हम लोग तुम्हारा धन नही लूटेंगे । हम अपने दो आदमी इस धनकी रक्षाके लिए छोडे जाते है । कोई भी इस घरके अन्दर नही घुसने पायेगा । देखो लूटने वालोको भी ज्ञान प्राप्त हो गया । यदि इच्छा है तभी क्लेश है । इन इच्छावोसे सुख नही प्राप्त हो सकता है । इन इच्छावोसे पूरा नही पडेगा ।

कृपा कर्तुं न शक्योऽन्यो मय्यहमेव तत्क्षमः ।
ततोऽन्याशां परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४-४३।।

मुझ पर कोई दूसरा पुरुष कृपा नही कर सकता है । हम पर हम ही कृपा रख सकते है । सुखका आचरण खराब हो और चाहे कि दुनियामे आदर मिले तो क्या मिल सकता है ? नही । तो अपने कियेका फल अपनेको ही मिलता है । कभी कोई खोटी गैल चले और चाहे कि सम्मान मिले तो क्या मिल सकता है ? नही । अच्छा बोलेगा, सदाचारसे रहेगा तो दुनिया यश गायेगी अथवा सुखके साधन मिलेंगे । यदि ऐसा नही है तो सुख न मिलेगा । मुझ पर कृपा करनेके लिए कोई दूसरा समर्थ नही है । मै ही मुझ पर कृपा कर सकता हूँ ।

रावणके खोटे परिणाम जब हुए तो वह चाहता था कि परिवारसे मदद मिले तो कैसे मदद मिल सकती थी ? परिणाम तो उसके खोटे हो गये थे । खोटी राह चलने वालेके फिर मित्र नही रहते है । रावणका भाई विभीषण तक रावणका साथ छोडकर रामसे जा मिला था । यदि खुद अच्छा रहे तो काम बनता जायेगा, नही तो काम नही बननेका है । परमार्थसे देखो तो खुद अच्छे भी चल रहे है और लोग बडा साथ भी दे रहे है तो भी लोग मुझ पर कृपा नही कर रहे है । लोग जो साथ दे रहे है उनको रुच गया है तो वे कषायसे

अपना काम कर रहे है । सो इस लोकमे मुझ पर कृपा करने वाला दूसरा समर्थ नही है। तब हमे क्या करना है कि अन्य पदार्थोका व्यामोह छोडना है।

भैया, जितने भी जगत्के पदार्थ होते है वे पदार्थ स्वयं परिपूर्ण होते है और उन पदार्थोमे उनका ही सब कुछ है, दूसरेका उनमे कुछ नही है । जैसे तुम्हारे जीवमे तुम्हारा ही तो जीव है । हम तो बाहर बैठे है, हम अपना विचार करते हैं, तुम अपना गुनतारा लगाते हो तो हमारे जीवसे तुम्हारा सम्बन्ध तो कोई नही रहा। कुछ भी तो आपके और हमारे जीवमे सम्बन्ध नही है । भले ही हम आपकी एकसी मशा है, पर दोनो ही अलग है। हम अपने स्वभावसे अपनी परिणति करते है और तुम अपने स्वभावसे अपनी परिणति करते हो। कोई दूसरा न तो मेरा कुछ काम कर रहा है और न मैं किसी दूसरेका काम कर रहा हू।

यद्यपि समान विचार होनेसे काम मिल-जुलकर होता रहता है फिर भी हम अपने स्वरूपसे अपना परिणमन करते है। वास्तवमे मिल-जुलकर काम नही होता है। देखो एक ही चक्कीमे दो औरतें आटा पीसती है, एक साथ पीसती है, हिल-मिलकर गाना गाती हुई पीसती है, मगर एक औरत दूसरी औरतका काम नही करती है । वह अपना परिणमन करती है और वह अपना परिणमन करती है । जीव सब न्यारे-न्यारे है । एक जीव दूसरे जीवका कुछ नही कर देता है। भले ही हम मिल-जुलकर रहे, पर हम अपना परिणमन करेंगे । कोई जीव किसी दूसरे जीवका अधिकारी नही है, मालिक नही है । सब अपने-अपने मालिक है । इस कारण कोई जीव किसी दूसरे जीव पर कृपा नही करता है।

मुझे किसी दूसरेसे कोई आशा भी नही है । बेकारमे आशा करते है तो उस आशा का फल बढिया नही होता है । उस आशासे आकुलताएँ ही होती हैं, फसाव होता है, झझट लग जाते है । और जब तक किसीका परिचय नही है, लगाव नही है तब तक आनन्दसे है । पर अज्ञानावस्थामे एक जीव दूसरे जीवके लगाव बिना नही रह पाता । कुछ न कुछ राग करता ही है सो इस अज्ञानके ही कारण जीवका परपदार्थोमे लगाव होता है । एक आशा होती है । उस आशामे ही यह जीव दूसरेमे बँध जाता है । सुख दुःख कुछ भी हो, आपके भीतरमे सच्चा ज्ञान अवश्य होना चाहिए ।

भैया, सच्चा ज्ञान जगे बिना जीवमे शांति बिल्कुल नही हो सकती है । यदि बाहरी पदार्थोमे ही दृष्टि रहेगी तो दसो प्रकारके भाव बनेंगे, दसो प्रकारकी आशाएँ बनेंगी । सो बाहरकी दृष्टि हटे और अपने आपके स्वरूपमे ही अपने आपका निश्चय हो तो शान्ति मिलेगी अन्यथा शान्ति न मिलेगी । यदि हम लडकोके बारेमे, भाइयोके बारेमे कुछ चाह करें, उनसे आशा करें तो दु.ख ही मिलेगा । हम आप उनके पीछे सोच-सोचकर दुःखी होते रहते है।

जब तक उनसे मोह नहीं छूटेगा, उनमे आशा नही छूटेगी तो इन बाह्यसे ही कोई लाभ न हो सकेगा। जैसे किसी चीजका हठ करते है तो उससे नुक्सान ही होता है। उसी तरह उनमे हठ करनेसे नुक्सान ही रहेगा। उनमे ही अपना लगाव रखनेसे बडे-बडे दुःख आते है। यदि इन दुःखोसे हटना है तो परका लगाव छोडो। परकी आशा छोडो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

सुखं नैराश्यमेवास्ति दुःखमाशैव केवलम्।
स्वदृष्टेः काचिदाशा न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४–४४॥

सुख तो नैराश्यमे होता है अर्थात् कोई आशा न रहे वहाँ सुख होता है। गृहस्थोमे रहते हुए भी यदि मनुष्य धर्मके काममे ऊँची ही बात सोचे तब ही धर्म कर सकता है और अगर वह ऐसा ही सोचे कि हम तो गृहस्थ है, दसो प्रकारके सम्बन्ध है तो हम लोगोकी आशा कैसे छूट सकती है ? हम लोगोका तो इसीसे पूरा पडेगा, ऐसा पहिलेसे ही सोच रखा है तो उस गृहस्थमे धर्मकी उन्नति नही हो सकती है। धर्मकी उन्नति तो तब होगी जब अपनेमे बहुत ऊँची बात सोचे। जैसे कि साधु सत सोच सकते है। गृहस्थ अपने ज्ञानसे ऊँचे भाव सोच सकते है। गृहस्थ अपने ज्ञानसे ऊचे भाव रखकर अल्प सयममे भी यथायोग्य विशेष निम्नलिखितरूप धर्म कर सकता है—सुख आशाके अभावमे है। जिस चीजकी आशा लगी है उस चीजकी ओर ही दिमाग है। तुम्हारा दिमाग जैसा है वैसा होता नही है तभी तो दुःखी होते हो। सो दु ख इसी बातका है कि जैसा चाहते है वैसा होता नही है। जीवको इतना ही तो दुःख है। यह दुःख तब मिटे कि जैसा हम चाहे वैसा हो जाय या फिर उस चीजकी आशा ही नही करनी चाहिये और न ही चाह करनी चाहिये।

किसी मामलेमे सुख तभी हो सकता है कि या तो इच्छा ही न करे या जैसा चाहे वैसा काम बन जाय, मनमाफिक काम हो ही कैसे सकता है ? कितना ही महापुरुष क्यो न हो जैसा वह चाहे वैसा हो जायगा क्या ? वैसा काम नही हो सकता है। छोटे आदमीको छोटी भी चाह है तो बडी चाह नही पूरी होती। दोनो ही जैसा चाहे वैसा काम हो जाय यह तो नही हो सकता है। यह उपाय तो गलत है कि जैसा चाहे वैसा काम बन जाय, पर यदि यह उपाय बन जाय कि हम किसी चीजको चाहे ही नही तो दुःख फिर रह ही कहाँ सकते हैं ? इच्छाके अभावका उपाय बन तो सकता है, पर ऐसा कोई प्राणी आज इस जगत् मे नही दिखाई पडता है जिसके कुछ चाह न हो। ऐसे आदमी तो दिख जाते है कि बहुत बडी-बडी चाहे खत्म कर दी, उनमे घरकी चाह न रही, ऐश आरामकी चाह न रही, ऐसे व्यक्ति तो मिल जाते है। मगर जिनके बिल्कुल चाह न हो ऐसे व्यक्ति आजके युगमे इस

लोकमे नही दिखते है। बडी-बडी चाहे मिट जायें, साधारण चाहे रह जायें तो चलो यही अच्छा है। यथार्थज्ञान जग जाये तो चलो यही अच्छा है, सारी चीजें रहते हुए भी आशा खत्म हो जायगी। आशा ही से क्लेश होते है। कोई आशा कर लो कि लो दु खी हो गये।

एक नाईने एक सेठकी हजामत बनायी। हजामत बनानेमे २-३ जगह छुरा लग गया या मार दिया। खून निकल आया। सेठने हजामत बन जानेके बाद नाईसे पूछा कि कितनी जगह छुरा मारा? नाईने सोचा कि छुरा कई जगह लग गया है, अब तो मजदूरी भी न मिलेगी, पर डरते हुए उसने कहा कि दो जगह लग गया है। दो जगह लगनेसे उस सेठने उनको दो रुपये दे दिए। नाईने सोचा कि हमे तो डर लगता था कि सेठ जी कुछ भी नही देंगे, पर दो रुपये कमानेका बडा ही अच्छा उपाय है। एक दिन एक बाबूजी की हजामत बनाने लगा। दो छुरे उसके भी लगा दिए। सोचा कि इनसे भी एक दो रुपया मिल जायगा। बाबूजी ने १०-५ जूते मारे। अब वह सोच रहा कि हमारा हिसाब कहाँसे गलत हो गया? सेठके दो छुरे मारे थे तो उसने दो रुपये दिये थे। यहाँ कैसे हमारा हिसाब गलत हो गया? भैया! सेठने तो इसलिए रुपये दिए थे कि इसके कुछ आशा लग जाये कि फिर ये हजामत ठीक बनाने लगे।

किसीको क्लेशमे डालनेकी सुगम औषधि यह है कि उसको कुछ परिग्रह दे दे जिससे उसकी तृष्णा, आशा बढ जाये। जिसका अपने कुटुम्ब परिवारमे कषाय रहेगा, कुटुम्ब परिवारसे आशा रहेगी उसे क्लेश ही रहेगा। जो अपने बच्चोंकी खुशामदमे ही रहेगा, उसे क्लेश ही मिलेंगे। जो अपने मित्रोसे, कुटुम्ब परिवारके लोगोसे कुछ आशा न रखेगा उसे सुख मिलेगा। अब देख लो किसी बडे आदमीके यहाँ नौकर तो खुश रहते है और मालिक या बडा आदमी जिसका फर्म चलता है उसे क्लेश रहते है, और दो रुपयेका मजदूर गाता हुआ आता है और गाता हुआ ही चला जाता है। मालिक रातभर जागता रहता है, अभी इसका हिसाब ठीक करना है, रजिस्टर भरना है, इसीमे वह व्याकुल रहता है। रात-दिन चिंता लगी रहती है कि कही नुक्सान न हो जाये।

भैया! मजदूर तो सुखी रहते है, क्योकि उन्हे तो दो रुपयेसे ज्यादाकी आशा ही नही है। सेठको किसी दिन लाख बच जायें, किसी दिन हजार बच जायें। टोटा पडे तो किसी दिन ५० हजारका टोटा पडे तो किसी दिन ७० हजारका टोटा पडे, इस तरहका उतार-चढाव रहता है। सदा बेचैनी बनी रहती है। यदि आशा न रहे तो सुख है और यदि आशा है तो दुःख है। तब दु ख मिटानेमे क्या चाहिए? आशा न रहे यही तो चाहिए। आशा न रहे इसका कोई उपाय है? इसका उपाय है कि आशा जिसका स्वरूप नहीं है,

उसमे ऐसी दृष्टि हो कि यही तो मै चैतन्यमात्र हू, इसमे आशाकी कोई तरंग ही नही है। इसका काम तो केवल देखने जाननेका है, ज्ञाता द्रष्टा रहने का है। ऐसी आशारहित अपने स्वभावकी दृष्टि करे तो उसके आशा नही रहती है। जो अपनेको आशारहित बना ले वह सुखी हो जाता है।

इन्द्रोऽप्याशान्वितो दुःखी गताशोऽडसंगकः सुखी।
स्वास्थ्यमेव गताशत्व स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-४५॥

देखो इन्द्र भी हो और आशा करे तो वह दुःखी है। इन राजा महाराजा लोगोको न खाने-पीनेकी कमी है, न कपड़ोंकी कमी है, न किसी प्रकारका दुःख है, फिर भी वे दुःखोसे दुःखी रहते है। उन दुःखोका कारण क्या है? उनके दुःखोका कारण केवल आशा ही है। उनके आशा रहती है इसलिए वे दुःखी रहते है। एक कबीर साहबका दोहा है—

माया मरी न मन मरा, मर मर गए शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर॥

माया मर गई, जो कुछ वैभव पाया था वह नष्ट हो गया। मन मर गया, वृद्ध हो गये, सब कुछ बरबाद हो गया, पर आशा नही मरी। ज्यो-ज्यो कमजोर होते गए त्यो-त्यो आशाओंका प्रसार होता जाता है। आशाका मनसे ताल्लुक नही है, शरीर जीर्ण हो गया तो क्या हो गया, पर आशा तो जीर्ण नही होती है। सो आशाका ऐसा फल है कि इन्द्र भी हो और आशा रखे तो वह भी दुःखी हो जाता है, औरकी तो बात ही क्या है?

सुखी कौन है? जिसके आशा न रहे। चाहे उसके कौडी न हो, वस्त्र भी न हो, ऐसी भी स्थिति हो, मगर आशा न रहे तो वह सुखी है। इसको कहते है गताश्य, नैराश्य। आशाका न रहना यही जीवका उत्कृष्ट स्वास्थ्य है। स्वास्थ्यका अर्थ क्या कहते है कि भाई तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है? लोग समझते है कि तबियत, हालत, शरीरकी दशा अब कैसी है? लोक व्यवहारमे स्वास्थ्यका यह अर्थ लगाया जाता है, पर इसका अर्थ यह नही है। स्वास्थ्यका अर्थ है कि स्वमे ठहर जाना। अपने आत्मामे, अपने उपयोगमे स्थिर हो लें। इसीको कहते है स्वास्थ्य कैसा है—ये वचन पूछे तो अर्थ यह कि तुम्हारी आत्मा अब सावधान है कि नही। किन्तु लोग बतलाते यह है कि हां स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है याने कि तन्दुरुस्ती ठीक है, शरीरकी हालत ठीक है—ऐसा उल्टा जवाब देते है।

कोई बहिरा आदमी बाजारसे भुट्टा खरीदकर लिए जा रहा था। रास्तेमे एक किसान खेत जोत रहा था। सो उसने उस बहिरे आदमीको आवाज दी कि भाई राम-राम। वह तो बहिरा आदमी था, कुछ न सुनता था, समझा कि मुझसे कुछ कहता है। उसने समझा कि

यह पूछ रहा है कि क्या लिए जा रहे हो ? उसने कहा कि मैं भुट्टा लिए जा रहा हूँ। फिर पूछा कि घरमें बाल-बच्चे तो सुखी है ? उसने यह समझा कि पूछ रहा है कि भुट्टोका क्या करोगे ? उसने कहा कि सारोको भूनकर खावेंगे। कैसा अटपटा उत्तर है ? इसी तरह कोई पूछता है कि आपका स्वास्थ्य कैसा है ? तो अटपटा उत्तर देते है। तो पूछते है कि अब आत्माकी क्या स्थिति है ? आत्मा सावधान है कि नही ? आत्मामे शांति है कि नही ? पूछते तो यह हैं और जवाब क्या देते है कि शरीर हट्टा-कट्टा है, निरोग है। इस प्रकारका अटपटा उत्तर देते है।

यहाँ यह कहा जा रहा है कि अपनी आत्मामे स्थिर रहे, किसी भी परपदार्थकी आशा न करें। जब कोई आशा न रहे तो यह जीव अपने आपमे ही विश्राम लेगा, क्योकि जीवका स्वभाव तो कुछ न कुछ चेतनेका रहना है। यदि यह बाह्यपदार्थोंमे न चेतेगा तो अपने आपको देखने जानने लगेगा। इसीमे सुख है। इसलिए अपने आपके आत्मस्वरूपको देखें और सुखी होवें।

आशा गतास्तदा सिद्धिर्नाभिलष्य यतस्तदा।
स्ववृत्तिस्तत्पद तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४-४६॥

हम सब आत्मा सभी सिद्धिमय है। जो सिद्ध हुए है और उत्कृष्ट सिद्ध हुए है, जैसी सिद्धि मुक्त आत्माओने पाई है वैसी ही सिद्धिका हम सबमे मादा है। इसलिए हम सब स्वयं सिद्धिमय हैं। जैसे जीव सिद्धिके लिए तरसते है कि हमको अमुक चीजकी सिद्धि नही है, सिद्धि करना है, वे सब सिद्धि असिद्धियाँ सब आत्मा ही की कलायें है, लेकिन इन सिद्धियो मे बाधा है तो एक आशा की बाधा है। किसी परकी आशा लग गई तो सारी सिद्धियाँ रुक गईं। जैसे किसी सुरम्य चीजके देखनेमे बीचमे कोई पर्दा आ जाये तो सारी सुरम्य चीज का आवरण रुकने लगेगा। इसी प्रकार जितनी सिद्धियां है, जितने चमत्कार है, जितने सब वैभव है उनके ऊपर एक विषयाशाका आवरण लगा है कि ये सिद्धियां रुकी है। सिद्धियाँ तो आत्माका परिणमन है।

विद्यासिद्ध, ज्ञानसिद्ध, आत्माका प्रताप तेज—ये सब आत्माके परिणमन है। आत्मा का ही कोई परिणमन हो सकता है। परमार्थसे एक द्रव्यके परिणमनको दूसरे द्रव्यका परिणमन नही रोकता है। *निश्चयसे उस दृष्टिके परिणमनको रोकने वाला उस ही द्रव्य* का कोई परिणमन तेज प्राप्तिका होता है। जितनी सिद्धि है, ज्ञानकी सिद्धि अथवा आत्माकी सिद्धि है, सबको रोकने वाला आत्माका ही कोई परिणमन होना चाहिए। हम आशा करते है इस कारण प्रगति रुकी हुई है। हम सिद्धिके योग्य नही बन पाते है। और जिस समय

आशा नष्ट हो जाती है उसी समय सारी सिद्धि प्राप्त होती है।

हम भगवानके आगे दर्शन करने आते है, पर आशा लेकर आयें तो न तो वह सिद्धि मिलती है और न वर्तमानमे पूज्य पुण्य मिलता है। भगवानके दर्शन करके संसारी जीव आशा रखते है, न तो वह चीज मिलती है, क्योंकि वे अधर्मको साथ लेकर चल रहे हे तो पुण्य कहाँ तक फल देगा ? दूसरे मोक्षमार्ग भी रुक गया। प्रभुदर्शनका वास्तविक लक्ष्य समाप्त हो गया। सो प्रभुके जब दर्शन करने जाये तो इच्छा कुछ नहीं चाहिये। यह भाव बने कि हे प्रभु ! मुझे कुछ नही चाहिये, ऐसा फकीर दिल होकर प्रभुके दरबारमे जाये तो कुछ सिद्धि हो सकती है। आशा खत्म हो तो सिद्धि है। यही मोक्षमार्गकी बात है, परमार्थकी बात है। परिवारकी बातोसे गृहस्थीको मेल नही लगाना चाहिये। जब परमार्थकी ओर हम चलें तो अपनेको गृहस्थी भी नही समझना चाहिये। जैसे हम साधनामे लगें, प्रभुकी भक्तिमें लगें, लगें और लगे रहे तो उस समय हम अपनेको गृहस्थी न अनुभव करें कि मै दो लड़कों वाला हू, मै ऐसी पोजीशन वाला हू। इस बातका तो ख्याल नही रखना चाहिये, क्योंकि परमार्थके काममे लगनेकी इसने योजना बनायी है।

भैया ! जिसके यह आशा जब तक रहे तब तक वह पनप नही पाता है और बतावो भैया ! इस जगत्मे इच्छा करने लायक वस्तु कौनसी है ? कौनसी चीज ऐसी है कि जो मेरे पास रहे और मुझे शान्ति दे सके। प्रत्येक वस्तु पृथक् है, उसका परिणाम उसके अनुसार है, उसका सयोग वियोग जितना जब जैसा होता है, उन पर मेरा अधिकार नही है। परपदार्थ कोई भी शान्तिके कारण नही होते है। मेरी शान्तिका हेतु तो मेरा ही दर्शन है, मेरा ही आलम्बन है। एक निज एकत्व पर दृष्टि हो तो शान्ति मिले। इस जगत्मे इच्छा करने योग्य पदार्थ कोई नही है। मै अपने आपमे ही लीन रहूँ, यदि ऐसी वृत्ति रहे तो यह वृत्ति ही मेरा उद्धार करने वाली है।

भैया ! जब इन चर्मचक्षुओंको बाहर पसारकर देखो तो एक लालसा आ जाती है। फलां मिनिस्टर कैसे बढ़ रहे है, कितनी उन्नति पर है ? जब देश धार्मिक रूपसे चलता है तो उस देशकी प्रसिद्धि अधिक हो जाती है। फिर यत्न कर, चलकर वहांके लोगोमे धर्मके मामलोमे शिथिलता बढ़ जाती है, फिर तृष्णायें बढने लगती है। जगत्के लिए मैं कुछ बनकर रहूं ऐसी भावना वाले धर्मकी साधना नही कर सकते है। परपदमे शान्ति नही, वह निज पर क्या है ? अपना सहज चैतन्यभाव है। 'मैं रहू आपमे अपने आप लीन' ऐसी वृत्ति हो तो उसीमे शान्ति है, उसीमे सुख है। सो अपने आपमे ऐसी भावना बनें और अपने स्वरूपमें झुककर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो।

यावन्मूर्च्छाऽस्ति कस्मिंश्चित्तावन्निःशल्यता न हि ।
स्ववृत्ता नास्ति मूर्च्छाऽतः स्यां स्वस्मै स्व सुखी स्वयम् ॥४-४७॥

जब तक इस जीवके किसी भी पदार्थकी मूर्छा है तब तक इस जीवके निःशल्यता कभी नही हो सकती। वे मूर्छा कहते है दोषोको। लोकमें मूर्छाका अर्थ है कि भ्रम बुद्धि करना, मतलब परमे अहम् बुद्धि करना, यही मूर्छा है। सो ठीक ही है जब तक हम किसी परपदार्थमे लीन है तब तक मूर्छा रहती है परन्तु जब अपने भीतरमे लीन है तब तब होश बना रहता है। जो परपदार्थोंसे ही बडी-बडी खुशियाँ मनाते है, भीतरमे उमग बना बनाकर बाह्य पदार्थोंमे ही लीन होते हैं उनके होश कैसे आयेगा? उनके तो बेहोशी बनी रहती है। भीतरमे होश उसके नही है। ऐसी मूर्छाको बेहोशी कहो, ममता कहो एक ही बात है। ममताका ही नाम बेहोशी है।

भैया! जब तक मूर्छा है तब तक इस जीवको निःशल्यता नही हो सकती। मूर्छाको ही तो बेहोशी कहते है, इसमे तो कुछ शक नही है। यह मूर्छा जब तक रहती है तब तक निःशल्यता नही आती, यह समझ जगनेमे ही कल्याण है कि मैं सहज चैतन्यमात्र हूं। इस आत्मामे अपने आपकी सत्ताके कारण जैसा इसका स्वरूप है वही मैं हू, इस प्रकार अपना स्वभाव उपयोगमे निकट लाकर इस आत्मामे मिलना चाहिए, ऐसी वृत्ति हो तो मूर्छा नही है, वेहोशी नही है। भोगोको जानकर कुछ यत्न करना, विस्तार बनाना, फैलाव बनाना यही तो सब बेहोशी है। जितना ही अपने आत्माके स्वभावके निकट आवे उतनी ही सावधानी है।

यदि मूर्छाकी स्थिति बनेगी तो वह अपने आपको सतायेगा और यदि सद्गुण करके, भगवान्की भक्ति करके अपना उपयोग ज्ञानानुभवका बनायेगा तो बेहोशी नही है। हे प्रभु! मूर्छारहित परिणामका आदर करूँ। इन मूर्छाके परिणाममे क्या रखा है? अपने अपने घरमे देख लो कि कोई १० वर्षमे मरा, कोई २० वर्षमे मरा, कोई ५० वर्षमे मरा तो कोई कभी मर गया। पर जबसे यह जीव पैदा हुआ तबसे मूर्छाका ही तो काम किया। जब बच्चा दो वर्षका हो जाता है तभीसे उसमे मूर्छा आ जाती है। भला उसके घरसे उसके रहते रहते कोई सामान तो ले जावे। बचपनसे ही उस बच्चेमे मूर्छाका प्रारंभ हो जाता है। सबने अब तक मूर्छा तकका ही काम किया, उससे कुछ हाथ लगा हो तो बतलावो सब रीतेके रीते बैठे है।

आप अपनेको अनुभव करके देख लो—अकेले ही हो, केवल हो, जैसे हो सके वैसे ही हो, कुछ साथ नही है। जो अपने आत्मस्वरूपका अपने दिलमे बसाये रहता है उसका कोई

दुश्मन नही है। यदि कोई दुश्मन है तो मोह ही है। यह मोह पतनके लिए, दुर्गतिके लिए आता है। खूब देख लो, ज्यादा राग हुआ तो पतन है। जो हमारा जैसा इष्ट है उसको देख-कर हम फूलें नही। अपना रक्षक तो अपनी दृष्टि है, आत्मदया ही अपनेकी रक्षा कर सकती है। सो इन क्लेशोसे हटो, मूर्छाको अपनेसे हटाओ और अपने स्वरूपको देखकर अपने आपमे सुखी होवो।

देहिनां देहभोगानां दु खं संयोगतस्तत: ।
सयोग कस्य वांछानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।४-४८।।

शरीर और भोग दोनोका जो सयोग है यही माया है, यही दु खका कारण है या तो देहका संयोग जीव चाहता है या भोगोका संयोग जीव चाहता है। दो ही तो चीजे है। चाहने के लिए इन मोहियोको देह और भोग है। देहमे तो आया खुदका शरीर जिसमे कि यह मोही रहता है। भोगोमे आये पंचेन्द्रियके विषय और छठवां मनका विषयभूत अनेक अटपट ख्याल ये ही तो सब भोगते आये है। देहमे आया शरीर और बाकीमे आयी और सारी चीजें। इनका जो सयोग है उन्हीसे तो इन देहियोका ऐसा देखना जानना बन गया है। जहां तक देखते है, सभी इस शरीरसे ही उमग रखे रहते है। अपनेमे सद्बुद्धि आये, उनसे चित्त हटे तो ज्ञानप्रकाशका अनुभव हो। उसमे होने वाली जो सहज निराकुलता है उस निराकु-लताका स्वाद आये तो उसका उसे स्पष्ट पता होगा, पश्चात् कि समस्त सयोग दुःख रूप हैं।

इन दुःखोका कारण है जो चीज जैसी है उसको वैसी न मानना वैसी न जानना है। बस इसीसे तो दुःख है। मोटे-मोटे दृष्टान्त ले लो। घरमे अगर कोई महीनोसे बीमार हो, बडी कठिन बीमारी हो, जैसे कह लो कि दूसरे स्टेजकी टी० बी० हो गयी हो, बहुत दिनोसे बीमार हो, उसके बचनेकी कोई आशा न हो, ऐसा बहुत दिन पहिलेसे ज्ञान हो गया, महीनो पहिलेसे ज्ञान हो गया, उसकी सेवा भी करते रहे और अगर वह मर भी गया तो घर वालो के दिलमे इतना धक्का नही पहुचता है, क्योकि उसके मर जानेका ज्ञान पहिलेसे था। और अगर कोई हट्टा-कट्टा हो, घरका प्यारा हो, वह अचानक गुजर जाये तो बतावो उसके घरके लोगोको कितना दु ख होगा ? इसका बहुत ही बडा दु ख होगा, क्योकि पहिलेसे कुछ मालूम न था।

इसी तरह अनित्य तो चीज है और उसे नित्य मान बैठे तो जो कुछ समागम मिले हैं वे सब विनाशीक तो हैं ही, वे नष्ट होने वाले है, उनके नष्ट होने पर दुःख होगा ही। देखो भैया, अपने घरके मिले हुए समागमके विषयमे कोई यह ख्याल नही करता कि मिट जाने

वाली चीजें है। दूसरोकी चीजें मिटने वाली है यह भट समझमे आता है। ये चीजें जब मिटती है तो उनमे आसक्ति करनेका फल क्या होता है कि तीव्र क्लेश उठाने पडते है। जैसी बात है तैसा न मानना, यही दुःखका कारण है। अभी कोई विपत्ति आ जाये, प्राणो पर सकट आ जायें तो दुःख होगा। क्यो दुःख होता है कि मनमे आ गया कि हाय हम मर जावेंगे, बरबाद हो जावेंगे।

मैं क्या हू ? मै एक सत् हू, चैतन्य हू, अविनाशी हू, मरने वाला नही हू, सदा रहने वाला हू, ऐसी दृष्टि आये और यह सोचें कि यह समागम झूठा है, मायारूप है और फिर समागममे सर्वत्र मौजूद है। जहां यह जीव जायेगा तहाँ समागम तैयार है। कैसा भी हो, समागमका जो आदर है वह व्यामोह मात्र है। यह छूटता है तो इसका खेद ही न होना चाहिए। ये समागम मेरे नही है, ये तो मेरेसे अत्यन्त दूर है। शुद्ध दृष्टि करके देखो तो ये बाहरी पदार्थ हम आपसे अत्यन्त दूर है। इस आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाहमे रहने वाला यह शरीर भी तो इस आत्मासे अत्यन्त दूर है। जितना दूर हजारो कोसमे रहने वाला पदार्थ है उतना ही यह मेरे एकक्षेत्रावगाहमे रहने वाला शरीर भी इस निजक्षेत्रमे अत्यन्त दूर है।

स्वरूपदृष्टि करके देखो — किसीके स्वरूपमे अन्य कोई मिला हुआ नही है। जितने दुःख इस जीवको है वे इस जीवके देह और भोगोका सयोग विकल्प पाकर हो जाते है। जितने भी सयोग है उन सयोगोसे दुःख ही होते है। तो बाह्यपदार्थोका संयोग जब होता है तभी दुःख होते है। यदि सयोग न हो तो दुःख ही क्यो हो ? अर्थात् यदि संयोग न हो तो वियोगकी अवस्था ही क्यो हो ? जितने भी लोग है वे पति पत्नी है या अन्य कोई है, वे क्या हजार वष तक रहेगे ? अभी ही बतावो जितने बैठे हैं इनमे क्या कोई १०० वर्ष तक रहेगे ? मरने पर चाहे पतिका वियोग हो, चाहे पत्नीका वियोग हो, होगा तो अवश्य तब कष्ट ही तो होगा। वियोगका कारण तो सयोग ही है। यह सयोग ही सब जीवोके दुःखका कारण है। सो इस सयोगमे रुचि न करें तभी सुख प्राप्त हो सकता है।

भैया, जितने भी परपदार्थ है उनसे कुछ नही मिलता है। हम स्वय अन्य पदार्थोके बारेमे ख्याल बनाकर दुःखी हो रह है। उन बाह्यपदार्थोसे हमे दुःख आता हो तो बतलावो ? ये तो है और परिणमते रहते है। इतनी ही तो बात है। इन सब पदार्थोकी सत्ता अलग है, वे सब हैं, और अपनेमे ही परिणमते रहते है। अगर परपदार्थोका निमित्त पाकर हमे दुःख आते है तो परपदार्थोका इसमे कोई कसूर नही है। जितने भी कष्ट होते हैं वे दूसरोके द्वारा नही होते हैं। अपनेमे ही उनका ख्याल करके वे दुःख बना लिये जाते है।

जब दूसरे पदार्थोसे दुःख नही होते हैं तब ख्याल बनाना व्यर्थ है कि परवस्तुवोसे

हमे दु'ख आते है । अज्ञान से दु.ख होना प्राकृतिक बात है । प्रभु जिनेन्द्रके शासनमे यह स्पष्ट घोषित है कि इस जगत्मे सुख और दु:खका प्राप्त होना यह सब ज्ञानके ऊपर निर्भर है । यदि अपनेमे सम्यग्ज्ञान है तो सारे क्लेश हट जावेंगे । वस्तुवोका संयोग करके तो दु.ख न मिटेंगे ।

भैया, यह दुर्लभ नरजीवन पाया है, इसमें भी उच्च बुद्धि प्राप्त हुई है, उन्नत विचार प्राप्त हुए है, श्रेष्ठ धर्म प्राप्त हुआ है । यदि सम्यग्ज्ञान न किया तो सब व्यर्थ ही चले जायेंगे, और यो ही अगर मर गये तो समझो सारी लुटिया डूब जायेगी । ऐसी वाछा बने कि हमे परपदार्थोका उपयोग नही करना है । किसी भी पदार्थकी वाञ्छा न करके अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होना है ।

यदाप्नोति सुख स्वस्थो न तल्लेश प्रतिष्ठित: ।
स्वास्थ्ये श न हि रागेऽत: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।५ १।।

अपने आपकी आत्मामे स्थित होने वाला जीव जिस सुखको प्राप्त करता है उस सुख के लवलेशको भी बडे-बडे दुनियाके प्रतिष्ठित पुरुष भी नही प्राप्त कर सकते है । पचेन्द्रियो का विषय है—रूप, रस, गध, स्पर्श व शब्द, और इनके अतिरिक्त और जितनी भी झझटें है वे सब मनके विषय है । कितना भी वैभव आये तो भी लालायित रहना, दुनियामे अपनी इज्जत चाहना, इज्जत बढानेका यत्न करना—ये सब मनके विषय है । जो असज्ञी जीव है उनमे मनके विषयोकी झझटें नही है । उनका पर्याय निम्न है और वे चार सज्ञावोसे पीडित है, अज्ञानी है, हित करनेमे असमर्थ है, पर उनमे इज्जत बेइज्जतके परिणमन आते हो ऐसी बात नही है ।

सज्ञी जीव मानते रहते है सन्मान अपमानके सुख दु:ख, सो मानने वाले जीवोका यश बेकार है । प्रतिष्ठा पायी, सन्मान किया, ये तो लोभके साधन है । दुनिया सुखके लिए तरसा करती है । सो सुखमय तो सहज ज्ञानस्वरूप यह अपने आप है, अपने सत्के कारण है । एक उस स्वरूपका ही अपना उपयोग बना रहे उसे तो कहते हैं आत्मामे स्थिति है । और आत्मामे न ठहरें बाहरके पदार्थोमे ही दृष्टि रहे, वाहरी पदार्थोंमे ही मोह ममता रहे, ये सब कहलाते है प्रतिष्ठादिके सुख । इन दोनो सुखोमे कितना अन्तर है ? स्वस्थितिमे किसी परवस्तुको आश्रय न करके स्वयं होने वाले सुखका परिणमन है, और प्रतिष्ठामे अनेक प्रकार के लोगोका आश्रय करके विचित्र ख्याल बनाना ही दु:खका परिणमन है । केवल कल्पनामात्र सुख है ।

काल्पनिक सुखके पीछे दौड़नेसे प्रतिष्ठामे सुख प्राप्त नही कर सकते, प्रगति नही कर

सकते। मनका काम विवेक करना था, कोई ऊँचा लाभ उठानेका था, उपयोगको ज्ञानदेवके दरबार तक पहुंचा देनेका काम था। और यदि इज्जत प्रतिष्ठामे मुग्ध हो गया तो एकदम पतन हो गया। जैसे एक ज्ञान चौपरका पर्चा होता है, जिसमे कही-कही पर सांप बने होते हैं, उन सांपोके मुहके पास गोट पहुंच जाये तो नीचे पतन हो जाता है। यदि एक गोट सीढी के पासमे है तो वह गोट ऊपरको चढा दी जाती है। जब नम्बर बदला और ऊँचेके खडमे बडे सांपके मुहमे गोट आ गयी और मुंहमे वहांसे वह गोट गिरी तो बिल्कुल नीचे आ जाती है। इसी तरह इस मनुष्य पर्यायको पाकर यदि गिरे तो बिल्कुल ही नीचे गिर जायेंगे।

सबसे बडा नाता है यही प्रतिष्ठाकी दृष्टिका। जो सबसे ऊपरके खानेमे नाग बना है वह बडा भारी है। जितना विशेष लोकोत्सर्ग हो गया उतना ही अधिक प्रतिष्ठाभाव हो सकता है याने वह बडा नाग बन जाता है। सो इस बहुत बडे मनुष्यपर्यायमे आये तो यहांसे गिरेंगे तो बहुत विकट गिरेंगे। जो बडे ऊँचेसे गिरता है उसको अधिक चोट आती है।

भैया, प्रभुके दर्शन मिलें ऐसा भी मनका उपयोग किया जा सकता है, उसका उपयोग धर्मध्यानमे भी किया जा सकता है, उसका उपयोग चिन्तावोमे भी किया जा सकता है, अपने-अपने अन्तस्तलके ध्यानमे भी लगाया जा सकता है और यहां न लगाकर इन विषयो की ओर लगाया तो विषयोमे ज्यादा तेज जा सकता है। पशुवोका क्या है कि उनको किसी प्रकारके इन्द्रियविषयोको करना है तो वे एकदम गंवारपनसे करेंगे। परन्तु मनुष्योको अनेक कलाये याद है। कविता बनाना, अच्छे ढगसे बोलना इत्यादि कलावोमे विषयोकी वासनाका कोई गुण बढाकर मग्न हो सकता है।

मनुष्यके हित करनेके जो साधन है उनमे उनकी इज्जत और प्रतिष्ठाके साधन भी है। अब यह बताओ कि ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमे यहांसे मरकर किसी दूसरी जगह पैदा हो गये तो यहांका कुछ सम्बन्ध रहेगा क्या ? नही।

कोई किसीकी प्रशंसा करता है तो वह यहांके मायामय स्वरूपोको देखकर स्वयं मायामय हो उनकी ही प्रशसा यह कर दिया करता है। उससे कुछ भी तो लाभ नही है, पर हठ इतना है कि जैसे कहावतमे कहा करते है कि पचोका हुकुम सिर माथे है, परन्तु पतनाला यहींसे निकलेगा। पूज्यपाद स्वामी जी की बात सिर माथे, मगर अज्ञानका पतनाला यहीसे निकलेगा। जो कुछ करोगे उसका फल तुम्हे ही भोगना पडेगा। "चार दिनकी चांदनी फिर अधेरी रात।" बाह्यदृष्टिमे सर्वत्र देखा, भैया! दुःख है, झझट है। जिधर देखो उधर ही स्पष्ट रूपसे झझट ही दिखाई पडते है, पर वे सब झझट, वे सब परेशानियां इस जीवको अच्छी लग रही है। जैसे स्वप्नमे देखी हुई चीज सत्य लगती हैं वैसे ही ये सब बाह्य चीजे

सत्य लग रही है। जैसे स्वप्नमे देखते है कि शेर सामने आ रहा है, साँप काटनेके लिए दौड रहा है या राज्यपद मिल रहा है, ये सब सत्य लगते है। उसी प्रकार इन बाह्य चीजोसे जो आनन्द मिलता है वह भी सत्य लग रहा है। यह माँ है, यह भाई है, यह सब सत्य लग रहा है। अरे! ये सारे झंझट है।

जैसे स्वप्नमे देखी हुई चीज झूठ कब मालूम हो सकती है जब कि नींद खुल जाये। इस मोहकी नींदसे पूरा नही पडेगा। प्रतिक्रमणमे यह कहा करते हैं—"मिच्छामे दुक्कडं होज्ज।" अब इसका कितना अर्थ है? अगर लोग सुनेंगे तो कहेगे कि चार सौ बीस कर रहे हैं। लोग पुस्तक निकाल लेते है और पढते है कि "मिच्छामे दुक्कड होज्ज।" याने सारे पापोको कहा जाता है कि मेरे पाप मिथ्या हो। अरे! मेरे पाप मिथ्या हो जायें यह न कहो। ज्यादासे ज्यादा यह कह लो कि ये पाप आगे न हो। यदि यह कहलाओ तो भी गनीमत है। वे तो सीधा यो ही कह लेते है कि मेरे पाप मिथ्या हो। ऐसा कह देते है कि जिसके आगे कहनेकी गुजाइश ही न हो। क्या ऐसा ही कहना ठीक है? परमार्थसे देखो तो इसमे ज्ञानकी बातें भरी है।

ये प्रतिक्रमण करने वाले ज्ञानी संत जब सहजस्वभावकी दृष्टिका स्वाद लेते है तो आत्माका जो ध्रुव स्वरूप हैं उस स्वरूपमय अपनी प्रतीतिको अनुभूति करते है तब पश्चात् यह सब जितना परिणमन है ससारमे वह सब उसे नाटक मालूम होता है। इस नाटकमे पुण्य और पापके सब भाव आ गये। यह नाटक ही उपाधिका निमित्त पाकर हो गया है, इस मुझमे स्वरसत: नही होता है। ऐसी स्थितिमे यह सब परिणमन मिथ्या है कि नही? स्वभावदृष्टिकी यह बात है, सहजस्वरूपकी निजकी बात है। उस दृष्टिमे यह सब सयोगज भाव मिथ्या हुआ अर्थात् इसका ऐसा स्वरूप दृढ रहा कि जिसके आगे अन्य सब बातें मिथ्या है, नाटक है। दूसरी बात यह है कि मिथ्याका अर्थ है संयोगभाव। मिथ्यामे मिथ्या धातु है कि जिससे मिथुन और मैथुन शब्द बना, उससे ही मिथ्या बना। मिथ्यात्वका अर्थ अब घटा लो। उपाधिके ससर्गका निमित्त पाकर होना यह मिथ्यात्वकी बात है। वह अर्थात् विभाव उसके स्वरूपमे हो, स्वभावमे हो, उसके ही खुद एकत्वसे निरपेक्षतया हो ऐसी बात नही है। मैं तो टकोत्कीर्णवत् निश्चल ज्ञायकस्वरूप हू। ये सब विभाव पराधीन ही है, अध्रुव है सो मिथ्या है।

भैया! सब दृष्टिका प्रताप है। यदि दृष्टि मिथ्यात्वकी है तो इससे सदा दु:ख ही बने रहेगे। यदि स्वास्थ्य रहेगा, स्वयमे स्थिति होगी तो आनन्द रहेगा। साधन तो सभी अपने आपके हैं, अपने स्वरूपसे बाहर अपना कोई साधक नही है। अपना उपयोग अपने

सहजस्वरूपको ही अंगीकार कर रहा है, ऐसी स्थिति हो तो उसमे जो आनन्दको प्राप्त करता है उस आनन्दको बडे-बडे प्रतिष्ठित पुरुष भी रचमात्र भी नही पा सकते हैं।

आजके जमानेमे पंडित नेहरूको सब जानते हैं। जिसका देशमें विदेशमे नाम चलता है ऐसे प्रतिष्ठित पुरुषको भी वह आनन्द नही प्राप्त होता, जो स्वस्थितिका आनन्द है। अपने आपकी साधनामे रहनेसे ही सत्य आनन्द है। रागमे सुख नही है। रागीको तो वेदना ही बताया है। रागीसे तो जिधर जावो ठोकर ही मिलती है। जो तुम्हारा भला चाहते हो उनके पास पहुंचो तो ठोकर मिलती है।

वस्तुस्वभाव ही ऐसा है कि कोई भी वस्तु किसी पर कृपा नही कर सकती है। कोई कहे कि भाई हमे बडा दुःख है हमारा आ।। दुःख बटा लो तो उसके दुःखको बटा ले ऐसा कोई नही हो सकता है। चाहे यह हो जाय कि मोह होनेके कारण वह भी दुःखी हो जाय, नया-नया दुःख वह भी मोल ले ले, पर वह उसके दुःखको नही बंटा सकता है। इस लिए प्रभु जिनेन्द्र देवका उपदेश है कि यदि विपत्तियोके पीछे ही दौडते रहे, मोह ममतामे ही रहे तो बडा भारी खतरा है। यदि इस खतरेसे बचना चाहते हो तो राग, द्वेष, मोह आदिको छोडो, अपने आपके निजस्वरूपको देखो, अपने भीतरकी यात्रा करो तो शिवमय बन जावोगे, यह प्रभूका उपदेश है और यही आचार्योंने ग्रन्थोमे कहा है कि सबोको छोडकर अपनी ओर आवो, इसमे ही तुम्हे शान्ति प्राप्त हो सकती है।

चिन्तेच्छया ततः क्लेशो गताश सौख्यसागर।
गताश्य मंगलं स्वास्थ्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२॥

जीव पर कितने संकट है? भिन्न-भिन्न प्रकारके संकटोको सोचते जावो। संकट विकट जो होते है आखिर उनका मूल मामला क्या है? इसकी खोज जब करने चलो तो मिलता क्या है? केवल इच्छा। इच्छाके कारण ही इतने बडे संकटोका बोझ लद गया। यह क्या मामूली बात है कि यह जीव शरीरके बन्धनमे फसा है। यहांसे हट नही सकता है। शरीर जाये तो आत्मा साथमे घिसटता रहता है। आत्मा जाये तो शरीर भी साथ-साथ घिसटता जाता है। आत्मा छूट जाये तो मरने के बाद यह स्थूल शरीर तो नही जाता किन्तु सूक्ष्म शरीर अर्थात् कार्माण शरीर और तैजस चिपटा चला जाता है।

भोगोके चाहने वालोको दुःख आते ही हैं। दुःख भी कही बाहरसे नही आते है, मात्र ख्याल बना लेनेसे आते हैं। देखो एक तो वे मनुष्य है कि जो भूख प्यासके मारे परेशान रहा करते हैं और दुःखी हुआ करते है और दूसरे वे जो हट्टे कट्टे है, जहां गये वहां अच्छे-अच्छे आरामसे रहते है। अच्छा-अच्छा भोजन भी आनन्दसे करते है। चारपाई पर

पडे है, फिर भी ख्याल बना बना कर दुःखी हुआ करते है। दिखाऊ स्थितिमे तो मौजमे है, किसी भी प्रकारकी तकलीफ नही है, फिर भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी कल्पनाए करके ख्याल बना करके दु ख बना लिया करते है।

भैया, ख्याल बना करके तो लोग दुःखी हो जाते है। नही तो खाने-पीनेकी सामग्री है, पहिननेके लिए कपडे है, फिर दुःख काहेका ? और चाहिए ही क्या ? दुःख तो सबके झूठे हैं, पर भीतरसे वेदना तो साँची है। शरीरके इन झूठे संकटोंको भी भीतरसे वेदना रूप से देखो तो सच्चे लगते है। ये जो अटपट सकट इस जीवपर घिर गये है उन सबका मूल कारण क्या मिलता है ? केवल इच्छावोका असर। एक भावात्मक चीज न करते तो क्या था ? और कर डाला तो इतनी विपत्ति है।

जैसे कोई किसी जगह किसीके लट्ठ मारे, झगडा हो जाये, विवाद बढ़ जाये तो वहाँ पर कोई आकर पूछता है कि आखिर क्या मामला है ? क्यो झगडा हुआ ? तो उत्तर क्या मिलता है कि हुआ क्या, छोटीसी बात हो गई है। अन्तमे देखते हैं तो क्या मिलता है कि ये बैठे थे और वहाँसे निकले तो इन्होने उसको राम-राम नही कहा या कहा कि यह बडा घमडी है। इसीसे विवाद बढा और यह नौबत आ गई। तो देखो मूलमे बात कितनी छोटी है ? जरासी बातमे मार हो गयी। कोई-कोई जगह तो ऐसा झगडा हो जाता है कि जिसमे कुछ भी कारण नही रहता। इसी तरह इतना जगजालका रूपक बन गया है, इसमे नाना प्रकारकी मलिनताएँ बन गई हैं। एक दूसरे पर भ्रम, मोह, राग द्वेष हो गया है, नाना संकट आ गये हैं। इसके मूलमे क्या निकला ? केवल इच्छावोका असर।

भैया, एक कथानक है कि एक सेठजी थे। उसके एक धोबी कपडे धोया करता था। एक दिन धोबी सेठके घर कपड़ा देने गया। उस दिन धोबी रो रहा था कारण कि उस दिन धोबीकी गधीका एक बच्चा मर गया था। जिस गधेका नाम धोबीकी बच्चीने गधर्वसेन रखा था। सेठने धोबीसे पूछा—क्यो रो रहे हो ? धोबीने कहा कि अरे तुम्हे मालूम नहीं, आज गधर्वसेन जी मर गये है। सेठने कहा—अरे गधर्वसेनजी मर गये ? धोबी बोला—हाँ गंधर्व-सेन मर गये। सेठने यह सुनकर अपनी मूँछ बनवा ली। एक सिपाही सेठको मिला तो सिपाहीने सेठसे पूछा कि सेठजी, आज मूँछ क्यो बनवा दी ? तो सेठने कहा—अरे अभी तुम्हे मालूम नही, सारी रैयत, सारी प्रजा अपनी-अपनी मूँछ बनवावेगी, क्योकि गंधर्वसेनजी की मृत्यु हो गयी है। अब सिपाहीने भी मूछ बनवा ली। सिपाहीको कुछ आँफीसर मिले, थानेदार, तहसीलदार आदि तो उन्हें भी सिपाही द्वारा ज्ञात हुआ कि गधर्वसेन जी की मृत्यु हो गयी है। तो उन सबने भी अपनी-अपनी मूँछ बनवा ली। जब सब दरबारमे आकर बैठे

हुए थे, थानेदार, तहसीलदार इत्यादि सबमे बात चली कि वे कौन थे गंधर्वसेन जी, जिनकी मृत्यु हो गयी। तो थानेदारने कहा—मुझे सिपाहीने बताया। सिपाहीसे पूछा गया तो उसने कहा कि सेठ साहबने बताया। सेठ साहबने बताया कि हमे धोबीने बताया। धोबीसे पूछा गया तो धोबीने बताया कि हमारे घरकी गधीका एक बच्चा मर गया था, उसका नाम हमारी बच्चीने गंधर्वसेन रखा था। उसीके मर जानेसे मुझे दुःख रहा और मैं रोता हुआ जब सेठके यहाँ गया तो सेठके पूछने पर मैंने बता दिया था कि आज गधर्वसेनकी मृत्यु हो गयी है।

देखो इस छोटीसी बातसे ही कितनी हलचल मच गयी। इसी तरह यह सारा विकट संकटजाल कितना इस जीवने बना लिया है? बिना किसी कामके, बिना किसी प्रयोजनके इस जीवने सकट बना लिया है। इन भाव कर्मोसे ही वे बाह्यपदार्थोमे बन गये है, अन्यथा उनका क्लेश पानेका और क्या कारण है? बतलावो। भावकर्म ही क्लेशोके कारण है और स्वयं क्लेश रूप है। द्रव्य कर्मोका उदय उन क्लेशोका कारण है। द्रव्य कर्मोके उदयका कारण क्या है? बतलावो। इन जीवोका विभाव परिणमन ही उन द्रव्यकर्मोके बँधनेका कारण था सो उसका विपाक आया, यही उदय होनेका कारण है। यह तो बडा अंधेर छा गया है। इच्छाएँ जो जीवोको सुहा गयी है, जिनमे कोई सार नही है, अपने संकटोके मूल कारण है। मोह लगा है, अज्ञान छाया है, वस्तुस्वरूपकी दृष्टि नही है, तो इतनी बातका बतंगड क्या बन गया? यह सारा जगजाल।

इन संकटोके दूर होनेका उपाय है वस्तुस्वरूपका ज्ञान। ये संकट वस्तुस्वरूपके ज्ञानसे ही दूर हो सकते है। इच्छाएँ हो जानेसे चिंताएँ हो जाती है, क्लेश हो जाते है। इन क्लेशो को दूर करनेके लिए मैं अपने ज्ञानस्वरूपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊं।

आकिञ्चन्यभव स्वास्थ्य, स्वास्थ्य सुखस्वरूपकम्।
न किंचिन्मे न किंचिन्मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३॥

स्वास्थ्य कैसे उत्पन्न होता है? ऐसे प्रश्नमे कहा है कि स्वस्थ होनेका उपाय आकिंचन्य भावना है। ये जीव वाह्यपदार्थोको अपना कुछ मानकर उनकी ओरका विकल्प कर रहे है अर्थात् परकी ओर झुक रहे हैं। जब परकी ओर झुके हैं तो अपनी ओर कैसे आ सकेंगे? जब परका झुकाव मिटे तो अपने आपमे स्थिति हो। परमे झुकाव तब ही मिटेगा जब यह भावना हो कि जगत्मे मेरा कही कुछ नही है। बात ऐसी ही है, अन्यथा ऐसी भावना करनेके लिए कहा ही कैसे जाये? बात और तरहकी हो और भावना और तरहकी बनानेको कहा जाये तो यह विपरीत मार्ग है।

मेरा जगत्मे कही कुछ नहही है, क्योकि समस्त परपदार्थ अपने स्वरूपके दृढ किलेमे है। जैसा कि मै अपने स्वरूपके दृढ किलेमे हू। किसी भी पदार्थमें कुछ भी बात उस पदार्थ से बाहर नही निकल सकती। इसलिए सभी पदार्थ सुरक्षित है। किसीको गालियाँ दें और उनको सुनकर कोई गुस्सेमे आ गया तो गाली देने वाले पुरुषसे गुस्सा उसमे नही आया। गाली देने वाला तो अपने आपके कषायमे अपनी पर्याय कर चुका है। इतने तक ही उसका काम था। बहुत दूर खडा हुआ दूसरा पुरुष जो निशंक था, निर्दोष था उन गालियोको सुनकर अपने भीतर ख्याल बनाता है व दुःखी होता है और गुस्सेमे आ जाता है। परपदार्थके काम उस हो अपनेमे समाप्त होते है, इस कारण किसी पदार्थसे किसी दूसरे पदार्थका कुछ नही होता है।

भैया, हम जो यह भ्रम लिए हुए है कि हम बच्चोको पालते हैं, उनकी रक्षा करते है सो देखो कितनी विचित्र बात है? पुण्यका उदय उन बच्चोका अधिक है कि आपके पुण्य का उदय अधिक है बतलावो? अरे उन बच्चोका ही पुण्य अधिक है जिनके पीछे हम आप रात-दिन परेशान रहते है। जिन बच्चोको बडे प्रेमसे खिलाते, बोम्बेसे बग्गी मंगाते, खिलोना मगाते, नौकर लगाते, बढिया बढिया कपडे पहिनाते, उनकी चाकरी करते तो अब यह बतलाओ कि पुण्योदय अधिक आपका है कि उन बच्चोका? इन बच्चोकी ममतामे पडे रहनेसे चिंताएँ बनी रहती है।

जगत्मे कही भी अपना कुछ माना तो वहाँ विपदायें है। बतलाओ जरा अपनेमे इतने संकट कहाँसे पैदा हो गये? अपनी ही गल्तीसे तो ये सारे सकट खडे हो गये। भीतरमे यह बुद्धि आये कि यह मेरा है, यह उसका है तो केवल भाव ही तो किया, पदार्थको नही बिगाडा और कुछ ऐब नही किया, बाहरमे किसीका नाश नही किया, भीतरमे यह सोच लिया कि मेरा कुछ है, इतनेमे इतना बडा सकट हो गया कि ये सारे बन्धन हो गये, फंसाव हो गये। मिलेगा क्या? केवल पाप। यह मेरा है, यह उसका है खूब मानो, पर मेरा तो वह बननेका नही, क्योकि वे भिन्न पदार्थ है। उन भावोसे मिलेगा क्या? केवल पाप, केवल कर्मबन्ध, केवल दिलमे दुःखी होना। मिलना कुछ नही। इसलिए जो कुछ चाहते हो उसमे मिलेगा क्या? केवल खाक और कुछ नही हाथ आता।

एक सेठजी थे। उन्होने नाईसे हजामत बनवायी। सेठजी वहमी थे। हजामत बनवाते जाते और सोचते जाते कि मेरी जान तो इसके हाथमे है। कही छुरा मार दे तो बडी आफत आ जायगी। सो सेठजी कहते है कि देखो अच्छी तरहसे हजामत बनाना हम तुमको कुछ देंगे। उसने कहा—अच्छा हजूर। जब हजामत बन गई तो सेठने अठन्नी निकालकर

दो। उस नाईने कहा कि हमे अठन्नी नही चाहिए, हमे तो कुछ चाहिए। मोहर दी। कहा–हमे यह भी नही चाहिए। हमे तो कुछ चाहिए। अब तो सेठजी परेशान हो गये। कुछ क्या चीज कहलाती है? कुछ कोई चीज हो तो इसे दूं। नाईने कहा कि आपने तो हमे कुछ देने का वायदा किया। सेठ हैरान होकर नाईसे कहता है कि भैया! देखो, आलेमे गिलास रखा है उसे ले आओ, दूध पी लें। मैं तो परेशान हो गया। गिलास आलेमे उठाने गया, ज्यो ही गिलास उठाता है उसकी दृष्टि उस दूधमे ही जाती है। देखा कि इसमे क्या है? दूधके अन्दर कुछ काला काला उसे नजर आया। बोला कि इस गिलासमे तो कुछ पडा हुआ है। सेठजी जरा कुछ आशुवृत्तिके थे। बोले कि क्या इसमे कुछ पडा हुआ है? तो नाई बोला कि हाँ। सेठने कहा कि तो उसे तू उठा ले, क्योकि तूने कुछ लेनेका वायदा किया था। तो उसे जिद्द करनेसे क्या मिला? कोयला।

जो हठ करता है उसे क्या मिलता है? कोयला अर्थात् पाप-कलक का कोयला। परपदार्थको जो चाहता है उसे मिलेगा कुछ नही। पदार्थोंको अपना मानते जाओ। २०, २५, ३०, ३५, ४० वर्ष उनसे सयोग ही कर लो, यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह मेरा घर-द्वार है ऐसा मानते जावो। मानते जाओ, यह तो एक एकांकी नाटकसा हो रहा है। एक ही तरफसे हो रहा है। दूसरी तरफसे उत्तर कुछ नही मिलता। उन बाह्यपदार्थोंमे उजाला कुछ नही है। दूसरे पदार्थोंमे कुछ कर देनेसे उन पदार्थोंसे इज्जत कुछ नही है वे सब मेरे लिए मौन हैं। मैं हाथ-पैर जिस तरह हिलाता हू, वचन हिलाता हू, वह सब अपनी ही तरफ से हिलाता हू।

जैसे पहिले बिना बोलता सिनेमा था तो पर्दे पर जो आदमी बना होता था। वह अपने ओठ केवल हिलाता रहता था, हाथ-पैर हिलाता रहता था न बोलता सिनेमामे ऐसा नजर नही आता था कि यह इससे कुछ कह रहा है। केवल मुह पर्देपर चलता रहता था। उसका शरीर उस पर्दे पर चलता फिरता रहता था। उनका परस्परमे कुछ सम्बन्धसा नही नजर आता था। तितर-बितर चित्र नजर आते थे। इसी तरह ये सब बिखरे हुए चित्र सामने है। किसीका किसीमे कुछ नही है। इन पदार्थोंमे चाहनेका जो सकल्प रखते हैं वे अपने स्वरूपमे स्थित नही हो सकते अर्थात् उनका स्वास्थ्य नही बन सकता। यहाँ स्वास्थ्यका मतलब शरीरकी तन्दुरुस्तीसे नही है। स्वास्थ्यके मायने समता, समाधि, शान्ति, निर्विकल्प परिणमन से है।

सुख तो स्वास्थ्यमे भरा ही है। आनन्द तो अपने आपमे स्थित होनेपर ही है। यह भावना होनी चाहिए कि मेरा कुछ नही है। देखिए आँखके आगे तिल बरोबर भी कागज

लगा दिया जाय तिलके आगे तो सारा पहाड़, सारा लोक, जो दिखनेमें आता है वह सब ढक जायगा। कोई कहे कि बडा गजब है। तिलके दानेके बराबर ही तो कागज चिपका हुआ है, मगर यहाँ सब ओझल हो गया, ढक गया। जैसे जरासे कागजकी ओटमे सब कुछ ढक जाता है इसी तरह अणुमात्र रागसे भी यह आत्मस्वरूप ढक गया।

कोई कहे कि न तो हम किसीको सताते हैं, न खोटा व्यवहार करते है, चुपचाप रहते है, २०० रु० महीना किराया आता है, हम पुरुष स्त्री दो जने है, खूब आनदसे गुजारा होता है। हम किसीकी बुराईमे नही पडते, किसीको कभी कुछ बुरा नही कहते। मुझे दुनिया के किसी पदार्थमे राग नही है। मैंने सबका राग छोड दिया, पर थोडा स्त्री भरका राग है और बाकी राग छोड़ दिया। तो वह तनिक हो या मनिक, राग है तो सारा आत्मस्वरूप ढका है। राग है तो ज्ञानानुभव नही हो सकता है। हम कह रहे हैं उस रागकी बात जहाँ भीतरमे यह बुद्धि है कि मेरा ही तो है अर्थात् अनन्तानुबन्धी रागकी बात। मिथ्यात्वकी बातें है तो आत्माका कल्याण नही हो सकता।

भैया! अपनेमे ऐसी श्रद्धा आनी चाहिए कि मै निर्मल हू। जगतके सब पदार्थोंसे हटा हुआ हू जैसे कि मुनि रहते हैं। ऐसे भाव न बनें कि वे तो मुनिराज है, उनकी श्रद्धा पूरी है। वे समझ रहे है कि मेरेमे श्रद्धा कुछ नही है। सो हम क्रोध करें, अपने घरके दो-चार प्राणियोको समझ लें कि मेरे है। इस प्रकारके विचारोसे तो क्रोधका मार्ग बना ही रहेगा। साधुमे और गृहस्थमे चरित्रकृत भेद है, श्रद्धामे भेद नही है। श्रद्धासे हम जगतके समस्त पदार्थोंसे परे न्यारा अपने आपको निरख सकते हैं। यदि हम ऐसा कर सकते है तो समझें कि धर्मपालनके कदममे चल रहे है।

मेरा कुछ नही है ऐसी बार-बार भावना करो। कुछ समय जबरदस्ती भी भाते रहो कि मेरा कुछ नही है। फिर अन्तरमे भी ऐसी भावना हो जायगी कि उपाय तो असली वस्तु-स्वरूपके ज्ञानका करना है। जब यह बात बैठ जाती है कि जगत्मे मेरा कुछ नही है तब इस भावनासे ही स्वास्थ्य पैदा होता है, आत्मामे स्थिरता होती है। ऐसा स्वास्थ्य करके अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यदा यत्कर्त्तुमायात्वायातु चेन्न मया कृतम्।
ज्ञप्तिमात्रविधौ शक्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४॥

जिस समय जो बात करनेमे आती हो आवो, जो बात मुझ पर गुजरती हो, गुजरे, फिर भी उसे मैंने नही किया। यह हो रही है ज्ञानीकी भावना जिसने अपने सहजस्वरूप पर दृष्टि दी है। यह मैं एक शुद्ध चैतन्य वस्तु हू। मेरा स्वयं काम तो केवल जानना देखना है।

और यह अन्दाज हो रहा है कि राग द्वेष विषयकषाय झगडे—ये भाव तो पर्यायमे हो रहे है। जो कुछ करनेमे आ रहा है, आवे, तो भी वह मेरे द्वारा किया हुआ नही है, क्योकि मैं तो केवल जाननेके ही काममे समर्थ हू। मेरा काम जानना देखना है। बाकी और काम उपाधिके ससर्गसे उत्पन्न होते है। इस तरह अपने शुद्ध स्वरूपको देखने वाले ज्ञानी इन सब बखेडोसे विरक्त रहते है।

भैया, अपना काम तो केवल जानना देखना है। यदि ऐसा ख्याल है तो घरमे रहते है तो आनन्द, कही भी रहे तो आनन्द। कुटुम्ब परिवारके लोगोसे हितकी बात समझा दी जाय, प्रेमसे बात समझा दी जाय तो भी वे नही समझेंगे और डांट डपटकर समझाया जाय तो भी वे नही समझ सकेंगे। जो लोग कुटुम्ब परिवारके लोगोमे अपना हित नही समझते वे देखने जानने वाले ज्ञानी जीव है। घरके ये जो चार जीव है उनसे शांति न प्राप्त हो जायगी। यदि परके व स्वभावके ज्ञातामात्र रहो तो शांति होगी।

एक किसान और किसानिन थे। किसानिन शांत थी और किसान क्रोधी था। उसने बहुत चाहा कि इसे कुछ पीट लें, मगर शान्तिके कारण किसानिनको किसान कभी पीट न सका था। निम्न श्रेणीके जो लोग होते है वे स्त्रीको एक दो बार पीट लेने पर ही अपनेको मर्द समझते है। ऐसी कुबुद्धि उनमे छायी हुई है। आषाढके महीनेमे वह किसान एक दिन खेत जोत रहा था। दोपहरमे रोज रोज स्त्री उसके लिए रोटी ले जाया करती थी। तब किसानने एक षडयन्त्र रचा। एक बैलका मुह पूरबको किया, एकका पश्चिमको किया और जुवा दोनो बैलोकी गर्दन पर धर दिया। उसने यह सोचा कि ऐसी विचित्र हालत देखकर कुछ न कुछ तो बोलेगी ही। क्या लडको बच्चोका गुजारा इस तरहसे हो जायेगा ? इस तरह से कुछ न कुछ तो कहेगी ही, सो हमे पीटनेका मौका मिल जायेगा। स्त्री आई और बाहर से ही सब तमाशा देख लिया। उसकी समझमे झट आ गया कि आज पीटनेका कार्यक्रम बनाया है। वह आई व बोली कि चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा, इससे हमे क्या प्रयोजन ? हमारा तो काम केवल रोटी देनेका है, ऐसा कहकर रोटी धरकर वह चली गयी। किसान बैठा ही टापता रह गया। यह ज्ञानका ही फल है जो वह निर्बाध रह सकी।

मैं आत्मा ज्ञानमात्र हू, ज्ञायकस्वरूप हू, सबसे निराला हू। अन्यकी परिणतिसे मेरा कुछ सुधार बिगाड नही है। ज्ञानकी स्थिति इस प्रकारके परिणामके अतिरिक्त अन्य कल्पनाओसे आ सकती है क्या ? क्या ऐसी भी कोई माँ है कि बच्चेको बिना पानी छुवे तैरना सिखा दे ? ऐसा तो नही हो सकता है। अगर हम अपनेमे ज्ञान करना चाहते है तो जो ज्ञायकस्वरूप ही उसका ज्ञानोपयोग द्वारा स्पर्श करें, तभी प्रभुके पास पहुच सकते हैं, हम

अपने जीवनको सफल कर सकते है। ऐसा उपयोग करनेसे ही हम अपना मन शान्त रख सकते है। ईर्ष्या, माया, मद, लोभ इत्यादि तो व्यर्थकी बातें है।

अब तो प्रायः यह जमाना है कि बाल-बच्चोंके लिए तन, मन, धन सब खत्म कर दो। फिर भी सत्कार नही मिलनेका है। यदि अपना जीवन सफल बनाना है तो एक घंटा रोज स्वाध्याय करो, चर्चा करो। यदि हम अपने ज्ञानका चमत्कार करना चाहते है तो अपने आपसे ही कर सकते है। घरके तीन चार प्राणियोके नौकर बने रहनेसे, समाजमे प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेनेसे, शरीरको सुख देनेके साधन प्राप्त कर लेनेसे अपना कल्याण नही होगा।

कुछ भी आप ग्रन्थोंका नियमित अध्ययन करो, यदि उन प्राचीन ग्रन्थोंको नही समझते हो तो उनके अनुवादरूप सरल ग्रन्थोको रख लो। उन सरल ग्रन्थोसे अपने छोटे छोटे बच्चोको शिक्षा दो। मगर नियम बना लो कि एक घटा रोज स्वाध्याय करेंगे। मिल जुलकर सब लोग एक घंटेका समय दिया करो। आपसमे एक दूसरेसे धर्मचर्चा किया करो। ऐसा केवल एक सालका नियम बना लो। केवल एक घंटा समय स्वाध्यायमे लगावो तो देखो एक सालमे ही कितनी बुद्धि आ जायेगी। पर करना कुछ न पडे और बुद्धि आ जाये यह तो नही हो सकता है।

भैया, जुट जावो ज्ञानार्जनमे। जिस वाक्य या प्रकारका अर्थ नही समझमे आता है उनको नोट करते जावो। जब कभी विद्वत्समागम मिले, यहां ऐसे प्रतिवर्ष मेलेमे विद्वत्समागम होता ही है। दूसरे वर्ष जब फिर मेला लगेगा तो हम लोग न आयेंगे, कोई दूसरे आयेंगे, वे भी इसी प्रकारसे समझायेंगे। तो भैया अब जो कुछ सोचकर इस मेलेमे आये हो, यह एक नियम अवश्य लेकर जावो। अपना समय व्यर्थ ही गप्पोमे मत बितावो। बाकी समय अपनी कमाईमे लगावो, पर एक घंटा समय स्वाध्यायमे जरूर दो। यहांसे सब लोग स्वाध्यायका एक घंटा धर्मचर्चाका नियम लेकर जावो, यही मेरी कामना है।

शास्त्राण्यधीत्य स्वास्थ्यं न सर्वविस्मरणाद्विना।
तस्माद्विकल्पनास्त्यवा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–५॥

स्वास्थ्य सर्वोत्तम कल्याण है। स्वास्थ्यके मायने है अपनी आत्मामे स्थित हो जाना। स्वास्थ्य कब हो, जब कि किसी भी परमे स्थिति न हो। अपने आपमे स्थित होते तब बनेगा जब किसी भी परमे हम न ठहरें। अपने आपमे ठहरना ही अपना स्वास्थ्य है। हम किसी भी परमे न ठहरें। स्वमे स्थित हो, सर्व परको भूल जायें। अनेक शास्त्रोका अध्ययन कर लिया जाये तो भी सबको भूले विना स्वास्थ्य नही हो सकता। इसलिए जिसको शान्ति

चाहिए वह सबको भूल जाये । सब प्रकारकी कल्पनावोंको भूलकर अपने आपको खोजे, अपने आपमें रहे तो यह जीवन सुखी हो सकता है ।

जरा बतलावो तो कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, ऐसा मानना उद्यम है या नही ? यह मेरा है, यह उसका है, इसके फलमें हानि ही हानि है । रोटी खानेके लिए मात्र कोई राग करे वह भी ठीक है, पर खानेके लिए ही नही, बल्कि लोगोके हृदयसे उठता है राग मोह कि यह मेरा है । यही इस जीव पर संकट है । पुत्र है, धन है, कुटुम्ब है, इनको अपना मानते रहो, मेरा कोई नुक्सान नही, पर वास्तवमे ये किसीके हैं नहीं । वे तो परपदार्थ है । वे तो अपनी परिणतिके अनुसार परिणमेगे । हम चाहेंगे कुछ और, वे और तरहसे परिणमेगे, तब केवल क्लेश ही होगा ।

सो भैया, अभी जान लो ना कि सब भिन्न है, सब एक समान है । जैसे घर वाले है वैसे सब है । ऐसा मान लो और दृढ हो जावो तो अभीसे ही शान्ति मिले । न घरमे अशान्ति है और न धनके कम होनेसे अशान्ति है, अशान्ति तो केवल व्यर्थकी कल्पनावोंसे ही है । परको मान लिया कि ये मेरे हैं, घरके लोगोको, पुत्र स्त्री वगैराको मान लिया कि ये मेरे है बस इतना माननेसे ही अशान्ति है । जिसका जो प्रदेश है, जिसका जैसा स्वरूप है वह उसमे ही है । जो दूसरे जीव है वे अपने ही स्वरूपमे है । वे अपने स्वरूपसे बाहर नही हैं । किसीका लक्ष्य करके कितना भी राग करते रहो, पर वे तुम्हारे कभी हो ही नही सकते हैं । वे अन्य पदार्थ है । वे खुदके अपने रूपमे परिणमते रहते है और अपना कषाय करते हैं । आप अपने कषायरूप परिणमते रहते हो और वे सब अपने कषायरूप परिणमते रहते हैं ।

भैया, सब झूठे स्वप्नो जैसी बातें है । कुटुम्ब है, धन है, वैभव है, ये सब मेरे हैं । ये लोग मुझे अच्छा कहें ऐसी आशाएँ रखते है । ये जो कलंकित लोग हैं, मोही हैं, अज्ञानी है, बुद्धू है, उनसे आशा करते हो कि ये मुझे अच्छा मान लें—यही व्यर्थका दुःख है । अब जरा मीठे मोहकी बात देखो—कहते है लोग कि धर्म करो । धर्मका ही एक वहम लगा लो । धर्म कहाँ होगा ? धर्म तो अपने आत्मस्वरूपकी पहिचान है जिसमे कषाय मिटती । धर्म और किसी जगह नही है । आपको अपने स्वरूपकी पहिचान हो कि मैं सबसे निराला शुद्ध चैतन्य-मात्र हू । इसका ऐसा दृढ परिचय हो, जिससे जब चाहो अपनी ओर झुक सको तो इसी बल से कषाय मिटेगी, यही धर्म है ।

धर्मके नामपर कषाय करना, ईर्ष्या करना, इससे फायदा कुछ नही है । जो धर्मके नाम पर कषाय करते है, ईर्ष्या करते है वे धर्मको लूट लेते है और अज्ञानको सजाते है । वे अधर्म ही तो कर रहे है । धर्म तो स्वास्थ्यकी बात है । सबको भूले बिना यह स्वास्थ्य नही

उत्पन्न हो सकता । इसलिए सारे विकल्पोंको त्यागकर अपनेमें अपने आप सुखी होनेको यत्न करो । सुखी होनेका और कोई उपाय नही है ।

लोग अपनेको बडा अच्छा मानना चाहते है कि लोग मुझे बडा अच्छा कह दें । ये नाक, कान, थूकके पिंड वाले लोग मुझे अच्छा कह दें । इन सबको भुला दो तो विलक्षण आनन्द प्राप्त होगा, मुक्तिका मार्ग मिलेगा । इन बाहरी बातोसे क्या मिलता है ? इन बाहरी चीजोका तो दान कर दो अर्थात् संन्यास कर दो । यदि सुखी होना चाहते हो तो सुखी हो लो । अपनी उदारता दिखावो, जो कुछ भी उसे समझो कि मेरा कुछ नही है । हम तो प्रभु मे लीन होगे । हम तो अपने प्रभुमे ही लीन होनेकी धुन सवार करेंगे, ऐसी उदारता दिखावो । किसी भी चीजकी इच्छा न रखो । अपने आपको शुद्ध चैतन्यस्वरूप अनुभव करो । अपने आपमें ही झुको तो शान्तिका मार्ग मिलेगा ।

ज्ञोत्वालसं श्रम व्यर्थं नेत्रोन्मेषनिमेषयो: ।
स्वस्थः सुखी स एवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–६॥

देखो जो ज्ञानी पुरुष हैं, जिनका ज्ञानसे प्रेम है, स्थिर होकर ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहने के ही यत्नमे है तो वे परके कामके लिए महान् आलसी बन जाते हैं । और देखो तो सही कि बडे ऊँचे ज्ञानी योगी पुरुष इन नेत्रोको उघाडने और बद करनेमे भी आलस्य करते है । परपदार्थोंके लिए ज्ञानी पुरुषोको इतना आलस्य होता है । वे अपने स्वरूपको देखनेमे ही प्रयत्नशील रहते है । वे जानते है कि आँखें उघाड़ने और बंद करनेसे कुछ भी न मिलेगा । उनको क्या करना है ? उनको परपदार्थोंके देखनेका ध्यान भी नही रहता है । वे जब थक जाते है तो जान–बूझकर आँखें खोलते है । उनके लिए आँखोका खोलना मीचना कुछ नहीं है । वे अपने ज्ञानका ही स्वाद ले रहे हैं ।

अब जरा यहांकी बातें तो देखो—ये ससारी गृहस्थ लोग जो दूसरोके पीछे दु:खी होते है, चार पैसे आने पर ही अपने कर्मोंको सफल समझते है । जब चार पैसेकी कमाई हो जाती है तो वे समझते है कि मैंने आज कुछ काम किया । वे अन्याय करके धनसंचय करने मे अपना बडप्पन समझते है । यह अज्ञानका ही तो फल है । मिलता जुलता कुछ नही है । घूरेके पास कोई सांड पहुंच जाये और उसे सीगोसे उलीचे, दहाड मारे, अपने पैर फेंके, पूंछ उठावे और गर्दन ऊँची करे, अपनेमे घमंड करे और समझे कि मैंने बहुत बडा काम किया, तो उसने कौनसा बडा काम किया ? घूरा उलीचा ।

इसी तरह यह काम किया, वह काम किया, कम्पनी खोली, हिस्सा लगाया, मुकदमे-बाजी की, धन संचय किया, इस प्रकारसे अनेक घमंड किया, पर अन्तमे क्या किया ? केवल

घूरा उलेभा। कितना ही धन जोड लो कितना ही किसीको बिगाड दो, पर इसमे क्या रखा है ? धन आता है तो आवे, नही आता है तो न आवे। हम धनके लिए ही पैदा हुए है क्या ? मनुष्य होकर क्या हम केवल धन कमानेके लिए ही पैदा हुए है ? हम तो आत्म-कल्याणके लिए, आत्मज्ञानके लिए पैदा हुए हैं।

मनुष्योको श्रेष्ठ मन मिला है, इस मनुष्ययोनिमे ही आत्मकल्याण कर सकते हैं। आत्माके सयमसे आ सकते है। हम पैदा इसीलिए हुए हैं कि आत्मकल्याण करें। इस लिए हम नही पैदा हुए कि धन सचय करें। इस धनको तो भाग्य पर छोड दो। धन तो भाग्यके अनुकूल ही आयेगा। तो जैसी चाहो वैसी व्यवस्था बना लो। रही दुनियामे इज्जत की बात। दुनियामे इज्जत धनके कारण नही है। इज्जत तो सदाचार तथा परोपकार करनेमे है। सदाचार परोपकार इत्यादि करनेसे ही इज्जत बढती है। कितना भी धन हो और दुराचार हो, दूसरोका बिगाड करने वाला आचरण हो तो उसको इज्जत मानते है क्या ? भले ही धन ऐंठनेमे चार आदमी प्रशंसा करदें, दस बीस हजार मिल जाये पर इसमे इज्जत नही है।

भैया ! इज्जत तो सदाचार और परोपकारमे है। धन हो तो और न हो तो, इससे इज्जत नही मिलती है। हम मनुष्य क्यो हुए ? इस बात पर विचार तो करें। केवल मोह ही करनेके लिए हम जिन्दा रहे क्या ? राग करते हैं तो हम राग करनेके लिए जिन्दा है क्या ? जितने घरके लोग है उन सबके लिए धन पैदा करके रख जाओगे तो उससे तुम्हे क्या मिला ? वे भी तो सब तुमसे भिन्न है। जैसे और सब लोग हैं वैसे ही ये घर वाले लोग है। यदि धन पैदा होता है तो धर्मके लिए खर्च करो। जितना बच्चोके लिए धुन सवार है उतना दूसरोके लिए करो। दानकी बात ऐसी ही है कि वह सदा धर्मके लिए रहती है, खानेको अच्छा नही खायेंगे, जिन्दगी भर किसीको पानी नही देंगे, पर अन्तमे क्या करते है कि यह बनवा दें वह बनवा दें। जिन्दगी भर तो कंजूसी की, पर अन्तमे केवल नामके लिए कुछ न कुछ बनवानेको तैयार रहते हैं। उनके धर्मका कोई पागलपनसा सवार रहता है। मरते समय ही वे बीस बीस हजार रुपया खर्च कर देंगे, उससे कुछ नही होता। यदि उसे ही कभी दो आने, चार आने, रुपया, दो रुपया दान करते तो ऐसा धर्म करनेसे लाभ भी था। पीछे जो बचे उसे भी दे डालें, मनाही नही है, पर जिन्दगी भर तो सूखा रूखा खाना खाया, धनको जोडकर रखा और भिखारी को कभी भीख न दी हो, पर अन्तमे कहते है कि भैया ! यह बनवानेके लिए ३ हजार लगा दो, इसके लिए १० हजार

लगा दो, ईंट पत्थरकी दीवारमे ही कुल धन खर्च कर देते है ।

जिन्दगी भर जितने भी सक्लेश किये वे ठीक नही । यदि उस धनको शिक्षाके लिए लगाते तो भी ठीक था । जिन्दगी भर दूसरोसे इज्जत पानेकी उत्सुकता बनी रही, पर इज्जत भी न पायी । इस धनसे अपनी जिन्दगीमे मजा भी नही ले पाया, इसलिए अब मरते समय कुल धन खर्च करना चाहते हैं कि रहेगा तो कुछ नही, सब छूटना ही है । जो धन वैभव को व्यर्थ मानता है वह ज्ञानसे ही व्यर्थ मानता है । धन खर्च करते है तो वे धर्मके लिए नही खर्च करते है वे धर्मशाला बनवाते है । पर कहते है कि इसमे हमी रहेगे । बतलाओ इसमे धर्म कह रहा ?

जो दूसरोको सहयोग देते है उनकी उदारता तो देखो । धर्म उसे ही कहते है । धर्म कहीं दूर नही है । धर्म तो अपना विशुद्ध ज्ञान बनानेमे है । वही जीव सुखी है जो स्वस्थ है । इसलिए तन, मन, धन, वचन न्योछावर करके भी अपने आपमे ज्ञान पाया तो समझो कि इसने सब कुछ पा लिया । सब कुछ मिले पर आत्मज्ञानको न जगाया तो कुछ नही किया । यह आत्मज्ञान क्या करोड रुपयोसे बडा है ? अरे ! करोड़ क्या ? इस जगत्मे जितना भी धन वैभव है सब हो जाये तो भी आत्मज्ञानके बराबर मूल्य नही हो सकता । इस आत्मज्ञानकी विभूतिके सामने संसारका समस्त धन वैभव व्यर्थ है ।

भैया, चाहे जितना भी धन वैभव इकट्ठा कर ले पर वह धन वैभव भी उन्हे कलकित करेगा । जन्ममरणका पात्र होना ही पड़ेगा । इस मेरेपनका भाव छूटे तो ठीक है । आप कहेगे कि त्यागी पुरुषोके कर्तव्यकी बात कह रहे है । मैं यह नही कहता कि घर द्वार, स्त्री पुत्र परिवार छोड़ दो । छोडनेकी बात नही कही जा रही, यथार्थ ज्ञान करनेकी बात कही जा रही है । अगर छोड़नेकी सुबुद्धि जगे तो और भी भला है ।

यहाँ यह बात कही जा रही है कि परिवारमे रहते हुए भी अपनेको पृथक् समझो । अपनेको पृथक् समझनेमे कुछ बिगाड़ होता है क्या ? कुछ भी तो बिगाड नही होता । उनकी पृथक् सत्ता है । देखो जब कोई मर जाता है तो कुछ न कुछ भाव ऐसा हो जाता है कि यह मेरा नही था । पर यदि ऐसा ही ख्याल जिन्दा रहतेमे कर लें तो सुखी हो जायें । होता तो आपका कोई है नही । आपका केवल इतना ही बस है कि यह भाव कर लो कि ये मेरे हैं ।

और भी देखो यहाँ सारी बातें उल्टी चल रही है । जैसे लोग मरे पर श्राद्ध करते हैं ना कि पिता मर गया तो पंडाको गेहूं दे दो तो पिताके पास पहुच जायेंगे । गाय दे दो तो पिताके पास पहुंच जायेगी । जब तक पिता जिन्दा रहा तव तक मागनेसे पानी भी नही दिया । अब मरने पर श्राद्ध करते हैं । तो सोचो तो कि लोगोमे कितनी असावधानी छाई

हुई है। जो करना चाहते हैं जिन्दामे करें। सारी बात विवेककी है। यदि विवेक है तो उससे लाभ है। धर्मकी बात यह है कि ज्ञान हो, कषाय मद हो, परोपकारकी वृत्ति जगें तो धर्म होगा। यदि ऐसा नही है तो धर्म नही है। तो ऐसे ही पुरुष जो ज्ञानसे सावधान होते है वे ही पुरुष स्वस्थ है और उन्ही पुरुषोको सुख है। सो भैया विपरीत सारी कल्पनाओको छोड़कर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

दिशेदीशोऽपि साक्षाच्चेद्विना स्वास्थ्यान्न मगलम्।
सुखदु:खे स्वयंदायी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-७॥

अपना मगल, अपना कल्याण अपने आपसे ठहरे बिना नही हो सकता। दूसरोका उपदेश वचन कितना ही मिले, साक्षात् भगवान ही उपदेश क्यो न दे रहे हो तब भी अपने आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण हुए बिना अपनेको शांति, मुक्ति, आनन्द, मगल, कल्याण न मिल सकेगा। यह जीव अपने सुख और दु खका स्वय जिम्मेदार है, दूसरा कोई उत्तरदायी नही है। घरमे, कुटुम्बमे, परस्परमे कितना ही स्नेह हो, कितनी ही मित्रता हो, उसमे किसी अन्यसे कोई लाभ मिल जाये ऐसा नही हो सकता। अपने सुख और दु:खके जिम्मेदार हम आप सभी अपने आप हैं।

जगत्मे पदार्थोका परस्परमे विभावके विषयमे 'निमित्तनैमित्तिक सम्बंध तो होता है, पर कर्ता कर्मभावोका रंच भी सम्बन्ध नही होता है। परिणमने वाला पदार्थ यदि अशुद्ध उपादानका है तो वह कब किस निमित्तको पाकर स्वय अपनी बनावट कर लेता है। यह सब परिणमने वाले पदार्थोकी एक कला है। परिणमने वाले पदार्थ तो निरन्तर प्रतिक्षण परिणमनके लिए उतारू है। परिणमनशीलता तो एक स्वभाव है। परिणमे बिना कोई नही रह सकता है। सो परिणति चलती जाती है। अब किस योग्यता वाला किस उपादानका पदार्थ कैसा निमित्त पाकर किस प्रकार परिणमता रहता है, ऐसी उन विविध परिणतियोमे मूल कारण तो परिणमने वाले पदार्थकी कला है।

जैसे दर्पण है, उस दर्पणमे छायारूप, प्रतिबिम्बरूप परिणमनेकी उसकी योग्यता है। वह दर्पण सन्निधिमे आये हुए, गुजरते हुए पदार्थोका निमित्त पाकर वह नाना रूप परिणमता रहता है। ऐसे परिणमनकी विशेषतामे कला तो उस दर्पणकी ही है। वह दर्पण जैसी उपाधि की सन्निधि पाता है वैसा अपनेको परिणमा लेता है। उस परिणमनमे उपाधिकी कुछ वहाँ कला नही होगी। कला तो परिणमते पदार्थकी है। पर वह उस ढगकी है कि जैसे निमित्त को पाये, उसमे अगर परिणमनकी योग्यता है तो उस रूप परिणम जाता है। यह परिणमन की कलाका प्रताप है। उस विभावके होने पर यद्यपि यह बात है कि निमित्तकी सन्निधि

बिना होता नही। इतने पर भी स्वरूप पर दृष्टि देते है तो निमित्त वहाँ अपनी कला नही खेलता है। निमित्त जो कुछ खेलता है वह अपने आपमे खेलता है। सो उनमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होकर भी कर्ता कर्मभाव नही है। इस बातको ठीक-ठीक परखनेमे सब बातें सामने आती है।

अब बात सोचनेकी यह है कि अशुद्ध विकासके परिणमनका ढंग तो यह है और शुद्ध विकासके परिणमनको क्या ढग है ? भैया, शुद्ध विकासके परिणमनका यह ढग है कि अशुद्ध विकासके परिणमनका जो निमित्त है उस निमित्तका अभाव होने पर अशुद्ध विकास छूटता है और शुद्ध परिणमन होता है। वहाँ पर भी परिणमने वाले पदार्थकी कलाका प्रताप है। वह शुद्ध परिणमनकी योग्यता वाला अमुक-अमुक प्रकारके परपरिणमनको निमित्त पाकर स्वयमेव परिणम जाता है। स्वयमेवका अर्थ स्वयं स्वरसतःसे नही किन्तु मात्र अपनी परिणतिसे परिणम जाता है, दूसरोकी परिणतिको साथ लेकर नही परिणमता है, चाहे कितना भी यह जीव उल्टा परिणमतो रहे।

मोहसे बढकर और कोई खोटा परिणमन है क्या ? राग द्वेष मोहके बराबर खोटा परिणमन अन्य नही है। सबसे अधिक खोटा परिणमन मोह है, भ्रम है। ऐसा भ्रमरूप परिणमन भी जीव स्वयं करता है। दूसरे पदार्थोंकी परिणतिको लेकर करता हो ऐसी बात नही है। हाँ उसमे निमित्त है कर्मोदय। परन्तु जीवमे ऐसी कला है कि ऐसी उपाधिको निमित्त मात्र पाकर अपने आपकी परिणतिसे यो परिणम जाता है। मोही जीवको कर्ता कहते है। ज्ञानी जीवको अकर्ता कहा है। इसका सीधा अर्थ यह नही लगाना है कि ज्ञानी कर्ता नही है। अज्ञानी परका कर्ता है, यदि ऐसी बात मान लें इसका अर्थ यह है कि परमात्मा तकसे भी अधिक बलिष्ट यह अज्ञानी है जो कि परका कर्ता बन जाता है। सो भैया, न तो ज्ञानी परका कर्ता है और न अज्ञानी परका कर्ता है। वस्तुकी व्यवस्था कहीं गलत नही हो सकती है।

अज्ञानी परका कर्ता है, इसका अर्थ यह है कि अज्ञानी अपने विकल्पसे अपनेको पर का कर्ता मानता है। सो परपदार्थोंको कर्ता मान लेना, यह भी इस अज्ञानी जीवकी परिणमात्मक क्रिया है। यह पुद्गल परिणमात्मक क्रिया नही है। जितने भी पदार्थ है वे सब अपने परिणमनसे अनन्य है, तन्मय है कुछ समयके लिए। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थके पर्यायसे तन्मय नही होता। किसी परके गुणसे किसी परके द्रव्यका तन्मयपना नही हो सकता। ऐसी वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि हममे प्रबल हो जिसके प्रतापसे सब हमारा विष खत्म हो जाय।

भैया, जो विष लग रहे है उनमे प्रधान एक विष है कि यह जीव चाहता है मैं लोगो

की दृष्टिमे अच्छा कहलाऊँ, यह बडा विष है। आजकल इसने बडी प्रगति कर ली है। भाई, धर्मकी चाह नही रही, कुटुम्बकी चाह नही रही, कुटुम्बसे मन नही भरता, धर्मकी धुनि लग गयी, शोध करने लगा, तपस्या करने लगा, बडे बडे त्याग भी कर लिए और प्रगति भी कर ली, पर मैं लोगोकी दृष्टिमे अच्छा कहलाऊ, इस प्रकारका महाविष जो अपने विकल्पोकी दाढ़ मे बसा हुआ है उसे न छोड़नेसे यह फल होता है कि निरन्तर आकुलताएँ रहती है। खूब विचारसे सोचो कि मैं किन लागोसे अच्छा कहलानेका परिणाम रखता हू ? किनसे ? जो नष्ट स्वयं हो जायेंगे, जो मलिन है, जो जन्ममरणके चक्रमे फसे हुए है, जिनसे कुछ मिल भी नही सकता है, उनसे यह चाहा जा रहा है कि मैं ठीक कहलाऊँ, अच्छा कहलाऊँ।

भैया! कुछ तो खुदसे बात करनेमे अपना यत्न करना चाहिए। खुदसे प्रश्न करो और खुदसे जवाब लो। मानो दुनियामें इसको कोई नही जानता। वस्तुतः जानता भी नही, अपने आपको विचारो कि मैं चैतन्यस्वरूपात्मक हू। मैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रहित हू। ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्व हू। मुझको कोई पहिचानता है क्या ? कोई पहिचान करेगा तो वह अपने खुदका बल लगाकर खुदके परिणमनरूप पहिचान करेगा, मेरेको कभी नही पहिचानेगा। जब मुझे कोई जानता ही नही है तो मै अन्यमे नाना गोरखधन्धे करके व्यर्थमे क्यो दुःखी हो रहा हू ? कल्याण वहाँ ही सम्भव है जहाँ पर किसी भी प्रकारकी चाह न रहे और यह विशद दीखे कि अरे! यह तो मैं अपने लिए कल्पवृक्ष हू। जैसा मैं परिणाम करता हू वही तो मुझपर बीतती है। मैं शुद्ध भाव बनाऊँ तो शुद्ध फल मिलता है और अशुद्ध भाव बनाऊं तो अशुद्ध फल मिलता है। जैसे कल्पवृक्षसे जो चाहो सो मिले वैसे ही यदि शुद्ध भाव करो तो शुद्ध फल मिले और अशुद्ध भाव करो तो अशुद्ध फल मिले।

एक कथानक जैसी बात है कि एक मुसाफिर नगे पैर, नगे सिर चला जा रहा था। गर्मीके दिन थे। उसको गर्मी लगी, रास्तेमे सोचता है कि छायादार वृक्ष मिल जाय तो अपना यह सताप मिटा लूँ रास्तेमे एक घने पत्तो वाला वृक्ष मिल गया। वह वृक्ष कल्पवृक्ष था। जब पेडके नीचे पहुचा तो सोचता है कि छाया तो मिल गई, पर हवा नही चल रही है। थोडी हवा चले तो आराम मिल जाय। हवा भी चलने लगी। अब सोचता है कि हवा तो चलने लगी, अगर थोडा जल मिल जाय तो अपनी प्यास बुझा लें। जल भी आ गया। अब सोचा कि जल तो आ गया, यदि कुछ फल मिल जाते तो अच्छा था। सजा सजाया फलोका थाल भी सामने आ गया। सोचा कि यह सब कैसे आ जाता है। कोई भूत तो न हो, कही भूत न आ जाय। सोचते ही लो भूत भी सामने आ गया। सोचा कही यह खा न जाय। तो भूत खा भी गया याने कल्पवृक्षके नीचे जो सोचा सो मिलता है। यह मै आत्मा

स्वयं ही कल्पवृक्ष हूं । मैं परसे क्या चाहता हूं ? सब कुछ यही तो मिलता है ।

भैया, जो कुछ भी मुझे मिल रहा है वह सब यहीसे मिल रहा है । सुख मिल रहा है, ससारको तो यहीसे, दुःख मिल रहा है तो यहीसे, संक्लेश मिल रहा है तो यहीसे, विशुद्धता मिलती है तो यहीसे और निर्मल शुद्ध आनन्द मिलेगा तो यहीसे । मेरेको जो कुछ मिलता है सब यहीसे मिलता है । बाहरसे तो कुछ मिलता ही नही है । सो साक्षात् भगवान भी उपदेश देने वाले मुझे क्यो न मिलें, पर मुझे कल्याण मिलेगा तो मेरे ही श्रद्धान, ज्ञान और आचरणसे मिलेगा । भगवानका दर्शन उपदेश तो एकमात्र सूर्यकी तरह है । लो मार्ग दिख गया, कानसे सुन लिया, सुनकर भी भीतरमे अपने ज्ञानका बल लगाना है तब मार्ग दीखेगा ।

अभी देखो कोई छोटे बच्चे, बच्ची कोई दोहा या कविता सुना रहे हो, उसे सुनने वाले सब बैठे है, पर जो जितना विवेकी पुरुष होगा, ज्ञानी होगा, उसे उन वचनोसे उतना ही बडा झलक जायगा, और जो साधारण जन है, हितेच्छु भी नही हैं, दोहा सुन लिया, यदि कुछ अच्छे रागसे हुआ तो कानोको कुछ मजा आ गया और फिर काम खत्म हो गया । आपकी आत्माको दोहेको सुनकर ऊँचा ज्ञान बनानेका मौका मिलेगा, तो आप बतलावो कि उस बच्चे या बच्चीके वचनोने ज्ञानी बना दिया क्या ? यह तो परिणमने वाली वस्तुकी परिणतिकी कलाका खेल है । बच्चा तो बोल ही रहा है, पर जो जैसी अपने परिणमनकी योग्यता रखता है वह अपनी कलासे ज्ञाता बन जाता है ।

एक दोहा बच्चोने पढा—

'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।'

इस दोहेको सुनकर जो जैसा ज्ञानी होगा अपने भावोमे घुलता जायगा । दोहा तो एक नादान बच्चेने कहा, जिसको उसका अर्थ भी नही मालूम है, उसका मर्म तो वह भी नही जानता है, शब्दार्थ भी वह नही समझता है, लेकिन उन वचनोको निमित्त मात्र कर ज्ञानी पुरुष अपनी योग्यताके माफिक अपनी कला खेल जाते हैं । कौन किसको करता ? परिणमने वाला पदार्थ अपनी कलाका खेल करता है । उनको कलाका यही साधन है सो जब तक वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि नही आती तब तक हम अपनेमे झुक नही सकते, अपने अनुकूल हो नही सकते ।

भैया, अनेक तरहकी कल्पनाएँ अज्ञानमे उठती है । हमारे रहते हुए भी होती रहती है और हम न रहेगे तब भी होगी । जो हो रहा है वह हो रहा है । परिणमने वाले पदार्थ अपनी कलाका खेल करते चले जा रहे हैं । सब अपने परिणमनमें ही अर्थात् अपनी ही मात्र

परिणतिसे वे परिणमते चले जा रहे है। हम जीव भी चाहे मोहरूप परिणमे, चाहे रागरूप परिणमे, सब अपनी ही परिणतिसे परिणमते है। कोई एक परिणति दो द्रव्योमे नही हो जाती है। और कोई भी एक द्रव्य दो द्रव्योमे परिणमन नही करता है कि मै अपना ही परिणान कर लूँ और दूसरेका भी कर लूँ।

अगर चार आदमी मिलकर गाना गा रहे है, सगीत हो रहा है, सितार बज रहा है, कोई कुछ गा रहा है कोई कुछ। देखो, इस प्रसगमे परस्परमे निमित्तनैमित्तिक सम्बध विकट हो रहा है। सब एक दूसरेकी हू मे हू ले रहे है, एक स्वरसे मिले हुए हो रहे है, सारे बाजे एक किस्मके बज रहे है, फिर भी ऐसा नही है कि तबले वालेकी आपकी परिणतिसे नाचने वालेके पैर उठ रहे हो। हो रहा है अनुकूल काम। उस ठापेके अनुसार उसके पैर उठ रहे हैं। कभी उल्टा उठ जाये, कभी सीधा उठ जाये तो ऐसा नही है। इतनी बात होकर भी वे सब परस्पर सबसे न्यारे है। वे उनके स्वर सुन रहे, हँस रहे, इतना झुकाव है, फिर भी वास्तवमे किसीका किन्ही दूसरो पर झुकाव नही है। उनकी अपनी-अपनी कलाका जुदा-जुदा खेल हो रहा है। दूसरा कोई नही झुक रहा है। अज्ञानी उन्हे देख-देखकर कहते वाह-वाह अच्छा, वे परस्पर खीरसी पका रहे है। खीरसी तो पक रही है मगर सब अपना-अपना काम कर रहे है। कोई किसी दूसरेका काम नही कर रहा है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यपर असर पैदा नही करता है, पर परिणमने वाले पदार्थ विभाव की योग्यता वाले है तो परका निमित्त पाकर स्वय अपने आप अपना असर उत्पन्न कर लेते है। अच्छा जरा निर्णय कर लो, असर क्या चीज है द्रव्य है कि गुण है कि पर्याय है। अगर गुण है तो त्रैकालिक रहना चाहिए। असरको एक पर्याय कह सकते है। असर जिसमे है उससे उस समय भिन्न है तो वह परिणमने वाले पदार्थमे है। स्वय अपने आपमे यह असर उत्पन्न किया गया है स्वयकी अपनी ही परिणतिसे। वह असर यदि विभावरूप है तो परका निमित्त पाकर परिणमा है। अन्य किसीकी परिणति लेकर, असर लेकर, छाया लेकर उसने अपना काम नही किया।

इसमे दोनो बातोका समावेश है कि निमित्तनैमित्तिकका सहजसम्बन्धी जगत्मे अटल चल रहा है तिस पर भी सब पदार्थ स्वय अपने आपमे अपने सर्वस्वमय बने हुए है। ऐसी दृष्टि हो तो कौन कहेगा कि मेरा पुत्र है। एक आत्माका अन्य आत्मासे क्या सम्बन्ध है ? आपके साथ वह लगा हुआ भी नही है। आगे लगा रहेगा सो भी नही है। कुछ भी नही है। किसीने इस जीव पर राग पैदा नही किया है, पर अज्ञानसे यह जीव अपने आपमे मोह को उगलता हुआ रह रहा है। परमे मोह न डालो, परसे कुछ मिलता नही, परसे मोह

होता नही । आपकी आदत ऐसी बनी है कि उस रूप विलास अपनी परिणतिसे उगलते है ।

जो आपके घरमे जीव है, मान लो वे जीव न आते और जगत्मे जो अनन्त जीव पड़े है उनमे से कोई अन्य जीव आपके घरमे आता तो क्या उससे मोह करनेमे आप गम खाते ? कोई भी आता, आप उससे मोह कर बैठते । हां यदि उसकी किसी परिणतिसे आपको अपने विषयोमे बाधा जचेगी तो मोह छोड दोगे । छोड नही दोगे, उस मोहकी दिशा बदल दोगे । हम अपने सुख दुःखके ही उत्तरदायी है, स्वयं जिम्मेदार है । सो अपनेसे दुःख मेटना है, आनन्दमे आना है तो उसका उपाय है सम्यग्ज्ञान ।

विश्वं सुखांशमूल न शं ज्ञानत्यागयोः फलम् ।
सुखदुःखे स्वयंदायी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-८॥

यह सारा संसार, यह जगत्का सारा वैभव मेरे सुखका रंचमात्र भी कारण नही है । सुख परिणमन आत्माके आनन्दगुणका परिणमन है । जैसे आत्मामे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण आदि अनेक गुण है, इसी तरह आत्मामे आनन्द नामका एक गुण है । सो जब शुभकर्मका उदय होता है तो आनन्दगुण सुखरूप परिणमता है और जब अशुभ कर्मोंका उदय होता है तब आनन्दगुण दुःखरूप परिणमता है । और जब कर्मोंका लेश नही रहता है तब आनन्दगुण शुद्ध आनन्दरूप परिणमता है । दूसरा कोई पदार्थ हमे सुखी नही करता । सुखकी आशा रखते है कि लडकेका विवाह होगा, बहू घर आयेगी, बडा सुख होगा । कितनी आशा रखी थी, किन्तु सबका कषाय जुदा है । बहूको जैसे सुख प्रतीत हो वैसे ही कषाय बनेगी । सास समझाती है कि यह मेरे विरुद्ध बर्ताव करती है सो वह दुःखी हो जाती है । सुखकी तो आशा की थी बेटे बहूसे और इसी आशामे खूब मन लगाकर पालन-पोषण किया था और देख-देखकर सुखी होते थे ।

कोई भी परपदार्थ अपने सुखका कारण नही है । सुख परिणमन अपनेमे ही बसे हुए अनन्त गुणोके परिणमनसे होता है । दूसरोसे सुख नही आता है । दूसरे पदार्थोंमे दो ही तरहके पदार्थ है चेतन और अचेतन । अपने आपकी आत्मासे अन्य जो जितने चेतन हैं अनन्तानन्त वे सब मेरे लिए पर है । और जितने अचेतन है—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल वे सबके सब भी मेरे लिए पर है । अचेतनमे तो सुख नामक गुण ही नही है, उनसे मेरेमें सुख कहांसे आये ? और अन्य चेतन पदार्थोंमे सुख नामक गुण तो है मगर उनका गुण उन्हीके लिए है । उन्हीमे ही वह तन्मय है । इस कारण परपदार्थोंसे अपनेको सुख कैसे मिलेगा ? किसी भी परद्रव्यसे अपनेको सुख नही मिलता, किन्तु अपनेमे ही अनेक प्रकारके विकल्प बनाकर, अनेक प्रकारका ज्ञान करके सुख अथवा दुःखका अनुभव करते है । यदि

देखा जाये तो परसमागम मेरे सुखमे बाधक है। जिनको हम समझते है कि ये परपदार्थ मेरे सुखमे साधक हैं। वे साधक नही है। जैसे कोई एक सेठ गुजर गया। घरमे नाबालिग पुत्र है तो सरकारने उस नाबालिग पुत्रकी जायदादको कोर्ट ऑफ वोर्डमे ले लिया और उसका ठीक ठीक प्रबंध कर दिया। अब उसके पालन-पोषणके लिए ५०० रु० माहवार बाँध दिये। जब कि २०–३० लाखकी जायदाद कोर्टकी है। उस नाबालिगको जायदादकी क्या खबर? वह १० वर्षका होता है, १२ वर्षका होता है और सरकारके गुण गाता है कि सरकार घर बैठे हमको ५०० रुपये महीना भेजती जाती है। वह नाबालिग समझता है कि सरकार तो बडी दयालु है, हमे ५०० रु० महीना भेजती है। अब जब १७-१८-२० वर्षका हुआ तब पता पड़ा कि अरे हमारी तो २०-३० लाखकी जायदाद सरकारके हाथ है। उसकी एवजमे ५०० रुपये महीना भेजती है। यह मुझे नही चाहिये, मुझे तो अपनी जायदाद चाहिए। सो वह सरकारको नोटिस देता है कि मैं अब बालिग हो गया हू, हमारी जायदाद हमे सौंपी जाय। जायदाद उसे प्राप्त हो जाती है।

इसी प्रकार यह आत्मा अभी नाबालिग बना हुआ है। मिथ्यादृष्टि आत्मा कहो या नाबालिग कहो। इसकी जायदाद तो अनन्तानन्तकी है, मगर नाबालिगकी जायदाद जिसे सरकारने कोर्ट कर लिया है, इसी तरह इस नाबालिग जीवके आनन्दको कर्म सरकारने छीन लिया। अब उसकी एवजमे क्या मिल रहा है? कुछ पुण्यका साधन है उसके अनुकूल कुछ विषय भोगोके साधन मिल रहे है। कुटुम्ब मिला, स्त्री मिली, बन्धु मिले, कुछ जायदाद मिली सो यह नाबालिग जीव बडा खुश है। कहता है कि अच्छा उदय चल रहा है। खूब साधन मिले हैं, पुण्यका गुण गाता है। जब इस जीवको पता लग जाये कि अरे मेरा स्वरूप स्वय आनन्दमय है, ये जो कुछ वैभवके टुकडे मिल रहे है उनको कहते है कि कर्मोदयसे निमित्त पाकर मिल रहे है। जब तक तुम इस धन-वैभवको अपना मानते रहोगे, विषयभोगो को भोगते रहोगे, इन सुखोसे ही खुश रहोगे तब तक यह जायदाद तुमको नही मिल सकती।

अब वह बालिग होकर याने सम्यग्दृष्टि जीव होकर नोटिस देता है कि ऐ कर्म सर-कार, तेरे उदयसे जो कुछ विषयसामग्री मिली है मुझे नही चाहिए। यह सुखमे बाधक है, यह मुझे नही चाहिए। पाई पाईको संभालो, मुझे कुछ नही चाहिए। एक परमाणुमात्र भी राग हो तो उसके सम्यग्दर्शन नही रहता। परमाणुमात्र भी राग न हो तो उसके सम्यग्दर्शन रहे अर्थात् राग हो और उसे ही आत्महित मान लें तो वह सम्यग्दृष्टि कैसे? कोई किसी घर मे अकेला हो, स्त्री हो और कहे कि देखो हमने सबका राग छोड दिया, केवल एक स्त्री भर का राग रह गया, बाकी सब राग मैने छोड दिये, केवल एक स्त्री भरका राग रह गया तो

क्या उसका ९९ प्रतिशत मिथ्यात्व नष्ट गया ? अरे ! शत प्रतिशत मिथ्यात्व है । परमाणु मात्र भी अगर राग है, जरा भी राग है । पर्यायबुद्धिकी बात कह रहा हू कि यह राग मेरा ही है, यह राग मेरे हितरूप है, यह न समझकर रागसे अपनेको भिन्न नही देख सकता तो ऐसी स्थितिमे मिथ्यात्व ही है ।

अब बालिग सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य सरकारको नोटिस देता है कि सब पाई पाईको संभालो । किसी भी वैभवकी मुझे चाह नही है । मेरेको तो मेरा जो स्वरूप है, मेरा जो आनन्द है बस वही मेरा है । तब वह सारे बाहरी सुखोसे अपनेको दूर करता है और अपने
आनन्द है बस वही मेरा है । तब वह सारे बाहरी सुखोसे अपनेको दूर करता है और अपने
आपमे आनन्दका अनुभव करता है । यो कह लो कि किसीने बहका दिया था, मामूली सुखमे अब बहम मिट गया । यह सारा विश्व मेरे सुखका रच भी कारण नही है । सुख होता है तो वह अपना ही परिणमन है । अपनी ही परिणतिसे होता है । दूसरे सुख नही पैदा कर देते । सब भवितव्यता ज्ञानकी कला पर निर्भर है । यो कह लो कि मै कैसे जानू तो सुख हो जायगा और मैं कैसा जानूं तो आनन्द हो जायगा ? बस उन जाननके प्रकारो पर ही सुख दुःख और आनन्दका निर्णय है । बोम्बे या कलकत्तामे कोई काम चल रहा हो और कल्पना मे यह आये कि दो लाखका टोटा है, चाहे हो गया हो मुनाफा, वहाँ जरूर कष्ट बनाता है कि हाय मुनाफा हो रहा था और टोटा पड गया । कदाचित् टोटा पडा हो और यह खबर फैली हो कि मुनाफा हुआ है तो कल्पनाएँ करके वह मौज मान लेगा ।

मौज कहते है किसे ? मालूम है ? 'म' के मायने है नही और 'ओज' के मायने हैं प्रभाव, प्रताप, काँति । अर्थात् जहाँ प्रभाव, प्रताप, कांति आदि न रहे उसे मौज कहा जाता है । पचेन्द्रियके विषयभोगोके सामने देख लो, मौज नही रहती, बल नही रहता, प्रताप नहीं रहता और ज्यादा समझना हो तो कोई जैसे खा रहा हो, कैसे खाता है ? कैसे हाथ चलाता है ? कैसे मुख चलाता है ? इसका अगर फोटो हो तो फोटोमे भी खूबसूरती नही आयेगी । किसी चीजको रागपूर्वक कोई देखता हो तो उसकी मुद्रा विकट रहेगी, उसका फोटो लेनेमे ठीक नही आयेगा । सब विषयोकी बातें भी कर लो, पर जहांपर ओज नही रहता, उसे मौज कहते है । ये विषय सुख तुम्हारे हितकारी नही है । परपदार्थोके सुखसे मुडना कैसे हो ? तो विषयकषायोसे बढकर कोई अच्छी चीज मिले तो विषयोसे मुडना बनेगा, अन्यथा इन विषय सुखोसे मुडना कैसे होगा ?

कोई भिखारी ५–७ दिनकी बासी रोटियां अपनी झोलीमे भरे है । वह इसलिए कि किसी दिन भीख न मिले तो भूखा तो न रहेगा । कई दिनकी रोटियां झोलीमे डाले रहता

है और कोई दयालु सेठ कहे कि ये तेरी रोटियाँ बफूड गयी है, खराब हो गयी है, इन्हे फेंक दो तो क्या वह रोटियाँ फेंक देगा ? वह भिखारी बहक जायेगा और अगर सेठ कहे कि जो ये रोटियाँ तेरे सामने रखी हैं तो वह भिखारी उन रोटियोंको फेक देगा कि नही ? फेंक देगा क्योकि उससे बढकर चीज मिली है । तो विषय सुखोमे जो लगाव है यह न रहे, मिट जाय, यह तब हो सकता है कि इससे बढ़कर कोई आनन्दकी चीज मिले, तभी विषयसुखोसे मुडना हो सकता है ।

आप दूसरेके यहाँ जब भोजन करते हो तो दसो तरहके चीजें परोसी जाती है । जो स्वादिष्ट चीज है उसको लेनेके लिए मामूली चीजको मना कर देते हो कि यह चीज मेरे पास है, नही चाहिएँ । अव्वल तो यह देखो कि केवल कल्पनाकी बात है कि स्वाद किसमे ज्यादा है ? पूडी मिठाइयोमे स्वाद अधिक है या साग रोटीमे । पूरा विचार करके देखोगे तो साग रोटीमे स्वाद अधिक है । पूडी मिठाइयोमे जल्द ऊब जावोगे, घबडा जावोगे, चित्त हट जायेगा, पर अपनी जो कल्पनाएँ बना रखी हैं कि वह कीमती चीज है, इसमे ज्यादा स्वाद है । खैर तुम्हे यदि विषय कषायोसे भी अधिक कीमती चीज मिले तो तुम उनसे मुख मोड-कर खा सकते हो, अन्यथा नही ।

यह विषयकषायोका खिलौना परका खिलौना है, आत्मीय आनन्दका खिलौना तो निजी खिलौना है । जैसे निजी खिलौना बालकको न मिले तो दूसरेके खिलौनेको देखकर रिसा जाता है । पर उस रिसा जानेसे रोना मिट जायेगा क्या ? उसका खिलौना रख दो तो रोना बन्द हो जायेगा । तुम इस परखिलौनेके पीछे पड रहे हो, दु.ख भोग रहे हो, परपदार्थ अपने रूपसे परिणम रहे हैं, ये मोही जन सोचकर दु:खी हो रहे हैं । हाय यह यो क्यो नही परिणम गया ? दु:खी हो रहे है । परखिलौनेके पीछे भाग रहे है और अपने खिलौने या आन-न्दस्वभावकी दृष्टिमे जो स्वयं आनंदमय है, उपयोग नही देते । हाय ! "आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।"

मैं स्वयं आनन्द स्वरूप हू आनन्द प्रकट करनेके लिए मुझे कुछ करना ही नही है, बाहरसे कुछ नही लाना है, बाहरमे कोई योजना नही बनानी है, परमात्मस्वरूपका विश्वास अन्यत्र नही करना हैं । वह स्वभावसे यही है, पर जो उल्टे कार्य हैं उनको बन्द करना है, जो बाधाएँ आयी है उनको दूर करना है । इसी कारण इसको कहते हैं—"टंकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वरूप ।" टकोत्कीर्णवत् याने उकेरे हुए प्रतिबिम्बकी तरह यह आत्मस्वरूप है । इसमे दो बातें आती है—एक तो टंकोत्कीर्णवत् प्रतिबिम्बकी तरह निश्चल है ज्ञायकस्वभाव । जैसे टांकीसे उकेरी गयी प्रतिमा निश्चल है, उसका हाथ नही मोड सकते, कोई अवयव चलाय-

मान नही कर सकते । इसी तरह आत्मस्वरूप भी अपने रूपसे चलायमान नही हो सकता ।

टंकोत्कीर्णवत् दृष्टान्तमे मर्मकी दूसरी बात क्या है कि जैसे एक बड़ा पत्थर कारीगर के सामने रख दिया और बता दे कि देखो इस पत्थरको बाहुबलीकी मूर्ति बनाना है। कारीगर उसे सूक्ष्मदृष्टिसे देखता है । फिर कहता है कि अच्छा बन जायेगी । बाहुबलीकी मूर्ति उस कारीगरकी निगाहमे आ गयी । अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टिसे उसने मूर्तिको देख लिया । उसे पत्थर मे यह दिख गया कि मूर्ति यह है, मूर्ति बनी बनाई है । उसे मिट्टी वगैरा लाकर नही बनाना है, किन्तु चारो तरफसे ढकने वाले जो अवयव है उनको हटाना है । उन पत्थरोको हटाते-हटाते जब सब हट जायेंगे तो मूर्ति प्रकट हो जायेगी । उस हटानेमे भी कैसी क्रिया होती है कि पहिले तो लम्बे-चौडे हाथ मारते रहते है, फिर भी सभालकर कि बीचमे न टूट जाये, लम्बे चौडे आवरक पत्थर बाहर निकाले जाते है । मूर्तिका साधारण आकार आ जाता है, फिर बडी सावधानी करते है । जब और पत्थर निकल जाते है तो और सावधानी करते है, फिर अत्यन्त छोटी छेनी हथौडी आदिसे उन पत्थरोको अलग करते हैं । तो कितनी तरहके उसके आवरकोको हटाना पडा ?

यही बात इस जीवकी है । जिसके आत्माका परमात्मविकास होना है तो उस कारीगरको इसका परमात्मतत्त्व दीख गया है । यह आत्मा देखनेकी चीज नही है, ज्ञान द्वारा देखनेकी वस्तु है अर्थात् जो शुद्ध सहज आनन्दका अनुभव है उसके द्वारा विपत्ति होती है कि परमात्मस्वरूप यह है । उसको प्रकट करनेके लिए कोई चीज नही लगानी है, किन्तु उसमे जो बाधक है उनको दूर करना है । फिर भी और देख लो, शरीरसे उसे न्यारा करना है तो शरीरसे न्यारा अपनेको समझो । इसमे ज्यादा सावधानी नही वर्तना है । विवेकसे यह बतलावो कि यह जुदा है । शरीरकी मिट्टी आत्माके निकल जाने पर पडी रहती है । इस शरीर से अपनेको न्यारा समझो । अपनेसे चिपटे हुए बाधक जितने भी पदार्थ है सबको न्यारा करो । सबको न्यारा किया, हटाया, अब और भीतर बढते जा रहे है विभाव पर है, निमित्त पाकर होते है । भीतर चलकर वितर्क, विकल्प, विचारोको हटावो और चलकर छुटपुट ज्ञानको हटावो । यह ज्ञान भी मेरा नही है । मै तो अखण्ड हूँ । यह खण्ड ज्ञान है । इस प्रकार अखण्ड ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे समाधि हो जाती है तो उस बलसे ये सब विकार दूर हो जाते है और परमात्मस्वरूप प्रकट हो जाता है । प्रकट होनेमे चीज नही लपेटनी पडती, किन्तु जो आवरक लग गये थे उन चीजोको अलग करना पड़ा ।

इस प्रकार टकोत्कीर्णवत् यह ज्ञायकस्वभाव है । इसका अर्थ यह है कि यह अपनेसे अपनेमे प्रकट होता है । और इसी तरह की सभी बातें है । यह जो सांसारिक मौज है यह

भी विकल्प करके प्रकट होता है, अन्य पदार्थोंसे नही प्रकट होता। यह तो अपने ही ज्ञानका एक परिणमन है। किसी परपदार्थसे सुख मुझमे आता हो ऐसी बात नहीं है। इस कारण समस्त विश्व, समस्त जगत्के पदार्थ भी इस जगत्के सुखके अंशमात्र भी कारण नही है और वहाँ पर जो सुख है, आनन्द है वह तो ज्ञान और त्यागका फल है। ऐसा जानकर कि सुख अपनेमें अपनेसे प्रकट होता है, इस निजमे अपने लिए तुष्ट रहूं और अपनेसे अपने आप सुखी होऊँ।

अद्वैते स्वेऽस्तु दृष्टिर्मा द्वैतेऽद्वैते न संभ्रमः।
विपज्जन्म न मृत्युर्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-६॥

अपने आपके एक अद्वैत आत्मतत्त्वमे दृष्टि हो, किसी द्वैतपर दृष्टि मत हो, अपने आपके मात्र स्वरूप पर लक्ष्य हो, अपनेसे भिन्न किसी भिन्न पदार्थमे दृष्टि न हो। यह बात कही जा रही है आत्मकल्याणकी। गृहस्थ अवस्थामे अनेक द्वैतोका सम्पर्क रहता है। धनका उपार्जन, कुटुम्बका पालन, समाज और देशकी रक्षाका भी विचार—ये सब बातें गृहस्थावस्थामे होती हैं। इन सबके होते हुए भी ज्ञानी गृहस्थको यह विश्वास बना रहता है कि किसी द्वैत पर भिन्न अर्थपर दृष्टि लगाना अपना समय खोना है, फिर भी वह पद ऐसा है कि जिस पद मे द्वैतोसे वास्ता पड़ता रहता है। स्वाद तो उस ज्ञानी गृहस्थके भीतरकी वृत्तिमे और आत्मा के विश्वासमे आता है।

एक विनोदका चुटकला है कि बादशाह और बीरबल थे। बादशाह बीरबलसे बोला कि बीरबल, आज रातको मैंने एक स्वप्न देखा। बीरबलने कहा—कहो महाराज। बादशाह ने कहा कि मैंने स्वप्नमें देखा कि हम तुम दोनो घूमने जा रहे थे। रास्तेमे दो गड्ढे मिले जो पास-पास खुदे हुए थे। एक गड्ढेमे तो भरा था गोबर और दूसरेमे भरी थी शक्कर। बीरबल मैं तो शक्करके गड्ढेमे गिर पडा और आप गोबर मलके गड्ढेमे गिर पडे। बीरबल बोले—महाराज हमारा और आपका न जाने कैसा दिल है कि जो कुछ तुमने स्वप्नमे देखा वही हमने देखा। हमने भी देखा कि हम दोनो घूमने जा रहे थे, रास्तेमे दो गड्ढे मिले, सो तुम तो गिरे शक्करके गड्ढेमे और हम गिरे गोबर मैलके गड्ढेमे। मगर इसके आगे थोडा और देखा कि हम तुमको चाट रहे थे और तुम हमको चाट रहे थे। तो बीरबलको स्वाद किसका आ रहा था? शक्करका। और बादशाहको स्वाद किसका आ रहा था? गोबर तथा मलका।

ऐसे ही भैया, बाह्यपरिस्थितिसे गृहस्थीकी दशा गोबरमे पडी हुई जैसी है। चारो ओरकी आफत है, घर है, समाज है, देश है, आये गयेका सम्मान है। साधु लोग आतें हैं,

चाहे नाराज होकर, गुस्सा होकर चले जायें, पर गृहस्थ ऐसी वृत्ति रखता है कि साधु नाराज न होने पायें, गुस्सा न होने पाये। ठीक-ठीक ये चले जायें। धार्मिक मामलोमें, सामाजिक मामलोमे तो क्षुब्ध है, गोबरमे पडे हुए है। मगर ज्ञानी गृहस्थ जिसकी दृष्टि निर्मल है, जिसने अपने आपके स्वरूपका यथार्थ परिचय पा लिया है कि मैं सबसे न्यारा हू, केवल अपनी सत्तामात्र चैतन्यस्वभावी एक आत्मतत्त्व हू। ये जो अपने उपयोगमे वर्तता है ऐसे ज्ञानी गृहस्थ को स्वाद किस बातका आता है ? उसे उसकी निर्मलतासे शुद्ध आनन्दका स्वाद आता है। और एक पुरुष भावुकतामे आकर या किन्ही झंझटोमे आकर या कुछ विरक्त हो जाये जिसके कारण गृहस्थीको छोड देता है, त्याग वृत्ति आती है, उसकी परिस्थिति बाहरसे शक्करके गड्ढेमे पडी हुई है, क्योकि दुकानकी चिंता नही, खानेकी चिंता नही, भूख लगी तो अनेक बुलाने वाले होते है। कुछ चिंता नहीं, कुछ फिक्र नही। शक्करके गड्ढेमे पडे हुए बाहरके त्यागी है, पर भीतरमे अपने आपके स्वभावकी दृष्टि नही करते। कोई उसकी खबर ही न होवे और भी बाहर-बाहरकी बातोमे ही चित्त होवे या जिन विषय कषायोसे ऊबकर गृहस्थ हटना चाहता है और कदाचित् त्यागी जन उन विषयकषायोंकी ओर झुकना चाहता है, कुछ-कुछ ख्याल करता है कि गृहस्थीमें बड़े सुख है, इनको तो मौज आ रहा है, तो उसे स्वाद किसका आया ? गोबरका, आकुलतावोका, मलिनताका। स्वाद आता है दृष्टिसे और दृष्टिके अनुसार बनती है सृष्टि। जैसी दृष्टि हो वैसी ही इस जीवकी सृष्टि बनती है। दुनिया की सृष्टि करने वाला परमात्मा है, ऐसी जो प्रसिद्धि है साधारण जन समाजमें वह बात कैसे बन गयी, फैल गयी ? इसपर जरा विचार तो करो। बात तो मूलमे यह है कि जीव जितने हैं, वे सब अपनी कल्पनाओंसे अपनी सृष्टियोसे अपनी परिणति पाते चले जा रहे है और अर्थ पर्याय, व्यञ्जन पर्यायरूप होते चले जा रहे हैं अर्थात् अपनी कलासे अपनी सृष्टि नाना रूप बनाते चले जा रहे है। इन सब जीवोको सहजस्वरूपमे देखो तो वे सब ईश्वरस्वरूप है। ईश्वर कहते उसे है कि जो ऐश्वर्यशाली हो, अपना काम करनेमे अपने आप समर्थ हो, दूसरेकी प्रतीक्षा, परिणति, पराधीनता लगती न हो, उसे ईश्वर कहते है।

एक गांवपति जमीदारकी किसी बिदेश, बाहरी गांवसे कोई अटक नही रहती है। गेहूं उसके खेतकी मिट्टीसे पैदा होते है, मिट्टीका तेल मिट्टीमे पैदा होता है, कपडा यह भी मिट्टीसे पैदा होता, शक्कर आदि भी मिट्टीसे पैदा होती है। जैसे गांवपतिको, जमीदारको किसी दूसरेसे कुछ अटक नही है तो उन जमीदारोको ईश्वरका जैसा कहते हैं। जैसे कहते है ना कि "इक गांवपति जो होवे सो भी दुखिया दुःख खोवे।" जमीदार लोग स्वय अपना काम बना लेते है। किसी अन्यकी अटक नही रहती। इससे वे गांवके ईश्वर कहलाते है। अटक

तो वहाँ भी चल रही है, पर इन आत्मतत्त्वोको तो देखो, इनकी तो अत्यन्त स्वाधीनता है।

आत्मा है और परिणमता है—यह तो है कर्तापन और जिस रूप परिणमता है वह परिणाम इसने पा लिया, प्राप्य हुआ वह है कर्म और अपनी ही परिणतिक्रियाके द्वारा अपने परिणाममे पाया है, यह है उसका साधन, करण और जिस रूप भी यह परिणमा उस परिणमनका प्रयोजन फल इसको उसी समय मिल जाना, यह है उसका सम्प्रदान और यह अपने पूर्वपर्यायोसे विलग होकर नवीन परिणतिमे आता है, यह ध्रुव ही है, यह है उसका उपादान। सम्बन्ध तो उसका कारक ही नही है। संस्कृतमे से, सम्बन्ध नामकी बात तो अटपट है और यह परिणाम गया, जिस रूप परिणम गया, उसको उसके आत्मप्रदेशोमे देखो, एक अद्वैतमे देखो, यह है अधिकरण। केवल एक वस्तुके स्वरूपको देखो तो इसने अपनेमे किया, अपने द्वारा किया, अपने लिए किया, अपनेसे किया। इसका यह सृष्टिका काम कैसा स्वतत्र है और उस काममे यह प्रभु है, समर्थ है, इसलिए सब जीवोका नाम ईश्वर है और ये सब इसीलिए अपनी-अपनी सृष्टिमे निरन्तर लगे हुए हैं।

जैसे प्रसिद्धि है ना कि जगत्को ईश्वरने बनाया। उसने सोचा कि "एकोऽहं बहु स्याम्।" मैं एक हू, मैं बहुत रूपोमे होऊँ। उसकी मंशा हुई तो मंशा होते ही सृष्टि बन गई, उसे ज्यादा परिश्रम नही करना पड़ा। उसकी मंशा हुई, इच्छा आयी, भाव आये और सृष्टि बन गई। यह बात तो सब जीवोमे होती है। इस जीवके हाथ पैर तो है नही कि किसी चीजको ठोके, पीटे, बनाये। जीव तो एक अमूर्तवस्तु है। यह भाव करता है और सृष्टि बन जाती है, मंशा करता है और रचना हो जाती है। निमित्तनैमित्तिक सहज सम्बन्धपूर्वक रचना हो जाती है। इस प्रकार हम और आप सब अपने आपके भाव बनाते रहनेके काममे लगे है। जब हम भाव बनाने मात्रके अधिकारी हैं तो हम क्यों नही भाव उत्तम बनाते जिससे मुफ्त ही मेरी सृष्टि बन जाये। हम भाव बनाते हैं और सृष्टि करते रहते है। केवल भावोकी ही तो बात है।

जैसे बच्चे लोग बैठकर पगतका खेल करते हैं कि इनकी ओरसे पगत हो रही है। बडा पत्ता हो तो उसको पत्तल मान लिया और छोटे पत्तेको रोटी मान लिया, बडे कंकडको गुडकी भेली मान लिया और छोटे कंकडो चने मान लिया। अब देखिये भाव बनानेसे ही कंकड, चने और गुडकी भेली हो गई। केवल भाव ही किए ना, सो हे बच्चे लोगो, इन भावो से ही रोटीकी जगह उसे पूडी क्यो नही मान लेते ? चनोको बूँदी क्यो नही मान लेते ? अर्थात् परोसते समय यह कहा कि लो यह पूडी है, लो ये बूदी है। एक बच्चेके भावकी बात कह रहे है। यह मात्र दृष्टान्त है। रोटी, गुड परोसनेमे ही मौज ले रहे है तो ऊँची चीज

कहकर खेलनेकी मौज लें। वहाँ पर भी सारी करामात भावोंकी ही है। यह भी देखो कि वहाँ तो केवल खेल है, पर यहाँ तो यह बात गुजरती है कि खोटे भाव किए कि वही आकुलताएँ हो गयी। कान्ति घट गयी, झेंप हो गया, दुःख हो गया। यह तो भीतरमें बात गुजरी और कालान्तरसे बाहर क्या गुजरता है कि कीडे बन गये; पशु बन गये, नारकी बन गये, लो खोटे भावोसे यह गुजरता है और बजाय उन खोटे परिणामोके उत्तम परिणाम हो जायें तो आनन्द आये। यदि अच्छा परिणाम किया है तो व्यवहारमे भी परिणाम अच्छा है।

सद्व्यवहारके लिए सबसे पहली बात तो यह है कि हम दूसरोका आदर करें। दूसरोका हम आदर करते है, आदरके वचन बोलते है तो वहाँ कोई शका नही रहती है। बडे प्रेमसे बोल वर्तावके कर्मोंको करते हैं। जो सुनते हैं वे भी प्रसन्न रहते है। आगेका समय भी ठीक-ठीक गुजरता है। और किसीका अपमान करो, निरादर करो, दुर्वचन बोलो, इसका क्या फल है कि दुर्वचन बोलनेके पहिले बोलने वालेको अपनेमे संक्लेश तैयार करना पड़ता है, हिम्मत बनानी पडती है, भीतरमे एक दुःख अनुभव करता है। पहली तो यही खोटी बात गुजरी, और दुर्वचन 'निकल गया तो फिर वापस नही आता।

जैसे धनुष तानकर बाण छोड दें तो वह वापिस नही आ सकता। बाणके छूट जाने के बाद हाथ जोड़कर ऐसा निवेदन करें कि ऐ बाण, लौट आवो, मुझसे भूल हो गयी, मेरी गल्ती हो गयी, मुझे खबर नही रही, ताव आ गया था, दिमाग दुरुस्त न था, ऐ बाण लौट आवो, ऐसा निवेदन करनेसे बाण वापिस हो जायेगा क्या ? नही। इसी तरह जब बोलते है तो धनुषका सा आकार मुहका बन जाता है। जैसा टेढा धनुष होता है वैसा ही मुख हो जाता है। जब धनुष चढाते हैं तो बाँस तो टेढा है ही, डोरी भी टेढी हो जाती है। इसी तरह जब बोलते है तो मुह भी टेढा हो जाता है और दुर्वचन बोलने वालेका तो बडा लम्बा चौडा धनुषाकार मुह बनता है। शान्तिसे बात करने वालेका मुख लम्बा चौडा नही बनता है। खोटे वचन बोलें तो उसके मुखका बहुत बड़ा धनुषाकार बन जाता है। इस मुखधनुष से कुछ भी हो, मर्मभेदी वचन बाण निकल गया तो निकल जानेके बाद अब वचनोसे प्रार्थना करो कि ऐ वचन, वापिस हो जावो तो नही हो सकता है। इसीसे दुर्वचन बोलनेके बाद क्षमा मांगो तो बडी कठिनाईसे हो पाता है। क्षमा सद्व्यवहार यह है कि दूसरोके सम्मानकी बात बोलें, आदरकी बात बोलें। इस तरहसे खोटा वातावरण बढिया हो सकता है।

यदि सद्भाव होता है तो सृष्टि उत्तम होती है। जब भावोसे ही सारी बात हमसे गुजरती है तो विवेक यह कहता है, बुद्धिमानी यह कहती है कि अपने भाव निर्मल हो, शुद्ध हो, सब जीवोके प्रति सुखी रहनेकी भावना हो, किसी जीवको अपना विरोधी न समझें, यह

सद्भावोकी सबसे प्रधान बात है। कोई भी हो, ऐसे भी हो कोई कि विरोधसे जो चलता रहता है, कुछ बिगाड करनेका यत्न करते रहते है तो इस पर भी सोचो तो सही कि वह मेरे विरुद्ध नही कर रहा है। उसका कषाय परिणमन इसी प्रकारका उत्पन्न हो रहा है, सो वह अपना कषाय परिणमन कर पाता है, इसके आगे कुछ नही कर पाता है। अव्वल तो उसके निमित्तसे मेरा कुछ बिगाड नही होता है। मैं तो अपनी कल्पना बनाता हू तब बिगाड कर लेता हूं।

भैया, सोचो तो सही कि जब भी हमे कोई दुःख होता है तो उस दुःखसे हमारा अपराध है कि दूसरोका अपराध है? हमारे दुःखमे हमारा ही अपराध है। एक यह बात अगर घर कर जाये कि हम जन जब दुःखी होते है तब अपने ही कसूरसे दुःखी होते हैं, दूसरे के अपराधसे हम दु'खी नही होते है। तो हम जब दुःखी होगे अपना अपराध निरखने लगेंगे कि मैने अपराध किया है, मुझे दुःख क्यो हुआ? मुझे तो दु.ख हो ही नही सकता था। यह तथ्यकी बात अपनी अनेक घटनावोसे घटादो। जब जब दु.ख लगे हो उन प्रसंगोमे देख लो कि इसमे मैने कसूर क्या किया जो दु.ख हुआ? हमारे कसूरके बिना दुःख हो ही नहीं सकता। अब एक समस्याका उत्तर लो, जब कि हम तो सदाचारसे रहते हैं, किसीका कुछ बिगाड नही करते हैं, किसी प्रकारका कोई असद्व्यवहार भी नही है, तिस पर भी कोई बैरी हमे गालियाँ दे, अपयश करे, यहाँ वहाँ यद्वा तद्वा बके सो यहाँ यह प्रश्न होता है कि मैंने तो कुछ भी अपराध नही किया, फिर यह दुःख क्यो हो गया? मेरी कोई बात खोटी हो तो यह बात ठीक है कि मेरे अपराधसे मुझे दुःख हुआ है, किन्तु मैं दूधका धोया हू, मैं कुछ मलिनता भी नही करता हू, पापवृत्तिमे नहीं करता हू, मेरा क्या कसूर है?

अब इसका समाधान देखो—इसमे कसूर पहिला तो यह है कि उस ओर तुम्हारी दृष्टि क्यो गयी कि उसने ऐसा क्यो किया? यह ऐसा क्यो कर रहा है? तुम अपनी परिणति मे आत्मबुद्धि ऐसी फंसाये हो कि तुम वहाँ संकट अनुभव कर रहे हो। संकट कुछ है नहीं। ज्ञान वेदा जाता है। इतनी ही तो वेदना है, इसके आगे कुछ नही, पर तुम स्वभावदृष्टिसे खिगकर और अन्य-अन्य विकल्पोमे आ गये, बस यही तुम्हारा कसूर है और इस कसूरके कारण तुम दुःखी हो रहे हो। और भी दूरकी बातें सोचो तो फिर यह लगेगा कि पूर्वजन्म में, पूर्व समयमे खोटी प्रवृत्ति की थी, मेरा यह आजका कसूर नही है, पहलेका है। सो अब जो दुःख हो रहा है वह अपने ही कसूरसे दुःख हो रहा है। दूसरेके अपराधसे दुःख नही होता है। एक यही बात जीवनमे उतारकर चलो तो बहुत सी परेशानियोको दूर कर सकते हो।

मेरी दृष्टि अद्वैतदृष्टि हो, द्वैतमे नही। एकको ही लक्ष्यमे लेना है, जान लेना है. वहाँ

जो गुजरता है, उत्तम गुजरता है। अद्वैत भावमे न विपत्तियाँ है, न जन्म है, न मरण है, न कोई संकट है। उस अद्वैतबुद्धिसे चिगे कि विपत्तियाँ भी हैं, जन्म भी है, मरण भी है, सब कुछ है। सो मै अद्वैत भावना करूँ, और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

यत्र कुत्राप्यवस्थायामस्मि तत्रैव यत्नतः।
कृत्वा सत्याग्रह शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–१०॥

मैं किसी भी अवस्थामे होऊँ उस ही अवस्थामे यत्न करके और सत्यका आग्रह करके शांत होता हुआ अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ। जगत्‌ने कौनसी स्थिति ऐसी है कि जिस स्थितिमे आप संतोष कर सकें कि बस अब हमे पूर्ण सुख हो गया है। क्या ५० हजारकी स्थितिमे कोई संतोष कर लेगा ? ५० हजारकी स्थिति हो जाने पर वह उससे आगे की बात देखेगा। फिर कितनेमे संतोष कर लेगा ? क्या लाखमें, क्या करोड़मे ? किसी परमे सतोष किया ही नही जा सकता, क्योकि जब परका लक्ष्य है, तब ऐसी स्थितिमे अमौलिकता स्वयं बर्त रहे है, वहाँ वे संतोष कैसे कर लेंगे ?

लोग सोचते है कि अभी साल दो सालमे यह काम कर लेंगे या लडका काम करने लायक बन जायेगा तो मैं सर्व चिताओको छोडकर केवल धर्मसाधनामे लगूँगा। पर वह समय ज्यो-ज्यो गुजरता जाता है शांत तो रहना दूर रहा, और भी अशान्ति बढ जाती है, बीमार बहुत हो गये तो बीमारीकी अवस्थामे यह सोचने लगते है कि अब तो और कुछ नही करना है, इस बीमारीसे निवृत्ति हो जाये तो केवल धर्मसाधनामें ही लगूँगा, देर नही लगाऊँगा। क्योकि यदि बीमारीमे गुजर गये तो फिर मामला ही साफ हो गया। धर्म न कर सके, इसका बडा खेद है। अब इससे निवृत्ति हो जानेपर केवल धर्मसाधनामे ही लगेगे, ऐसा सोचता है। पर बीमारीसे निवृत्ति होने पर वे विचार धीरे धीरे उडते जाते हैं और उसी स्थानमे आ जाते है जो बीमारीके पहलेकी स्थिति थी—राग, रंग, मोह वही सब बातें आने लगती है।

कोई सोचे कि मै कुछ समय बाद जब आजीविका स्वतन्त्र बना लूगा या अन्य बात बना लूंगा तब मैं धर्मसाधनामे आगे बढूंगा तो आगेका समय आने पर वह फिर असंतोषमें बढ जाता है। और वे अपनी इच्छायें, धार्मिक अभिलाषायें पूर्ण नही कर सकते। सो भैया, कुछ भी अवस्था हो इस सम्बन्धमें अभीसे ही धर्मसाधनाकी क्रिया करनी चाहिए। मनमे यह नही आना चाहिए कि मैं इतना कर लू फिर फुरसत खूब मिल जायेगी तब धर्मसाधना करूँगा। जैसी भी स्थिति हो, गरीबीकी स्थिति हो, संकटकी स्थिति हो और जिस-जिस प्रकारकी स्थिति हो, इस स्थितिमे ही मार्ग निकालना, विभाग करना, धर्मसाधना करना उचित है।

भैया ! धर्म तो एक भावनाका नाम है । सद्भावना, शक्तिचिंतन, रागद्वेषरहित अपनी वृत्ति बनाना यह सब धर्मका पालन है और व्यवहारमे पूजा, वंदनादिक जितनी भी क्रिया की जाती है वे सब इस धर्मकी साधनाके लिए की जाती है । किसी भी अवस्थामे हो उस ही अवस्थामे यत्न करके और सत्य जो निज आत्मतत्त्व है, यथार्थ सहज अपने आपके ही अस्तित्वके कारण जैसा जो कुछ मै हू उसका आग्रह करके, विचार करके, आलम्बन करके, विश्वास करके शांत होऊँ और अपने आप सुखी होऊँ । यदि आगेकी स्थिति सोचते हो कि मैं ऐसा बन जाऊँगा तब यह धर्म करूँगा तो यह पता नही कि अभी तो सोच रहे है कि आगे निवृत्तिकी स्थिति आयेगी, पर यह भी तो संभव है कि इससे अधिक मोह और लगाव की स्थिति बन सकती है ।

जैसे कोई कहता था, कोई क्या यहीकी बात है । एक माँ जी कहती थी वर्षो पहले कि मेरा बच्चा सभल जायेगा तो हमे खूब निवृत्ति हो जायेगी और कोई चिन्ता न रहेगी तब मै धर्मसाधना करूँगी । बादमे पूछा तो बोली कि अब यह पोता हो गया तो इसको भी खिलाना पिलाना पडता है । अब भी सोच लो कि वह पोता समर्थ हो जायेगा तब निवृत्ति मिल जायेगी क्या ? उसके आगे एक बात और आ जायेगी । जैसे जैसे लम्बा टाइम कटता जाता है तैसे तैसे लेनेके देने पड़ जाते है । पर धर्मक्रियाके लिए, ज्ञानार्जनके लिए अपने आपमे एकाकी शांत वातावरण रखनेके लिए हम वर्तमानमे यत्न करेंगे नही और आगामी कालको सोचते है कि ऐसा करेंगे । तो यह पता नही कि आगे समय आये तो उस समय भाव किस प्रकारके बन जायें पता नही कि उस स्थितिसे कुछ गिरेंगे कि ऊँचा उठेंगे ।

एक जगह प्रश्न व उत्तर किया है कि 'त्वरित किं कर्तव्य विदुषा ससारसंततिच्छेद.' विवेकी पुरुषको, विद्वान् पुरुषको बहुत ही जल्दी कौनसा काम कर लेना चाहिए ? यह प्रश्न है । उत्तरमे कहा गया है कि संसारकी सततिका छेद कर लेना चाहिए । ससारकी संतति है मोह, तो उसका विनाश कर लेना चाहिए । सांसारिक पदार्थोंसे मोह हटा लेना चाहिए । सो सोचते यह है कि इतना मोह और अभी कर लें, फिर इसके बादमे मोहका नाश ही कर लेंगे । इसका मोह और कर लेनेका मतलब यह है कि मोह और आगे आयेगा । देखो भैया, ६ खण्डकी विभूतिके मालिक चक्रवर्ती, बडे राज वैभवमे रहते हुए भी अपने ज्ञानको सावधान रख सकते है । निर्लेप, सबसे पृथक् अपने आपमे झुके हुए रह सकते है तो क्या इस अल्प समागममे रहकर सबसे अलग अपने आपके विचारोमे किसी भी समय नही रह सकते ? सब अपना प्रमाद है और जिस प्रमादमे ऐसा भाव आता है, अजी देखा जायेगा अभी तो ठीक है, आगे देखा जायेगा उस प्रमादसे हम अपनी बरबादी कर रहे है । सो निष्प्रमाद होकर अपने

आपकी साधनाके लिए इसी समयसे यत्न करना चाहिए ।

एक ऐसी किम्बदन्ती है भैया ! कि एक बार नारद घूमनेके लिए नरक गये । सो वहांपर खडे होने तककी भी जगह नही थी, झट वहांसे झुंझलाकर चले आये । बादमे बैकुण्ठ गये तो वहां साराका सारा स्थान खाली पडा था, केवल विष्णु महाराज लेटे हुए थे । नारद बोले—महाराज, नरकमे तो इतनी भीड है कि खड़े होने तककी भी जगह नही है और यहां सब खाली पडा है, केवल आप अकेले पडे आराम कर रहे हैं, यह कैसा पक्षपात है ? विष्णु भगवान्‌ने कहा कि अच्छा मै तुम्हे इजाजत देता हू कि जितने जीव तुम चाहो यहां ले आवो । नारदने मनुष्यलोकमे आकर सोचा कि अब किससे स्वर्ग चलनेके लिए कहे ? पहले बूढोसे ही कहे । एक बूढा व्यक्ति मिला, नारदने कहा कि चलो हम तुम्हे स्वर्ग ले चलें । भैया ! स्वर्ग बिना मरे कोई जा नही सकता है यह बात तो सब जानते हे । बाबा जी भी जानते थे । सो बाबा जी ने दो-चार गालियां सुनायी । बोला कि हमी तुमको मिले फाल्तू, जावो किसी दूसरे को ले जावो । इसी तरहसे नारदजी ५-७ बूढोके पास गये, पर कोई भी वहां जानेके लिए तैयार न हुआ ।

अब नारदने सोचा कि कोई भी बूढा जानेको तैयार नही होता है, तो अब जवानोके पास जाये । सो नारद अब जवानोके पास आए । एक दो से कहा कि चलो भाई हम तुम्हे स्वर्ग ले चलें । एक १६ वर्षका जवान बालक मिला जो कि मंदिरके चबूतरे पर बैठा माला फेर रहा था । नारद बोले—बेटा, चलो हम तुम्हे स्वर्ग ले चलें, तो वह तैयार हो गया । दस कदम तो चला और फिर बोला कि महाराज, मेरी एक बात तो सुनो, अभी-अभी सगाई हो चुकी है, दो तीन दिन शादीके हैं । घरके अन्दर सब कुछ प्रबन्ध हो चुका है । बराती भी आ रहे है, सो आप कृपा करके ५ वर्षके बाद आना तब हम चलेंगे । कहा—अच्छी बात । शादी हो गयी । ५ वर्षके बाद नारद उसके पास आए । बोले—बेटा चलो । लडका बोला कि यह एक बच्चा हो गया है, इसको जब तक पैरो पर न खडा कर दें तब तक कैसे चल सकते है, तो कृपा करके आप २० सालके बाद आना, हम जरूर चलेंगे । २० वर्षके बाद नारद आए, बोले—बेटा चलो । तो वह आदमी बोला कि बेटेकी भी शादी हो गयी है । अब पोतेका तो सुख देख लें । कृपा करके आप १० वर्षके बाद आना तब हम चलेंगे । दस वर्ष बीत गए । नारद आए, बोले—बेटा अब चलो । तब वह पुरुष बोला कि महाराज, बड़ी गृहस्थी हो गयी । बडे परिश्रमसे धन कमाया है, पुत्र कुपूत हो गया है, यह सारा धन बरबाद कर देगा, इसलिए इस भवमे अब हम न जा सकेंगे । कृपा करके आप दूसरे भवमे आना तब हम आपके साथ जरूर चलेंगे । तो वह मरकर सांप बन गया और जहां पर धन गड़ा था

उसी जगह पर रहने लगा। अब वहाँ भी नारद गए, बोले—अब तो चलो तो वह अपने इशारेसे फन हिलाकर कहता है कि पुत्र कुपूत हो गया। मैं धनकी रक्षाके लिए यहाँ साँप बन गया। मै अब तो नही जा सकता।

नारद जी फिर स्वर्ग आये व बोले—महाराज, कोई भी स्वर्ग आनेके लिए तैयार नही होता है। आपका इससे कोई पक्षपात नही। एक कथानक है उसमे आत्मतत्त्वकी बात यह है कि जगत्मे जीव ऐसा ही अनजान है कि जिसमे अंतः प्रेरणाकी बात, अपने शुद्ध आत्मस्वरूपके दर्शनकी बात नहीं होती है और बाह्यदृष्टिसे बाहर बाहरका डोलना ही बना रहता है, यह महान् खेदकी बात है अन्य कोई खेदकी बात नही है। दुकानमे घाटा पड़ गया तो पड गया, कुछ और हो गया तो हो गया, परिवारमे इष्टका वियोग हो गया तो हो गया, उनका कुछ संकट नही। ये तो बाहरके पदार्थ है, जैसी उनकी स्थिति है वैसा होता ही रहेगा। मुझ पर सकट तो मोहका है। इस मोहके स्वप्नमे यह असार बात भी सार नजर आती है, विनाशीक चीज अविनाशीक नजर आती है। अशरण तत्त्व शरण नजर आता है, यही बडा सकट है।

भैया, एक कोई गाँव है, सच्ची घटना बतला रहे हैं। उस गाँवमें एक किनारे एक बढ़ई रहता है। वहाँसे जो कोई मुसाफिर निकलता है वह उस बढईसे तो पूछता है कि फलाने गावका रास्ता किस तरफ है ? तो वह बढ़ई हंसी मसखरी करता है। क्या ? कि गाँव तो पूरबमे है और बता दिया दक्षिणको कि इस तरफसे जाना है और साथमे यह कहता जाता कि देखो इस गांवके आदमी सब मजाकिया है, झूठ बोलकर हंसी करने वाले है। सो गाँवमे तुम किसीसे जाकर पूछोगे तो वे उल्टा ही रास्ता बतावेंगे। अब वह मुसाफिर आगे चलता है तो जैसे बच्चोको किसी बातको मना कर दें तो उनकी इच्छा उसी कामके लिए होती हैं। इसी तरह वह मुसाफिर भी गाँवमे किसीसे पूछता है वे बेचारे सही बताते है, पर वह मुसाफिर दिल्लगी मानता है। किसीसे फिर पूछता तो वे बेचारे भी बताते है, पर मुसाफिरके तो एक बात जम गयी कि उस गाँवके सब लोग मजाकिया हैं। उसने समझा कि सब उल्टा रास्ता बता रहे हैं। गाँव तो दक्षिणमे है और बताते पूरबमे है। इसी तरह दो-चार जगह पूछा, सबने सच्ची बात बता दी। समझा सब मजाकिया हैं, सो दक्षिणके रास्तेसे धीरे धीरे दूसरे गाँवमे पहुचा और वहाँ पूछा तो उसे लौटना पडा।

इसी तरह सबसे बडा दुःख तो भ्रमका है। राग द्वेषसे भी बढकर और कुछ कह सको उससे भी बढकर अधिक सकट जो है वे भ्रमसे हैं, मोहसे है। क्योकि भ्रम एक ऐसा जाल है कि उसके कारण जीव संसारमे घिरा ही रहता है। उसको मुक्तिका मार्ग नही मिल

पाता अर्थात् स्वयं मुक्तिस्वरूप जो यह आत्मतत्त्व है, सबसे निराला केवल अपने चतुष्टयरूप जो यह स्वयं सहज आत्मतत्त्व है उसकी दृष्टि नही हो पाती है। तो सबसे बडा संकट है हम आप किसी पर तो यह है एक मोहका सकट और इस मोहसे ये सब बातें ऐसी दिखती हैं कि यह मेरा ही तो है, यह घर मेरा ही तो है। ये स्त्री पुत्र मेरे ही तो है, यह वैभव मेरा ही तो है, मैं ऐसा ही तो हू, असत्य बात सत्य सत्य समझमे आ रही है।

जैसे स्वप्नमे जो कुछ दिखता है वह सब सत्य लगता है। इसी प्रकार मोहके आशय मे यह दृश्य सत्य लगता है। क्यो भैया! स्वप्नके समय तो सब सत्य जान पडता है ना? अगर स्वप्नमे कोई साँप दिख जाये और वह खानेको दौडे तो सोते हुएमे भी चिल्ला उठते हैं। स्वप्नके समयकी बात सत्य नजर आती है। इसी तरह मोहके कालमें सब कुछ सत्य नजर आता है। तत्त्वकी बात तो यह है कि कुछ भी सत्य नही है। मैं तो केवल मात्र अपने चेतनास्वरूपको लिए हुए एक सत् हूं। पर भ्रममें यह सब दिखता है कि यह सब कुछ सत्य है। यही एक सबसे बड़ा संकट है और मोह नष्ट हो जानेके बाद, ज्ञान जग जानेके बाद यह भी उसमे शक्ति नही रहती कि किसी भी परपदार्थको अपना तो मान ले। ऐसा वह ज्ञानी पुरुष हो जाता है।

एक मनुष्य था। उसे नींद आ गयी। वह स्वप्नमे देखता है कि राजाने मुझे ५० गायें इनाममे दी है। एक ग्राहक बोलता है कि मुझे १० गायें चाहिएँ। बोला—छांट लो। छांट लिया, बोला—कितनेमे दोगे। १००-१०० रुपयेसे कहा—५०-५० मे दे दो। ८०-८० मे देंगे। लो अच्छा ७०-७० मे दे दो। ६०-६० मे दे दो। ८० से कम न देंगे। दोनो अड गये, झडप हो गई, यह स्वप्नकी बात कह रहे है। इतनेमे उसकी नींद खुल जाती है। वह पहिले तो मौज मानता था कि ७०-७० दे रहा है, ७०० यों ही हो जावेंगे। अब जगने पर देखता है कि यहाँ तो कुछ भी नही रहा, तो आंख मीचते हुए कहता है कि अच्छा ७०-७० ही दे दो। भैया, अब उसके आँख मीचनेसे क्या होता है? वह तो स्वप्नकी बात है, सो भैया, बहुत बडी ऊँची समस्या है हम आप पर मोहके संकटोकी, और कोई समस्या हम आपपर नही है। यही सबसे बडी समस्या है कि हम परपदार्थोंको अपना समझते है और उनसे ही अपना बडप्पन समझते है। इतनी जो भीतरसे वृत्ति बनी हुई है यह सबसे बड़ा सकट है। भैया, चाहे समागम बना रहे, बातें करते जायें, उद्यम होता रहे, लेकिन भीतरसे ऐसा विश्वास तो न रखना चाहिए कि मेरा कुछ है। अरे शरीर भी तो मेरा नही है। जो राग किया जाता है वह भी तो मेरा नही है। ये विकार भी आते है और मिटते हैं। और

तो क्या, जो परिणमन होता है वह भी तो मेरा बनकर नही रहता है, विलीन हो जाता है। मै तो सदा रहने वाला एक तत्त्व हू। ऐसा गुप्त मै आत्मतत्त्व हूँ कि जिसके परिणमनसे भी नाता नही बँध पाता है। परिणमन चलता रहता है, पर उससे बध नही हो पाता है। परिणमन होता है और विलीन हो जाता है। मै वहीका वही हू।

मै अकेला हूँ, मेरा अन्यत्र कुछ भी नही है, ऐसी दृष्टि किसी क्षण आवे अथवा भीतर मे किसी भी क्षण ऐसा ज्ञानस्पर्श हो तो मनुष्य होना सफल है। समागम अच्छा पाया, श्रेष्ठ कुल पाया, श्रेष्ठ धर्म पाया, सब कुछ पाया, पर जीवन तो सफल तब है जब मुक्तिका मार्ग मिले। हम झझटोसे कैसे छूट सकते है इसकी समझ तो आये। भैया, जिनसे छूटना है उनसे हम आप अलग ही है, ऐसा ज्ञान होना ही उनसे छूटनेका मार्ग है। शरीरसे छूटना है तो शरीरसे अलग अपनेको समझो। मेरा स्वरूप शरीरसे अलग है, ऐसा भान हो तो यही शरीर से छूटनेका उपाय है। राग द्वेष मोहके फंदोसे छूटना है तो यह समझो कि मै उनसे अलग हूँ, यह मेरा स्वरूप नही, ऐसी दृष्टि बने तो उनसे छूट सकते हो।

शुद्ध सहज अपने आपके अस्तित्वके कारण स्वरसत: जिस प्रकार जो हो वह दृष्टिमे आ जाय तो मुक्तिका मार्ग है और दूसरा शांतिका मार्ग नही है। सो अनेक उपाय करके अभीसे इसके लिए लगना चाहिए। आगेकी हमे प्रतीक्षा नही करनी चाहिए कि इतना कर चुकनेके बाद मै इस कामको करूँगा, ऐसी मनमे प्रतीक्षा न करके जिस भी स्थितिमे हो उसके विभाग बना लो और अपना काम करो।

पुरुषार्थ चार होते है—धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। धर्मके मायने पुण्य है, क्योकि धर्मकी बात मोक्षमे शामिल है। अर्थके मायने धन कमाना। इसमे दुकान चलाना, और भी अर्थसाधक दूसरे कामोकी खबर रहना है, यह अर्थ पुरुषार्थ कहलाता है। काम पुरुषार्थमे विषयभोग, पालन, सेवा आदि आ जाते है और मोक्ष पुरुषार्थ पचम कालमे है क्या ? नही। वह अभी किसीको नही मिलता है तो इसके बजाय एक और पुरुषार्थ है जो आपको पसद आवेगा। आज कहो तो बता दें, आप खुश हो जावेंगे। यह पुरुषार्थ है नीद लेना अर्थात् सोना। अब ये चार पुरुषार्थ रह गये—पुण्य, अर्थ, काम व नीद। दिन-रातके २४ घटे होते है, सो सबका बराबर-बराबर समय बांट दो। ६ घटे धर्ममे लगावो, ६ घटे अर्थकार्यमे अर्थात् धन कमानेमे, ६ घटें काम पुरुषार्थमे रहो, अपने बच्चोके पालन-पोषणमे रहो और ६ घटे नीद लेनेमे रहो। सुबहके जो घटे है धर्म करनेके, उनमें ५ ही घटे रख लो, एक घटा शामके समयमे लगा दो। जरासी अदल-बदल हो जायगी, मगर बिल्कुल सीधा हिसाब है और ऐसी ही प्राय: चर्या हो रही है। जो अपने मार्गमे लग रहे है उनकी अपनी इस चर्या

से जो कुछ भी धन कमाते है उसमे ही संतोष रखकर उसके विभाग करके जितना हो सके धर्ममे लगाओ, और जो कुछ बचे उससे अपना गुजारा करो। अगर यह भाव हो कि मैं धर्म आगे करूंगा तो पता नही कि आगे दिमाग सही रहेगा कि नही ? यह धर्मकी बात तो इसी समय करनेकी है और इसीमे हित है।

कश्चित् कालश्च देशः स्यात् पूर्तिर्मे तद्गुणैर्न हि।
शुद्धवृत्तिर्यतः स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-११॥

कोईसा काल हो, कोईसा देश हो, किसी देश या कालके गुणोसे मेरी कुछ पूर्ति नही है, पूर्ति तो शुद्ध वृत्तिसे है। शुद्ध परिणमना, स्वभावरूप वर्तना इससे ही मेरी पूर्ति होती है। अपनी प्रगति, विकास, आनन्द, शांति अपने आपमे अपने आपके द्वारा पा लिया जाय, इससे ही अपनी उन्नति है। दूसरोकी परिणतिसे अपनी उन्नति नही है।

जब कहते है कि काल खराब है, तो उसका तात्पर्य यह है कि हीनपुण्य, हीनवृत्ति, हीन आचार, हीन विचारके लोगोका समुदाय जब होता है तो उसीको कहते है कि काल खराब है। वैसे कालद्रव्यकी भी पर्याय शुद्ध है, धर्मद्रव्यकी तथा अधर्मद्रव्यकी भी पर्याय शुद्ध होती है। इसी तरह आत्मद्रव्यकी भी पर्याय शुद्ध रहती है। कालद्रव्यकी पर्याय अशुद्ध नही, काल खराब नही, पर जब प्राणी खराब होते है तो कहते है कि काल खराब है। इसी प्रकार देशकी बात है। देश क्या है ? किसी जगहके आकाश प्रदेशोको देश कहते है। देश क्या खराब है ? जहाँ रहने वाले लोगोके आचार-विचार श्रद्धान बुरे होते है उस ही को कहते है कि देश खराब है।

कोईसा भी काल हो, कोईसा भी देश हो, उनके गुणोसे यहाँ बात नही वर्तती। यहाँ की परिणतिसे ही यहांकी बात वर्तती है। वैसे सोचो तो कालने हमे खराब किया कि हमने कालको खराबकी सञ्ज्ञा दिला दी। कालने हमे खराबकी सञ्ज्ञा दिलायी कि हमने कालको खराबकी संज्ञा दिलायी, समयने हम आपको खोटेकी संज्ञा नही दिलायी, क्योकि समय तो शुद्ध पर्याय है। कालद्रव्यमे अशुद्ध पर्याय नही होती तो काल खोटा कैसे हो जायेगा ? समय क्या खराब है ? समय तो समयरूप है। जिस समयमे प्राणी खोटे पाये गये उस समयको खोटा कहा जाता है। वस्तुतः हम और आप जब कोई शुद्ध वृत्तिसे रहते है वही विवेक स्वास्थ्य है और उससे ही यह आत्मा हरा-भरा पूरा है। आत्मा जब भरा पूरा होता है तब उसमे शांति है। आत्मामे जब शांति है तो वही उसका सीधापन है।

भैया ! आत्माकी पूर्ति तो आत्मवृत्तिसे होगी। जैसे बताया है एक जगह कि आशा रूपी गड्ढा परिग्रहसंचयसे परिपूर्ण नही होता। बल्कि यह ऐसा विचित्र गड्ढा है कि जित

परिग्रह हो, सचय हो उतना ही यह गड्ढा गहरा होता चला जाता है। जमीनके गड्ढेकी बात दूसरी तरहकी है कि उसमे कूडा-करकट, मिट्टी, ढेला डालते गए तो वह भर जायेगा, पूरा हो जायेगा। फिर उसमे कुछ डालनेकी गली न होगी, पर आशाका गड्ढा ऐसा है कि यहाँ कुछ भी मिल जाये, कुछ भी परिग्रह संचय हो, पर यह गड्ढा पूरा नही होता। इसी तरह आत्माको भी भरे पूरे होनेकी बात है। बाह्य दृष्टियोसे बाह्यपदार्थविषयक आकुलताओ से आत्मा भरा पूरा नही हो पाता। चिन्ताएँ हो जाएँ, बाह्यदृष्टियाँ हो जायें तो आत्मा भरा पूरा नही होता है। इसकी पूर्ति अपने आपकी दृष्टियोसे, अपने आपको उपयोगमे लानेसे, अपने आपके ज्ञानके अभ्याससे होती है। सो अपनी शांतिके लिए बाह्यविकल्प छोडकर अपने आपके स्वरूपको जानें और जानते रहे, यही सुखका मार्ग है।

मे चैतन्यस्य शास्त्रं क्व, चर्चा ज्ञानं क्व कल्पना।
स्वतो बहिर्न धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१२॥

मैं एक चैतन्यमात्र वस्तु हू, इन चैतन्यमात्र वस्तुके बाहर मेरा कुछ नही है। इसमे कहाँ तो शास्त्र, कहाँ चर्चा, कहाँ ज्ञान और कहाँ कल्पनाएँ ? बाह्यमे जानन वैभवकी तो कथा करना ही क्या है ? वह धन वैभव तो आत्मामे है ही नही। वह तो प्रकट भिन्न मालूम होता है, पर जो अपने आपमे है रागद्वेष आकुलताएँ चैतन्यमात्र निजस्वरूपको देखो वहाँ नही है। जैसे प्रतिक्रमणमे कहते है कि मेरा दुष्कृत मिथ्या हो, मेरे पाप मिथ्या हो, क्या कह देने से पाप मिथ्या हुए ? इसमे तत्त्व यह है कि मेरेमें वह दृष्टि प्रकट रहे, उस शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि बनी रहे कि जिस दृष्टिमे शुभ अशुभ विभाव परिणतिकी दृष्टि ही न हो। जहा उनकी अवस्थिति ही नही है ऐसी शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि हो।

चित्स्वभाव चैतन्यशक्ति जो कि ज्ञानगम्य है, स्वसंवेद्य है, वह चित्स्वभाव जिस दृष्टिमे है ऐसी वृत्तिमे रहने वाले ज्ञानी पुरुषके वहाँ विभावमे उपयोग नही है, शुद्ध तत्त्वका जो अनुभव कर रहा है, ज्ञान कर रहा है, ऐसे किसी किसी पुरुषमें क्या क्रोध, मान, माया, लोभ नही है ? है। बर्तते रहने पर भी उपयोगमे जब शुद्ध चित्स्वभाव है तो उपयोगमे कषायें नही है। वहाँ कषाय आत्मामे है, पर उपयोगमे कषाय नही है। उपयोगमे शुद्ध तत्व है, ऐसी स्थिति जब कभी होती है तो चौथे गुणस्थानमे भी और ऊपरके गुणस्थानमे भी अधिक समयके लिए होता हैं, चौथे आदि गुणस्थानोमे कम होता है तो यह उपयोगमे आ जायेगा कि यह मैं सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। वहाँ अन्य कुछ उपयोग ही नही है।

शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिमे ही वह प्रताप है कि जो विशेष कर्मनिर्जरा होती है, आत्मीय आनन्द विशेष प्रकट होता है, उस आत्मीय आनन्दमे वह शक्ति है कि कर्म ईंधनको

वह जला दे, इष्टोपदेशमे लिखा है कि 'आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम् । न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ।'

आनन्द बद्धकर्मईंधनको बडे प्रबल कर्मरूप ईंधनको जला देता है । कर्म भस्म होता है आनन्दके द्वारा, कष्टोंके द्वारा नही । जहाँ लोग देखकर कष्ट सहते है ऐसे बाह्य रूपोके बीच रहते हुए तपस्वी अन्दरमे आनन्दका स्वाद लिया करते हैं । उस आनन्द परिणतिका निमित्त पाकर कर्म खत्म होते है, निर्जीर्ण होते है, उन बाहरी कष्टोका निमित्त पाकर कर्म खत्म नही होते है ।

प्रश्न—फिर ये बाह्य तप किये क्यो जाते है ? उत्तर—ये ता किए जाते है दो कारणोसे । पहला तो यह कि विषयकषायोका उपयोग न रहे, इसके लिए तप है और विषय कषायोका न रहना जीवके लिए भला है । जब अनशन आदि अन्य अन्य विविध तपस्याओमे लगते है तो विषय कषायोंसे पराङ्मुखता होती है और ऐसी स्थितिमे यह जीव शुद्ध तत्त्वकी ओर सुगमतया लगता है । दूसरी बात यह है कि बडे आरामसे पाया हुआ ज्ञान यद्यपि वह शुद्ध ज्ञान है, सही ज्ञान है, यथार्थ है तो भी कदाचित् कोई कष्ट आ जाये, भूखे रह जानेकी नौबत पडे, और और भी कष्टोका अवसर आवे तो उस स्थितिमे भी यह अपने ज्ञानको नही खो सके, ऐसा इसमे बल रहे उसकी तैयारी है तपस्या । उन तपस्वियोका जब अभ्यास होगा और उन तपोसे सहनशील बनेंगे, कष्टसहिष्णु होगे तो अचानक कभी कोई उपद्रव आवे, संकट आवे, दुःख भी आ पडे तो भी उन समयोमे यह जीव अपने ज्ञानकी रक्षा कर सकता है । इसलिए बाह्य तपका विधान है । और फिर तीसरी बात यह है कि बडे आराम, सुकुमार और सुख पसदगीसे रहनेकी जब वृत्ति होती है तो वहाँ प्रकृत्या भाव शुद्धताकी ओर नही बढता है, प्रमाद होता है, मुक्तिके आधारोमे अस्वाधीन होता है, आलस्य होता है । इसलिए तप करना; सयम करना यह सब प्रयोजनकी बात है ।

तपोमे प्रधान लक्ष्य यह है कि अन्तरमे उपयोग आत्माके उस शुद्ध सद्भावको ग्रहण करता रहे कि यह मैं चित् स्वभावमात्र एक चैतन्यतत्त्व हूं । जिस किसी भी स्थितिमे थे वह स्थिति दूसरे क्षण न रही, अन्य स्थिति आ गई तो यह भी दूसरे क्षण न रहेगी, तो उन क्षणो को, उन स्थितियोको हम क्यो ग्रहण करें और क्यों उनमे फसे रहे ? क्यो उनको आत्मारूप मानते रहे ? वे उस चैतन्यका स्वरूप नही । यह छुटपुट ज्ञान अथवा ज्ञानका कुछ भी परिणमन स्वभाव है यह भी विलीन हो जाता है । ज्ञानका साधन जो शास्त्र है, शब्द रचना है यह भी मुझ चैतन्यका नही है । मै तो ध्रुव चेतनारूप हू । मै अपने इस स्वरूपसे बाहर न दौडू और अपनेमे अपने लिये अपने आप सुखी रहू ।

यह विभाव परिणमन इतने वेग वाला है कि इसको बहुत ऊँचा अमृत तत्त्व इस ज्ञानमे नही मिले तो यह तो अपने वर्तमान पदके आचारमे भी नहीं चल सकता। जैसे तेज चलने वाले, बहने वाले पानीके रोकनेके लिये तेज रुकावट चाहिए, इसी तरह इस विभाव परिणमनसे चलते हुए जीवको बहुत तेज रुकावटकी दृष्टि चाहिए। वह रुकावट है शुद्ध चैतन्यस्वरूपका आलम्बन, विश्वास, ज्ञान। अपने उस ज्ञानका बहुत-बहुत उपयोग लेकर यह मैं अपनेमें अपने आप सुखी होऊँ। अपनेसे बाहर-बाहर अपना आनन्द ढूँढते रहे तो असतोष ही मिलेगा। सतोष मिलेगा तो अपने आपके आत्मदर्शनमे मिलेगा।

भैया! बाहरमे अपना सतोष नही मिल सकता, क्योकि बाह्यपदार्थ तो अपने आपके स्वामी है। वे स्वय अपने आपमे परिणमते है। वे स्वयं अपने आपकी क्रियावती शक्तिसे रहते है। आते है, जाते है, बिछुडते है। सो जब वह बिछुडता है तब उनके उपयोगमे यह जीव कष्ट अनुभव करता है। फिर संतोष इसे कैसे हो? संतोष होगा तो इसे अपने आपमे ही होगा। किसी जीवका कुछ सुधार हो जाये तो लोग क्या उपाय रचते है कि उसको कोई धक्का दें, सकट ला दें, विरोध करें दुःख पहुँचानेके लिए। किन्तु उन उपायोसे ज्यादा दुःख नही पहुचता। हाँ, उसे कोई काम लगा दिया जाये, तृष्णा लगा दी जाय तो उससे ज्यादा वह कष्टमे पड जायेगा। तो अब यह बतलावो कि जो परिजन इतनी तृष्णाकी लाइनमे लगा देते है तो स्पष्टतः उन विरोधियोसे बढ़कर ये विरोधी नही है क्या?

वस्तुत' न कोई विरोधी है और न कोई मित्र है। यह जीव ही स्वय अपने आप अज्ञानमे वर्तता हुआ अपना विरोधी हो रहा है और अपने आपके ज्ञानसे वर्तता हुआ मित्र बन जाता है। कोई किसीका न विरोध करता और न कोई किसीका बांधवपना करता है। सब अपने-अपने कषायमे अपनेमे परिणमते रहते है। किसीने उन परिणमने वालोको इष्ट मान लिया, अनिष्ट मान लिया तो मान लिया, पर कोई किसी दूसरेका करता कुछ नही है। मैं अपनेमे ही अपना व्यूह रचता हूं और दुःखी होता हूँ। व्यूहको छोड दूँ और अपने आपको अपने शुद्ध भावको देखूँ तो सारे सकट दूर हो जाते है। हमने स्वय ही अपनी कल्पनाओसे अपने ऊपर संकट लादा है और दूसरे हम ही अपनेमे शुद्ध ज्ञान करके सकटोको त्याग देंगे। हम ही अपने आपके करने वाले है। चाहे अपनेको हम ही बुरा बना लें, चाहे अच्छा। किसी दूसरे जीव पर कोई विरोध जड दे, यह तो अविवेक है और दुःख बढ़ानेका साधन है।

भैया! दूसरोके कसूरको सोचनेसे दु.ख दूर नही होते हैं, क्योकि उसमे बाह्यदृष्टि बढ जाती है। मैं अपनेसे बाहर किसी जगह दौड़ न लगाऊँ और अपनेमे अपने आप स्वयं

सुखी रहू । एक छोटासा किस्सा है । एक किसान किसानिन थे । किसानिन तो शांत थी, पर किसान उद्दण्ड था । किसानिनके शांत होनेके कारण किसान उसे पीट नहीं सका । और उसके मनमे यह रहे कि मै उसे पीट लू । जब कोई कसूर नहीं तो कैसे पीटा जाय ? सो एक दिन खेत जोतनेमे एक बैलका मुह पूरबको कर दिया और एकका पश्चिमको । जुआ रखकर उसमे हल फँसा दिया । यह किस समय किया, जब कि स्त्री रोटी देने आती थी । सोचा कि ऐसा देखकर स्त्री कुछ न कुछ तो कहेगी ही—क्या बेवकूफ हो, इसी तरहसे घर को चलावोगे । बच्चोका पेट इसी तरहसे भरेगा, कुछ न कुछ तो ऐसा कहेगी ही, बस पीट देंगे । पर वह स्त्री आयी और सब जान गयी । कहती है कि चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा जोतो इससे हमें कुछ प्रयोजन नही, हमारा तो काम केवल रोटी देनेका है सो लो । इतना कहकर वापिस हो गयी ।

हम ऐसी वृत्तिसे ही अपनी शक्ति माफिक अपने ज्ञानको समझा-बुझाकर रहे कि इसकी यह परिणति इससे ही इस तरहकी उठी है और यह ऐसा परिणाम रहा है और यहाँ यह परिणम रहा है, ऐसी वस्तु है और ऐसा परिणमन है, इतना मात्र देखो । उनसे मेरेमे कुछ बिगाड हो रहा है यह न तको । यदि विपरीतस्वरूप नही तकते तो सावधानी है । बाहरमें सैंकड़ो कष्ट रहे उनसे कुछ बिगाड नही होगा । अपनी कल्पनाएँ बनाकर, अपना अर्थ बनाकर अपनेको दुखी कर लेते है । सो हम अपनेको तकें, दुःखी न समझें, अपनेसे बाहर हम न दौड लगावें, किन्तु अपने आपके गुणको छूते रहे व अपनी कमीको दृष्टिमें लेते रहे, यही हमारे सन्मार्गगमनका उपाय है ।

मे चैतन्यस्य भोगः क्व ? तृप्तिरतृष्णा क्व बन्धनम् ।
क्वाज्ञानं क्व विपत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१३॥

मै चैतन्यस्वरूप हू । इस चैतन्यस्वरूप मुझ आत्मतत्त्वके भोग कहाँ है ? कहाँ तृप्ति है, कहाँ तृष्णा है, कहाँ बधन है, कहाँ अज्ञान है, कहाँ विपत्ति है ? अपने आपमे सदा अंत. प्रकाशमान अनादि अनन्त अहेतुक, असाधारण, गुणमय, चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिमे भोग नही है । भोग एक विकृत पर्याय है । उस शुद्धदृष्टिमे अध्रुव तृप्ति, क्षणिक तृप्ति, इतनी मौज मानकर होने वाली कल्पना, संतोष उस स्वभावमे नही है और तृष्णा तो है ही नही । तृष्णा तो प्रकट विकृतपर्याय है और बधन भी नही है । बधन भी विकृतपर्याय है और अज्ञान और विपत्ति भी नही है । ऐसे अपने स्वरूपके भावमे संकट नही होता है । जब इस स्वरूपकी ओर प्रवृत्ति नही रहती, झुकाव नही रहता तब बाह्यदृष्टि होती है और बाह्यदृष्टिकी प्रकृति ही आकुलता है सो उस ओर दृष्टिकी भावना, जिस तत्त्वज्ञानीके अधिक रहे वह तत्त्वज्ञानी

पुण्य पुरुष है । ऐसे उस चैतन्यस्वरूप मात्र आत्मतत्त्वमे वसकर अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होऊ ।

बोधि, समाधि, परिणाम शुद्धि, स्वात्मोपलब्धि और शिवसौख्य सिद्धि—ये पांच पद हितकर है । ज्ञान हो, तत्त्व श्रद्धान हो, तत्त्व रमण हो, सो बोधि है, रत्नत्रयकी प्राप्तिका नाम बोधि है और यही बोधि जब बढ़कर निर्विकल्पकी स्थितिमे होती है तब वही बन जाता है समाधि; और समाधिके प्रतापसे उसका परिणाम भी शुद्ध हो जाता है । परिणमन शुद्ध होता है । जहाँ ऐसी शुद्धि हो वही शुद्ध यथार्थ आत्मतत्त्वकी उपलब्धि होती है । और जहाँ ऐसी आत्मोपलब्धि होती है वही पर ही मोक्ष सुखकी सिद्धि होती है । शिवसौख्यसिद्धिका मूल बोधि है और उस बोधिका मूल सम्यग्दर्शन है । और सम्यग्दर्शनका लक्ष्य यह शुद्ध सहज तत्त्व है । इस चैतन्यमात्र आत्माकी दृष्टिमे फिर कोई सकट नही । तृप्ति, तृष्णा, बंधन, अज्ञान विपदाएं ये कुछ नही होती । करनेका काम अपनेको यही है कि जिस तरह बने, जितना बने, जब बने, हेर-फेर कर, रह-रहकर इस अपने निजस्वरूपका पता रहे । इसका ध्यान रहे यह मैं हूँ और ऐसा मैं होऊँ तो शान्ति है । इतना अपनेको अपने आपमे पता हो कि शिवसौख्य सिद्धिकी स्थिति इसकी बुनियाद पर प्रकट हो जाती है । सो निजको चैतन्य-मात्र निरखकर मैं अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ ।

दु:खे ज्ञानच्युतिर्न स्यात् कायक्लेशेऽपि स्वस्थितिः ।
उद्देश्यं ज्ञानिनः तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१४॥

ज्ञानमे स्थित रहना सो ही धर्मका पालन है, वही मुक्तिका मार्ग है । ज्ञानकी स्थिति का अर्थ है कि ज्ञानका जो स्वरूप है, उसमे ज्ञानकी वृत्ति होना । ज्ञान क्या होता है ? वह तो जानन और प्रतिभासस्वरूप है । वह उपयोगमें रहे—'यह मैं हू' यही धर्मका पालन है । जब यह आत्मस्वरूप उपयोगमे नही रहता तब इस आत्मस्वरूपका उपयोग मैं रख सकू, ऐसी पात्रता बनाए रखनेके लिए ये सब व्यवहारधर्म है । इस व्यवहारधर्मके बिना भी काम नही चलता । यह अपनी पात्रताको बना देता है कि जिससे हम अपने ज्ञानस्वरूपमे स्थित हो सकें ।

ज्ञानस्थितिके लिए यह तप है । अनशन ऊनोदरादिक तप इसलिए किया जाता है कि कभी दु.ख आ भी पडे तो उस दु.खके समयमे भी हम ज्ञानसे च्युत न हो जायें । हममे वह सहनशीलता रहे कि जिससे हम अपने ज्ञानस्वरूपको बनाये रहे । फिर दूसरे इसके संबंध मे भी ऐसी प्रेरणा होती है कि यह मैं आत्मामे ही स्थित हू । ज्ञानी पुरुषके इन व्यावहारिक धर्मोंका उपदेश, इन तपस्यावोका लक्ष्य निज सहजस्वरूपकी प्राप्ति है । किसलिए ये अनशन

कर रहे हैं, किसलिए यह व्यवहारधर्म कर रहे हैं ? उनका उत्तर ज्ञानीका एक ही है । हमारा उपयोग, हमारा ज्ञान, जैसा मेरा सहजस्वरूप है उसमे रह सके, बस इस स्थितिके लिए ही ये सब धर्म पालन किये जा रहे है । यह व्यवहारधर्म ऐसी प्रेरणामे लगा देता है, ऐसे सन्मार्ग में लगा देता है कि जिनसे चलकर हम अपने आपके शुद्ध मार्गमे आ सकते हैं । सो यह मैं भी अपने आपका मूल लक्ष्य यही बनाऊँ ।

जैसे कोई पुरुष अपना भवन बनवाता है तो उसका मूल लक्ष्य तो भवन बनवाना है, पर भवन बनवानेके प्रयोजक जो अन्य अन्य बातें है । जैसे कि लोहे व सीमेंटका परमिट बनवाना, कारीगरोको बुलवाना, ये सब उसके उपलक्ष्य हैं । उन कामोंके करते हुए भी सीमेंट की परमिट बनवाने आदिका लक्ष्य है कि आज परमिट बनवानी है । मगर संस्कारमे मकान बनवानेकी बात बन रही है । इसी तरह हम अपने जितने भी कार्य करते हैं—देवपूजा, भगवानकी भक्ति, भगवानके गुणगान करना, गुरुवोकी उपासना करना, गुरुवोका सत्संग करना, स्वाध्याय आदि उत्तम क्रियावोंका धारण करना, विषयोका रोकना, षट्कायके जीवोकी रक्षा करना, अपनी इच्छावोंका निषेध करना और जो पुण्योदयसे प्राप्त है इस ही समागममे संतोष रखना, व्यवस्था बनाना और धर्मपालन करना और दान करना, जो कुछ अपनेको प्राप्त है उसका परोपकार करनेके लिए वितरण करना—ये सब कर्तव्य श्रावकोके है । इन कर्तव्योको करते हुए भी ज्ञानी श्रावक अपने आपके स्वरूपका लक्ष्य और उद्देश्य बनाए रहता है ।

यद्यपि उपयोगमे जब जो व्यवहार-क्रिया है तब वह ही है, अन्य कोई उपयोगमे नही है, मगर संस्कारमे वही शुद्ध मार्ग है जिसके लिए यह सब किया जा रहा है । जैसे किसीके बच्चेका विवाह हो तो उसका बाप कितने और और काम करता है, निमंत्रण देना, पचोको बुलाना, भोजन-सामग्री तैयार करना, भोजन कराना, आदर रखना, गल्ती हो तो विनम्र होना, कितनी बाते बराबर कर रहा है और जो कर रहा है वे सब उसके उपयोगमे हैं । फिर भी संस्कारमे वही एक बात है कि बच्चेका विवाह करना है । इसी तरह अनेक बातें होती हैं, पर मुख्य लक्ष्य एक होता है । सो सब क्रियावोकी उन्मुखता कर लेना ये सब उपलक्ष्य रहते हैं । इस ज्ञानीका लक्ष्य अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि रहना है । इस शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिमे ही आत्मीय आनन्द है । उस आनन्दकी अनुभूति स्वसंवेदनमे होती है । सो ऐसे उस शुद्ध चैतन्यस्वरूपमे स्थिर होकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ।

न स्वज्ञप्ति विना ध्यानं यतः स्वोपासनामयम् ।
शुद्धात्मोपासन तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–१५॥

अपने आपकी प्राप्तिके बिना, जानकारीके बिना उत्तम ध्यान नही बनता । उत्तम

ध्यान वह है जहाँ निजकी उपासना हो। शुद्ध आत्माकी उपासना ही स्वकी उपासना है। यह जीव जब अपनेको अशुद्ध अर्थात् जैसा है उस रूप स्वीकार नही करता है तो अशुद्ध पर्याय बनती है और सबसे न्यारा केवल सहज चैतन्यस्वरूपमात्र अपने आपकी प्रतीति करता है तो सबसे न्यारा बन जाता है, शुद्ध बन जाता है, सर्वका ज्ञाता बन जाता है। अपनेको जिस प्रकार माने उस ही प्रकारका इसे फल प्राप्त होता है। समयसारमे लिखा है कि—"सुद्धं तु वियाणतो सुद्ध चेवप्पयं लहदि जीवो। जाणतो हु असुद्ध असुद्धमेवप्पयं लहदि।।"

जो जीव नित्य ही अनवच्छिन्न धारासे शुद्ध आत्मतत्त्वको जानता है वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है और जो अशुद्ध आत्मरूपसे जानता है वह अशुद्ध आत्माको प्राप्त करता है। सब ध्यानका प्रताप है। किसी पुरुषके उल्टा ध्यान हो जाये कि मैं एक भैसा हू, जिसके बडे लम्बे सीग है, बडा विकराल मोटा ताजा, काला, विशालकाय है ऐसा मैं एक भैसा हू सो अपने बारेमे उसे ऐसा ध्यान जमा कि अपनेको भैसे रूपमे अनुभव करने लगा। सस्कारवश थोडा ज्ञान यह भी बना रहा कि यहाँका दरवाजा तो इतना ही छोटा है तो दरवाजेके छोटे-पनका तो ज्ञान किया और साथ यह ज्ञान बनाए हुए है कि मैं भैसा हू, कितनी बड़ी सीगो वाला हू तब यह चिन्ता करके घबडा जाता है कि हाय, इस कमरेसे निकलूगा कैसे? कभी कभी सोतेमे अपने आपको ऐसी विपदाओमे अनुभव करता है तो चिल्ला उठता है ना, और डरकर जग जाता है।

जो स्थिति अपनेको अनिष्ट है उस स्थितियुक्त अपनेको कोई मानता है तो वह घबडाने लगता है। ये जो कुछ भी स्थितियाँ हैं वे सब विपदाओकी स्थितियाँ है। जो बने जिस रूप ढले, यह अशुभ स्थिति अच्छा परिणाम देने वाली नही है। विषयकषायोके विकल्प बने हुए है तो आत्माको शाति नही है, क्योकि मूलमे ही अपने आपको जैसा नही है उस रूपमे मान लिया है। स्वयं जैसा है उस रूपमे स्वको मानें तो उसको सकट नही, कोई विपत्तिया नही। एक अपने आपके शुद्ध स्वरूपके उपयोगमे क्लेश नही है और जब यहाँसे निकले तो सर्वत्र क्लेश है।

भैया! यह ससारी है, दु:खी है तो कोई इसे दु:खी नही बनाता है, अपनी ही कर-तूतके कारण यह दु:खी है। गुरुजी सुनाते थे कि एक कोई पुरुष था, जिसका नाम था मूरख-चन्द। लोगोने उसका नाम मूरखचन्द रखा सो वह कुछ दिन बाद नामसे परेशान होकर गाँवसे भागा। गाँवके लोग कोई भी अच्छी तरह नही पेश आते है, ऐसा सोचकर ही गाँवको छोडकर चल दियो। चलतेमे रास्तेमे एक जगह ठहर गया। वहाँ पर एक कुवाँ था। उस कुवें पर बैठ गया और अपने पैर कुवेमे लटका लिए। वहाँसे एक मुसाफिर निकला और

उसे इस तरह देखकर बोला—अरे मूरखचन्द ! कैसे बैठे हो ? तो वह एकदम उठा और उस मुसाफिरके गले लग गया और कहा कि भैया ! तुमने हमे कैसे पहिचान लिया कि मैं मूरखचद ही हू । पथिक बोला—भैया ! हमको तो नही पता था कि तुम्हारा नाम मूरखचन्द है, पर तुम्हारी करतूत देखकर हमने मूरखचद कहा ।

भैया, कोई नई व्यवस्था नही बनाई गयी कि संसारी जीव दुःखी है और मुक्त जीव सुखी हैं । जो जैसा उपादान है सो बताया गया है । यह कितना दुःखी है सो सभीके अनुभव मे और अदाजमे है कि कितना क्लेश है उन सब दुःखोकी निवृत्तिके लिये आत्मस्वभावको देखते रहना । आत्माके स्वभावके श्रद्धानमे ज्ञानी आनंदको बनाए रहते हैं । इस उपायके अतिरिक्त जो अन्य उपाय है उन उपायोसे इसके दुःखकी शांति नही है । केवल एक ही उपायसे दुःख शांत होता है ।

जैसे मुनीम दुकान पर बैठता है, सब तरहके काम करके भी उसकी श्रद्धामे यह बना है कि मेरा कुछ नही है । जो लोग खाते वाले आते हैं उनको वह मुनीम यह भी कहता है कि हमारा आया और इतना गया । मेरा आपसे इतना लेना रहा, ऐसे वचन भी कहता है तिसपर भी उसके विश्वासमे यह बराबर है कि मेरा कुछ नही है । मेरा कहकर भी मेरा कुछ नही है । इसी प्रकार ज्ञानी जीवके भी अन्य पदार्थोको मेरा कहकर भी यह विश्वास बना हुआ है कि मेरा कुछ नही है । यद्यपि जो विश्वासमे बना है उस ही तरहका प्रयोग व्यवहारमे नही है । व्यवहारमे मेरा है कहता है, पर विश्वासमे यह बात है कि मेरा कुछ नही है तो भी अन्तर्विश्वाससे ज्ञानी अन्तरमे अनाकुल रहता है ।

एक छोटा बालक था । उसके घरके लोग गुजर गये । जब बाप गुजरनेको था तो चार-पांच आदमियोको नाबालिगकी जायदादका ट्रस्टी बना दिया । वह बालक खेल रहा था तो वहांसे एक ठग उसे उठा ले गया । ठगने उस बालकको ठगनीको सौंप दिया । ठगनीने उसे पाला पोषा । अब वह बालक १७-१८ वर्षका हो गया । वह ठगनीको मां कहता और ठगको पिता कहता, वहांकी खेती-बाडीको अपनी सम्पत्ति कहता । एक दिन जब वह बाजार मे गया तो वे ट्रस्टी बोले कि अब अपनी जायदाद संभालो, हम कब तक संभालेंगे । वह बालक सुनता गया । दूसरेने यही बात कही, तीसरेने कही, इसी प्रकार चौथे और पांचवेंने भी कही । वह बालक यह कुछ नही जानता था । वह तो ठगनीको मां और ठगको पिता समझता था । समझदार तो था ही, वह बोला कि कुछ दिन बाद आवेंगे । सो वह घर गया और ठगनी मां के पैर पकड़कर पूछा कि बतलावो मैं किसका लड़का हू ? तो उसकी करुण भाषा सुनकर ठगनी बोली कि तुम अमुक सेठके लड़के हो । उस बालकने समझ लिया कि

वे लोग ठीक ही कहते थे कि अपनी जायदाद संभालो । उस बालकके यथार्थज्ञान आ गया । यथार्थज्ञानमे आकर भी ठगनीको ठगनी नही कहता, मां ही कहता । यदि ठगनीके खेतमें कोई पशु उजाड करने घुस आये तो वह उसे हटाता, सब कुछ वही व्यवहार करता । इतना करते हुए भी उसका ज्ञान कुछ और प्रकारका है ।

इसी तरह संसारकी विपत्तियोंमे पलापोसा अज्ञानी मानता है कि यही मां है, यही बाप है, यही मेरा सब कुछ है, यही मेरा धन है । तो उस मानवको कुन्दकुन्दाचार्यने समझाया, पूज्यपादने समझाया, समन्तभद्रने समझाया । फिर वह सोचता है कि सत्य बात क्या है ? असत्य बात क्या है ? ये लोग सुखकी ही तो बात कह रहे हैं । फिर अपनी अनुभूतिसे पूछा कि मां बतलावो मैं क्या हू, कैसा हू ? तो उस अनुभूतिने एकदम बताया कि तुम चैतन्यस्वरूप हो । तेरेमे अनन्त सुख भरा हुआ है । जब यह सब समझ लिया, जान लिया तब उसका चित्त स्वनिधिकी ही ओर है, तब बाहरमे क्या बापको बाप नही कहता, क्या मां को मां नही कहता, क्या तिजोरीमे ताला नही लगाता ? सब कुछ करता है परतु यथार्थज्ञान हो गया कि मेरा कुछ नही है । मैं तो केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, जब इतनी प्रतीति रहे, ऐसी दृष्टि रहे तो इस जीवको शांति प्राप्त हो सकती है ।

ज्ञप्तिस्त्वस्त्विह सर्वत्र स्वबुद्धेः स्वस्य दर्शनम् ।
स्वाचरणं ततोऽस्त्वस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१६॥

जानकारी सर्वत्र होओ, पर निज आत्मामे आत्मबुद्धि करनेसे निजका दर्शन बना रहे अर्थात् अपने सहज आत्मतत्त्वका भान बना रहे । जानकारी यहां भी कितनी ही हो, जानकारी दोष करने वाली नही है । दोष करने वाली मिथ्यात्व बुद्धि है ।

भैया, एक कथानक है कि एक मां के दो लडके थे । एक लडका कम देखता था और एक लडकेको दिखता तो अधिक था, पर उल्टा दिखता था, पीला दिखता था । दोनो लडकों को वह बूढी मां वैद्यके पास ले गयी । वैद्यने दोनो बच्चोंको एकसी ही दवा दी । दवा सफेद थी । चांदीके गिलासमें गायके दूधके साथ देना बताई । वह बूढी मां गिलासमे गायका दूध ले आयी और दवा मिलाकर पहिले उस बच्चेको पिलाया जो कम देखता था । सो और दवा मिलाकर पहिले उस बच्चेको पिलाया जो कम देखता था । सो कम देखने वाले लडकेने दवा को पी लिया । और जो लडका ज्यादा देखता था, पर पीला-पीला देखता था वह दवाको देखकर बोलता है कि मां मैं ही तुझे एक दुश्मन मिला जो मुझे दवाके बदलेमे पीतलके गिलास मे गोमूत्र दे रही हो और इसमे हडताल मिला रखी है । वह दवाको फेंक देता है और उसने दवा नहीं पी । तो जिसे कम दिखता था उसे लाभ मिला और तो ज्यादा देखना था, पर

उल्टा देखता था वह ज्योका त्यो रहा। सो जानकारी कम है या ज्यादा है इससे हितका मार्ग नही मिलता, किन्तु यथार्थ श्रद्धा हो तो उससे हितमार्ग मिलता है।

सो जानकारी चाहे सर्वत्र हो, चाहे न हो, पर इतना पता बना रहे, इतना भान बना रहे कि यह मैं आत्मा सहज चैतन्यस्वरूप हूं। इतना भान बना रहे तो इस भानके बलसे अपने आपके आत्मामे परम विश्रामरूप सबका आचरण होगा। जीव दुःखी है। क्यो दुःखी हैं कि परकी ओर लग रहे हैं। पर पर ही हैं, भिन्न-भिन्न चतुष्टय वाले हैं। मेरे लगावसे उस परमे से कुछ नही आता। एक विकल्प बना है उस दृष्टिमे सो विकल्प ही हाथ है, और कुछ हाथ होता नही, मात्र विभावपरिणतिका स्वाद लिया जाता है; इस प्रकारका परिणमन है, विकल्प होता है और विकल्पोसे लदे हुए समय गंवाये जाते है। इस वृत्तिमे हित कुछ नहीं प्राप्त होता।

इन जगत्के पदार्थोंको वर्तमानमे देखो जो आपकी आत्माने कमाये नही, आत्मा तो केवल भाव ही करता है, ये पदार्थ आ गये तो पुण्योदयसे निमित्तनैमित्तिक की बात हो गई, सो मुफ्त ही तो मिले कहलाये। यहां जो कुछ मिलता है वह मुफ्त ही तो मिलता है। आत्माकी उसमे परिणति लगती हो तो बतलावो। इस दृष्टिसे जो कुछ यहाँ मिलता है वह मुफ्त ही मिलता है। यदि इतना धन न मिलता हो तो ठीक, और मिलता हो तो ठीक। उसमे तुम्हारा कुछ नही लग रहा है। और जब जायेगा तब वियोग होगा तो मुफ्त ही जायेगा। धन तो मुफ्त ही मिलता है और मुफ्त ही छूटेगा। उसमे आत्माका कोई स्वरूप नही चिपका, कोई गुण पर्याय नही लगा और फल क्या मिलेगा? फल मिलेगा केवल पापबुद्धि, पापपरिणाम।

भैया! एक चोर था। वह कहीसे एक घोडा चुरा ले गया और बाजारमे खडा कर दिया। सो ग्राहक आया पूछता है कि घोडा बेचोगे? तो बोलता—हां बेचेंगे। कितनेमे बेचोगे? ६००) रु० मे उसने चौगुने दाम सुनाए। मानो घोडा १५०) का था और सुनाया ६०० रुपये। घोडेके तेज दाम बतलाये और तेज स्वरमें। इतने महंगे घोडेको कोई न लेवे। दस ग्राहक इसी तरह निकल गए। ग्यारहवीं बार एक बूढा चोर आया, वह बोला घोडा कितनेमे दोगे? तो बेचने वाला बोला—३००) रु० मे, उसने समझ लिया कि यह घोडा चोरीका है। इसमे ६०० रुपयेकी क्या बात है? इसकी चाल बढ़िया है। लावो जरा घोड़े की चाल तो देखें। उसने घोडेको पकडा दिया। उस ग्राहकने एक नारियलका हुक्का उसको पकडाकर घोड़ा लेकर भाग गया। अब वे ही ग्राहक जो मेलेमे उस बाजारमे पूछ गये थे वहां से निकले। एकने पूछा—तुम्हारा घोडा बिक गया तो बोला कि हां बिक गया। तो कितनेमे

बिक गया ? जितनेमे आया था उतनेमे बिक गया । तो लाभ तुमको क्या मिला ? लाभमे ४ आनेका नारियलका एक हुक्का मिला ।

इसी तरह यहां सब पदार्थ जो मिलते हैं, आत्माको कुछ लेना-देना नही है । आप कहेगे पुण्यका उदय है उसको निमित्त पाकर मिल गये और पुण्य बनता है भावोंको पाकर, ठीक है भैया, किन्तु वर्तमानमे बतलावो कि तुम्हारा कौनसा परिणाम, भाव, गुण, परिणति ऐसा है जो जिसे धनमे मकान ईंटो आदिमे लगा रहे हो । इस दृष्टिसे सबकी चीज है सो मुफ्तमे मिली है और मुफ्तमे ही चली जायेगी । और परिणाम क्या मिलेगा ? पापका हुक्का। जिन चीजोंमे राग करते हो वे सब न रहेगी । जो है वह रह गया है क्या ? एक पापपरिणाम, अशुभ परिणाम, कायरता तथा हीनता ही रह गई है ।

सारी गल्ती तो अपनी ही है कि मोह प्रसगमे, रागद्वेषके प्रसगमे अथवा मोही जीवोके प्रसगमे कितना समय अपना गुजरता है और शुद्ध ज्ञानकी भावना बनानेके कामके कितना समय गुजरता है ? जिनमे अधिक समय गुजरता है, वही तो बोझ वाला होगा और जिसमें समय कम गुजरता है तो कम बात होगी, मगर फिर भी ज्ञानकी भावनामे कम भी समय गुजरे और अटपट बातोमे अधिक समय गुजरे तो भी विजय ज्ञानकी है, मुनाफा ज्ञानसे है, लाभ ज्ञानसे है । २४ घटोमे से दो-तीन घटे ज्ञानभावनामे गुजरें और २३ घटे चाहे अन्य उपयोगमे गुजरें, फिर भी काम ज्ञानका होता है, ज्ञानसे विशेष विजय होती है और यदि कुछ अधिक समय गुजरे ज्ञानकी चर्चामे और भावनामे तब तो कहना ही क्या है ?

भैया, अपने आपमे गुप-चुप छिपे छिपे, झुके-झुके दिखानेका काम नही है । कल्याणकी बात करनेकी भीतरमे भावना बनानेका काम है, सो कर लो । कोई समझे अथवा न समझे, कोई धर्मात्मा जाने या न जाने, अपने आपमे भीतर ही छिपे हुए भावना ही तो बनाना है । यदि आत्माकी भावना बनाना, आत्मपोषण किया तो आत्महित किया और यदि काम नही किया और बाहरी सारी व्यवस्था कर दी तो हितके लिए कुछ नही किया । गुरुजी एक दृष्टांत सुनाया करते थे कि एक हाटमे एक वृद्ध पुरुष साग-भाजी लेने जाता था। पडोसकी दस-बीस स्त्रियां उस बूढे महाराजसे साग खरीदवाती थी । सभीका साग खरीद दिया व खराब सडा साग अपने लिये खरीदकर घर गये याने सबको साग निकाल-निकालकर देते गये और बादमे सडोसी साग जो रह गयी वह लाकर अपनी बहूको दिया । बहु उस सडी सागको देखकर नाराज हो गयी । बोली—तुमने क्या किया ? बूढेने अपनी परोपकारकी सब बातें सुनायी । बहू बोली कि आपने अच्छा किया । लेकिन पहिले अपनेको साग रख लेते और बादमें सबको दे देते ।

भैया, अपनी दृष्टि पहिले शुद्ध, निर्मल बना लो, ऐसा होनेके बाद फिर दूसरोका हित हो, कल्याण हो, वह होता रहे, कोई हर्जकी बात नही। अपनी व्यवस्था बना लो तो उससे लाभ है जो कि भावात्मक व्यवस्था है। कुछ करने धरनेकी बात नही है, हाथ चलानेकी बात नही है, केवल एक भावना बनानेकी बात है। यह है अपनी व्यवस्था। यह अपनी व्यवस्था कर दी जाय और फिर दुनियाकी व्यवस्था हो जाय तो अच्छा है। जो अपनेको ही भूल जाय और दूसरोकी खबर रखे तो जगतमे उसका ठिकाना कहा होगा? कौन-कौन जन्ममरण होते रहेगे, कैसे कैसे होता रहेगा, ये सब अटपट बाते होगी।

एक बाबू साहब व्यवस्था बनानेमे बडे चतुर थे। वे अपने दफ्तरमे व्यवस्था बना रहे थे। जिस जगह जो चीज रख दी वहाँ उस चीजका नाम लिख दिया। व्यवस्थाके मायने है कि उस चीजको बर्तनेके बादमे फिर उसी जगह उस चीजको रख देना। यह नही कि जैसे चूल्हेके पास जहाँ चाहे धनिया जीरा सब रख दिया। जब जरूरत धनियेकी हुई, डिब्बा खोला जा रहा है जीरेका। फिर कोई दूसरा डिब्बा उठाया, अरे यह भी कोई व्यवस्था है? इतनेमे चाहे बघार ही जल जाय। जो चीज जहाँ रखना है उसको उसी जगह रखनेका नाम ही व्यवस्था है। सो बाबूजी ने घडीकी जगह पर घडी रख दी और 'घडी' उस जगह पर लिख दिया। घडीकी जगहपर घडी और कोट, कमीज आदिकी जगह पर कोट, कमीज आदि रखकर लिख दिया और सब व्यवस्था बना दी। व्यवस्था करते-करते नीद आने लगी और पलग पर जब लेट जाते है तो उस खाटकी पाटी पर लिख देते है—मै सो गया। जब सुबह जगे तो देखते हैं कि हमारी सब व्यवस्था बढिया है कि नही? घडी आदि सब कुछ ठीक देखा। फिर पलंगकी पाटी पर देखा 'मैं' लिखा हुआ देखने लगे कि मैं कहाँ है? पलंगकी पाटी पर, सिरहाने पर सभी जगह देखने लगे कि मेरा मै कहाँ है? एकदम घबडा गये और झट अपने नौकरको बुलाया। बोले—भाई मेरा 'मै' खो गया। नौकर हसने लगा, बाबूजी ने कहा कि देखो तुम मजाक करते हो। यदि जानते हो तो बतलावो। नौकर हाथ जोड़कर बोला—बाबूजी आप थक गये हैं कृपा करके आराम कर लें, आपका 'मै' मिल जायेगा। पुराने नौकरका विश्वास आ गया कि ठीक बोलता है। बाबूजी थक बहुत गए थे इस 'मै' की धुनमे; कहा—बाबूजी, आप आराम कर लीजिये देखिए आपका 'मैं' मिलेगा कि नही। वे पलगपर लेट गए। अब नौकर बोला कि अब आपका 'मैं' मिल गया तो सोचा और एका एक बोले—हां मेरा 'मैं' मिल गया। इसी प्रकार ज्ञानमय यह आत्मा स्वयको बाहर खोज रहा है। अरे तू ही तो आत्मा है।

आत्मा ज्ञानपिण्ड है आत्मामें रूप है कि रस है ? पकड सकते हो कि छू सकते हो। कुछ भी तो नही कर सकते हो। ज्ञानभाव और आनन्दभाव, बस इन्ही भावोका नाम आत्मा है। जो ज्ञानघन और आनन्दघन है इसीके भावमे आत्मा है। जो ज्ञानघन और आनन्दघन है इसीके मायने आत्मा है। घनका अर्थ क्या है? घनका अर्थ वजनदार नही, खूब मोटा नही, घनका अर्थ है—जहाँ दूसरा तत्त्व न हो उसे घन कहते है। जिस तत्त्वमे दूसरा तत्त्व न हो उसका नाम घन है। जैसे कि गगरीमे पानी भरा है, तो पानी जितना भरा है उसके बीचमे दूसरा तत्त्व नही है। जैसे कहते हैं कि जहाँ दूसरी चीज कुछ न लगी हो। घन उसको कहते है जहाँ दूसरा भाव न हो, केवल वस्तुका स्वरूप है।

यह आत्मा ज्ञानघन है अर्थात् ज्ञान हो ज्ञान सर्वत्र है। इस ज्ञानमे अन्य कोई भाव नही जुटा हुआ है। ऐसा ज्ञानानन्दघन यह मै आत्मतत्त्व हू। सो भी यह जीव ज्ञानको बाहर मे ढुंढता है। तो उसका अर्थ है कि बाहरमे 'मैं' को ढूढता है। यह बाहरमे आनन्दको ढूढता है इसका अर्थ है कि बाहरमे 'मै' को ढूंढता है। ज्ञान व आनन्दमे और 'मैं' मे फर्क नही। यदि बाहरमे ज्ञान आनन्दको ढूंढते है तो इसका मतलब है कि बाहरमे 'मैं' को ढूंढते हैं। बाहरमें 'मै' को खोजो, कही भी नही मिलेगा। आनन्द और ज्ञानकी बात अपनेमे ही है, आनन्द कोई बाहरकी चीज नही। इसकी खबर हो, इसकी व्यवस्था बने, फिर पीछे सब व्यवस्थाएँ बनती रहें।

मान लो मकानकी अच्छी व्यवस्था कर ली तो क्या हुआ ? मकानको छोड़कर जाना ही तो पडेगा। मकानकी व्यवस्थामे इसे मिलेगा क्या ? और और व्यवस्थाएँ कर लो, धन-वैभवकी व्यवस्थाएँ कर लो, पर उनको छोडकर जाना ही होगा। तो उनसे मिलेगा क्या ? इसकी गाँठमे रहेगा क्या ? और अपनी व्यवस्था कर ली जाये, ज्ञानानन्दमात्र मैं हू, इस तरहकी भावना बना ली जाये तो यही अपनी व्यवस्था है और अपने आपका पालन-पोषण है। शरीरके विकारसे, शरीरकी किसी बातसे आत्माको दुःख नही होता है वहां तो शरीरमे कुछ बात गुजर गयी, किन्तु उस पर राग लगा है, मोह लगा है, सो जो वेदना हुई वह राग और मोहकृत वेदना है, शरीरकृत वेदना नही है, पर वह मोह राग इस ढंगसे सब है। सब लोग सब कुछ वेदना शरीरसे ही समझते है। जहाँ अज्ञानरूप बुद्धि हुई उससे यह वेदना होती है। अपनी ओर झुकाव नही हुआ और बाहरमे ही रहे तो दुःख प्राप्त होंगे ही, सुखकी प्राप्ति नही हो सकती।

एक घटनाकी बात है। दम्पति थे एक पुरुष व स्त्री। स्त्री हठीली थी। उसने एक बार यह सोचा कि सासू जी को छकाना चाहिए। सो पेट दर्दका, सिर दर्दका बहाना लेकर

पड़ गयी। पति जी को बहुत आकुलता हो गई। पतिने स्त्रीसे पूछा कि कहाँ दर्द होता है? किस डाक्टरसे दवा करायें? कई डाक्टर बुलाये, ठीक ही न हो। तब स्त्री बोली कि डाक्टर की दवासे यह नही ठीक होगा। रात्रिमे देवता लोग बता गए हैं कि डाक्टरकी दवासे यह नही ठीक होगा। रात्रिमे देवता लोग बता गए हैं कि जो तुमसे अधिक प्यार करता हो उसकी माँ यदि सवेरा होते ही सिरके बाल घुटाकर और मुंह काला करके तुम्हारे पास आ जाय तो तुम बचोगी, नही तो मर जावोगी। पुरुषने सब रहस्य समझ लिया। उसने झट अपनी ससुरालको पत्र लिख दिया कि लडकीकी तबियत बहुत खराब है। किसी डाक्टरकी दवासे नही ठीक होगी। देवताओने बताया यदि लडकीकी माँ सवेरा होते ही सिर घुटाकर और मुह काला करके आ जाये तो लडकी ठीक हो जायेगी, नही तो सुबह बाद मर जायेगी। माँ बाप के तो ममता होती ही है। माँ अपने सिरके बाल बनवाकर मुह काला करके सवेरा होते ही आ गई। जब स्त्री काले मुहको देखती है तो कहती है कि 'देखो बीरबानी की चालें, सिर मुंडे और मुह काले।' जब उस स्त्रीने गौरसे देखा तो बहुत लज्जित हुई।

पर, पर सब एक समान है। पर जितने है वे पर ही तो है। इसके लिए तो एक यह सब ही हितकर है। बाह्यसे कही उसका हित नही है। इसलिए अपने आपके दर्शन हो अपने आपका आचरण हो, जितना बन जाये भीतरमें उतना ही आनन्दका उपाय है। परकी हठसे कुछ लाभ नही है। हमे चाहिए क्या? एक तो देवभक्तिकी आदत रहे, णमोकार मंत्र जपें, परमेष्ठीका स्मरण भी रहे—एक तो यह चीज और दूसरी चीज यह कि अपने आपको यह पता बना रहे कि यह मैं सबसे निराला शुद्ध निर्मल तत्त्वस्वरूप हू। बस ये दो ही बातें तुम्हारे धर्मके लिए बहुत कुछ है। सो प्रभुभक्ति व आत्मध्यान ये दो ही सहारे है, व्यवहारमे तो प्रभूभक्ति और निश्चयमे आत्मध्यान। प्रभुभक्तिको व्यवहार क्यो कहा? यो कहा कि कोई पुरुष प्रभुकी भक्ति नही कर सकता है किन्तु प्रभुके गुणको ज्ञेय बनाकर अपने आपके इस विशुद्ध भावसे परिणमनरूप भक्ति करता है। बाहरमे परद्रव्यको न कोई जानता, न कोई राग करता, न द्वेष करता, कुछ भी जीव नही करता है बाहर। जीव तो है और परिणमता है। सो अपने आपकी यह विशुद्ध परिणति है बस इस वृत्तिके होनेका नाम भक्ति है। सो व्यवहारमे प्रभुभक्ति और निश्चयसे आत्मध्यान ही अपना शरण है।

सुप्तमत्तदशालोके भ्रमो हि स्वच्युतो दशा।
सर्वाभ्रमास्तत. स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१७॥

इस संसारमे लोग सोई हुई अवस्थाको और पागल हो जाने वाली अवस्थाको भ्रम कहते है, लेकिन परमार्थसे वह सब भ्रम है। जिस जिस दशामे आत्मा अपने स्वरूपसे च्युत

हो जाता है वह बहिर्मुख परिणमन वाली अवस्था भ्रम है। इसलिए उन सब भ्रमोसे हटकर अपने आपसे आत्मबुद्धि करो और स्वयं सुखी होओ।

जैसे पागल जन जिस किसी भी पदार्थको अपना समझकर सतोष करते है कुछ समय को और जब उस चीजका वियोग होता है तब असतोष करता है। गांवोके मार्गमे किसी जगह कुवें पर पागल बैठा था, कुवेंका पानी पीनेके लिए। अपनी मोटर बग्घी खडी करके वहां लोग आते है तो वह पागल मान लेता है कि यह मेरी मोटर आयी, यह मेरा तांगा आया। अब वे तो पानी पीकर अपनी मोटरमे बैठकर चले जायेंगे, सो यह जाती हुई मोटर देखकर उसी क्षण यह सोचकर दुःखी होता कि मेरी मोटर चली गई। जैसे बच्चे लोग कागज की नाव बनाते है और उसे पानीमे तैराते है, खेल करते है। अभी कोई लहर तेज उठे और वह नाव डूब जाये तो बालक दुःख करते है, गम करते है। इसी तरह अज्ञानी जन किसी भी चीज़को अपनी जान लेते है और जब वह चीज विलीन हो जाती है, नष्ट हो जाती है तब दुःख मानते है।

वास्तवमे इस अपने आपसे बाहर अपना कुछ स्वरूप नही है। किसी परपदार्थको 'यह मेरा है' ऐसा मान लेना बडा अधेरा है। वस्तुके स्वरूपकी सीमा जिसके चित्तमे नही आई वह पुरुष व्याकुलताओसे घिरा रहता है। यदि अपने आपके आत्मस्वरूपको मान लें कि यह मेरा है तो उसे उस ज्ञानकी स्थितिमे क्लेश नही हो सकते है। क्लेश होते है अज्ञानसे और इसी कारण ज्ञानी होनेके लिए, शांत रहनेके लिए, जो अमोघ उपाय है वह यथार्थज्ञान ही तो है। अज्ञानका जब तक विनाश नही होगा तब तक आकुलताए खत्म नही हो सकती।

भैया! अनहोनीको होनी बनाएँ तो वह होती नही और जब होती नही तब इसे क्लेश होते हैं। यदि परपदार्थ अपने पास सदा रहते और जैसा चाहते वैसे ही रहते तो पर का मोह रखना, राग करना वह सब इसके लिए जायज होता, पर ऐसा तो स्वरूप ही नही है। ज्ञान ही एक ऐसा तत्त्व है जो अपने ही स्वाधीन है, अपने ही पास है, अपनेमे ही मौजूद है और अविनाशी है। उसका प्रताप कितना है? सर्वस्व प्रलय ही का है। इससे ही सतोष होता है, आकुलताएँ नही होती, हैरानी नही होती। इतने बड़े फलका कारण एक सम्यग्ज्ञान है। अज्ञानमे ही तो तृष्णा होती है, अज्ञानमे ही तो विषय और कषायोका आदर होता है। जहां अज्ञान दूर हुआ कि उसको अपनी शांतिका मार्ग मिल गया। शांतिका मार्ग कितना है? निजको निज परको पर जान। यह तो सभी लोग जानते है कि जितने भी लोग हैं, बड़े हों, छोटे हो सब कहते है कि यह मेरा घर है, यह दूसरेका घर है ऐसा जाननेपर 'निजको निज परको पर जान' नही है, किन्तु स्वय यह जानन देखनहार आत्मा जितना है, जो है उसे ही

सब समझो और उससे बाहर जितने भी पदार्थ है उनको पर समझो । अपने ही घरमे रहने वाली विभूति जिसको पर जँच जाये तो उसके ज्ञानकी महिमाको कौन कहे ? अपने आपके संयोगमे जडा हुआ यह देहादिक अपनेको पर जँच जाये उस ज्ञानकी महिमाको कौन कह सकता है ? लोकमे जो पूज्य होते है वे ज्ञानी ही पूज्य होते है । अरहंत सिद्ध क्या है ? शुद्ध ज्ञानका पिंड । ज्ञानघन अर्थात् जहाँ ज्ञान ही है अन्य कुछ नही है । जिसमे अन्य परतत्त्व कुछ नही, उसे कहते है ज्ञानघन । जहाँ दूसरी चीज न हो उसे घन कहते हैं । केवल ज्ञान-मात्र अपना आत्मतत्त्व जिसकी नजरमे है वही वास्तवमें जान सकता है कि परपदार्थ ये कह-लाते है । इस आत्मतत्त्वका अनुभव किस यत्नसे होता है ? बाहरी जितने यत्न है — प्राणायाम करना, आसन आदि होना, ये मनको एक जगह लगानेके साधन है । पर ये स्वयं ज्ञानरूप नही है और न इनसे ज्ञान प्रकट होता है । मनको एक ओर लगा लेना ऐसी स्थितिमे ज्ञान के द्वारा वह एकाग्रतासे लग सकता है, पर बाह्यप्रयोग ज्ञान नही है, अनुभूति नही है । आत्माकी अनुभूतिका उपाय अनुभूति ही है, ज्ञान ही है । यह आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप है । आत्मामे जो गुण पर्याय है, जो भी कुछ है उसका पिण्डरूप तो यह आत्मद्रव्य है । और यह जीव जितने प्रदेशोमे फैला है उतने प्रदेशोको कहते है क्षेत्र और यह आत्मा जिसरूप परिणम रहा है, बदलता है, दशा बनती है वह है आत्माका काल और इस आत्माका जो गुण है, अनादि अनंत हैं वह कहलाता है भाव । जब आत्माको पिंडरूपसे देखते है तो यह द्रव्यगुण पर्यायोका पिंड है । यह अनन्त पर्यायोका पिंड है इत्यादि रूपसे जब आत्माको इस द्रव्यदृष्टिसे देखते है वहाँ आत्मानुभूति उस समय नही है । वह ज्ञान उस ओर विकल्पोमे लगा रहता है । जब आत्माको क्षेत्रदृष्टिसे देखते है कि यह इतने लम्बे-चौडे आकारमे है, इतने प्रदेशोमे है, जब यह क्षेत्रदृष्टिसे बताया जाता है उस समयमे भी आत्मानुभूति नही है । लंबा, चौडा कितना यह आत्मा है ऐसी जानकारीके समय आत्मानुभूति नही है और यह रागरूप परिणमा हुआ है । यह द्वेष और विरोधरूप परिणमा हुआ है, ऐसी दृष्टिसे परिणतिको देखते हैं, कालदृष्टिसे आत्माको देखते हैं तो उस समय भी आत्मानुभूति नही है । अब उस चतुष्टयमे से बचा एक भाव उसका । यह भाव दो भेदरूप है, एक भेदरूप भाव और एक अभेदरूप भाव । भेदरूप भावमे तो जैसे आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, आनन्द है, अस्तित्व है, वस्तुत्व है, यह भाव है, गुण है, सो ऐसे भेदरूप भावोकी दृष्टि रखनेमे इस जीवका आत्मानु-भव नही होता है किन्तु जब अभेदभाव एतावन्मात्र मैं हू, इससे बड़ा, इससे छोटा यह मैं आत्मा नही हूं और तो क्या इसके बराबर 'मैं' नही, किन्तु ज्ञानरूप यह मैं आत्मा हू । जब अभेदभावकी दृष्टि करके यह आत्माको जानता है तब उसका आत्मानुभव होता है । यहाँ यह

प्रश्न है कि आत्मानुभव किस ज्ञानके द्वारा होता है । ज्ञान ५ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान । इसमे से श्रुतज्ञान तो सविकल्प है और बाकी ज्ञान निर्विकल्प है । हम और आपके दो ज्ञान है—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । श्रुतज्ञान तो निर्विकल्प स्थितिमे प्रयुक्त नही है । मतिज्ञान निर्विकल्प स्थितिमे है सो मतिज्ञान होता है—तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।'

इन्द्रिय और मनके कारण उत्पन्न हुआ सो उस आत्मानुभूतिमे जो ज्ञान लगा वह ज्ञान पैदा होनेके समयमे तो मनके निमित्तसे होता है, पर जब आत्मानुभवमे लग्न रहते हैं उस समय भी मनकी बात नही चलती । वह ज्ञान-उत्पत्तिमे मनोनिमित्तिक है, पर उसका रहनेमे मन नही लगा रहता । इसलिए आत्मानुभव एक विलक्षण ज्ञान है जिसके सीधे रूपमे किसी ज्ञानको नही कहा जा सकता है । वह तो ज्ञान है, ऐसा विलक्षण आत्मानुभव अभेदस्वभावकी दृष्टिमे हो सकता है । अभेदस्वभावका, ज्ञानका भी जब तक विकल्प है तब तक उसका अनुभव नही । वह आत्मस्वभाव क्या है कि जिसकी अनुभूतिको आत्मानुभव कहते हैं, वह आत्मस्वभाव समस्त परद्रव्योसे जुदा है । अपने आपमे उत्पन्न होने वाले विभावोसे भी जुदा है तो क्या वह आत्मस्वभाव जिसका हम आप ज्ञान कर रहे है ऐसा छुटपुट ज्ञानरूप है ? न वह स्वभाव परिपूर्ण है, न यह ज्ञान अधूरा है और न कोई पर्याय अधूरी होती । अब इसके विकासकी सीमा कितनी है उसको देखकर छोटे विकासमे लगी हुई बातको अधूरी कहते है । पर्याय जितनी है वह सब पूरी है, कोई परिणति ऐसी नही है कि अरे जरा ठहर जावो, हम आधे ही बन पाये है, आधा और बन लेने दो । पर्याय जितना है वह अपने समय मे पूर्ण है । चाहे कोईसी भी पर्याय हो, पर शुद्धविकासके मुकाबलेमे यह पर्याय कितना विकासमे है ? इसकी जब अपेक्षा करते है तो उस पर्यायको हम अधूरी कहते है । तो यह छुटपुट ज्ञान हमारा स्वभाव नही है । हमारा स्वभाव तो परिपूर्ण है । केवलज्ञान क्या हमारा स्वभाव है ? वह स्वभावके अनुरूप तो है, पर वह स्वयं स्वभाव नही, किन्तु ज्ञानकी वृत्ति है । केवलज्ञान स्वभाव हो तो इस जीवमे सहज होना चाहिये । सहजका अर्थ है—'सह जायते इति सहजम् ।' जबसे जीव है तबसे ही जो निरन्तर हो वह सहज कहलाता है । यह तो इस जीवमे अनादिसे नही है । तब इस जीवका स्वभाव क्या है ? जो आदि अतसे रहित है, अनादि अनन्त है ।

तब फिर प्रश्न होता है कि अनादि अनत आत्माके ये सब गुण हैं, दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, आनन्द है, वीर्य है तो क्या ऐसे सब भिन्न-भिन्न स्वभाव है ? भाई द्रव्य एक है तो उस द्रव्यका स्वभाव एक है और उस द्रव्यकी पर्याय भी जब देखो तब एक है । ऐसे उस

एक पदार्थको समझनेके लिये परिणमन पद्धतिसे बताकर आचार्योंने यह सब व्यवहार किया है। इस व्यवहारका आश्रय लिये बिना हम उस अखण्ड तत्त्व तक नही पहुंच सकते थे। पर अखण्ड अस्तित्वमे लगना यहाँ यह व्यवहारका काम नही है। किन्तु उसने अखन्डके निकट पहुंचा दिया, यहाँ अब निश्चय द्वारा यहाँ लगनेका काम है।

जैसे राजासे किसीको मिलना है तो द्वारपालको लेकर वह मिलने चलता है। द्वार-पाल कहाँ तक सहायक है, जहाँ तक कि राजाके स्थानका पता न पाये, राजा दिख न जाये। द्वारपालका तो केवल इतना ही काम रहेगा। उस स्थान पर पहुंचा देने पर आगे तो मिलने वालेका केवल काम है। यह व्यवहार भी तुम्हारा उपयोग है और निश्चय भी तुम्हारा उप-योग है। कब कौन उपयोगी है, यह बात अपने समझानेकी है तो वह आत्मस्वभाव विविध नही है, किन्तु एक है। हाँ हाँ, समझमे आया। यह आत्मस्वभाव देखो ना यह एक है। अरे इस प्रकारके एकपनेका भी जहाँ विकल्प है तहाँ भी आत्मस्वरूपकी अनुभूति नही। लोग कहते है ना कि यह ब्रह्म एक है। नाना तो लोगोको मायासे दिखते है। जैन सिद्धान्तमे भी इसको यो कहते है।

देखो भैया! प्रथम तो यह बात है—नाना ब्रह्म बैठे है, नाना आत्मा है और फिर बढकर बोलते है तो उससे भी अधिक बढकर बोलते है कि वह ब्रह्म एक है, आत्मस्वभाव एक है। यह भी तथ्य है, किन्तु इस निगाहमे भी इस आत्मासे मिल नही पाये। वह आत्म-स्वभाव एक है, न अनेक है। वैसे ही अन्तरंग दृष्टिसे सोचो कि आत्मस्वभाव क्या है? चित् प्रकाश चित् स्वभाव प्रतिभासमात्र, जाननशक्ति उस प्रतिभासका जिस समय बोध हो रहा है उस समय क्या वह यह कह सकता है कि यह एक है। उसे तो प्रतिभासके आनन्दका अनुभव है, और कुछ नही कह सकते है। इसलिए उस एकके विकल्प जालसे मुक्त यह आत्मस्वभाव है। इस आत्मस्वभावके आलम्बनसे अन्तरमे जो अनुभूति होती है उसको आत्मानुभव कहते हैं। यह आत्मानुभव जिसके प्रकट नही है अर्थात् जो सबके पतेसे रहित है, उसकी सारी दशाए भ्रम सहित है। लोग तो सोये रहने व पागल रहनेकी दशाको भ्रम कहते है। परन्तु परमार्थसे तो अपने आपके स्वभावसे चिगी हुई जितनी भी दशायें है उन सबको भ्रम कहते हैं। वे सब बेहोशियाँ है। तब अपना कर्तव्य है कि उन पदार्थोंसे हटकर अपने आपके दर्शन में आयें। अपने आपका स्पर्श करना यही एक शांतिका उपाय है। अनुभूति जितनी होती है और श्रद्धान जितना होता है वह सब कोई न कोई आचरणको लिए हुए रहता है। जिसे कहते हैं स्वरूपाचरण। यह भी एक विलक्षण चारित्र है। ५ प्रकारके चारित्र है—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय व यथाख्यात। इन ५ प्रकारके चारित्रोमे

से स्वरूपाचरण चारित्र कौनसा है ? जो ५ चारित्र है इनमे स्वरूपाचरणको कहाँसे लायेंगे ? यह स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थानसे प्रकट होता है और अंत तक बना रहता है । उसमे चाहिए क्या ? स्वरूपका आचरण । आत्माका स्पर्श हो वही हुआ स्वरूपाचरण । कही कम विकसित है कही अधिक तो स्वस्थ होनेमे ही आनन्द है । परस्थ होनेमे आनन्द नही है । परन्तु परस्थ होनेके दो कारण है--एक तो है अयोग्यता और दूसरा है मोहियोका संग । किसी प्रकार अज्ञानतासे हटकर ज्ञान-अमृतका पान करो, ऐसा अमृततत्त्व जो अपने आपमे है कही बाहर से नही लाना है । स्वयं ही स्वाधीन है । ऐसी दृष्टि करके अमृतका पान कर लो, केवल अपनी ओर मुडनेकी दशा होती कि अमृतका पान कर लो । इतनी सस्ती बात, सरल बात, स्वाधीन बात हम सब आत्मावोमे क्यो नही हो रही है ? यही एक खेदकी बात है । बाहरमे कुछ भी हो जाये उससे कोई सकट नही है । विभूति यहाँसे वहाँ चली जाये, यह कोई संकट नही है पर अपने आपके स्वरूपसे जो चिगे हुए हैं और इसमे जो बाह्यवृत्ति बन रही है इससे बढकर दरिद्रता कुछ नही है, सकट और कुछ नही है । यह महान् सकट एक ज्ञानके द्वारा ही टल सकता है । सो ज्ञानके द्वारा अपने आपमे आकर आप ही सुखी होनेका यत्न करना चाहिए ।

यततामव्रतीवृत्ते न तृष्येत्तु व्रती व्रते ।
ज्ञानस्थितिर्व्रतार्थोऽत स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१८॥

अव्रती पुरुष व्रतमे यत्न करें और व्रती पुरुष व्रतमे ही सतुष्ट न हो जायें, क्योकि व्रतोके पालनका प्रयोजन है अपने ज्ञानमे स्थिति पाना । जैसे कहते है ना कि अशुभ उपयोग से अच्छा शुभ उपयोग है । अशुभ उपयोगसे हटकर शुभ उपयोगमे आना चाहिए, पर शुभ उपयोग करने वाला पुरुष शुभ उपयोगमे ही सतुष्ट न हो जाये, क्योकि शुभ उपयोगका प्रयोजन शुद्धोपयोगमे ठहर सकनेकी पात्रता रखना है । इसी प्रकार अव्रती पुरुष जिनके कुछ नियम नही, सयम नही, वे व्रतमे, तप करनेमे संयममे लगें । झूठ, चोरी, कुशील आदिके पाप, परिग्रह संचयके पाप वे इस जीवको आकुलित बनाये रहते है । इससे हटकर शुभ उपयोगमे आये तो कषाय मद हो और कषाय मद होनेसे इनकी आकुलताएँ कम हो । इसलिए अव्रती रहना अच्छा नही । अपनी-अपनी शक्ति माफिक व्रतधारणमे यत्न करना चाहिए । कितनी ही ऐसी कथाएँ है ।

दो पुरुष जा रहे थे । एकके अनजान फलके खानेके त्यागका नियम था कि हम अनजान फल नही खायेंगे और दूसरेके अनजान फलके खानेका त्याग न था । दोनो चले जा रहे थे तो रास्तेमे एक वृक्ष मिला । वह वृक्ष था विषवृक्ष । उसमे बहुत सुन्दर फल थे । फल नीचे

भी पडे हुए थे। जिसके नियम नही था उसने नीचेके फलको खाया और मृत्युको प्राप्त हो गया और जिसका नियम था उसने फलको नही खाया, जिन्दा बना रहा। अभक्ष्यके त्यागमे बडा लाभ है। धर्मलाभ तो है हिंसासे बचें, आसक्तिसे बचें। उससे लौकिक लाभ भी है। यदि जिन्दगी स्वतंत्र ढगसे रखना चाहे तो उसमे भी लाभ है। जैसे कोई घटना ऐसी गुजरे कि बारातके सत्कारसे रात्रिमे कोई खीर बनाए और कोई विषैला जीव जैसे छिपकली आदि पड जावे और बारातमे जो कोई भी उस खीरको खा लेवे तो वह मृत्युको प्राप्त हो जाये। ऐसी कई जगह घटनाएँ भी हुई है। अभक्ष्य भक्षणमे धार्मिक व लौकिक सब तरहकी हानियाँ है। और यह है क्या ? यह है प्रमाद और अज्ञानता, जिसके कारण लोग अभक्ष्य खाते है, रात्रिमे खाते है। खाने वालेको राग है, पर देखो यह रात्रिका समय है, यह कुछ खाने लायक समय नही है, प्रकाश है, मच्छर हैं, अनेक कीडे है, जन्तु है तो रात्रिभोजन अभक्ष्यभक्षण—ये सब आसक्ति बिना नही होते। आसक्ति होती है तब इस बातमे प्रवृत्ति होती है। जो अव्रत मे है उनको अपनी शक्तिके अनुसार व्रतमे लगना चाहिए। भैया! यदि कोई कहे कि हमे तो विशेष ज्ञान नही है और ज्ञान बिना व्रतमें कैसे आवे तो ज्ञान बिना अव्रतमे रहे, उससे भी क्या ज्यादा नुक्सान है कि ज्ञान बिना व्रतमे चलें। भैया! उसमे तो यह फायदा है कि मद कषाय है, पुण्य सचय है। हाँ यह बात और है कि सम्यग्ज्ञान हुए बिना मोक्षमार्ग नही मिलता है, धर्म नही मिलता है। इन लौकिक बातोमे तो यह बात ठीक ही है कि अव्रतीके परिणामसे व्रतके परिणाम करना चाहते है। जो अव्रती पुरुष हैं वे व्रतपालनका परिणमन करे, पर जो व्रती पुरुष है वे व्रतमे ही संतुष्ट न हो जायें, हमने सब कुछ कर लिया, कर रहे है ना ? कर रहे है, तप कर रहे है, हम अब धर्ममे लगे है। हमने जो कुछ करना था सो कर लिया, यह समझकर सतुष्ट होकर बैठ गए तो उनके आगेका सन्मार्ग रुक गया। प्रयोजन तो ज्ञानमे स्थित होनेका है ना ? ज्ञान ज्ञानमे ठहर जाये, इसके ही उद्यमसे एक यह उद्यम है व्रतका पालन। अव्रत अवस्थामे यदा तदा स्वच्छन्द प्रवृत्तिसे उस ज्ञानकी दृष्टि कर लें, ऐसी पात्रता नही रहती। ऐसी पात्रता रखने वाला व्रती है, पर व्रतका प्रयोजन है ज्ञानस्थिति होना अर्थात् स्वस्थित अपने आपमे स्थित हो जाना। यही व्रत है, तप है, यही सबका प्रयोजन है। यह आत्मा, यह ज्ञान तो अपने स्वरूपमे न ठहरकर बाहर-बाहर डोल रहा है, इसी से ही तो बेचैनी है। अज्ञानी जीव चाहता कुछ है, होता कुछ है। चाह तो यह है कि यह चीज मुझे यो मिले, इतना मुनाफा है, इनका संयोग हो पर ऐसा होना अपने हाथकी बात तो नही है। वे तो परपदार्थ है, उनका परिणमन उनमे है। उनकी परिणतिके अधिकारी हम तो नही है। तब जब चाहके खिलाफ बात होती है तब दुःख होना ही है। सुखी होनेका

मार्ग तो किसी भी प्रकारकी चाह न करना है, परवस्तुकी चाह न करना है।

पंडित टोडरमल जी साहबने कही ऐसा दृष्टान्त दिया है। दो मनुष्योके यह भाव हुये कि हम इस पहाड पर खूब निःशंक, भ्रमण करें, दौडें, चलें। उनमे एकने यह सोचा कि पहाड पर काँटे अधिक है, कंकड़ अधिक है, इसलिए सारे पहाडमे चमडा फैला दें तब फिर निःशंक होकर भ्रमण करें, दौड लगायें। और एक पुरुषने यह सोचा कि अपने पैरोमे चमड़े के जूते पहिन लें और फिर अच्छी तरह सेपहाड पर दौड लगायें, चलें। इन दोनोमे अपनी इच्छाकी पूर्ति करनेमे कौन सफल होगा? जो अपने पैरोमे जूते पहिनकर चलेगा। और सारे पहाड पर चमड़ा फैलानेकी सोचने वाला क्या सफल हो जायेगा? नही। क्योकि इतना चमडा कहाँ है और हो भी तो बिछाए कौन? वे बड़े ऊँचे ऊँचे पहाड हैं, बडे-बडे वृक्ष है, उनमे बड़ी-बड़ी झाडियाँ हैं, जहाँपर हाथ भी नही जा सकता है। वहाँपर कोई कैसे चमडा बिछावेगा? यदि कोई कहे कि १०-२०-५० हाथमे चमडा बिछा लें उससे भी तो कुछ नही हो सकता है। उतना भी तो बिछना कठिन है तो फिर वह कैसे सफल हो सकता है? स्वाधीन काम करने वाला, जूते पहिनकर चलने वाला अपना काम करेगा तो उसकी सफलता हो जायेगी। इसी प्रकार कामी लोग क्या चाहते है कि यहाँ यह जोड़ लें, यहाँ यह जोड लें, यह रोजगार करें, परिग्रह करें, संचय करें, परिवार मेरा ऐसा हो, मित्र जन ऐसे हो, ऐसी बुद्धि करते हैं और चाहते हैं कि हम सुखी हो, और एक पुरुष ऐसा है कि परको पर जानकर, परसे अपना अहित जानकर परसे कुछ भी सम्बध नही है, ऐसा जानकर परकी चाह ही नही रखता है। अब हमे बतलावो इन दो प्रकारके पुरुषोमे से सुखी शांत कौन हो सकता है?

वह सुखी, शान्त नही हो सकता है जिसने अपना स्वाधीन काम किया, जो ज्ञानमे स्थित हुआ, यह बहुत स्वाधीन काम है। व्रतोका पालन करना, इस काममे भी बहुत नियम साधना चाहिए। पानी पीना है तो कड़ेदार बाल्टी नही है तो बैठे रहो, मोटा छन्ना नही है तो बैठे रहो। उस व्रतकी भी उपेक्षा है और उससे भी सुगम हो सके तो बड़ी कठिन बात है। ज्ञानी ज्ञानस्वरूपमे स्थित हो जाये, उससे भी अधिक स्वाधीन बात है कि उस दशासे हटकर एकत्वकी दशामे आ जाय; ज्ञान ज्ञानमे ठहर जाये। सो कहते हैं भैया, अज्ञानमे ऐसा नही होता है। अशुभोपयोगके बाद एकदम शुद्धोपयोगमे कोई पहुचे, ऐसा नही हो सकता है। अव्रत अवस्थाके बाद एकदम मोक्षमे पहुच जाये, ऐसा नही हो सकता है। सो अव्रती पुरुष व्रतको ग्रहण करे और व्रती पुरुष व्रतमे ही सन्तुष्ट हो जाये। जैसे कोई पुरुष नीचे खडा है और उसे इस अटारी पर आना है तो उस पुरुषको चाहिए कि सीढियोसे ही सन्तुष्ट न हो

जाये, नही तो अटारी पर आना नही हो सकता है । जैसे कोई पुरुष जबलपुरसे बम्बई जाना चाहता है रेलगाडी द्वारा, और रास्तेमे कोई स्टेशन सजी सजाई मिलती है, सुहावनी है, उस पुरुषको स्टेशन बढिया दीखे, मनमोहक दीखे और नीचे उतरकर उसमें खूब राग करे व इतने मे ही गाड़ी छूट जाये तो फल क्या होगा कि अपना उद्देश्य नही पूरा कर सकेगा । यदि अच्छी स्टेशन है तो उसका ज्ञाता द्रष्टा रहे, जान ले कि बहुत बढिया स्टेशन है, पर नीचे उतरकर राग करे तो वह मूरखचन्द बन जायेगा । उसके लिए मुनाफेकी बात नही है । इसी तरह इसकी प्रगतिके मार्गमे हमे कितनी ही मंदकषायके प्रवर्तन होगे, उनमे कुछ अच्छे लगेगे, मंदकषाय होगी, कुछ विश्राम भी मिलेगा, पर उसमे ही सन्तुष्ट हो जाये तो आगेका मार्ग खत्म हो जायेगा । अपने उद्देश्यको न पूरा कर सकेगा । ज्ञानी जीवकी अंतरसे लालसा, इच्छा यह है कि सहज ज्ञानमें ही उपयोग रहे, ज्ञानके स्वरूपको जानता रहे । अज्ञानी होगा तो वह ज्ञानकी प्रवृत्ति न करेगा । सचय करेगा, पापोको बढाता रहेगा, उल्टी प्रवृत्ति करेगा ज्ञानी व्रत भी करता है फिर भी वह ज्ञानी मंदकषायके व्रतमें भी संतुष्ट नही हो सकता है, ज्ञानगुणो से हटकर नही रह सकता है ज्ञानी जीवको ही ज्ञान मिलता है और ज्ञानकी स्थिति रहती है उसे चाहिए और क्या ? ऐसी ज्ञानकी स्थिति मेरेमें हो और मैं उस ज्ञानकी स्थितिमे ही अपने मे, अपने लिए, अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

पुण्यपापे व्रतावृत्तैर्मोक्षस्तद्द्वयशून्यता ।
ज्ञानमात्र स्ववृत्ति' सा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-१६॥

व्रतके परिणामोमे तो पुण्य होता है और अव्रतके परिणामोसे पाप होते हैं और मोक्ष व्रत और अव्रतसे रहित होता है । पुण्य और पापसे रहित ही शुद्ध चैतन्यका विकास है । ज्ञानमात्र निजतत्त्वमे केवल ज्ञानवृत्ति हो, ऐसी ज्ञानवृत्तिके बलसे ज्ञाताद्रष्टा रहनेसे यह आत्मा अपनेमे अपने आप सुखी हो सकता है । पूजामे जो रोज पढा जाता है । पूजा प्रस्तावनामे—

अर्हन् पुराणपुरुषोत्तमपावनानि वस्तूनि नूनमखिलन्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवलबोधवह्नौ पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

पढना तो सीधा जानते है, मगर हम कितनी जिम्मेदारीकी बात बोल रहे है, उसका कुछ भान ही नही है । पूजक बोलता है कि हे अरहन्त, हे पुराण, हे पुरुषोत्तम ! ये पवित्र चीजें नाना तरहकी सामने रखी हुई है—शुद्ध धोती, दुपट्टा, शुद्ध थाल सजा सजाया, शुद्ध चावल चिट्टे, मंदिर भी शुद्ध, टेबुल भी शुद्ध, भगवानकी मूर्ति भी शुद्ध बहुत सी पावन चीजें, अष्ट द्रव्य हैं, पर निश्चयसे मनमें तो ये सब वस्तु एक ही चीज दिखती हैं, एक ही नजर आती है, पर पूजककी दृष्टि बहुत गहरी है बडा त्याग करके भगवानकी भक्ति करने

है, सब एक ध्येयभूततत्त्व दिखता है। जैसे कही विवाह आदिका अवसर हो वहाँ सब नटखट हैं, पर उसे एक ही दीखता है। जिसको लगन हो उसे एक ही दीखता है। किसीका इष्ट गुजर गया, फूफा, मामा, मौसी आदि सभी समझाने आते हैं, पर उसे तो केवल एक ही नजर आ रहा है जिस पुरुष पर दृष्टि लगी है। इस पूजकमे इतनी बडी भक्ति है कि वह थाल सजाये हुए खडा है, पर उसे एक ही दिख रहा है। वह क्या दिख रहा है ? जिसकी वह भक्ति कर रहा है। सो पूजाके प्रसङ्गमे कहते है कि मैं इस जाज्वल्यमान निर्मल केवल ज्ञानरूप अग्निमे इन समस्त पुण्य वस्तुवोको स्वाहा करता हू, त्यागता हू, अर्पित करता हू। क्या पवित्र चीज है वे, साढे ग्यारह आनेके अष्ट द्रव्य ना ? कोई कहे वाह रे वाह, बात बहुत कर रहे है और त्याग कर रहे है केवल साढे ग्यारह आनेकी चीजोका। कहता है मैं इतनी ही चीजोका स्वाहा करनेके लिए नही आया, किन्तु मेरे पास जो भी चीजें हैं धन वैभव आदि ये सब कुछ इस जाज्वल्यमान ज्ञानाग्निमे स्वाहा करता हू अर्थात् यह स्वरूप इतना निर्मल पवित्र है कि इसकी प्राप्ति ही सब कुछ है। बाकी तीन लोकका सारा वैभव कुछ नही है। सोचो तो सही कि सारा वैभव भी सामने हो, पर उन सब वस्तुओसे मुझको क्या मिलेगा ? कुछ भी नही मिलेगा। दुःख भी नही मिलेगा, सुख भी नही मिलेगा। हाँ, परवस्तुवोके आलम्बनसे विकल्प करते है और उन विकल्पोसे दुःख ही मिलेगा। समस्त वैभव ज्ञानमे स्वाहा करते है। फिर कोई कहने लगे कि वाह वाह इन परपदार्थोको जानते हो कि मेरे साथ नही जावेंगे, जब मर जावेंगे तो यो ही छूट जावेंगे। सो भैया, यही सोच डालो कि चलो भगवान्के ही भले बन जायें। कहते है महाराज इतनी ही बात नही, ये धन वैभव जिस पुण्यके उदयसे हुए उनको भी स्वाहा करता हू। सारा द्रव्यकर्म मिट जाये, मैं सबको स्वाहा करता हूँ। कहते है वाह इसमे भी चतुराईकी बात की गई। केवल कह लो, भले बनने की बात कर रहे है। कहते है कि कहते ही नही हैं, वे द्रव्यकर्म जिन भावोको निमित्त पाकर बँधते है ऐसे शुभोपयोगरूप पुण्य भावोको भी मैं स्वाहा करता हू। इतने बडे त्यागमे आया हुआ पुजारी फिर इतनी बात कहेगा—प्रथम देव अरहत सिद्धम् अर्थात् पूजा करेगा। ज्ञानी पुरुष सुख दुःखको समान मानता है। सुख दुःखके कारण पुण्य पापोको समान मानता है। किस मुकाबलेमे ये सब समान कहे ? किसपर निगाह है ? जिसपर वह समान बन जाता है। उस ज्ञानी पुरुषकी निगाहमे वे सब समान हो जाते है। सोई कह रहे है कि व्रतोसे तो पुण्य होता है और अव्रतोसे पाप होते है और नरक, मोक्ष, पुण्य पाप, व्रत अव्रत, सुख दुःख इन सब जोडियोसे रहित है। वह तो ज्ञानमात्र निजकी वृत्ति है सो उस ज्ञानमात्र वृत्तिमे रहकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

शांति होनेका मार्ग अन्यत्र कही नही मिलेगा । खुद ही में दृष्टि दो, खुदके ही स्वरूप मे निगाह हो तो वह सतोष पा सकता है । बाहरी परपदार्थोंमे दृष्टि फंसाकर कोई सतुष्ट नही हो सकता है । जिन्दगी बरबाद किए जा रहे हैं, मिलता कुछ नही है, बरबाद होते चले जा रहे है, सो एक ज्ञानमात्रकी ही अपनेमे वृत्ति हो ।

शृण्वतो वदतोऽप्यात्मचर्चा न ज्ञानभावनाम् ।
विना मुक्तिस्ततोऽत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२०॥

आत्मविषयक चर्चाको खूब सुनते भी है और इस आत्मासम्बधी चर्चाको खूब पढते भी है, फिर भी ज्ञानकी भावनाके बिना मुक्तिमार्ग नही मिलता है । ज्ञानमात्र मैं हू, इस प्रकारको भावना किए बिना मुक्ति प्राप्त नही होती, क्योंकि ज्ञानमात्र रहनेका नाम ही मुक्ति है और ज्ञानमात्र बननेका उपाय 'ज्ञानमात्र मैं हूं' ऐसी भावना बनाना है । यह बात असत्य नही है कि मैं ज्ञानमात्र हूं और यह भी असत्य नही है कि वर्तमानमें रागमय हूं, द्वेषमय हू, मोहमय हूं यह भी असत्य नही है । परदृष्टिका मार्ग भिन्न-भिन्न है । हम केवल अपने सहज स्वरूपको ही स्वीकार करनेमें जुटने वाले है, तब यही दिखता है कि मैं ज्ञानमात्र हू । मैं वह हू जो स्वयं हू, अनादिसे हू, अनन्तकाल तक हूं । बिना मरणके हू, सदा हूं, एकस्वरूप हू, क्या मैं ऐसा कुछ हू जो नष्ट हो जाने वाला हू ? नही । ऐसा मैं नही हूं । अभी गरीब पुरुष को कहा जाये, जो १०-२० रुपयोका खोम्चा फेरकर अपने परिवारके लोगोका पेट भरता हो कि भाई हम तुम्हें लखपति दो दिनके लिए बनाए देते है और इसके बाद यह सब जो तुम्हारे पास है वह सब धन दानमे दे दिया जायेगा, तुम्हे कुछ नही मिलेगा तो वह लखपति होना मंजूर नही करेगा और अपने १०-२० रुपयेका ही गुजारा करना मंजूर करेगा । वह अपनेको यो सोचता है कि मैं जिस तरहसे सदा रह सकता हू वही ठीक है और दो दिनको धनिक बनकर रहे, फिर मिट गये तो यह बात ठीक नही है । वह चाहता है कि मैं वैसा रहू कि जैसा सदा रह सकता हू ।

कोई अपनेको यह मजूर नही करता कि जो मै हूँ 'वह मिट जाऊँगा । मैं मिट जाऊँगा, ऐसी बात सुनना उसे ठीक नही लगता है । ये सब छुटपुट बातें भी इस बातको बल देती है कि मैं वह हू जो कभी नष्ट नहीं होता । शुद्ध हू, स्वतत्र हूं, अपने आप हू आदि आत्माकी चर्चा खूब सुनकर भी, आत्माकी चर्चा खूब बोलकर भी यदि ज्ञानभावना नही जगती तो उसे मुक्ति नही मिलती । बातें करनेसे जैसे पेट नही भरता, भोजन पकायें, खायें तो पेट भरे कहते है ना कि भाई बातोसे तो पेट नही भरता है । इसी प्रकार किसी भी प्रकारकी चर्चा बोलने सुननेसे मुक्ति नही मिलती, शांति नही मिलती । ज्ञान भावनासे ही

शांति मिलती है । मै ज्ञानमात्र हू, केवल जाननस्वरूप हू । इसमे फिर बखेडा है कैसे ? इस मुझमे रूप नही, रस नही, गंध नही, स्पर्श नही, पकडा नही जा सकता, छेदा नही जा सकता, भेदा नही जा सकता, किसीका कुछ यह लगता नही । सब जाननमात्र आत्मा है । जानन मात्र तत्त्व किसी दूसरेका कुछ लग सतता हो सो कैसे लगेगा ? जाननमात्र यह मैं आत्मा हू, इसका काम जानना है, और काम निमित्त पाकर होता है तो क्या करेगा वह ? जैसे कि सिनेमाके पर्दे पर जो कि सफेद है, साफ है, फोटो यंत्र सामने आ गया तो रगीन बन गया । अब क्या करें, उपाधिकी सन्निधि सामने है और उस प्रकारका प्रतिबिम्ब झलक गया, तो इसकी योग्यता है, हो गया । केवल पर्देकी ओरसे ही पर्देने रंगीन तो नही बनाया ? बिना उपाधिके पर्दा तो एकरूप है, किन्तु उपाधि सन्निधिमे है, सो चित्रित हो गया । आत्मा है, ज्ञानस्वरूप है, स्वच्छताका स्वभाव है । फिर भी इसपर राग द्वेष आ गए । हमने अपनी ओर से क्या किया, स्वरसतः स्वभावसे इसने क्या गल्ती खायी ? क्या करे विपत्तियोका पहाड टूट गया । उपाधि सन्निधिमे है और इसमे विभावोरूप परिणमनकी योग्यता है । परिणम गया, विभावोरूप हो गया । उन विभावोरूप मैं नही हो गया और मैं ही परिणम गया, तिस पर भी उस विभावपरिणमनरूप मैं नही हू । मैं केवल चित्स्वभाव मात्र हू, ज्ञानस्वभावरूप हू, ऐसी भावनाके बिना मुक्ति प्राप्त नही होगी, सकट दूर नही होगे । जैसी बात अपने आपमे बार-बार पाई जाती है उस अनुकूल अपनेको वर्त लेते है, बना लेते है । जब विपरीत विपरीत अपनेको सोचते है तो अपनेको विडम्बित कर लेते है ।

तीन चार ठग थे । उन्होने देखा कि एक भाई कोई भी हो, ब्राह्मण सही, कोई भी हो, कोई अहीर वगैरा हो, सो एक बकरी लिए चला जा रहा था । उन्होने सोचा कि बकरी बडी हृष्ट-पुष्ट है, इसको तो ठग लेना चाहिए । सोचा कैसे करे ? उन्होने सलाह की कि एक एक मीलकी दूरी पर चारो जल्दी खडे हो जाये और ऐसा ही तुम कहो, ऐसा ही तुम कहो और ऐसा ही तुम और बात बता दी । वह बकरी लिए चला जा रहा था । पहिले मिले ठग ने कहा, अरे साहब यह कुत्ता कहाँ लिए चले जा रहे हो ? उसने इस बातको अनसुनीसी कर दिया, सोचा कि बकरी ही तो है । आगे चला तो दूसरा कहता है—अरे भाई यह कुत्ता कहाँ लिए जा रहे हो ? अब कुछ मनमे आया कि क्या बात है यह कुत्ता ही है क्या ? उसने झट कहा कि बकरी ही तो है । तीसरा भी वही कहता है कि यह कुत्ता क्यो लिए जा रहे हो ? कुछ बात समझमे आयी कि यह मुझे धोखा ही है । फिर आगे चौथेने कहा कि तुम इतने चावसे कुत्तेको कहाँ लिए जा रहे हो ? अब तो उसने बकरीको छोड दिया, सोचा कि आखिर कुत्ता है इसे क्या करें ? जैसी अपने मनमे भावना बनावो याने झूठेकी भावना बनाओ तो

उस रूप बन जाते है और यदि सचकी भावना बनावो तो उस रूप वर्तनेमे संदेह भी नही रहता। उस झूठी बातमे तो सन्देह भी होता है। एक ऐसा ही मामला सुना गया कही कि किसी सेठका मुकदमा था तो उसके विरोधीने ४-६ जगह जैसे रिक्शा वालोको, बोझा ढोने वालोको, टिकट मास्टरको कुछ देकर समझा दिया कि फलां सेठ आ रहे है तो उनसे यो कहना। सेठजी पेशीके लिये अपने कस्बेसे बाहर जाने लगे तो पहिले तांगे वाले मिले। तांगे वालेने पूछा कि सेठजी कहां जा रहे हो ? बोले—फलां शहर। अरे बैठो बैठो। क्या लोगे ? अरे सेठ जी बैठो तो जो देना हो सो दे देना। सेठ बैठ गया। उसे माल तो पहिले ही मिल गया था। सेठ बैठ गया तो तांगे वालेने कहा कि सेठजी आप कबसे बीमार हो ? आज तो तुम्हारा चेहरा बिल्कुल उतर गया है। तुम आज बडे दुबले दिखते हो। सेठने कहा ठीक हो जायगा, कोई चिन्ता नही है। जब स्टेशनके पास पहुचे तो कुलीने कहा कि लावो सेठ जी सामान ले चलें। कुली भी बोला—सेठजी आपकी आज तबियत खराब लग रही है, कहां जा रहे हो ? कहा—ठीक है, कुछ चिंता नही। जब टिकटघर पर पहुचे टिकट लेने तो टिकट मास्टर बोला कि अरे सेठ जो कहां जा रहे हो ? आज तो आपका चेहरा बिल्कुल फीका नजर आ रहा है, कुछ बात है क्या ? कही हार्ट न फेल हो जाये उसने जाना ही छोड दिया। उसका फल यह हुआ कि दूसरेके फेवरमे मुकदमा हो गया। अपनेको जैसी भावनामे रखे वैसा परिणाम निकलता है। गृहस्थीमे दसो बातें औंधी सीधी सुनी जाती है। कितनी ही आपदाओकी बातें, सुख दु:खकी बातें, अपमानकी बातें सुनी जाती है। इज्जत करने वाले तो दुनियामे थोडे है, पर भीतरसे बेइज्जतीमे खुश होने वाले बहुत है। अनेक बातें ऐसी हो रही है। उनमेसे किसी भी बातको अपने दिलमे अगर धर लें, सोच लें महसूस कर लें तो उसको क्या चीज हल नही हो जाती है ? यदि वे ऐसा सोचने तथा करनेमे असमर्थ है तो उसका परिणाम वे भोगते है।

एक भावना बना डाली। औंधी भावनाका फल औंधा मिलता है और सोधी भावना का फल सीधा मिलेगा। भैया, यह विश्वासमे होना चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूं, अन्य जितने भी आत्माके गुण है वे ज्ञानके अस्तित्वमे समा जाते है। अच्छा एक विचार-विमर्श करो—आत्मामे तो अनन्तगुण हैं ना ? है, और कहे भाई उन अनत गुणोमे से कोई एक गुण निकाल दो, उससे क्या टोटा आयेगा ? कुछ भी तो फर्क न आयेगा। जब अनन्तगुण है और उनमे से एक गुण निकाल लिया। केवल एक भरकी बात कह रहे हैं। एक ज्ञानगुण निकाल लो तो अब बतलावो कि अस्तित्व किसपर विराजे ? आत्मपदार्थोंकी जान ही निकाल लो अब क्या रहा, और सब बातें तो जानकी जान रखनेके लिए थी। वह ज्ञानमात्र आत्मा कैसा

है ? यह बतानेमे सब गुण आ जाते हैं । यह ज्ञानमात्र आत्मा स्वयं अपनेमे रहता है । यह ज्ञानमात्र आत्माका वर्तन इस प्रकारका है । यो अर्थविकल्प होते हुए ज्ञान आ गया । यह ज्ञानमात्र आत्मा ज्ञानमात्र है, इस भावनामे आकुलतावोका काम नही है । इस आत्मामे अनाकुलता है । इस ज्ञानमात्र आत्मामे सब बातें आ जाती हैं इसलिए आचार्योंने इस बातपर बल दिया है कि हम अपनेको ज्ञानरूप भावें । आचार्यदेव ज्ञानभावनाके लिए कहते हैं । आनन्दगुणकी भावनाओ तकके लिए भी नही कहते हैं । देख लो उपदेशमे कहते भी हैं कही-कही आनन्दभावना, तो उसके कहनेका भी वह मुख्य लक्ष्य नही है । ज्ञानभावनासे जो शुद्धि होती है, उसमें शुद्ध आनन्दका अनुभव होता ही है अन्य रूप भावनाओसे निर्विकल्पकताकी सिद्धि नही होती है । मैं आनन्दमात्र हू । अब क्या चीज पकडनेमे आ गयी ? कहाँ टिकना हुआ ?

अपने-अपने अंतरके अनुभवोसे विचारिये 'ज्ञानमात्र मैं हूँ' इस भावनामे ज्ञानमात्र आत्मा ग्रहणमे आता रहा है । समझमे आ रहा है जाननमात्र, प्रतिभासमात्र । कुछ और विश्राम लेकर सोचनेपर समझमे आता है कि यह मैं ज्ञानमात्र हू । इस कारण इस ज्ञानमात्र आत्मभावोमे ही ठहरकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ।

मनोवाक्कायवृत्तीनां, ग्रहणे संसार एव हि ।
रमे तत. पृथग्ज्ञाने, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–२१॥

जीवको झुकावमे डालनेके लिए और अस्वपथमे चलानेके लिए निकटकी चीजें तीन हैं—मन, वचन और काय । धन तो बहुत दूर है । आप यहाँ बैठे हैं तो मन, वचन, काय भी आपके पास है और धन रखा है वहाँ कई हाथ दूर पर । वह चिपकाये हुए नही आये हैं । लेकिन अभी मन, वचन और काय मौजूद है और यह जीव मन, वचन, कायको ऐसी आसक्तिसे ग्रहण करता है कि इतना मात्र ही मैं हू, ऐसे उसके संस्कार बन रहे है । इस संसारको देखकर तो बडे-बडे विवाद चलते हैं । इसने मुझे गालियाँ दीं । मुझेके मायने हैं जिसकी कैमरेसे फोटो उतर आती है । यही तो मैं हू । अपमान महसूस करता है, अपने इस शरीरका ख्याल करके और जितने विवाद झगडे बढ रहे हैं, वे शरीरके ख्याल करनेसे ही हैं । ऐसा न करे तो लोग मुझे क्या कहेगे ?

इस चिन्तनमे क्या इसका अर्थ तुमने यह लगा रखा है कि इस चैतन्यमात्र मुझ आत्मतत्त्वको लोग क्या कहेगे ? नही, उसको तो कोई कुछ कहेगा ही नही । कह ही नही सकता है । घबडानेकी बात क्या है ? पर कायकी जो दृष्टि है, कायका जो ग्रहण है, ग्रहणके मायने विकल्प द्वारा कायकी पकडन, उससे ससारकी ही वृद्धि है । यह मै हू, ऐसे ग्रहणमे संसार ही है । ससार ही बढता है । वचनकी बात देखो तो वचनकी भी कितनी पकड है ।

मेरी बात इसने क्यो उलट दी ? किसी भी मामलेमे मेरी यह बात क्यो न रह सकी ? भैया ! वह बात क्या है ? अभी कुछ गांठमे बात है क्या ? बात बोलते ही भाषाका परिणमन उलट गया, चला गया, अन्य अन्य रूप हो गया । वह कुछ कही तो नही रहा और बात भी क्या है ? कुछ तुम्हारी चीज है, क्या है ? पर बातकी पकड है कि नही ? मेरी बात नही हुई । चाहे कितना ही वैभव बिगड जाय, पर बात रह जाय तो मूँछोपर ताव देकर कहते है कि कहो, आखिर विजय हमारी हो तो है भई । चाहे कलके खाने तकको भी नही । अजी कुछ परवाह नही । मगर बात तो रह गयी । यहाँ जब भाई-भाईमे न्यारापन होता है तो न्यारेपन मे बडी बातपर झगडा बखेड़ा नही होता है । क्या कोई भाई ऐसा कह सकता है कि मैं तो इतने मकान लूगा और इसको इतने ही मात्र देंगे । ऐसी बात जँचती ही नही । बडी बातका न्याय सुगमतासे होता है ।

झगडा होता तो एक हांक जगहपर ही अड़ जायेगे । यह खूंट हमारी है, यह तुम्हारा है । इसीपर झगडा हो जाता है । सारा बँटवारा तो खुशी खुशी हो गया, पर एक हांक जगह पर झगडा हो गया । कचहरी चलने लगी । कचहरीके मायने कच हरी अर्थात् जिसके बाल साफ कर दिये । हो क्या गया कि न उसके पास कुछ रहा, न उसके पास कुछ रहा, सब खर्च हो गया, अन्तमे क्या मिलेगा कि एक इजाजत मिलेगी कि यह खूट तुम्हारी है । वह भी एक कागजका टुकडा क्या मिल गया ? न्याय पत्र मिल गया । अब वह खूंट भी खत्म हो गई । एक पर्चा ही केवल हाथ रहा । यह क्या है ? बातके ग्रहणका फल है । अपने काय की पकड़ है और बातकी पकड़ है और मनकी पकड है ।

देखो एक मात्र सब जीवोके सुखी रहनेकी भावना बने तो इस भावनासे ही बडा फल मिलता है । लगता तो कुछ नही है, खर्च भी कुछ नही होता है, मगर जिसका मन इस योग्य नही है उसके कारण इस सन्मतिकी ओर चल सकता है क्या ? अमुकका नाश हो जाय, अमुक यो हो जाय, इस भावनामे मनकी पकड ही तो साफ है । होना कुछ नही । कहो, कितने ही लोग तो अब नये टाइपमे नही होते, फिर भी कोई भगवान्के दर्शन करने जा रहे है, देहरीके पैर छूते हैं और कहते है कि भगवान् उनका नाश कर दे । ऐसी बात कह देते है कि उनको कहनेमे संकोच नही होता कि कोई खडा सुन तो नही रहा होगा । दूसरेसे नाशके चेतनेकी भावना, यह क्या है ?

यह मनकी पकड़ है । जैसा मन है तैसी ही पकड करता रहेगा । उसे साफ नही कर सकते, धो नही सकते । अपने मनकी, वचनकी और कायकी पकड़मे केवल ससारका ही हाथ रहता है । इन बिकल्पोमे रमनेसे कोई शान्ति नही हो सकती है । इस कारण उन मन,

वचन, कायकी प्रवृत्तियोसे पृथक् जो ज्ञानस्वरूप मैं हूं, सो उस ज्ञानमात्र निजतत्त्वमे ही रहूँ और उन सब बाह्य अर्थोके परभावोके विकल्पोको छोड़ूँ। यहाँ गुजरती हैं बाहरी बातें, सो बातोके गुजरनेकी बात और है और उनकी पकड़ कर लेना यह बात और है। उनकी पकड़ करना मिथ्यात्व है और मन, वचन, कायकी वृत्तियाँ होना पूर्वपदसे सबके है। निम्न गुण-स्थानमे सम्यग्दृष्टिके भी मन, वचन, कायकी वृत्तिकी पकड़ होती, मिथ्यात्वदृष्टिके भी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति है, किन्तु सम्यग्दृष्टिके उसकी पकड़ नही, पर उनकी पकड मिथ्यात्व है। उनकी प्रवृत्ति विभाव है। जितने भी विभाव है वे सब मिथ्यात्व नही होते, पर मिथ्यात्व सब विभाव होते है। जैसे कहते है कि राग होता है, पर रागका राग हो जाय तो वह मिथ्यात्व हुआ। मै रागवान् हूँ, यही तो मै हूँ, इसके बाहर मैं नही हूँ, इसीमे ही हित है। ऐसा ही हो जाय, ऐसा हो जाय तो ठीक है, नही तो अवसर खत्म है। राग तो रागससारमे रुलाने वाला है। इसी तरह मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिका ग्रहण करना, आत्मसात् करना, आत्मरूपसे ग्रहण करना। यह ससार है और संसारका फल केवल क्लेश ही है। सो ससार भावोसे हटकर उससे पृथक् ज्ञानमात्र अपनेमे रहूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

वदानीच्छानि पृच्छान्यात्मानं ज्ञानमय शिवम्।
अत्रैव विहरान्येष स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२२॥

मैं बोलूँ तो क्या बोलूँ ? एक आत्माकी ही बात बोलूँ। चाहूँ तो क्या चाहूँ ? एक आत्माकी ही बात चाहूँ और पूछू किसीसे तो क्या पूछूँ ? एक आत्माकी ही बात पूछूँ। यह आत्मतत्त्व ज्ञानमय है, कल्याणमय है। यह स्वयं आनन्दसे भरपूर है। ज्ञान और आनन्द ही आत्माका स्वरूप है। ज्ञान कही बाहरसे नही आता है और आनन्द भी कही बाहरसे नही आता है। यह मै आत्मतत्त्व ज्ञानमय हूँ और कल्याणस्वरूप हूँ। मै इस ही निज आत्मस्वरूप मे विहार करूँ तो शांतिका मार्ग उपलब्ध होगा। अपने स्वरूपसे हटकर बाह्यमे दृष्टि लगाऊ तो यह क्लेशोका मार्ग है। जो चीज बड़े लाभकी है वही चीज बार-बार बोली जाती है। कही जाती है, पूछी जाती है। ज्ञानी पुरुषको सबसे अधिक प्रिय, इष्ट, निज ज्ञानभाव है, निज आत्मतत्त्व है। इसलिए वह इस ही ज्ञानस्वभावकी बात बोलता है, इसकी ही चाह करता है और इसकी ही बात दूसरोसे पूछा करता है।

सबसे अधिक प्रिय चीज क्या है ? बालक जब छ: माहका होता है तो उस बालक की मुद्राको देखकर जान जायेंगे आप कि उसे सबसे प्यारा क्या है ? माँ की गोदमे बैठा हुआ धोतीके आंचलमे आधा छिपा हुआ, आधा उघड़ा हुआ बालक, जिसकी मुद्राको देखकर समझ

लिया जाता है कि इसे तो अपनी मां की गोद ही प्रिय है। आंचलमे छिपकर रहना ही उसे प्रिय है, वह आंचल ही उसका इष्ट है। उसे धन, वैभव, मकान, दुकान इत्यादिका तो ख्याल ही नही है। ये उसको प्रिय नही होते। बड़ा और हुआ, खेलने लगा, घोड़ा, हाथी आदि खिलौने खेलने लगा। उन खिलौनोमे ही वह रमने लगा। खिलौना खेलते हुए जब मां कहती है कि यहां चल तो वह मां पर हाथ पसार देता है। अरे क्या हुआ ? अरे अभी तो तुझे मां की गोद, मां का आंचल ही प्रिय था, आज तुझे ये मिट्टीके खिलौने ऐसे प्रिय हो गये कि अब उस बालकको मां की गोद भी प्यारी नही रही, अब तो उसके लिए खिलौने प्यारे हो गये।

कुछ जरा और बढता हैं तो वह विद्या पढने लगता है। उसकी आशा विद्याके बारे मे बढती है। मै तीसरी क्लासमे पास होऊँ, मै चौथीमे पास होऊँ। कोई कोई तो पूछता है कि महाराज हम पास होगे कि नही। अब उसे खिलौने भी प्रिय नही रहे, मां की गोद भी प्रिय नही रही, अब उसे उत्तीर्णता प्रिय हो गयी। अब और बालक बढता गया। अब वह बी. ए., एम. ए. पास हो गया। यह सोचा करता है उसको अब विद्या भी नही प्रिय रही, किन्तु डिग्री प्रिय हो गयी। पहिले तो विद्या पढकर खुश होते थे, अब वह विद्या भी प्रिय नहीं रही। अब विद्याके विषयोकी खुशी नही है, अब केवल डिग्री ही प्रिय है। डिग्री भी मिल गयी। अब और बडा हुआ, उसके चित्तमे शादीकी सूझ आ गई। उसे स्त्री भी प्राप्त हो गई, लो अब डिग्रीकी खुशी भी गई, स्त्री प्रिय हो गई। फिर उसको स्त्री भी प्रिय नही रही। अब उसे प्रिय क्या है ? अब उसे जो प्रिय है, वह है पुत्र। कुछ समय बाद प्रिय हो जाता धन। धन न जाने कहांसे टूट गिरे ऐसी आकांक्षाएं रखने लगा। जब कुछ समय और बीता तो पुत्रकी धुन छूटी और देखो उसे प्रिय हो गया धन। जब और बडा हुआ तो काम-काज शुरू किया, व्यापार करने लगा, धधा करने लगा। इस तरह चलता रहा, अब खूब बडा हो गया, ४-५ बच्चे भी हो गये। अचानक फोन आया, कि सुनते ही घबडा गया। घरकी तरफ दौड़ा। रास्तेमे कोई बडा पुरुष मिला। उससे भी नही बोलता। पहिले जो ऊचे-ऊचे आफिसर मिलते थे, रोज दो मिनटके लिए उनसे मिलते थे, अब वे आफिसर भी उसे प्रिय नही हैं। घबडाता हुआ घर पहुचा, फोनमे जो समाचार सुना था वही देखनेको मिला, वहां देखा कि घरमे आग लग गई है। आग अधाधुध जल रही है और धनको लोग निकाल रहे हैं। बोलता कि जितना धन निकाल सको, निकाल लो। अचानक खबर मिली कि और धन तो निकल आया, पर एक दूधमुंहा बच्चा दो वर्षका भीतर ही पडा रह गया। आग बड़ी तेज थी। अन्दर जानेकी किसीकी हिम्मत नही थी, पर वह लोग पुलिस वालोसे कहता कि भैया, उसे निकाल दो, हम तुम्हे ५ हजार रुपय देंगे। फिर कहता कि हम १० हजार तक देंगे।

अरे भैया, तू ही क्यो नही चला जाता ? तू ही जाकर निकाल ले । देखो उसे बच्चेसे भी ज्यादा उसका प्राण हो गया, उसकी जान हो गयी । फिर वही पुरुष कारण पाकर विरक्त हो जाये और सच्चा साधु बन जाये तो समाधि अवस्थामे कदाचित् कोई सिंह, स्याल, शत्रु उसको चाटने लगे, खाने लगे, प्रहार करने लगे तो उसमे भी दम है कि आसनसे उठ जाये और उनके हाथ मार दे तो सब सिंह, स्याल आदि भाग सकते है । मगर स्वय स्थिर बैठा है, हिलता नही है, किसीसे बात नही करता है, मनमे बाहरी बातें नही सोचता, विकल्प नही करता । इन विकल्पोसे ही अहित है । निर्विकल्प स्थिति रहने दो अर्थात् शुद्ध ज्ञानकी परिस्थिति रहने दो । अब उसे जान भी प्रिय नही है, जान रहती है तो रहो, नही तो जाने दो । अब उसे जान भी प्रिय नही रही । तो अब ज्यादा प्रिय क्या है ? ज्ञानभाव इस ज्ञानभावमे दोष न आ सके । यह जन्ममरण तो कुछ चीज ही नही है । जो होता सो हो, पर मेरा सम्बध तो अस्तित्वसे है ना ? सत्त्वसे है, परिणमनसे है । यह भव छूटा तो और भवमे पहुचे और आत्मदृष्टि बराबर बनी रही तो विकल्प क्यो हो ? अब उसे अंतमे प्रिय क्या हुआ ? ज्ञान-भाव । तो सबसे प्यारा क्या है ? प्रियतम कौन हो सकता है ? वह ज्ञान ही प्रियतम हो सकता है, निजस्वभाव चैतन्यतत्त्व ही प्रिय हो सकता है । देखो व्यवहारमे लोग एक शब्द बोला करते हैं—प्रीतम याने प्रियतम । प्रियतम पतिको बोलते है । प्रियतमका मतलब क्या है ? प्रियतम संस्कृतका शब्द है, प्रिय, प्रियतर, प्रियतम तीन रूप होते है । जैसे अंग्रेजीमे गुड, बैटर, बैस्ट । उसी तरह प्रिय, प्रियतर, प्रियतम याने प्रिय हो, उससे अधिक प्रिय हो, सबसे अधिक प्रिय हो ।

जिसका कोई मुकाबला नही, उत्कृष्ट हो, उसे कहते है प्रियतम । बतलाओ सबसे प्रिय चीज तुम्हे क्या है ? ज्ञानभाव, आत्मतत्त्व, ऐसा यह आत्मतत्त्व इसका ही दर्शन, इसका ही आलम्बन हो । जो समस्त आकुलताओको दूर करता है । मैं इस ही आत्माकी बात बोलूँ, इसको ही चाहू और इसकी ही बात पूछू और यहाँ ही विहार करू, यहाँ ही ठहरू । यहाँ ही ठहरूं तो इस उपायसे अपना भला हो सकता है । इस ही जीवनमे बचपनसे लेकर अब तक किन-किन सम्बधोमे, किन-किन उपयोगोमे यह जीव लगा । याद तो करो । जिस जिसमे उपयोग लगा, उस उसका आज क्या सम्बघ है ? अथवा उसके विषयमे आज क्या स्थिति है ? कितना फर्क है ? कुछ इसका नही है । न कोई हितकारी है, न कोई साथी है, यह एक एकांकी नाटक कर रहा है अपनी ओरसे । घडी कोई बडी सुन्दर हो, हाथमे पहिन ले, बार-बार देखता है और अपनी शान अनुभव करता है । घडी बेचारी कुछ जवाब नही दे रही है । यह महाशय अपने आपमे खुश हो रहे हैं । कभी आईना उठाकर अपना मुख तो देखा ही

होगा। आईना उठाया तो मुख देखा, चाहे दुबले पतले हों, चाहे नाक चपटी हो, चेहरा देखते हुए थोडा अभिमान तो आ ही जाता होगा। मूछोपर हाथ फिर ही जाता है, पर आईना कुछ उत्तर नही दे रहा है, उसको कोई मदद नही कर रहा है, पर यह अपना एकांकी नाटक खेल रहा है।

इन सब बातोमे एक बात ध्यान देनेकी है कि आत्माके रागद्वेषोके, कषायभावोके उत्पन्न होनेमें कर्मका उदय तो निमित्त होता है और बाहरी जितने पदार्थ है, वे विषयभूत है, वे सब आश्रयभूत कहलाते है। इन आश्रयभूत पदार्थोंकी इनके रागादिक भावोके साथ व्याप्ति नही है। इसलिए यह निमित्त नही कहलाते। यह आश्रयभूत है, पर कर्मका उदय इसके विभावोमे निमित्त है। फिर भी उस पदार्थको ही देखो तो सर्वत्र यह लगता है कि ये पर-पदार्थ एकांकी नाटक करते चले जा रहे है। वह किसीसे कुछ बोलता ही नहीं है। बोलता हुआ भी नही बोलता है। कहते है ना कि सम्यग्दृष्टि पुरुष बोलते हुए भी नहीं बोलते और सम्यग्दृष्टिकी ही बात नही, बडे मिथ्यादृष्टि पुरुष भी बोलते हुए भी दूसरेसे नही बोलते है। वहाँ दूसरा अर्थ लगा ना। यहाँ दूसरा अर्थ लगा। सम्यग्दृष्टि पुरुष दूसरोसे बोलते हुए भी नही बोलते।

इसका मतलब यह है कि उसका अपनी ओर झुकाव है, अपनी उसको खबर है। जानता है कि इन सब व्यवहारोमे उसका कुछ पूरा नही पड रहा है। मैं अपने आप ही कुछ कर रहा हूं और बिगाड़ता हूं, सुधारता हू। मेरी जिम्मेदारी मुझ ही पर है। कल्याणमे लगना चाहिए, ऐसी उसको बडी उत्सुकता है। जिसके कारण बस बोल-चाल करने पर भी वह किसीसे बोलता नही है और मिथ्यादृष्टि भी बोलता हुआ भी नही बोलता याने किसीको कुछ करना नही, बोलता नही। वह अपने आपमे ही एकांकी नाटक कर रहा है। अपने कषायो की पुष्टि कर रहा है, अपने कषायोके विकल्प बना रहा है। मैं किससे बोलूं ? किसीसे बोलनेसे मेरा क्या हित है ?

देखिए अपने जीवनमे भी, व्यवहारदृष्टिसे भी कम बोलना अच्छा है, ज्यादा बोलनेकी आदत वाले अपने आपमे वजनरहित होते है। अपनेको वे खाली महसूस करते है, भरेपनसे नही रहते है। जम करके आनन्द नही मिलता है। विह्वलतासी बनी रहती है ज्यादा बोलने से। ज्यादा बोलनेकी आदत तो लौकिक जीवनके लिए भी हितकर नही है और फिर दूसरी बात बोलूं तो क्या बोलूं ? किसी अन्यकी चर्चा रखूं तो क्या लाभ है ? बोलूं तो आत्माकी ही बात बोलूं।

जिसकी लगन लगी है, वह बराबर बोली जाती है, वही बराबर चाही जाती है,

वही बराबर पूछी जाती है । व्यवहारमे कुछ भी करना पडता हो । जैसे किसी युवककी ससुरालसे ४-५ आदमी आयें और उसके घरके सामनेसे निकलें, वहा ठहरें तो वह उनको बुलाता है, पानी भी पिलाता है । जान रहा है कि ससुरालके गावके ही तो है । इसलिए वह उनका सत्कार करता है । बीच-बीचमे चर्चा छेडते है कि ससुरालके घर वाले मजेमे है । कोई कोई तो सांकेतिक भाषामे अपनी गृहणीकी भी बातें पूछ लेता है । तो वह किसका आदर है ? क्या सब उनका आदर किया जा रहा है ? वह सब आदर तो उस गृहणीका है, जो उन चार आदमियोमे टपक पडा है ।

जिसके जिसकी बुद्धि है, वही बोला जाता है, वही चाहा जाता है, वही पूछा जाता है । ज्ञानी पुरुषकी यही भावना होती है कि मैं केवल ज्ञानमय, कल्याणकर और आत्मतत्त्वकी ही बात बोलूं, आत्मतत्त्वकी ही बात पूछूँ और उसकी ही चर्चा करूं । अच्छा और किस किसकी चाह करते ? हवेलिया बन जायें । हवेलियां भी भाई बन गयी । अब संतोष हो गया क्या ? इच्छाओंकी पूर्ति हो गयी क्या ? अरे, अब और आकुलताए बडी हो गयीं। तो क्या काम कर लें कि शांति मिले ? कौनसा काम बाहरमे ऐसा है कि जिसके कर लेनेसे शान्ति प्राप्त होती है । अब कुछ भी नही है, क्योकि बाहरके काम करना मेढकोंके तौलनेके बराबर है । जरा सेर भर मेढक तौलिए कि कितने चढते है ? आप तौल नहीं सकते है । एक आपने रखा तो दूसरा कूद गया । तुम चढाते जाओ, वे कूदते जायें । आप तौल नही सकते है । बाहरमे काम आप क्या करेंगे ? यह किया, वह किया, यह ठीक हुआ, वह मिटा, यह सभाला, वह खत्म हो गया । कभी बच्चेकी बीमारीका इलाज करवाया तो कभी किसी की सोचने लगा । कभी कोई घरमे गुजर गया । कभी कोई रिश्तेदारीमे घटना हो गयी । भागो, दौडो, संभालो, इसको पकडो, इसको छोड़ो, इसको संभालो । बाहरी बातोंको करना मेढकोंके तौलनेके बराबर है । वहाँ जमकर व्यवस्था नही बन सकती है, कायदा कानूनकी व्यवस्था नहीं चलती, क्योंकि परकी परिणति मेरे आधीन नही और एक अपने आपके ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करनेका काम जम जाय तो यह बनना है । अगर कोई अपने ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करे तो यह बनना है और अगर न करे तो यह बात ही अलग है। पर यह अपने आपके स्वभावपर दृष्टि लानेका काम स्वाधीन है, सुगम है, जमने वाली बात है । इसमे किसी दूसरे से बाधा आनेकी शका नही । खुद ही अयोग्य है तो खुद ही अपने ज्ञानस्वभावसे विचलित हो जायेगा । अच्छा बतावो पैसेका उपार्जन करना सरल है या आत्मदर्शन करना सरल है ? उत्तर क्या दिया जाये ? पैसेका उपार्जन करना आपके हाथकी बात नही है । उदय अनुकूल है तो होता है आपके सोचनेसे नहीं कि मैं सोचूँ तो वैसा काम हो ही जाये । सोचते सब

है। यों तो कोई बालक गेंद खेल रहा है और गेंद लुढकते लुढकते किसी नालीके पास पहुंच रही है तो वह दूरसे ही अपने हाथोकी मुट्ठियाँ बांधकर सकोडकर यो यत्न कर रहा है कि गेंद नालीमे न गिरे। गेंद तो दसो हाथ दूर है, भागी चली जा रही है, पर यत्न यह करते है कि नालीमे न गिरे। इस यत्नसे कुछ गेंदमे परिणति हो जायेगी क्या ? इसी प्रकार ये समस्त परपदार्थ हमसे कितने दूर है, अत्यन्त दूर है, हममे उनका अत्यन्ताभाव है। अब हम उनकी परिणतिका ध्यान रखते है कि यह यो बन जाये तो उसके सोचनेसे उस परमे कुछ नही बनता है। तो पैसेका उपार्जन कठिन है और आत्मदर्शन सरल है। दर्शक भी आत्मा है, दृश्य भी आत्मा है, दर्शनका साधन भी आत्मा है, पर एक बात है कि आत्मदर्शन मोहमे असभव है या तो असभव है या झट होनेकी चीज है। आत्मदर्शन, आत्मकल्याण, आत्महित सुगम है। मगर अब तक कैसा परिणमन हो रहा है कि सुगम चीज तो कठिन मालूम होती है और कठिन चीज सुगम जंच रही है। जैसे सफरमे जाते है और साथमे कलेवा है, टिपिन-बक्स है तो जब भूख लगी तब झट अपना टिपिन निकाला और खा लिया। कितनी स्वाधीन बात है, न स्टेशन ताकना है, न किसीसे कुछ पूछना है। इसी तरह इस लोकमे सफर करते हुए ज्ञानीके पास ज्ञानदृष्टिका कलेवा है। कैसा भी सकट आवे, कैसी भी परिस्थिति हो जावे, पर किसीके मुह ताकनेकी प्रतीक्षा नही है। ज्ञानदृष्टि की कि सब आकुलताएँ दूर हो गयी।

आपके पास एक निजी कलेवा है, जब चाहे तब खायें पियें। अपने ही ज्ञानसे अपने को सुखी कर सकते हो। ज्ञानी जनकी भावनाएँ है कि इस ज्ञानमय शिव आत्मतत्त्वका ही बल चाहू, इसीमे विहार करूं और अपनेमे अपने आप स्वय शांत रहूं, सुखी होऊं।

भिन्ने स्वस्य धिया स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यतः परा।
च्युता शाम्यानि बुद्धचा स्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–२३॥

जो चीज अपनेसे न्यारी है उसको यदि ऐसा मान लें कि यह मैं हू, यह मेरा है तो इसका अर्थ यह है कि अपने आपसे च्युत हो गये, अपने आपको कुछ नही समझ सके और जो अपने आपको गिराकर च्युत हो गये तो वह कर्मोसे कल्पनाओमे दब जाता है। एक ही तो बात है 'परमे लगे सो संसार है और परसे हटे और अपने आपमे लगे सो मोक्षका मार्ग है।' अब परसे हटें और अपने आपमे लगे इसका उपाय क्या है ? तो इसका उपाय परको पर जान लो और स्वको स्व जान लो तो यही उपाय है। यह बात कहनेको तो सभी लोग कहते है, पर इसको विस्तृत रूपसे जैनसिद्धान्तमे कहा गया है। जो सिद्धात ऐसा मानता हो कि एक प्रभु ईश्वर है वही हम सबको बनाता है, उसीकी प्रार्थना करूं, और उसको करुणा आ जाये, हमारी भक्तिसे प्रसन्न हो जाये तो वह मुझे तार देगा, ऐसी बुद्धि होनेसे क्या यह

आशा की जा सकती है कि वह हितमे लगेगा। उसकी दृष्टि बाहरकी ओर है, अपने आपमे उसे सतोष नही है, अपने आपको तो कुछ सत्व ही नही माना है, पराश्रित बुद्धि है, अन्य कोई पुरुष दया करे तो सुधार हो, ऐसी कल्पना है। इसमे शांति समाधि तब हो सकती है जब कि परसे हटे।

भैया! अपने आपमे लगे, इसके उपायकी बात चल रही है। यदि जगत्मे ब्रह्म एक है और सबमे ही ब्रह्मका अवतार है तो वहाँ सब ही एक है। कुछ पर रहता ही नहीं। सब भी कुछ नही रहे, मैं भी कुछ नही रहा, पर भी कुछ नही रहे। वह ब्रह्म तो कोई एक सर्व व्यापक है। वहाँ भी परसे क्या हटना और स्वमें क्या लगना? जिसे परवस्तु कहा गया है वह परवस्तु अपना-अपना अस्तित्व लिए हुए है, स्वतत्र है। स्व और परका भेद है। स्व मे स्वयं एक वस्तु जो है सो आयी। आखिर है तो कुछ निज वस्तु जिसमे आकुलताए उठती है, वितर्क विचार होते है, सुख दुःखका अनुभव होता है। उनका चाहे कैसा ही बिगडा रूप हो, आखिर है तो एक वस्तु तो वह तो हुआ स्व। इस स्वके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं, चाहे चेतन हो या समस्त अचेतन हो वे सब है पर। उन परसे हटना और स्वमे लगना सम्यक् ज्ञानके बलसे हो सकता है। परमे लगना अयोग्य है कि वह कोई सुव्यवस्थितताका मार्ग नही है। पर पर है। उसका संयोग हो, उसका मेरी चाहके माफिक परिणमन हो, यह कुछ बात हो नही सकती। और जब नहीं हो सकती तो व्याकुलता है। इस कारण परमे लगना पाप है और स्वमे लगना पुण्य है। यहाँ पुण्यका अर्थ एक पवित्र कर्तव्य है। सो इस परसे हटो और स्वमे लगो।

जैनसिद्धान्तमे जिस पद्धतिसे वस्तुस्वरूप कहा गया है उसका ज्ञान होना तो बन सकता है। कोई भी पदार्थ ले लो, जहाँ क्षण-क्षणमे नये-नये पदार्थ होते है वहाँ परसे हटना और स्वमे आना, ऐसा हो ही नहीं सकना है। आत्मलाभ हुआ कि लो, मिट गया। क्षण भर बादमे कुछ करनेका मौका ही नहीं मिला। जहाँ एक समयकी स्थिति है पदार्थकी, दूसरे क्षण नहीं है। वहाँ उपदेश ही क्या? परसे छूटना, निजमे लगना इसकी कल्पना ही क्या है? हटना और लगना यह तो वृत्ति है, परिणति है। मगर हटना और लगना, यह बात हममे हुई तो परिणामी हो गयी। अपरिणामी कैसे रही? तो अपरिणामवादमे भी परसे हटना निजमे लगना, यह नहीं हो सकता है और क्षणवादमे भी नहीं बन सकता। सब कुछ एक ही है, हम तुम ये सब। जब सब एक ही है तो हम कुछ न रहे, आप कुछ न रहे तो कहाँ हो सकता है परसे हटना और निजमे लगना।

भक्ति तो करो व बाह्यमे उपयोगोको लगाये रहो। प्रभो बचाओ, रक्षा करो, उद्धार

करो, ऐसी वृत्तिमे भी संतोषकी पद्धति तो नही हुई। जैसे यहाँ लौकिक क्रियाके लिए दूसरे पुरुषोसे दीनता की जाती है, उसी तरह अपनी कल्पनाओसे मानी हुई उद्धारक्रियाओके लिए भी एकसे दीनता की जा रही है। इसे पद्धतिमे भी संतोष नही है, तृप्ति नही है। हाँ, परमात्माका स्वरूप पवित्र है तो भक्ति करो। धन्य है यह सम्यग्ज्ञान, धन्य है यह वस्तुस्वरूप के बताने वाला पूज्य तत्त्व, जिसके आश्रयसे मोहादिक सब संकट टल जाते है। सब पदार्थ अपना-अपना अस्तित्व रखते है। प्रत्येक समय परिणम रहे है, अपने आपमे परिणमते रहते है। एक यह ही चैतन्यपदार्थ है ऐसा जो कि विकृत दशामे अपने उपयोग गुणके कारण अपने को अपना कुछ न मानकर बाहरमे नाना रूपता माना करता है। सो इसका ही एक ऐसा गुनाह है कि जिसके कारण परेशानी छायी है। जब यह सम्यग्ज्ञान उदित होता है तो निज स्वरूपधारी सर्व जीव लोकदृष्टिमे रहता है। कर्तृकर्मत्वके भाव समाप्त होते है, वहाँ परसे हटना और स्वमे लगना बन जाता है।

कितना जीवन व्यतीत हुआ अनादिसे आज तक, केवल यही भ्रमकी एक धुन रही, किसी भी भावमे रहा हो, अपनेको भूले हुए कितना लगातार समय गुजर गया इतने पर भी अब भी नही चेत सकता। कितनी विपत्तियाँ सही, कितनी विपत्तियाँ पायी, फिर भी यह ऊब नही सका और उन्ही मुक्त भोगोंको पाता है और चैन मानता है और नई बात, नये सुख, नया ढग समझता है। ये सब आपत्तियाँ एक निजका मर्म न जाननेमे हुईं।

भैया! जिस जीवकी बाहरमे दृष्टि रहती है, स्वरूपसीमामें उपयोग रहता है, स्वमे वृत्ति जगती है, वह पुरुष अमीर है। बाहरमे धन-वैभवके समागमकी कमी होनेसे करोड़ों पुरुषोसे वह दीन है, गरीब है, कुछ नही है। मगर जिसको अपने प्रभुस्वरूपकी लगन लगी है वह शहनशाह, राजा, महाराजा, देव और इन्द्रोका भी वह राजा है, पूज्य है। जिसको अपने प्रभुस्वरूपकी लगन लगी है, उसकी प्राप्तिके कारण संसारके सारे सकट टल जाते है समयसारमे लिखा है—

अयिकथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्ननुभवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
अथ पृथगथ विलसंतं स्व समालोक्य येन त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥

हे प्रियतम! किसी प्रकार भी, मरण करके भी अथवा बडे कठिन यत्न करके भी तन, मन, धन, वचन समर्पित करके भी, तत्त्वको कौतूहली होते हुए भी एक क्षण मुहूर्त मात्र तो भवमूर्तिका पडौसी बनकर अपने आपको अनुभव तो कर।

तत्त्वके कौतूहलीका अर्थ है कि सारे पदार्थोंके वस्तुस्वातन्त्र्यको देखकर उस ही वस्तु मे कौतूहलकी पद्धतिसे यह निरखते रहे कि यह वस्तु है और यह इसमे यो परिणम गयी,

लो विलीन हो गयी तो हो गयी। जैसे बालक जन बरसातमे उर्वतियोके सामने पानीका बबूला देखते है, बबूला पैदा होता है, उन्हे कौतूहल होता है, बडी क्रीडासे देखते है। इसी तरह यहासे कौतूहली बनते है, तत्त्वमे कोई बने पदार्थ अपने आपके स्वरूपमे है। मगर ज्ञान-बलसे स्वातन्त्र्य देख लो। लो यह यो परिणम गया, यो परिणम रहा है। विज्ञानपद्धतिमे उतारें तो वहाँ भी यह दिखता है कि उसका निमित्त पाकर देखो इसने अपने आपकी अब क्या शक्ल बना डाली ? अपने आपकी क्या परिणति कर डाली ? इस तरह यथार्थ हितकर ढग अपना बन जाता है। बस देख लिया, जान लिया, देख रहा, जान रहा। ऐसा कौतूहली बनकर उस भवमूर्तिके पडौसी बनो। संसारकी मूर्ति है यह शरीर। इससे ही तो सब समझ मे आ रहा है, यह संसार है, यह संसारी है। इस भवमूर्तिके पडौसी बनकर अपने आपका अनुभव करो।

भैया ! यह आत्मराम, यह चित्स्वभाव यह भीतरमे बडे ही आरामसे विराजमान यह नवाबशाह यह सबसे पृथक् विलस रहा है, शोभायमान हो रहा है। ऐसा इस देहसे पृथक् चैतन्यस्वभाव मात्र एक अपने आपको तो देखो। कहाँ हैं संकट, वहाँ तो संकट ही नही है। कैसी है पराधीनता ? कही पर भी पराधीनता नही। इस अपने प्रभुत्वका दर्शन तो कैसे हो ? सबसे विरक्त अपने आपके सर्वस्व एक इस अपने आपके पदार्थको देखो। इसको दूसरेसे अटक ही क्या है ? यह स्वय सत् है, इसे कुछ नही बनाना है। वह तो आनन्दसे पूरा बना बनाया ही है। यह है और अपनी अर्थक क्रिया कर रहा है। इसको रक्षा क्या चाहिए ? इससे भिन्न जो परपदार्थ हैं उसकी रक्षाका विकल्प किए हुए है यह जीव। इसलिए यह सुरक्षित है, यह स्वयं बना बनाया परिपूर्ण है। इसको रक्षाकी जरूरत क्या है ? यह तो रक्षित ही है। इसलिए अपने आपमे विराजमान इस निजको देखो, जिससे इस देहके साथ एकत्वका मोह छूटे। जीवन तभीसे है, जबसे इसने अपने आपमे सहज स्वरूपकी पहिचान की।

एक साधु महाराज थे। एक दिन एक श्रावकके यहाँ भोजन किया। भोजन करके आँगनमे बैठ गये। सो सेठकी बहूने पूछा कि महाराज ! आप इतने सवेरे क्यो आ गये ? भैया ! प्राये थे १० बजे आहारको। अच्छी कड़ी धूप भी थी। महाराज बोले कि बेटी ! समयकी खबर नही रही। इतनी बात सुनकर लोग दंग रह गये कि समयकी खबर नही थी। अब साधुने पूछा कि बेटी ! तेरी क्या उम्र है ? इससे भैया क्या मतलब ? सब बातें लोग सुन रहे और अटपट अनुभव कर रहे है। इतनेमे बहू उत्तर देती है कि महाराज मेरी उम्र ४ वर्षकी है। २० वर्षकी तो उम्र है और बतलाई ४ वर्षकी। साधुने पूछा कि तुम्हारे पतिकी उम्र कितनी है ? वह बोली—महाराज मेरे पतिकी उम्र ४ महीनेकी है। और ससुर

की उम्र कितनी है ? ससुर अभी पैदा ही नही हुआ है। अच्छा तुम ताजा खाना खाती हो कि बासी ? महाराज, हम बासी खाना खाते है। इतनी बातके बाद महाराज चल दिये। अब तो सेठ बहूसे लड़ने लगे कि तूने हमारे कुलको खो दिया। लोग क्या कहते होंगे, तूने कितना ऊटपटांग उत्तर दिया। बहूने कहा कि मैंने ठीक उत्तर दिया है। चलो महाराजके पास, वे बतलावेंगे। सबको समाधान मिल जायेगा। वे साधु महाराज छोटी उम्रके थे। बहू ने पूछा कि इस छोटी उम्रमे आप कैसे आ गये ? तो साधुने कहा कि बेटी समयकी खबर मुझे न थी। आज है कल पता नही क्या हो जाये, कितने दिन जीना है, इसलिए सवेरे आ गये अर्थात् शीघ्र साधुपनेमे आ गये। यह प्रथम प्रश्नका उत्तर हुआ। अब ४ वर्षकी उम्रका क्या मतलब ? तो उसने स्वयं कहा कि ४ वर्ष हुए तबसे मैं धर्मसाधनामे आयी। जबसे मुझे धर्मकी परख हुई तभीसे मैंने अपना जीवन समझा। पहिलेके जीवनको यदि जीवन माना जाये तो हमे अनन्तकालके बूढ़े कहना चाहिए। पतिके चार महीनेका अर्थ क्या है कि चार महीनेसे उनके श्रद्धा हुई। ससुरने कहा कि हम तो बूढे खड़े हैं और मुझे यह बतलाती है कि ससुर पैदा ही नही हुआ। अब भी ससुर साहब लड़ रहे है। उन्हे और कोई भी कह देवे कि धर्म-दृष्टिसे उन्हे पैदा हुआ कैसे कहा जावे, क्योंकि इनके अभी भी श्रद्धा नही हुई ? बासी खाने का मतलब क्या था कि पूर्वजन्ममे जो पुण्य किया था उसकी वजहसे आज भोग रहे है, पर ताजा कोई पुण्य नही कर रहे है। पूर्वजन्मका जो बनाया सामान है उसको खा रहे है।

इसमे प्रयोजनकी बात इतनी जाननेकी है कि जबसे निज आत्मतत्त्वकी परख हुई है तबसे समझो कि अपना जीवन है। इससे पहिलेका जीवन क्या जीवन है ? खाया, पिया, विषय कषाय किया, अंधेर ही अंधेर रहा। यह कोई जीवन है क्या ? सर्व प्रयत्न करके आचार्य महाराज बतलाते है कि मर करके भी जिसे कहते है कि इस कामको करना ही है, जैसा चाहे मरें पचें, तन भी न्योछावर करें, मन भी न्योछावर करें, धन इत्यादि सब कुछ त्यागें, और सब कुछ न्योछावर करनेके फलमे यदि मिल गया आत्मतत्त्व तो यह नरजन्म सफल है। उसकी प्राप्ति एक ज्ञानसे ही होती है और उस ज्ञानमे जब तक पात्रता न हो तब तक तन, मन, धन, वचनका उद्धार नही हो सकता।

बाह्य सामग्रीसे ही जो अपना रूप समझे, उससे ही अपना बड़प्पन समझे, उसमे ही जो रत रहे ऐसे पुरुषमे ज्ञानवृत्तिमे रहनेकी पात्रता नही होती। सो इस कारण परको पर जानकर परसे दृष्टि हटायें और निजको सर्वस्व जानकर, अपना हित जानकर निजमे दृष्टि लगावें। लोकव्यवहारमे भी कहते है कि जो पर है, पराया है सो पराया ही है और जो निज है सो निज है। किसीने अपने घर दामादको रख लिया, किसीको गोद ले लिया और भाई

प्रतिकूल चले तो चले, इच्छा है। भाई परसे सुखकी आशा कहाँ है ? ऐसा व्यवहारमे लौकिकजन भी बोलते है, और ये सब कुछ भी पर है। यहाँ तक कि अपने ही स्वरूपमे उठी हुई तरगें, परिणति, विचार, विकल्प, रागद्वेष परिणति भी पर है। इमसे सुखकी आशा कहाँ है ? जो निज है उसकी दृष्टि हो, वहीसे सुखकी आशा की जा सकती है। उल्टे न चलो, काम बन गया, काम तो बना हुआ ही है। उल्टे चलकर विकल्प विकारोसे थोडा उल्टा चल गये तो सब अपने आप हो गया। सो स्वको स्व जानो, परको पर जानो। परसे च्युत होकर अपनेमे लगो तो वहाँ बधन नही है। इस अपने ज्ञानसे भीतरमे इस प्रकारकी वृत्ति हो जाती है सो इस ही अपने पुरुषार्थमे रहकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊ।

स्वस्थं स्वं पश्यतो मे न रागद्वेषौ कुतोऽसुखम्।
शका शल्य कुतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२४॥

जो अपनेको अपनेमे ठहरा हुआ देखता है उसके रागद्वेष नही होता। जब रागद्वेष नही है तो उसको दु ख कैसे हो सकता है ? दृष्टि जब बाहरमे होती है कि यह मेरा है, यह उसका है, यह हित है, यह बुरा है आदि बाहरमे दृष्टि होती है तो उससे ही रागद्वेष उत्पन्न होते है। जीवका दूसरा कोई साथी नही है। सब जीव न्यारे-न्यारे हैं, अपने आपमे है, किसी का कोई साथी नही है। यह जीव खुद ही है, खुद ही कल्पनाएँ करता है, खुद ही विकल्प करता है, खुद ही दुःखी होता है और खुद ही सुखी होता है। जीवका असली स्वरूप क्या है ? चेतना है, चेतन है। ये जितनी धार्मिक विद्यायें है, बच्चे लोग पढते है इसलिए पढायी जाती हैं कि वे अपनी आत्माकी बातोको जान जायें। बच्चे लोग उन धार्मिक विद्याओको पढकर यह समझ जायें कि मेरी आत्मा सबसे निराली है इसका यहाँ कुछ नही है। मोह करना व्यर्थ है। इतनी बात समझनेके लिए ये धार्मिक विद्यायें है। ये सब अपने आप बाहर की दृष्टि भुलाकर ही अपने आपको सुखी बनाते हैं। और समझमे आ जाय कि यह तो यही है, पूरा है, इतना ही है, इससे आगे मेरा कुछ नही है। यह बात दृष्टिमे आ जाये तो न शका रहे, न शल्य रहे, न आपत्तियाँ रहे, न किसी प्रकारकी विपत्ति रहे।

भैया ! यह जीव अपने आपमे ठहरता क्यो नही ? तो इसने उल्टा ज्ञान लगा लिया है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, भीतरमे ऐसा मान लिया इसलिए उसको क्लेश है और स्वस्थ दृष्टि रहे कि सभी जीव स्वतत्र स्वतत्र है, किसी जीवका कोई जीव अधिकारी नही है, ऐसी दृष्टि रहे तो इस जीवको न शका है, न शल्य है। अभी जितने घरके लोग हैं वे क्या मरेंगे नही ? मरेंगे सभी। कोई पहले मरेगा और कोई बादमे। अच्छा कोई मरता है तो उसके मरनेके बादमे लोग रंज करते है तो यह उनका रंज करना व्यर्थ होता है।

क्योकि कोई सदा नही रहेगा। कोई छोटी अवस्थामे मर गया तो कोई बडी अवस्थामे मर गया। वास्तवमे उसके मरनेका दुःख नही है। दुःख तो जो उससे मोह लगा है, उसका है। दुःखोकी खान तो एक मोह है, मोह होनेसे क्लेश होते है। तो असली स्वस्थ कौन है ? कहते है कि असली स्वस्थ वह है जिसकी अपने आपकी आत्माकी ओर दृष्टि है। कोई दुबला पतला हो, मगर उसकी दृष्टि निर्मल हो तो वह अपने आपमे रह सकता है, वही स्वस्थ है और कोई हट्टा-कट्टा हो, मोटा हो और परमे दृष्टि हो तो वह स्वस्थ नही है। जो अपने आपके स्वरूपको देखता है वह रागद्वेष नही करता है।

भैया ! जीवको एक ही तो दुःख है, दूसरा दुःख नही है। वह दुःख है मोहका। कोई किसी प्रकारका दुःख लगाये है, कोई किसी प्रकारका दुःख लगाये है। यह जीव किसी मुद्राको देखता जाये, परमे आत्मबुद्धि लगाये, यही काम कर रहा है। इससे ही दुःख है। अब सबकी अलग-अलग बातें है। किसीका चित्त किसीमे है, किसीका चित्त किसीमे है, पर ये काम एक ही है। मोहमे, अज्ञानमें काम एक ही तरहका है मगर विषय नाना हैं। किसीको लडकीकी शादी करनी है, किसीको दुकान करना, किसीको सस्था चलाना, इससे ही दुःख है। यह सभीके स्वयंका मोह है। अभी देखो जितने भी लोग यहाँ बैठे है सभी दुःखी नजर आ रहे हैं। दूसरोकी गल्तीको जल्दी जान जाते है कि यह व्यर्थकी गल्ती कर रहा है। इस विषयकी बात एक तरहकी है, मगर देखो किसीका किसमे चित्त है, किसीकी किसमे प्रीति है। सबकी अगर भीतरकी फोटो ली जा सकती तो यह मालूम हो जाता कि किसका चित्त कहाँ कैसा लगा है ? पर किसीका कही चित्त लगा है, किसीका कही। कोई एक बातका भी गम नही खाता। अगर कोई एक आध ही गम खा जाता हो सो भी नही है। कोई कही लगा है, कोई कही लगा है, कोई किसी चेतनमे लगा, कोई किसी चेतनमे लगा, कोई इन नाक, कान, थूक वालोमे लगा है। बतलाओ इनमे क्या कुछ सार भी है ? कुछ भी तो इनमे सार नही है।

भैया ! किसीका शरीर सुन्दर, सुडौल, चिकना, चपटा और गोरा है और किसीका काला है तो केवल रङ्गका ही भेद है। केवल दूरसे देखता रहे, ऐसा शरीर है। पर उसके अन्दर सब असार ही असार है। वहाँ कोई भी चीज सारकी नही है।

भैया ! जो कृष्णवर्णके होते है, साँवले होते है, उनका शरीर कुछ इस प्रकारके गठनका होता है कि उससे बदबू कम आती है और जो सफेद हैं, गोरे है, बाहरसे देखनेमे अच्छे लगते है, उन काले वालोके मुकाबलेमे उनसे दुर्गन्ध ज्यादा आ सकती है। उस गोरे या काले कैसे ही शरीरमे घृणा ही घृणा भरो है। इसके अतिरिक्त और भेद हो तो बतलाओ। एक

यदि हिम्मत करता है और जब यह मालूम पड जाय कि यह असारका पिंड है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नही तो लडका लडकी इत्यादिका मोह उसके अन्दर समाप्त हो जाता है। इस मोहके समाप्त होनेमे फिर दुःख नही है।

भगवान्‌की भक्ति करते है, अच्छे धर्म और कुलमे पैदा हुए है तो भगवान्‌की बात माननी चाहिए। भगवानकी पूजा भी कर रहे है और मोह भी कर रहे हैं। ऊपरसे तो भगवान्‌की भक्ति करके खुश रहे और अन्दरसे मोह रहे, ममत्व रहे तो बतलाओ वह भगवान्‌की भक्ति क्या हुई? भगवानका प्रिय तो वह है जो यत्न करे कि मैं तो अपने एकाकी स्वरूपको देखता हू, केवल एक निज आत्मतत्त्वको देखता हू। ऐसी जो मनमे बात रखे, श्रद्धा रखे सो ही भगवानका भक्त है, प्रिय है। ससारमे देखते आये हो, कितने ही मित्र मिले, कितने ही परिवार मिले, पर जो अत तक साथ रहे, सो बतलाओ, कोई भी तो अत तक साथ नही रहेगा। जो भी देखनेमे आ रहा है कि परिवारके लोगोमे चिपटे हो तो बतलाओ। परिवार के लोग कौन अन्त तक तुम्हारा साथ देंगे? फिर बतलाओ भैया! ममत्व करना व्यर्थकी चीज है कि नही? हम आप धर्म भी करते है। थोडा धर्म किया, फिर मोह किया, फिर धर्म किया, फिर मोह किया। अरे! मोह करना है तो मोह ही कर लो और धर्म करना है तो धर्म ही कर लो। मोह करनेसे जब ऊब जावोगे, तब तो फिर अच्छी तरहसे धर्म करोगे ही। भीतरसे इस ममत्वको छोड दे। तभी इस जीवका कल्याण है। नही तो यह जीव ममत्व करता जाता है और भीतरसे दुःखी होता जाता है।

भैया! ममत्वका दुःख बहुत बड़ा दुःख है। भीतरसे दुःख है, भीतरमे चोट लगी है, इस मोह ममतासे ही तो। इस मोहको छोड दो। इस ममताको जिसने जीत लिया है, उसको ही तो जिनेन्द्र कहते हैं। जो अपने आपको देखते है, वे अपने आपमे ही हैं। अपनेसे बाहर नही है। मैं हू, अपने आपमे हू, यही विचार करो, यही कल्पनाए करो, यही उद्यम करो।

भैया! करनेसे यह जीव कुछ नही कर सकता है, ऐसी भावना रखो, सो ही जीव आनन्दको पा सकता है और मुक्तिके मार्गको पा सकता है। मोहको छोडो। जगत्‌मे अपना कुछ न मानो। बस एक इस ही उपायसे चलो कि कही मेरा कुछ नही है, मेरी तो एक आत्मा है, एक अकेला मैं ही हूँ। इस ससारमे मेरा कही कुछ नही है। कोई मेरा हो ही नही सकता है। हम अपनी सत्तामे है, किसीका कोई कुछ नही है, फिर भी कोई किसीको प्रशसित करे तो ऊँट गधे जैसी बात है।

जैसे कि मानो ऊँटका विवाह हो रहा था। उसकी शादीमे गाने बजानेके लिए गधो को बुलाया गया। गधे बहुत गीत गाते है। उनकी दोहरी आवाज होती है। वे सांस भीतर

करें तो बोलते, बाहर करें तो बोलते। सो गाना गानेको गधा व गधीको बुलाया। सो वे गधा गधी ऊटको गीतमे क्या कहते कि हे ऊंट! तेरा रूप धन्य है, तू बहुत सुन्दर है। ऊंट की तो गर्दन टेढी, टांगें टेढी, मुंह टेढा, कुछ भी सीधा नही। पर गाना गाने वाले कहते है कि तेरा कितना अच्छा रूप है। तो ऊंट कहता है कि धन्य है तेरा स्वर, धन्य है तेरा राग। गधा और गधी ऊंटकी प्रशंसा करते और ऊट गधा और गधीकी प्रशसा करता है। इसी तरहसे ये जगत्के जीव एक दूसरेकी प्रशंसा कर दिया करते है। उसमे सारकी चीज कुछ नही है। जब अपने आपसे अपने आपके स्वरूपकी बात जंचे, संतोष पावे, ज्ञान पावे तो वह सारकी बात है। सो जब तक हम आप अपने स्वास्थ्यको न देख सकेंगे तब तक द्वेषोको न मिटा सकेंगे, दुःख न मिटेंगे, शका, शल्य आदि भी न मिटेंगे। इसलिए अपने आपमे रहकर बाहरमे यह देखो कि मेरा कही कुछ नही है। ऐसा निश्चय करो तो अपने आपमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकते हो।

भ्रान्त्या क्षुब्ध मनस्तस्माद् व्यग्रता नान्यथा भवेत्।
स्वं पश्यतो न मे हानिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२५॥

गडबड कितनी है कि मन क्षुब्ध है, मन क्षोभमे है। स्थिर नही है और जब मन क्षुब्ध है तो इसमे व्यग्रता है। हम आपका मन कैसी-कैसी बातें सोचता है? सदा व्यर्थकी बातें सोचता है। मनमे क्षोभ रहता है, दुःख सभीके मनमें है। ऊपरसे देखनेमे सभी अच्छे लग रहे हैं, चेहरा कुछ ठीक है, पर सभीके क्षोभ है। सभीके अन्दरसे चक्कीसी चल रही है, सभी दुःखी है। जिस लडकेसे मोह है उसके यदि नाक भी बह गई हो, कीचड़ भी लगा है, गंदा है, यदि कहे उससे कि मोह त्याग दो, हम तुम्हे दूसरा अच्छा लडका देंगे तो भी मोह न छोड़ेंगे। ज्ञानके बिना ही सारा संसार दुःखी है। ज्ञानका उपयोग हो तो सुख मिल सकता है। अभी यहां बहुत धर्मका प्रचार है। सैकड़ों आदमी पूजा करते है, किन्तु अन्दरसे शुद्धि नही है तो पूजा ही करनेसे क्या है? लगन हो तो खूटा तोडकर भागें। तो अब बतलावो कि जो पूजा करते हैं सो घरके बाल-बच्चे खुश रहे इसलिए करते है कि अपने भलेके लिए करते है? कहां धर्म है? धर्म तो बैठे-बैठे भी मिलता जाता है। चलने-फिरनेसे कसरत करनेसे धर्म नही मिलता है।

सबका मन क्षोभमे है। जब सुख मानते है तब भी क्षोभमे है और जब दुःख है तब भी क्षोभमे है। मार्ग सब अधेरेमे हो गया। अपने आपका पता नही, दुनियाका पता नही। सुखमे तो और ज्यादा क्षोभ बढ़ता है, दुःखमे क्षोभ मिलता है। दुःखमे प्रभुकी याद तो रहती है। सुखमे तो हम आप बिल्कुल विवश हो जाते है।

एक नाई बादशाहकी हजामत बनाता था। सो नाईसे बादशाह पूछता है कि बतलावो तुम्हारे ग्राममे कौन सुखी है और कौन दुःखी है ? तो नाई बोला—महाराज हमारे ग्राममे सब सुखी है, घी दूधकी नदियां बहती हैं। बादशाहने पूछा—तू सुखी है ? वह बोला हां। तेरे कितनी भैंस है ? १० भैंस है। बादशाहने सोचा—यह नाई सुखी है, मौजमे है, इसलिए सबको सुखी देखता है। राजाने अलगमे कोतवालसे कहा—इस नाईके ऊपर कोई कसूर लगाकर सब भैंस खुलवा लो। सिपाहियोको कसूर लगानेमे क्या देर ? झट कसूर लगाकर उसकी भैंस खुलवा ली। दूसरी बार फिर नाई आया तो बादशाहने पूछा—खवास, बतलावो प्रजामे सुख है कि दु.ख ? नाई बोला—महाराज, प्रजामे बड़े सकट छाये हुए है, घी दूधके तो दर्शन ही नही होते। सो अपना चित्त मौजमे है तो दूसरे भी मौजमे दिखते है और यदि अपना चित्त दु.खी है तो दूसरे जगत्के जीव भी दु.खी दिखते हैं। सो चाहे मौज हो तो क्षोभ है, घर बड़ा है, खूब बच्चे है, बडी मौज है, धन भी खूब आ रहा है, दुकान भी अच्छी चलती है, उसमे भी बतलावो सुखी कौन है ? यहांसे वहां, वहांसे यहां भागते फिरते है। अपनेको तो केवल आध सेर आटेकी जरूरत है, मगर हाय हायमे कितना पडा हुआ है ? यही क्षोभ है, यही जीव पर सबसे बड़ा भारी सकट है। सो यह क्षोभ क्यो हो गया ? भ्रमसे।

अहो, देखो भैया ! भ्रम ही भ्रमसे यह जीव दुःखी है। दुःख तो है ही नही। किसी क्षण ऐसा समझमे आ जावे कि कही मेरा कुछ नही है, तो देखो दु ख मिटता है कि नही, पर ऐसी समझ जीव अपनेमे नही लाता है। इसीसे यह जीव दुःखी है और दुःखके ही काम कर रहा है। जैसे किसीको मिर्च खानेकी आदत है, सी-सी करता जाता है, आंसू टपकते जाते है, मगर कहता है कि और लावो। इसी तरह इस जीवको दुःखी रहनेकी आदत है। दु.ख उठाता जाता है और दु:खके ही कार्य करता जाता है। यदि दु.ख मिटाना है तो मोह ममता न करो। यदि कष्टोमे ही रहना है तो मोह करते जावो, दु खोके उपाय और रखते जावो। यह जीव भ्रांतिसे ही दुःखी होता है। अगर भ्रान्ति मिटे तो समझिये कि दु ख खत्म हो गये है। अच्छा बतलावो कि परिवारके लोगोको यदि तुम छोड दो तो उनका काम चलेगा कि नही ? चलेगा। मान लो कि तुम्हारी मृत्यु ही हो जाये, तो घरके बच्चोका काम चलेगा कि नही ? चलेगा। तो यह जो हम आप दुःखी है सो भ्रमसे ही दुःखी है।

भैया ! ये जो चिन्ताए उठती है उनके मिटानेका उपाय क्या है कि उन चितावोके साधनोको छोड़ दो, उन मोहियोको छोड़ दो। उन मोहियोमे ही फँसे रहनेमे बिगाड है,

स्वस्थ नही रहता है । यदि अपना दिमाग बिगड़ा तो व्यग्रता बढ़ी । दिमाग ठिकाने कैसे हो सकता है ? उन घरके लोगोसे दिमाग ठिकाने होगा कि देव शास्त्र और गुरुसे दिमाग ठिकाने होगा ? उन मोहियोमे रहनेसे तो दिमाग ठिकाने नही हो सकता है । कोई चिन्ता हो, कोई विपत्ति सामने हो तो उससे दिमाग सही नही हो सकता है । यदि बुद्धि बाहर ही बाहर रही तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी । बादमे फिर देव, शास्त्र और गुरुकी खबर होती है । जब ठुक-पिटकर सर्वत्र हैरान हो जाते है तब उनको छोडकर भगवान्‌की शरण जाते है । तो अब उस अवस्थामे भगवान्‌की शरण गये है जब कि बुद्धि काम नही करती है । सो न यहाँके रहे, न वहाँके रहे । परिवारके तो यो भी नही रह सकते । जो परिवारमे रहते भी है उनके व्यवहार मे कुछ न कुछ बड़ा विरोध हो जाता है । परिवारमे पड़े रहनेसे भला कुछ नही है । उससे इस जीवका पूरा नही पडेगा । कोई मर गया तो उससे चिन्ता बनी हैं, यह मोह है, अज्ञान है । भवितव्य खराब है, होनहार ठीक नही है तो इसी वजहसे चित्त मोहमे फसा हुआ है । भगवान्‌मे कितना चित्त है और परिवारमे कितना चित्त है ? जरा सोचो तो सही ।

भगवान्‌मे रमनेके इच्छुको ! अपनेको जरा तोलो तो सही । जिसमे भगवान्‌की भक्ति है, भगवान्‌का ध्यान करता है वह दिखाया नही करता है । यदि भ्रांति हटे तो जीवको मार्ग मिलेगा । कही दादा गुजर गया सो आँसू पोछो, कही माँ गुजर गयी सो आंसू पोछो । कोई सदा जिन्दा रहेगा क्या ? कोई भी तो हमेशा जिन्दा नही रहेगा । नियम है कि सभी मरेंगे । एक दो सालके बच्चोको देख लो, माँ को देख लो, बापको देख लो, जिन्दगी सबकी गुजरी जा रही है, अच्छा समय यो ही गुजरा जा रहा है पता ही नही पडता है । सभी लोग घरके खुश है, स्वस्थ है, व्यग्रता नही है, खाने-पीनेका अच्छा संयोग है, इस तरहके दिन तो यो ही बीते जा रहे है, देर नही लगती है, पर दुःखके दिन बडी मुश्किलसे निकलते है । संकट ही संकटमे अपना उपयोग बना रहता है । सो इस जीवनमे दु.ख है पहाडके बराबर और सुख है राईके बराबर । सो वह राई बराबर भी सुख नही है, केवल दुःखमे तनिक सी कमी पड गयी है । उसीको ही सुख मान लिया ।

भैया ! खूब देख लो । कोई वास्तवमे सुखी है ? कोई सुखी नही है । प्यासे हिरण की तरह सबकी दशा है । दूरसे ही रेतको पानी समझकर पास पहुचता है, वहाँ पहुचकर देखता है कि यह तो रेत है । इसी तरह धन-वैभव भी अच्छे लगते हैं । देखो २-४ कार है, कई लोग नौकर है, सब बढिया ही बढ़िया लगते है और जिनको वे बंगला मिलते है जिनके कारें चलती हैं, उनके दिलके भीतर कितना दुःख है, कितनी व्यग्रता है, कितनी बेचैनी है ? जितना ही धन-वैभव बढता जाये उतना ही दुःख हो जाये । अपनी थोड़ी कमाई की और

उतनेमे ही गुजारा करें, चैनकी बशी बजायें, खुश रहे। मगर दुनियामे जो अपनी महत्ता दिखानेकी मशा बनी हुई है तो परेशान उसीने किया। सबसे महान् कैसे बन जायें यह मंशा इस जीवके समायी हुई है। यही सबसे बडा कष्ट इस जीवको बन गया है। यह आकांक्षा बनी रहनेसे ही निरन्तर क्लेश हैं। परपदार्थोंको निजी माननेसे मन क्षुब्ध हो गया तब क्या करना चाहिए कि जिसमे हानि नही हो? भाई जो अपना सहज चैतन्यस्वरूप है उसकी दृष्टि हो सो ऐसा ही हम करें। हम अपने आपमे सबको देखें, जो बाहरकी ओर झुकनेकी दृष्टि थी वही तो परेशान करती है। तो उस दृष्टिको त्यागकर रहो तो अपने आप दुःख हट जायें।

सुखी होनेका तो उपाय अपने पास ही है। दूसरेके पास अपने सुखी होनेका उपाय बाहरी पदार्थोंमे नही मिलेगा। अपने आपको अपने आपमे ही देखो तो वह स्वरूप सुखकी मूर्ति है। अपने आपको ही देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

तत्किं सन्मयि मुञ्चानि यत्न तत्किं नयानि वै।
जानन्नेव हि तिष्ठानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२६॥

जो मुझमें है वह मैं छोड कैसे सकता, जो मुझमे नही है उसे मैं ला कहांसे सकता? मैं अपने गुणसे तन्मय हू और जगत्के सभी पदार्थ अपने अपने गुणोसे तन्मय है। यदि ऐसा न हो तो आज दुनियामे कुछ नही रहता, शून्य रहता। हम आपमे तन्मय हो जाते और आप किसीमे तन्मय हो जाते। हम आपमे तन्मय हो तो हम न रहे और आप किसीमे तन्मय हो तो आप न रहे। कोई किसीमे तन्मय हो जायेगा तो कुछ न रहेगा। ये जगत्के पदार्थ अब तक है इससे स्वय यह जानकारी हो कि कोई किसीमे तन्मय नही है। अब जो मुझमे है उसे मैं छोड़ कैसे सकता? आनन्द, शक्ति इत्यादि गुण है, वे गुण किसी भी प्रकार हमसे अलग नही हो सकते है। कितना भी विकार आ जाये, निगोद जैसी अवस्था हो जाये तो भी मेरा स्वरूप मेरेसे बाहर कही जा नही सकता। और जो मुझमे नही है वह मुझमे आ नही सकता। कल्पनायें कैसी ही कर ली जायें। शरीर है, पर शरीर आ गया क्या कल्पनाएँ करनेसे? मेरी आत्माके स्वरूपमे क्या शरीर समा गया? अगर समा जाये तो आत्मा न रहे, वह शरीर बन जाये। मुझमे कर्म नही, मुझमे शरीर नही, मुझमे कोई परद्रव्य नही, और रागद्वेष भी मुझमे नही, मुझके मायने ध्रुव ज्ञायक स्वभाव जो अध्रुव है वह मैं नही।

भैया! यद्यपि रागादि भाव मेरे परिणमन है तो भी अध्रुव है वह मैं नहीं। मैं वह नही हू जो मिट जाता है। मै वह हू, जो कभी मिटता नही। तो मुझमे क्या है? सहज ज्ञान, सहजचारित्र, सहजआनन्द, सहजशक्ति ये मुझमे है। तो ये मेरेसे अलग नही हो सकते और जो मुझमे नही है वे मेरेमे नही आ सकते। परिवार मुझमे नही, घर मुझमे नही,

दुकान मुझमे नही, बाहरकी कोई चीजें मुझमे नही। तो ये मुझमे आ नही सकती। रही कल्पनाओकी बात। कल्पनाओसे यह जीव मानता है कि दुकान मेरी है, घर मेरा है, परिवार मित्रजन मेरे है, ऐसा मानता है तो माननेसे इसके हो नही जायेंगे। विपरीत माननेसे केवल बरबादी ही है, मिलता कुछ नही है। मानते जावो, घर मेरा है, कुटुम्ब मेरा है, पर मेरे माननेसे ये घर और कुटुम्ब मेरी कुछ मदद कर देंगे क्या ? मरना खुद ही मुझको पड़ेगा कि ये मेरे साथ मरकर जावेंगे क्या ? नही।

भैया ! दो स्वाध्यायप्रेमी थे। वे स्वाध्याय करते थे। दोनोने आपसमे एक सलाह की कि जो कोई पहिले मर जावे यदि वह मरकर देव हो जावे तो वह दूसरेको फिर ज्ञान देनेके लिए आवे। यह उनमे तय हो गया। उनमे से एक पुरुष मर गया और मरकर देव हो गया। अब वह देव उस दूसरेके यहां पहुंचा, वह स्वाध्याय कर रहा था। वह देव बोला कि इस धन परिवारसे मोह छोड दो, इसमे कुछ सार नही है। हम मर करके देव बन गये है, तुमको समझानेके लिए आये है। वह बोला कि कैसे ये सार नही है ? मेरी स्त्री बहुत हुक्म मानती है, मेरे पुत्र बहुत आज्ञाकारी है। उनमे सब सार ही सार तो नजर आता है। देव बोला कि तुमको कल हम १२ बजे दिनमे समझाने आवेंगे। १० बजेसे तुम बीमार होकर पड जाना। पेट दर्दका बडा भारी बहाना कर लेना। अब दूसरे दिन वह बीमार बन गया। पेट दर्दका बडे जोरका बहाना किया। साढे ग्यारह बजेके लगभग देव बैद्य बनकर उसके मकानके सामने फिरने लगा। पुकारता जाता है कि दवा खरीदो, बड़ी ही पेटेन्ट दवा है, व्यर्थ नही जायेगी। हर एक प्रकारके दर्दमे काम आयेगी।

भैया ! यह बात सुनकर घर वालोने वैद्यको बुलाया। कहा--वैद्यराज, हमारे लडके को अच्छा कर दीजिए। वैद्य बोला--अच्छा, एक गिलास पानी मगा दीजिये, पानी भी आ गया। उस गिलासके पानीमे थोडोसी राख मिला दी और झूठमूठका मत्र पढकर उसकी मां को दिया, कहा--मां इसे पी लो। मां ने कहा कि मैं क्यो पीऊं ? बीमार तो वह है। वैद्य बोला कि यह दवा और किस्मकी है, मन्त्रसिद्ध दवा है, जो पियेगा वह तो मर जायेगा और रोगी ठीक हो जायेगा। मां सोचती है कि मेरे ५ बच्चे है। एक मर जायेगा तो चारका सुख भोगूगी और मैं मर गयी तो बच्चोका सुख कहासे भोगूगी ? मां बोली– मैं तो नही पीऊंगी। पिताने भी यही कहा। स्त्रीसे दवा पीनेको कहा तो उसने भी सोचा कि मेरे तीन पुत्र है, यदि मैं मर गयी तो उन पुत्रोका सुख न देख पाऊंगी। यदि पति मर गया तो बच्चोका सुख तो देखूंगी। कोई भी दवा पीनेको न तैयार हुआ। वैद्य बोला—क्या मैं पी लू ? तो घर वाले बोले--हां महाराज आप दयालु हैं, आप ही पी लें। वैद्यने कहा—अच्छा आप लोग

जाइए, हम दवा पी लेंगे। वे लोग हट गए, अब वैद्यने उसके कानमे कह दिया कि तुम बहुत कहते थे कि घरके लोग मुझसे बडा प्यार करते है, वे मेरे कहनेके अनुसार चलते है, अब देख लिया ना ? इतना कहते ही वह चंगा हो गया, बस चल दिया।

भैया ! वे द्रव्य ही जब न्यारे-न्यारे हैं तो कसूर स्त्रीका या पुत्रका या किसी खुदगर्ज का क्या है ? द्रव्यका स्वरूप ही है कि वह अपनेमे परिणमता है, दूसरमे नही परिणमता। कोई भी मनुष्य कैसे भी परिणमे वह घृणाके काबिल नही है। वह एक द्रव्य है और इस प्रकारकी योग्यता वाला है सो वह अपनी योग्यतासे अपने आपमे परिणम रहा है। उसका कसूर क्या है ? चीजें है तो परिणमती है। कौन मनुष्य घृणाके काबिल है ? घृणाके काबिल है तो उसका पाप है। उनका परिणमन घृणाके काबिल पदार्थ नही। वे तो जीव है, इस तरहसे परिणमते है, कर्मोंका उदय है। हो रहा है, उसकी परिणति घृणाके योग्य है, पदार्थ घृणाके काबिल नही है। कोई खुदगर्ज है, हर बातमे अपना गर्ज पूरी करता है। खानेका समय हो तो श्रृङ्गारका समय हो तो अपना काम पहिले देखता है, दूसरेका काम नही देखता है। तो ऐसा खुदगर्ज भी एक जीव है, उसके इस प्रकारके कषाय हैं, इस कषायरूप परिणमते हैं, जाननहार है। जो उस जातिका विभाव है वह घृणाके योग्य है। यहाँ तो पदार्थ है और इस तरह परिणमता है। चाहे कोई बहुत ही खुदगर्ज हो और भारी अपनी कषायकी पुष्टि करता हो, तिसपर भी वहाँ लाभ क्या मिला ? ईर्ष्या क्यो करते हैं ? लोग दूसरोसे इस कारण ईर्ष्या करते हैं कि देखो यह धनी बना जा रहा है, बढा जा रहा है, धनी हुआ जा रहा है। अरे होने दो। उससे मुझे कुछ लाभ अलाभ है क्या ? फिर ईर्ष्या क्यो ? ईर्ष्या होती है तब, जब किसीकी उन्नति देखते हैं। अब बतलावो धन अगर बढ गया तो उसमे उन्नति क्या है ? और फँस गये, कषाय हो गयी तो उसमे सन्तोष क्या है ? ज्यादा कषाय हो गयी तो असतोष हो गया, चैन नही पडती है।

अब तो यह कल्पना बने कि इस समागमका कुछ परित्याग करके धर्मसाधनामे ही लगा करें और जरा अवसर चूके, समागम बढे, धन बढे, परिवार बढे तो वे सब बातें खत्म हो जाती है, हितकी स्थिति ही खत्म तो जाती है। तो बाहरी चीजोसे किसीको उन्नति नही है, किसीको सुख नही है। वह कही वृद्धि पर नही है तब ईर्ष्या क्यो की जाती है ? पदार्थ का स्वरूप अपने आपमे पूर्ण गुप्त है, सुरक्षित है, वहाँ किसी पदार्थको किसी पदार्थसे कुछ मिलता-जुलता नही है। जो पदार्थ मुझमे है वह मैं छोड कैसे सकता हू, जो मुझमे नही है वह मैं ला कैसे सकता हू ? अब इस शरीरसे जुदा अन्दरमे अत.प्रकाशमान केवल ज्योतिर्मय आत्मस्वरूपको देखकर सोचो जो इसमे नही है, इसका सहजस्वरूप नही है वह लाया कहाँसे

जा सकता है ? तब फिर मैं क्या करूँ ? मैं केवल ज्ञाता रहू कि यह हो रहा है, पर उसमे स्नेह न करूँ, क्योकि उसमे मेरा कुछ भला ही नही है । परवस्तुके किसी भी प्रकारके परिणमनसे मेरा हित होता ही नही है, बल्कि परके परिणमनको देखकर विकल्प बना बैठते हैं जिससे नुक्सान है, फायदा तो कुछ नही है । सब नुक्सान ही नुक्सान है । तो जब मेरी ऐसी स्थिति है कि जो मुझमे है, वह कभी छूट नही सकता । तब फिर डर क्यो किसी बातका हो कि मैं मर जाऊँगा ? क्या हाल होगा ? मै कैसे बच सकूगा ?

अरे ! जो चीज मुझमे है, वह मुझसे अलग हो ही नही सकती । यह जो देह है वह इस जगहसे और जगह हो जायगी, उसमे मेरा जायगा क्या ? मै तो पूराका पूरा था, पूराका पूरा हू और पूराका पूरा रहूगा । मुझमेसे अशमात्र भी कुछ नही निकल सका और जो कुछ मुझमे नही है वह मैं लाऊँ कहाँसे ? कैसे लाऊ ? हैरान हो जाते है । यह धन कैसा है कि कजूस लोग जब मरते है तो सोचते है कि हाय ! मुश्किलसे मैने धन कमाया, खर्च नही किया, लाखोकी माया जोडी, क्या इसमेसे एक नया पैसा भी मेरे साथ नही जायगा ? इतना सोच-सोचकर उसके घबडाहट हो जाती है कि हाय ! मैंने कितना परिश्रम किया ? किन्तु साथ कुछ नही जाता है । अरे ! जो मेरी चीज नही, उसको मैं कैसे ले जाऊँ ? यह बुद्धि अगर जीवनमे ही बना ली जाये तो उस बुद्धिसे कुछ न कुछ फायदा तो मिलेगा ही ।

भैया ! यदि किसी चीजका वियोग हो जाता है, कोई मर जाता है तो उसके मर जानेपर यह सतोष रखते है कि नही ? वह तो अलग चीज थी, वह अलग जीव था, मर गया, उसमे मेरा क्या था ? अरे ! ऐसा सतोष उसके जीवित रहते हुए कर लेवे कि जो समागम मिला है, वह भी न्यारा है, ऐसी श्रद्धा यदि अपने जीवनमे बनी हो तो दुःख न हो । जो बात ठोकर लगनेके बाद दिमागमे आती है, यदि वह पहिले ही दिमागमे आ जाय तो ठोकर ही क्यो लगे ?

भैया ! विवश होकर लोग गम खाते है । यदि सब साधन होते हुए भी यह जीव गम खा जाये तो इससे भला है । अरे ! मरते समय तो सब छूट जायगा, पर जिन्दा रहते हुए ही कुछ समयके लिए छोड दें, तो आत्माका कल्याण ही हो जाय । ऐसी भीतरमे दृढ श्रद्धा बनाओ कि मेरा तो मैं ही हूँ, मेरा कोई दूसरा नही है । ऐसी दृढ श्रद्धा बनाओ और भीतर मे भी यह दृष्टि बने कि मेरा कुछ नही है, मेरा तो मात्र मैं ही हू, ऐसा परिणाम बनाए तो भीतरसे एक प्रकारका आनन्द प्राप्त होगा ।

भैया ! परद्रव्यके झुकावसे लाख कोशिश कर लो, मगर शान्ति नहीं आ सकती । अच्छा बतलाओ, कितना धन जुड जाय तो शान्ति मिल जायगी ? कोई पचायतमे निर्णय ही

करके बतलाओ ? कितना धन हो तो शान्ति आयगी ? कोई माप है क्या ? १० लाखमे शान्ति है क्या ? १० करोडमे शान्ति है क्या ? अरे, सारे जगत्का भी वैभव आ जाय तो उससे शान्ति नही है। प्रोफेसर साहबकी बात कीमती है कि एक ग्रन्थमे लिखा है कि चाहे सूईके छेदसे ऊँट निकल जाय तो निकल जाय, मगर परिग्रहसे शान्ति नही मिल सकती है याने एक असम्भव चीज भी सम्भव हो जाय तो भी परपदार्थसे शान्ति नही मिलती। जितना असम्भव सूईके छेदसे ऊँटका निकलना है उतना ही असभव परिग्रहसे शान्ति प्राप्त करना है। तब जब मैं अपनी चीजको छोड नही सकता, परकी चीजको ग्रहण नही कर सकता तो क्यो विकल्प करूँ ? मैं जानता हुआ ठहरा रहूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

जीवाजीवपृथग्ज्ञानान्निवृत्तिर्जायते परात्।
ततः स्वास्थ्यं ततः शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२७॥

जीव और अजीवका पृथक् ज्ञान होनेसे लाभ क्या होता है कि परसे निवृत्ति हो जाती है। कुछ तो हितका ध्यान होता है और कुछ व्यावहारिक बातोका भी ध्यान रहता है। उसकी ऐसी स्थिति है कि जैसे कोई बहुत बडी भीडमे रेलके डिब्बेमे घुस जाय और घुस जाने मे भी आधा सामान बाहर पडा है। अरे! अभी यह पुटरिया रखना है, अभी वह सामान धरना है, यात्रियोसे लड रहे पर इतना सतोष है कि घुस आये। यही बात ज्ञानमार्गमे हम आप अधूरोकी है कि कुछ आत्महितका कभी-कभी ख्याल होता है, दृष्टि जगती है, उत्साह जगता है। पर सबसे बडा ऊचा काम यह है कि बाहरी चीजें कही भी जायें, मुझे तो एक ज्ञानके काम करना है। ऐसी दृष्टि जगती है तो सतोष होता है। तो इस बातमे तो सतोष है पर जो घरमे है सो घरकी बात सामने है, जो सस्थामे है तो सस्थाकी बात सामने है।

इस जीवपर कितना भारी सकट है ? इसके लिए रेलका सफर करने वाले यात्रीका दृष्टान्त बहुत जमता है कि मान लो यहाँसे शिखरजी जाना है, यदि रेलमे बहुत भीड आयी है तो मुश्किलसे जगह मिलती है। चाहे लडे, मरें, कुछ भी करें, पर डिब्बेमे घुमनेसे सतोष हो जाता है। हाँ, कुछ ही ऊपरसे व्यग्रता है कि अभी सीट नही मिली है। अभी सामान धरनेकी जगह नही मिली है। इसी तरह इसके वास्तविक ज्ञान हो गया और जब ज्ञानदृष्टि जगती है तब संतोष होता है। बडी उलझनें है, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है और कुछ भी उलझनें बनी हैं, वे तो अलगकी चीजें है। जब इस शरीरको छोडकर यहाँसे चले जायेंगे तो साराका सारा यही छूट जायगा। उसे अभी समझ लो तो छूट जाय, यह कुछ उलझन नही है, पर उसका ज्ञानतत्त्व उसके ज्ञानमे आये इसका बडा संतोष है। सब कुछ

बिगड जाये, छिद जाये, नष्ट हो जाये, परपदार्थ किसी भी स्थितिको प्राप्त हो जायें, परन्तु ये मेरे परिग्रह नही है, ये मेरी चीजें नही है, इन्हे छोडकर जाना ही पडेगा ।

भैया ! अपने जीवनके कुछ क्षण ऐसे बीतें कि हम उनको स्वेच्छासे छोडकर कुछ निवृत्तिका स्वाद लें तो उसमे हित है । और यो ही जबरदस्ती छोडकर गये तो उसमे पछतावा है कि कुछ कर न पाये । जीव और अजीवका भिन्न-भिन्न ज्ञान होनेसे परपदार्थोंसे निवृत्ति होती है । यह भीतरकी चीज, भीतरका ही यह उपयोग भीतरमे ही समाता जाये कि हमे अपना ज्ञान करना है, हित करना है सो अपनी ही आत्मामे यह उपयोग रहे इसमे ही भलाई है । इस तरहकी जीवोमे जब आत्माकी स्थिति होती है तो वही वास्तविक स्वास्थ्य उत्पन्न होता है । स्वास्थ्य हो तब शाति हो सकती है । हित इसीमे है कि हम अपने उपयोग को अपनेमे ही झुकाये रहे, अपने ज्ञानस्वरूपको यह उपयोग स्पर्श करता रहे, ध्यान करता रहे कि मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे न्यारा हू ।

भैया ! सबको कोई खुश नही कर सकता है । और सब खुश हो जाये तो उनको खुश करनेसे अपनेको मिलना क्या है ? मान लो बच्चे खुश हो गये, मित्र लोग खुश हो गये तो उनके खुश हो जानेसे यहाँ मिलेगा क्या ? सो बतलावो । अव्वल तो कोई खुश नही होता है क्योकि सबके कषाय लगी है । सबकी कषायकी पूर्ति करनेकी आपमे सामर्थ्य है क्या ? किसीके कषायकी कोई पूर्ति नही करता है । कोई कहे कि जेबमे हाथी धर दो । इसकी पूर्ति कोई कर सकता है क्या ? सो कोई अपने कषायोकी पूर्ति नही कर पाता है तो दूसरोके कषायोको कौन पूरा कर सकता है ?

एक घोड़े वाला दृष्टांत है कि बाप बेटा कही चले जा रहे थे । बाप घोड़ेपर बैठा था और बेटा पैदल चल रहा था । एक गावसे निकले तो गांवके लोग बोले कि बाप तो अच्छा चालाक है, अपन तो बैठा है घोडेपर और लडकेको पैदल चला रहा है । अब बाप घोडेसे उतर गया और लडका घोडेपर बैठ गया । अब दूसरे गांवसे वे निकले तो गांवके लोग बोले कि यह लडका बदमाश है, अपन तो हट्टा-कट्टा बैठा है घोडेपर और बापको पैदल चला रहा है । अब वह भी उतर पडा । अब दोनोने सोचा कि अच्छा तो यह है कि दोनो ही घोडे पर बैठ जाये । दोनो घोडेपर बैठ गये । अब जब तीसरे गांवसे निकले तो गांवके लोग बोले कि दोनो ही दो-दो डेढ़ डेढ मनके घोड़ेपर बैठे है । मालूम होता है कि यह घोड़ा इनका नही है । अब वे दोनो ही उतर पड़े । जब आगे गये तो दोनो ही पैदल चलने लगे । घोडेकी लगामको दोनोने पकड़ लिया । एक गावसे निकले तो गांवके लोग बोले कि घोड़ेको हाथमे लिए है और खुद पैदल चल रहे है । अरे पैदल ही चलना था तो साथमे घोडा लेनेकी क्या

जरूरत थी ? लो देख लो लोगोको किसी तरह भी खुश न किया जा सका।

जीवपर यह भी बडा सकट है कि वह भलाई भी करता है तो भी उसका अपमान होता है। जिसे कहते है कि व्यर्थका विषपान। जिसमे कुछ सार नही है और विषपानमे लगे फिर रहे है। सो सब चीजें तो छोडना ही पडेंगी। यदि अपनी जीवित अवस्थामे अपनी इच्छासे उनको छोडें तो इससे ही हमारा भगवान् प्रसन्न हो जायेगा और नही तो जैसे ससार मे सबकी स्थिति चल रही है वैसा ही अपना हाल होगा। सो भाई पदार्थोंके जाननेका तो यह फल है कि सबको पृथक् समझो और यह अपने मनमे धारणा लावो कि इन परपदार्थोंसे मेरा हित नही है। इस भावनाके कारण परपदार्थोंसे निवृत्ति होगी और अपने आपमे अपने को शाति मिलेगी और इस स्वरूपसाधनासे अपने आपमे खुद सुख उत्पन्न होगा। हम सुखी होना चाहे तो हमारे हाथकी बात है, हम सुखी हो जायेंगे।

एक राजा पशुवोकी बोली जानता था। एक बार वह अपनी पशुशालामे घूम रहा था। वहाँ घोडेने बैलोसे कहा कि बैलो, तुम बडे बेवकूफ हो, तुम व्यर्थमे गाडीमे जुतते हो। जब जोतने वाला आया करे तो तुम अपने पैर पसारकर लेट जाया करो, मरेसे बन जाया करो तो यह संकट टल जायेगा। बोले—ऐसा ही करेंगे। राजाने सुन लिया व जान लिया कि घोडे बडे बदमाश है, वे बैलोको बहकाते है। जब बैल जोतने वालोने देखा कि बैल तो मरेसे पडे है तो पूछा कि अब क्या करें ? राजाने कहा कि आज घोडोको जोत ले जावो। देखो जिसने अक्ल बतायी वही जुता। दूसरे दिन घोडोने बैलोसे कहा कि यदि अब ऐसा करोगे तो चमडी उधेड दी जायगी। राजाने यह भी बात सुन ली। इतनी बात सुनकर राजा रानीके महलमे गया। सो राजा जब रानीके पास बैठा था तो वही घोडे व बैलो वाली बात को सोचकर हँस पडा। अब रानीने राजासे कहा कि क्या बात है जो आप हँसे ? राजाने कहा कि मत पूछो। रानीकी जिद्द पर राजा बोला—घोड़ेने बैलसे यो कहा। रानीने कहा कि आपको किसने जानवरोकी बोली समझना सिखाया ? हमे भी सिखावो, रानीके बहुत कहने पर राजाने कहा कि अच्छी बात, बतायेंगे। अब राजाने सोच लिया कि अब तो मर जायेंगे, क्योकि जिसने सिखाया था उसने कहा था कि यदि स्त्री जातिको यह मन्त्र सिखाओगे तो मर जावोगे। अब इतनी बात सुनकर कि राजा मर जायेगा, सभी जानवर दुःखी हो गये। पर मुर्गा मुर्गी अब भी खेल रहे थे। कुत्तेने कहा कि ऐ मुर्गियो, तुम बडी बदमाश हो, राजा मरने जा रहा है, हम तो इस बात पर हँस रहे है कि राजा अपनी बेवकूफीसे मरने जा रहा है। कुत्तेने मुर्गा मुर्गीसे पूछा कि राजाके बचनेका कोई उपाय भी है क्या ? कहा—हाँ, उपाय है। रानीके राजा दो तमाचे लगाये, इस बात पर कि हम जानवरोकी बोली समझना नही सिखा-

येंगे, बस राजा बच जायेगा । राजा रानीके पास गये और तमाचे मारे, कहा—देख, तेरे पीछे कौन दिमाग खराब करे, मै नही सिखाऊँगा । तुम अपने ऊपर ज्यादा भार न लादो, ज्यादा चितायें न करो तो सारा भार मिट जायेगा । भार तो हम खुद बनाये हुए है । जीव और अजीवको पृथक् करनेसे फायदा है । तो सब प्रकारसे निवृत्त हो । परसे निवृत्ति होनेसे मेरा स्वास्थ्य मुझे मिलेगा और स्वास्थ्यके मिलनेसे ही मुझे शाति मिलेगी । स्वास्थ्यके बिना शान्ति नही मिल सकती है, सो अपने स्वरूप पर विचार करो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ ।

स्वस्थस्य सहजानदोऽक्षोभतायाः परच्युतः ।
एकत्वनियतिः स्वास्थ्यं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२८॥

जो जीव अपने ज्ञानस्वरूपमे स्थित है उसको क्षोभ नही होता । क्षोभ तो उसको हो जो किसी परसे लगाव रखता है । क्षोभ कब होता है कि जैसा हम परके बारेमे चाहे वैसा नही होता है तो क्षोभ होता है । क्षोभ दो पद्धतियोमे नही होगा—एक तो यह कि जो हम चाहते है परपदार्थोंके बारेमे वैसा ही बन जायें तो क्षोभ नही होगा या हम कुछ न चाहे पर-पदार्थोके बारेमे तो हमको क्षोभ नही होगा । हम परके बारेमे कुछ न चाहे, वह बात तभी बन सकती है जब कि हम अपने उपयोगको, अपने ध्रुव ज्ञायक स्वभावमे ठहरा दे । जब हम अपने आपमे ठहर जाते है तब क्षोभ नही होता है । अपने आपमे ठहर जानेका अर्थ क्या है कि जब मेरा ज्ञान, केवलज्ञानके ही स्वरूपको देखे, ज्ञानमे ज्ञान ही बना रहे, ज्ञान ज्ञानको ही जाने तो अपनेमे ठहरना कहलाता है । कोई आकाश जैसी जगह नही है और ठहरने वाला कोई पिंडरूप चीज नही है कि यह मै किस जगह ठहरूँ ?

भैया ! स्वास्थ्य वह कहलाता है कि यह ज्ञान, ज्ञानको जाने । हम यह जानने लगें कि ज्ञान क्या चीज है ? ज्ञान कैसा होता है ? यह ज्ञान एक भाव है, प्रतिभासमात्र, जानन मात्र है । इतनी ही यह आत्मा तो देखो, कितनी सूक्ष्म अमूर्त है, जिसमे कुछ पिंडपनेका भाव ही नही आता है । केवल जाननस्वरूप यह आत्मा है । सो यह ज्ञान, इस ज्ञानके स्वरूपको जानने लगे, अपने ही स्वरूपको जानने लगे तो यही स्वास्थ्यपना कहलाता है । ऐसा स्वास्थ्य जिस ज्ञानीके होता है, उसके क्षोभ नही होता है । यह बिल्कुल निश्चयकी बात है । स्वस्थ कोई होकर देख ले । जब यह अनुभवशक्ति आ गई तो वहाँ क्षोभ नही है, परम शांति है । जिन बातोमे राग करते हैं और राग करके हम अपनेको बडा समझते है, वे सब व्यर्थ है । अपनेको महान् कष्ट देनेके निमित्तभूत उनसे अच्छे तो वे है जिनको हम जानते ही नही, बहुत दूर है, विदेशमे है, कही है, कमसे कम उनके निमित्तसे क्लेश तो नहीं होते ।

भैया ! हम दूसरोकी चाकरी करते, दूसरोकी सेवा करते है और अपने आपकी क्या करते है ? दूसरोके मोहमे अपने आपका भुर्ता बनाते है, बरबादी करते हैं। दूसरे जीवोंके रागमे, मोहमे क्या मिलेगा ? कोई चीज आत्माके पास रह सके, ऐसा तो कुछ नही मिलेगा। गलत उपयोग हो गया, अज्ञान दशा छा गयी, पाप कर्म बध गया, यही बातें मिलेंगी। इसके अतिरिक्त और कुछ लाभ नही मिलेगा। सो एक सिद्धान्त बना लो कि हमे परसे हटना है। यही हमारे कल्याणका मार्ग है। परमे लगना यही तो अकल्याणका मार्ग है।

भैया ! एक पौराणिक वृत्तान्त है कि पुष्पडाल अपने बाल्यकालके मित्र वारिषेण मुनिको आहार देकर जब जङ्गल तक पहुच गये तो पहिले बडी कोशिश की कि ये कह दें कि यहांसे लौट जावो। महाराजको याद दिलाया कि देखो महाराज यह वही तालाब है जहाँ नहाने आते थे अर्थात् बहुत दूर आ गये है। और क्या याद दिलाया कि महाराज यह वही जगल है, जहाँ क्रीडा करने आते थे। वे कुछ नही बोले। धन्य है वह करुणाकी मूर्ति, जो मित्रको ससारके दुःखोसे छुटानेका यत्न कर रहा है। नही बोले, घर जाओ, ऐसा नही कहा। पुष्पडाल चलते ही गये। उनके स्थान तक पहुचते पहुचते वैराग्य हो गया। पुष्पडाल सोचते जाते हैं कि अब ऐसा सत्संग कहाँ मिलेगा कि जिनके पास रहकर शान्ति मिलती है। अब इनको छोडकर कहाँ जाना है ? परिणाम यह हुआ कि पुष्पडाल मुनि हो गये। कुछ माह व्यतीत हो गये। मुनि तो हो गये, पर कुछ समय बाद उनको अपनी स्त्रीकी याद आने लगी कि देखो विनयशील स्त्रीसे मैं कुछ कहकर नही आया, समझा-बुझाकर नही आया। उनको इतना ख्याल बढा कि चित्तमे शल्य हो गया। ध्यान सब एक जगह रख दिया। वारिषेण मुनिने जब यह बात समझी तो देखो गुरुजी ने परमदयासे अपना नुक्सान सहकर भी मित्रको बडे लाभमे पहुंचा दिया।

वारिषेण मुनिने माँ को पत्र भेजा कि हम एक बजे दोपहरको महलमे आयेंगे तो सब रानियोको शृङ्गार करके, सजा करके अच्छी तरहसे रखना। माँ सोचती है कि मैने स्वप्नमे भी कोई खोटे भाव नही किये। मेरे बच्चेको घर आनेकी क्यो सूझ हुई ? खैर कुछ सोचा होगा। कोई राजा महाराजाकी बातको हम छोटी बुद्धि वाली क्या समझ सकती है ? खैर, जो हुक्म आया है करना चाहिए। बहुवोको खूब आभूषणोसे सजाया। जब आनेका टाइम हुआ, सभी लोग खूब प्रतीक्षा करने लगे, मनमे खूब आनन्द हुआ। जब आये तो उनके साथमे पुष्पडाल भी थे। दोनो मुनिराज चले आये। उनको देखकर माँ ने दो सिंहासन डाले एक सोनेका और एक काठका। परीक्षा भी हो जायगी। यदि वे विरक्त है और किसी उत्तम ध्येयसे आये है तो वे काठके आसनमे बैठ जायेंगे और यदि बुद्धि बिगड गयी तो अब आसन

का भी क्या विवेक करेंगे ? वे इस सोनेके सिंहासन पर बैठ जायेंगे। खैर क्या हुआ कि वारिषेण मुनि काठ वाले सिंहासनमें बैठ गये। अब जब पुष्पडालने देखा कि देवांगनावोंकी तरह से मूर्तिवत् रानियां है। इनको त्याग करके ये साधु हुए है। अहा, मैं तो एक कानी स्त्रीके ही पीछे अपनेको बरबाद कर रहा हूं। अब तो पुष्पडालको ज्ञान जग गया। जगत्के सभी जीव अपने-अपने कर्म लिए हुए है, कोई किसीको पालता नही, कोई किसीको शरण नही। सब अपने-अपने कर्मोदयके अनुसार अपनी जिन्दगी बिताते है। वारिषेण मुनिकी इस परम दयासे अनुगृहीत हुए वे पुष्पडाल मुनि निःशल्य हो गये।

भैया! जब तक परपदार्थोंसे लगाव न हटा लिया जाये, इन्द्रिय विषयोंकी साधनासे जब तक विरक्ति न मिल जाये तब तक जीवका हित नही हो सकता। यहाँ जो परमें लगा है उसको क्लेश ही क्लेश है। आनन्दका तो नाम ही नही है, क्योंकि आनन्दका निधानस्वरूप जो यह परमात्मतत्त्व है। यदि इसपर दृष्टि नही है, झुकाव नही है तो जो स्वस्थ पुरुष है उसे स्वाभाविक आनन्द नही है। वास्तवमें स्वास्थ्य क्या है ? अपने आपके एकत्वस्वरूप को नियत हुआ जाने, सोई वास्तविक स्वास्थ्य है। उस स्वास्थ्यकी दशामें शरीरके सारे झंझट खत्म होंगे। शरीर है, ऐसा भी ध्यान नही है। केवल एक शुद्ध ज्ञानविकासका परिणमन है। ऐसा स्वास्थ्य जिस जीवके प्रकट होता है उस जीवको आनन्द ही आनंदका अनुभव होता है। अपनेको न जाना तो दुनियामें रहकर इसने क्या किया ? एकत्वनियत हि स्वास्थ्यम्। अपने आपके आत्माके आनन्दस्वरूपमें नियत हो जाना अर्थात् यह ज्ञान निज ज्ञानस्वरूपको ही जाने, ऐसा ज्ञानस्वरूप ज्ञेय बने, ज्ञानस्वरूप ज्ञाता बने तो जहाँ ज्ञान ज्ञाता ज्ञेयका कोई भेद नही रह पाता है वहाँ होता है उत्कृष्ट, समाधि, स्वास्थ्य। इस स्वास्थ्यमें ही सामर्थ्य है कि अनन्तकालसे परम्परामें बँधे चले आये हुए उन पुद्गल कर्मोंको नष्ट किया जा सकता है और कोईसा भी उपाय ससारमें ऐसा नही है जो जीवको सदाके लिए दुःखसे छुड़ाये। एक ज्ञान ही परम औषधि है, जिसको पीकर हम आप समस्त संकटोंसे सदाके लिए दूर हो सकते है। सो भाई इस ही ज्ञानके उपायको करके अपनेमें अपने आप सुखी होनेका यत्न करो।

संवित्त्यभ्यास शिक्षात् स्वान्यभिन्मोक्ष सौख्यवित्।
स्वस्थितिर्मोक्षसौख्यं हि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२६॥

ज्ञानके अभ्याससे, स्वसंवेदनभावसे जो अपनेमें और अन्य पदार्थोंमें जो भेदविज्ञान करता है वह ही मोक्षके सुखको जान सकता है। मोक्षके मायने अकेला रह गया, उसीके मायने मोक्ष है। जीव अकेला रह जाये उसको कहते है मोक्ष। मोक्षमें क्या बात आयी कि न शरीरका सम्बन्ध रहा, न द्रव्यकर्मका सम्बध रहा, न भावकर्मका सम्बध रहा और द्रव्य-

कर्मके उदयके निमित्तसे जो इसमे बात उत्पन्न होती है न उसका सम्बव रहा। केवल आत्मा रह जानेके मायने मोक्ष है। अब खालिस आत्मा रह जाये इसका उपाय करते चलो और खालिस आत्माके स्वरूपकी जानकारी भी न करें तो मोक्ष कैसे है ? मोक्ष नाम तो कैवल्यका है याने केवल रह जानेका नाम मोक्ष है। कैवल्यको क्या बोलोगे ? मियर (मात्र) केवल, कैवल्य रह जाना मात्र उसको ही मोक्ष कहते है। जब केवल रह जानेका नाम मोक्ष है तो केवल है कैसा यह ? इस स्वरूपकी जानकारी शुद्धदृष्टिके बिना नही हो सकता है। शुद्धदृष्टि के मायने खालिस। स्वरसतः कोई द्रव्य जैसा हो सकता है वैसी दृष्टि करनेका नाम शुद्धदृष्टि है। शुद्धदृष्टिके मायने यह नही हैं कि अनंतज्ञान वाला, अनंतदर्शन वाला, अनतशक्ति वाला। शुद्धदृष्टिके मायने है यह आत्मा स्वयमेव अपने सत्वके कारण सहज ही कैसा है इस स्वरूप को देखनेका नाम शुद्धदृष्टि है, परम शुद्धदृष्टि है। तो परम शुद्धनयके प्रतापसे आत्माके उस स्वरूपकी जानकारी होती है जिसके कारण मोक्ष प्राप्त होता है।

पंडित टोडरमल जी ने कितना बढ़िया मंगलाचरण किया कि—

मंगलमय मगलकरण वीतराग विज्ञान।
नमो ताहि जाते भये, अरहंतादि महान्॥

जो मंगलमय है, पापोका नाश करने वाला है, मगलकरण है, सुखका देने वाला है ऐसा वीतराग विज्ञान याने रागद्वेषरहित ज्ञानस्वरूप जो है उसको मैं नमस्कार करता हू कि जिसके प्रतापसे अरहतादिक बड़े पद हो जाते है। अब देखो—इस दोहेके दो अर्थ लग सकते हैं। एक अर्थ तो यह है कि मंगलमय मंगलाचरण, मायने रागद्वेषरहित केवलज्ञान है, जो सारे विश्वको जानता है, ज्ञानका पूर्ण विकास है उसको मै नमस्कार करता हू कि जिसकी वजहसे अरहत आदिक बडे बन जाते हैं। केवलज्ञान न हो तो अरहंतको बडा कौन कहे ? एक तो यह अर्थ है और दूसरा अर्थ यह है कि जो मंगलमय मगलकरण रागद्वेषरहित ज्ञायक स्वभाव है, ज्ञानस्वरूप है, सो उसको मैं नमस्कार करता हू। जिसके प्रसादसे बडे बड़े अरहंत बन जाते है। अब इनमे आपको कौनसा अर्थ रुचता है, पहला, कि दूसरा ? पहला अर्थ तो है मतिप्रधान और दूसरा अर्थ है विज्ञानसे भरा हुआ, वैज्ञानिक तत्त्व वाला।

भैया ! जगत्के जीवोकी दृष्टि अपनेको नाना रूप माननेकी तो रहे, पर मैं शुद्ध ज्ञान स्वरूप हू, यह दृष्टि न आ सकी तो व्यर्थ है। अभी देख लो दिनभर कितना भटके हुए, भूले हुए रहते है, बड़े रोजगारमे, बडे व्यापारमे रहते है, कितना भी दूसरोको अटपट बोलते आये हो, किसी समय जब यह दृष्टि आ गयी कि यह तो मैं ज्ञानमात्र हू, केवल प्रतिभासमात्र हू, मैं तो इतना ही मात्र हू तो वे सारेके सारे जो झझट बनें या कुछ न बनें, अगर अंदरसे ऐसी

भावना आवे तो उनमे फर्क हो जायेगा। किसी समय ऐसी दृष्टि आ जाये तो जो अटपट किया है उसमे अंतर आ जायेगा। अपने आत्माके सहज स्वरूपको आत्मा मानो, यही आत्मा पर दया है। अपनी दया करो, परकी दृष्टि करके निरंतर विह्वलता मचेगी। दुःख हुआ, बरबाद हुए, ठौरमे न रहे, यहाँसे वहाँ भटके, अब तो अपनी दया करो। वह अपनी दया क्या है? अपने उस शुद्ध सहज ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि तो करो। इस दृष्टिके प्रतापसे वहाँ कर्म नही रह सकता याने कर्म हटनेका निमित्त क्या है, इसपर दृष्टि दो वास्तवमे।

अभी यह प्रश्न हुआ कि ज्ञायकभावकी दृष्टि कैसे आ सकती है? उत्तर यह है कि उस ज्ञायकभावका जो स्वरूप है उसे बार-बार सुना जाये, उसका बार-बार मनन हो, एकांत मे बैठकर उसका मनन करो, परन्तु ऐसा करनेके लिए बडा त्याग करना पड़ेगा। वह त्याग क्या कि दुनियाभरकी चीजोको जो हम रोक कर रहे है, दौड रहे है, उस दौडका त्याग करना पडेगा। त्यागकी चीज नही कह रहे है, वे तो छूटेंगी ही। जहाँ भेदविज्ञान हो तो वहाँ जैसे कषाय उन्मूलन होती चली जायगी वैसे आप स्वय बाह्यपदार्थोंको छोड़ते चले जायेंगे। तो यह त्याग करना पडेगा कि बडी उत्सुकताके साथ, लालसाके साथ। केवल आत्माकी चर्चा की, आत्माके जाननेकी धुन लगानी पडेगी तो वह ज्ञानस्वरूप इसके उपयोगमे आ सकता है। बिना धुन लगाये वह चीज नही आ सकती है।

भैया! जो बाहरी चीजें है, जिनमे दृष्टि लगाना जरूरी नही है और वे मिल जाती है तो उनमे कौन तेज धुन लगाता है? आत्माके स्वरूपकी बात तेज धुन लगाये बिना रह ही नही सकती है। उसमे हम धुन न लगाकर मनबहलाव ही करके प्राप्त करना चाहे तो नही हो सकता है। अगर आत्मस्वरूपके पानेकी धुन नही है तो धर्मके जितने काम किये जा रहे है, वे मन बहलावेकी बातें है। विधान करना, पूजा करना, हवन करना, न्यौता देना, पंगत कर लेना, ये सब मनबहलावा रह जायेंगी, धर्मकी बातें नही रह सकती है। आत्मस्वरूपकी लगन लगे, धुन लगे, उसके पीछे पागलसे बन जायें तो क्या वह चीज नही मिल सकती है? वह तो बडी स्वाधीन चीज है, लानी कहीसे नही है। जैसा यह स्वरूप है, अपने आप है, वैसा इसको देखना है, पाना नही है, बस मुडकर देखना है। यह चीज स्वके सम्वेदनसे मिलती है, अभ्याससे मिलती है। इसके लिए 'सोऽहं' जाप है। 'सोऽहं' भी जाप जो है, वह भी ऊँचा मनन नही है। सो मानो कि जो भगवान है, वह मैं हूं। जो भगवानका स्वरूप है वह मै हू। ऊंचा ध्यान तो यह है कि जैसा उसका चैतन्यस्वरूप है स्वरसत: अपने आप वैसा ही दृष्टिमे आ जाय तो वह मनन इससे भी ऊंचा है। जो भगवान है, सो मै हूं, ऐसा ध्यान किसलिए करते हो? उस ध्यान करने वालेसे पूछो कि किसलिए ध्यान करते

हो ? भगवान्‌की भक्तिके लिए क्या प्रयोजन है ? 'सोऽहं' का जाप करनेका । सोऽहंके जाप करनेका प्रयोजन है अहंके अनुभवको कर लेनेका । सोऽहंमे झुककर अहंके कोई निकट आये तो यह काम तो सोऽहंसे बडा है कि नही ? दुनियामे कही ख्याल नही, कही विघ्न नही, कही चित्त नहीं, अन्दरसे केवल ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति हो रही है । जिस स्थितिमे शरीरका भी मान नही है वहाँ औरोका ख्याल भी नही है ।

अगर तुम कहो कि कुटुम्ब नही है, तो कुटुम्बका ज्ञान तो आ गया, ख्याल तो आ गया । यदि हम मना करनेको कहें और तुम लगावकी बात कहो तो यह ठीक थोडे ही होगा । यदि हम कुटुम्बके बिलगावकी भी बात कहे तो ठीक न होगा । इसके मायने है कि बात करके ख्याल करवा दिया तो कुटुम्बका ज्ञेयाकार नही बनना चाहिये । अच्छा अब यह रहेगा कि अन्य अन्य पदार्थोंका ज्ञेयाकार होता है, वहाँ पर भी ज्ञेयाकारका आलम्बन नही करना चाहिए । यह होता है, पर अपने ज्ञानस्वरूपका आलम्बन करना चाहिए । जहा तक अपना पुरुषार्थ बन सकता है, उसको लगाकर पूरे बलके साथ अपने ज्ञायकस्वभावका अपनेमे उपयोग ले जाना चाहिए । फिर जैसा जो कुछ होता है होवो, पर लक्ष्य यह होना चाहिए कि मुझे यह काम करना था । यहाँ यह प्रश्न हो रहा है कि ज्ञायक और ज्ञेयाकार, इसके बीच जो ममत्व हो रहा, ज्ञेयका ममत्व, ज्ञानका ममत्व मिटानेके लिए जो मेरी चीज है, उस पर दृष्टि डालनी चाहिए, तो ज्ञेयका ममत्व मिटेगा ।

ममत्व मिटानेके लिए जो वास्तवमे, जो मैं हू, वह ज्ञानमे आ जाना चाहिए । परका ममत्व मिट जाना चाहिए । अपना स्वरूप, अपना स्वभाव भी अपनी चीज है, ऐसा भीतरमे सम्वेदन होना चाहिए तो बाह्य पदार्थोंका ममत्व खत्म हो जायेगा । ऐसा यहाँ यह कहते है कि स्वसम्वेदनसे, ज्ञानके अभ्याससे, ज्ञानकी शिक्षासे जो अपनेको भेदविज्ञान करता है, वह अपने मोक्षको जानता है । मोक्ष क्या है ? अपने आपके स्वरूपमे अपने आपका रह जाना । मैं अपनेमे यह अभ्यास बनाऊ कि मैं अपनेमे अपने आप ठहरूँ और मनको सम्बोधित करूँ ।

स्वालक्ष्योऽन्योपकारी चेत्क्लिष्टः परकृतावपि ।
स्वलक्ष्योऽस्मान्न मुच्येत स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-२०॥

दूसरे मनुष्योका उपकार करने वाले जन अपनेसे गिर गये तो परका उपकार करने पर भी वे दुःखी हैं, सक्लिष्ट है । महिमा तो अपने निर्मल परिणामोकी है । अपनेमे विशुद्ध हो, मोक्षका मार्ग बराबर चलता रहे और परका उपकार हो जाय तो यह बात प्रशसनीय है और जिसका अपना कोई लक्ष्य नही है, परके ही उपकार मात्रमे रहता है, वह कोई न कोई अभिमानसे, अहंकारसे, प्रशसासे या दूसरोके उपकार करनेमे लोगोसे प्रशसा पाता है तो इस

भावसे वह विकार कर रहा है और जिनको अपने आपकी आत्माका लक्ष्य हो गया है वे उपकार इसलिए करते है कि दुःखियोका, गरीबोका उपकार करें, तो विषय कषायोसे खोटे परिणामोसे बच जायेंगे। ज्ञानीको परोपकार होता है, अशुभोपयोगसे बचनेके लिए और अज्ञानीका परोपकार होता है, अपनी महिमा बतानेके लिए। ज्ञान और अज्ञानके परोपकारमे इतना अन्तर है।

भैया! जो परोपकार करने वाले हैं, वे यदि अपना लक्ष्य छोड दें तो वे संक्लिष्ट होते है। लेकिन जिनकी हम सेवा करते है, उपकार करते है वे मेरी कब तक मदद कर सकते है? अपने लक्ष्यसे छूट गये तो अपनी दुर्गति निश्चित है, दूसरे लोग क्या उसमे साथ दे सकते है। इसलिए अपना लक्ष्य तो कभी न कभी बन जाना चाहिए। भले ही कुछ मोहीजन, झूठे जन कह दें कि यह बडा खुदगर्जी है। अपने ध्यानमे, अपने ज्ञानमे, अपनी साधनामे लगे रहते है। दूसरोंकी कुछ नही सुनते।

भैया! इसमे देखो कि एक तो कोई अपने आपमे लगा रहे। सत्य साधना बन जाय तो उस व्यक्तिके दर्शन मात्रसे सैकडो जीवोका उपकार हो जाय और दूसरे पुरुषका, जिसको अपना लक्ष्य नही है और अनेक कामोमे लगा रहता है; उसके दर्शनसे, सत्सङ्गसे किसीका भी ठोस उपकार नही हो पाता। यह खुदगर्जी तो है सभीमे। जितने जीव हैं, सभीमे खुदगर्जी है। अगर साधु जन भी दूसरोका उपकार करते है, उपदेश देते है, समझाते हैं तो उसमे भी एक खुदगर्जी उठी थी कि वे लोकोपकारकी, कषायकी पुष्टि कर रहे हैं। दूसरोका क्या कर रहे है? यह जीव तो खुदगर्ज है ही।

भगवान् भी जो वीतराग है, दिव्यध्वनि निखरती है उनमे, जिनकी बुद्धि उठ जाती है, उनका भी भगवान् क्या करते हैं? भगवान् सकलका ज्ञायक है, अपनेमें लीन है, अपना ही प्रयोजन साध सकता है, दूसरेका नही। अब अपना भला करना है तो अपने आपको यह देखो कि किसी विषयसाधनके लिए और खुदगर्जीके लिए या अपने स्वभावसाधनके लिए अपनी खुदगर्जी चल रही है। इस बातका निर्णय कर लो। अगर विषयसाधनके लिए खुदगर्जी चल रही है तो वह अधम है, वह मुक्तिका मार्ग नही है। स्वभावसाधनके लिए अगर चल रहा है तो वह ठीक है। परपदार्थ अपना ही तो प्रयोजन साधते हैं। कोई दूसरेका प्रयोजन नही साधता है। सो कहते है कि दूसरोका उपकार करो, पर उसकी उस एवजमे उन दूसरोसे कुछ न चाहो।

यह मेरे आगे किसी काम आयगा, ऐसा मत चाहो। यह मुझे अच्छा कहेगा, ऐसा मत चाहो। दूसरोके उपकारके एवजमे कुछ मत चाहो। अपनी सरल प्रकृतिमे ऐसी प्रवृत्ति

करो कि जिससे दूसरोका उपकार हो, मगर उनसे कुछ चाहो मत, उपकार कर दो। दुःखी हो, दीन हो, गरीब हो, उसका उपकार कर दो।

यह तन विनाशीक है, इसे परोपकारमे लगाओ। यह धन है, यह भी विनाशीक है, यह भी मिट जायगा, दूसरोके उपकारमे लगाओ तो अच्छा है। यह वचन है, सो यह भी विनाशीक है, दूसरोके उपकारमे लगे तो अच्छा है। सो ऐसा सोचकर दूसरोका भला कर दो और ऐसा विचार बना लो कि मुझे इसके एवजमे कुछ न चाहिए। दूसरोका भला करनेका प्रयोजन इतना ही है कि हम अटपट विचारोसे बचें और दूसरोके उपकारमे लगे। इसीसे अपने ज्ञानकी सुरक्षा बनी रहेगी। हम अज्ञानी मोही नही बनेंगे। सो अपने ही ज्ञानभावकी रक्षाके लिए दूसरोका उपकार किया जाता है। यह ज्ञानी पुरुषकी वृत्ति है और अज्ञानी मोहियोका रास्ता ही जुदा है। वह जो कुछ करता है, पर्यायबुद्धिसे करता है। उसको अपने अन्तरमे प्रकाशमान निजप्रभुकी खबर नही है। सो बाहर ही दूसरोसे आशा रखता है। सो एक तरहकी वह दुकान ही है, व्यापार ही है। अपने देशका उपकार करना, अपने समाजका उपकार करना तो उसकी एवजमे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी चाह और यश प्राप्त करनेकी चाह है। पर्यायबुद्धिसे इस आशयसे जिसका उपकार करना रहता है, उसके आगे दीन बनना पड रहा है।

बाहरकी वेशभूषा, रहन सहन एक संत जैसा है, भिखारी जैसा है, भीतरमे दीनता भरी है। वह उपकार करना चाहता है लोगोसे कुछ प्रशंसा चाहनेके लिए, मान और बडप्पन चाहनेके लिए। वह उपकार वास्तविक उपकार नहीं है। दूसरोका उपकार करने वाला यदि अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट है तो वह दुःखी है। यह जगत् चार दिनकी चादनी है, फिर अधेरी रात है। ये चार दिन जीवित रहने वाले लोग अपना बडप्पन चाहकर कुछ भी ऐसी क्रिया कर दे कि जिससे लोगोका उपकार हो। मगर उसने तो अपनेको धोखेमे डाला, खतरेमे डाला। भीतरमे अवनति है, उन्नति नही है। इस कारण दूसरोका उपकार कर देनेपर उसकी एवज मे कुछ न चाहिए। प्रत्युपकारकी वाञ्छा रंच भी न करे तो उस उपकारकी महिमा है और यदि भीतरमे कुछ वांछा रखी प्रत्युपकारकी तो उस उपकारकी महिमा नही है।

दूसरोसे वाञ्छा न रखें, यह तभी बनेगा जब कि अपने प्रभुका दर्शन और स्पर्श हो जायेगा। क्योकि निजप्रभुके मिलनमे संतुष्टि होती है, आनन्द होता है। उससे तृप्ति होकर फिर उसे ये तुच्छ चीजें नही भाती हैं। सो अपना लक्ष्य कभी न छोडो। अपनेको देखकर अपने आपमे ही रत रहकर संतुष्ट रहने, सुखी रहनेका यत्न करो। सब ओरसे अपना मुख मोड लो। किसी भी परकी अपनेमे कल्पना न रखो। केवल शुद्ध सत्ता मात्र चैतन्यात्मक

सबके दर्शन करो और उसीमे संतुष्ट रहो। इससे बढकर दुनियामें और कोई सारकी बात नही है। बाकी बातोमे तो यहाँ भटकना ही रहता है। इस भटकनेसे आत्माको कुछ लाभ नही मिलता है। सो करनेका काम यही है कि जो अपना उपयोग तितर-बितर है, उन सब जगहोसे छुटकारा लेकर सीधे केन्द्रमे अपना उपयोग लगाना है, सब उपयोगोको संकुचित करके, समेट करके एक जगह लगा देना है। यदि ऐसा उत्कृष्ट ध्यान बनता है तो उस अग्नि के द्वारा भव-भवके सचित कर्म भी जल जाते है।

जैसे सूर्यकी किरणोके सामने कांच इस तरह लगाया जाये कि किरणें एकत्रित हो जायें, संकुचित हो जायें, फिर शीशेका अक्स जिस रुई पर, जिस कागज पर पडता है, जलने लगता है। सूर्य सामने है उसके आगे कागज या रुई रख दिया जाये तो जलता नही है, चाहे जेठ बैसाखके गर्मीके दिन हो, पर यदि कांचके अक्समे जाडेके दिनोमे इस तरहसे रखो कि सूर्यकी किरणें उसमे संकुचित हो जायें ती वह रुई, कागज आदिको जला देता है। यह उसमे सकुचित करनेकी शक्ति है। अभी किसी चोजपर ज्यादा तेज प्रहार करना हो तो वह एक बार पीछे हट जाता है तब खूब प्रहार होता है। जैसे जम्प करनेमे जो डोरी लगाकर जम्प की जाती है तो पहिले पैरोपर वजन दिया जाता है तो इससे कूद ऊँची हो जाती है। गेंद ऊपर यदि उचकाना है तो जमीन पर तेजीसे लगाव दिया जाता है। केन्द्रके अन्तरमे जितना ज्यादा झुकाव हो उसका चमत्कार ही विशेष होगा। हमारा आपका यह काम होना चाहिए कि जो उपयोग तितर-बितर है उसको संकुचित करना है, एक स्थानपर लाना है।

भैया! हम जो है सो है, हम अपनेमे परिणमन करते हैं। जो जैसा है वैसा ही अपने मे परिणमन करता है। अपनी कल्पनाएँ करना, खोटा ख्याल बनाना और उसमे ही भिड़े रहना इसका फल यह होता है कि नाना योनियोमे, दुर्गतियोमे घूमना पड़ता है और उस उपयोगको केन्द्रित कर दें, अपने उपयोगमे ला दें तो इसमे इतनी शक्ति उत्पन्न होगी कि उसके प्रतापसे भव-भवके संचित कर्म भी स्वाहा हो जायेंगे। अपनेमे ही अपना सहारा तको, अपनी दृष्टि अपनी ओर अधिक लगावो। मेरा दुनियामे क्या काम है, मुझे कौनसा द्रव्य सन्मार्गमे लगा देगा; आनन्द प्रदान कर देगा। पर वस्तुमे यह शक्ति नही है कि वह मुझको गुण दे दे, पर्याय दे दे, कुछ मदद दे दे, ऐसी शक्ति किसी परवस्तुमे नही है। मैं ही अपनी योग्यतासे विकाररूप परका निमित्त पाकर विकाररूप परिणम जाता हू और अपनी ही योग्यतासे, शुद्ध परिणतिसे परिणम जाता हू। मैं ही अपने ज्ञानसे स्वभावरूप परिणमता हूं, कोई मेरा सहायक नही है। इसलिए परकी आशा छोड़ो और दूसरोका उपकार भी करो तो उसके बदलेमे कुछ न चाह करो। यही सुखी होनेका उपाय है।

निर्द्वन्द्वेऽजेऽमरे शान्तेऽद्वैते ज्ञानिनि निर्ममे ।
स्वस्मिन् स्थित्वा स्थिरोभूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५ ३१॥

मैं अपनेमे ठहरकर स्थिर होकर, अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ । मैं कैसा हू ? निर्द्वन्द्व हू । निर्द्वन्द्वका अर्थ है द्वन्द्वरहित, द्वन्द्वका अर्थ है दो याने मैं दो से रहित हूँ । मैं तो एक हूं । किसी दूसरे पदार्थसे मैं मिला हुआ नही हू । जितनी आपदायें आती है सब द्वन्द्वसे आती है, दो से आती है । एकसे आपदायें नही आती हैं । लोकमे कहते हैं कि हम तो वडे द्वन्द्वमे पड गये । मतलब यह है कि हम बडी परेशानीमे पड गये मायने दो मे पड गये । द्वद्व के मायने है हिन्दीमे दो । हम दूसरेमें पड गये, हम द्वन्द्वमे पड गये तभी दुःख होता है । अपने मे पडे रहे तो दुःख नही रहना है । मैं द्वन्द्वरहित हू, दो से रहित हू, केवल एक हू और अजं हू मायने मैं जन्मा हुआ नहीं हूँ । मैं सत्भूत हूँ, अनादिसे हूँ, मुझे किसीने उत्पन्न नही किया और अमर हू मेरा कभी मरण नही होता । मेरा क्या, किसी भी पदार्थका मरण नही होता। कौनसी चीज मिट जाती है सो बतलावो ? यह शरीर क्या मिट जायेगा ? यह शरीरका ढांचा मिट जायेगा, मगर शरीरके पुद्गल परमाणु वे कैसे मिट जायेंगे ? शरीर जल जायेगा तो धुवां बनकर उड जायेगा, उडकर भी परमाणु रहेगा । कभी समूल नाश नही होगा ।

कोई भी चीज मरने वाली नही होती । मरने पर भी कुछ न कुछ बना रहता है । सभी अविनाशी है । जीव हो, पुद्गल हो और कुछ हो, सभी मरने वाले नही है, ऐसा अपना अविनाशी अस्तित्व देखो तो उसे ज्ञान कहते हैं । जो अपने स्वरूपमे बसे उसे क्या होता है शांति; अशांति नही होती । अशांति तो कारण पाकर बन जाती है । शांतिके लिए कारण न चाहिए, पर अशांतिके लिए कारण चाहिए । तो शान्ति चाहो यह अच्छा है कि अशांतिके कारण दूर हो जाये यह अच्छा है । शांतिके लिए कारण नही होता, शांति तो स्वभाव है, आत्मामे अपने आप होती है ।

और कैसा मैं हूँ ? मैं अद्वैत हूँ । मै केवल अपने आपके स्वरूपका अस्तित्व रखता हूं । मै दूसरोसे मिला-जुला नही हूँ । जो पदार्थोके स्वरूपकी सीमाको देखते है वे ही यह निश्चय कर सकते हैं कि परपदार्थ अपनेमे अद्वैत हैं । अद्वैत दो तरहके माने गये हैं—एक तो सर्वाद्वैत और विशिष्टाद्वैत । सर्वाद्वैतने यह कहा कि सब कुछ एक चीजें हैं और विशिष्टाद्वैतने यह कहा कि प्रत्येक चीज अपनेमे अकेली है । सो प्रत्येक चीज अपनेमे अकेली है यह तो वस्तु स्वरूपकी विशिष्टाद्वैत है । अपनेमे आप ही हू, मुझमें कोई दूसरा नही है । यहाँ सबसे बड़ी विपत्ति जीवकी है तो मोहकी है और कोई विपत्ति नही है । मोहसे अपनी बेवकूफी नजर आती है । पर जो समझदार है वे सब देखते है कि ये व्यर्थका मोह कर रहे है । मान लिया

एक जीवको कि यह मेरा लडका है। बस उसी एक लडकेके पीछे मरे जा रहे है और है कुछ नही। जो दूसरे है उनसे प्रीति करनेमे फाँसी सी लगी है, पर जो एक अपना समझ रखा है उससे मोह कर रहे है। बाकीको गैर मानते है। यह घरके है ऐसा समझकर मोह कर रहे है। उनके कारण यह मोहका विकल्प लगा है और मिलता उनसे कुछ नही है। केवल अशांति ही मिलती है। मैं कैसा हूँ ? अद्वैत हू। अपनेमे तो मै ही केवल एक हू।

और कैसा हूं ? ज्ञानी हू। ज्ञान मेरा ही है। आत्माका स्वरूप जानन ही तो है। जाननको छोड़कर आत्मामे और क्या हो सकता है ? जो जानन भाव है सो ही आत्मा है। वह जाननभाव निराधार नही है, सो मेरा जो आधार है उसको कहते है आत्मद्रव्य। मैं ज्ञानी हू, निर्मम हू, ममतारहित हू याने ये बाहरी चीजें तो मेरी हैं ही नही, पर बाहरी चीजो मे ऐसी कल्पना की जाती है कि ये मेरी है। तो यह कल्पना भी मेरी नही है। चीजकी तो बात दूर रहे, चीजके बारेमे जो कल्पना होती है कि यह मेरी है तो वह कल्पना भी मेरी नही है' ममता भी मेरी नही है। सो मैं निर्मम हूं। ऐसा यह मैं आत्मा अपने आपको ही जानूं, अपने आपमे स्थित हो जाऊँ, अपने आपमे स्थिर हो जाऊँ तो फिर मुझे क्लेश ही नही हो सकते है।

भैया ! देखो खरगोशके पीछे शिकारी लोग कुत्ते दौडाते है, उसे पकडनेके लिए। तो खरगोश बड़ी तेज दौडता है। इतनी तेजीसे छलांग मारकर दौडता है कि कोई उसे पकड़ नही सकता है। जरासी छलांग मारी कि बहुत दूर पहुंच गया। वहाँ झाड़ीके किनारे छिप गया। मगर उसके भीतरमे घबडाहट है। वह कुत्तोको देखनेके लिए झाडीके बाहर निकलता है। कुत्ते जब देख लेते है तो फिर पीछा करते है। फिर वह खरगोश भागता है। खरगोश अगर ऐसा उपाय करे कि जब वह छिप जाय तो अपने कानोसे आँखें बंद कर ले, पर वह ऐसा नही करता। देखो कर्मोंकी रचना, जीवोको उनकी रक्षाके साधन, उनके अङ्ग कैसे अनुरूप है ?

अभी ये गाय, बैल, भैस आदि जानवर है, उनके हाथ पैर हो गये। मक्खियोको उडानेके लिए वे पूछसे काम लेते है। जो पक्षी है, उनके दो ही पैर है, वे अपने पंखोसे काम चलाते है। इसी तरह खरगोशके बडे-बडे कान होते है। जब वह झाड़ीमे छिप जाय तो अपने कानोसे अपनी आंख बन्द कर ले तो उसे यही रहे कि अब उसे कोई नही देखता है। इससे उस खरगोशकी रक्षा हो जायगी क्या ? वह तो अपने आपसे ही निकलता और फिर झांकता और कुत्ते उसके पीछे दौडते, उसका पीछा करते। ऐसे ही हम लोग अगर अपने आपकी आंखे मीचकर याने विकल्प छोड़कर किसीके बारेमे कुछ न सोचें, किसी परको न

देखें, ऐसा विचार यदि मनमे बैठ जाय तो अपनेमे आपत्तियाँ नही आ सकेंगी। पर ऐसा हम आप नही कर पाते हैं।

यदि अन्तरङ्गमे कोई विकल्प उठाये और परकी तरफ लग जाये तो आपत्तियाँ सताती है। जरा भी आपत्तियाँ आयी तो समझो कि श्रद्धानके द्वारा दृष्टि बाहरमे लग गयी। यही कारण है कि बाहरमे दृष्टि लगनेसे आपत्तियाँ मिटती नही है। जब आपत्तियोको मिटना होगा तो मिनटोमे मिट जावेंगी। केवल अपने ज्ञानस्वरूपको ही तो देखना है। अपने स्वरूप को ज्ञानके द्वारा यह विचारना है कि मैं द्वन्द्वरहित हू, मेरा जन्म नही होता, मैं स्वत.सिद्ध हू और स्वभावसे ही शान्त हू।

एक कोई आध्यात्मिक नाटक है। नट और नटी आपसमे बात करते है कि आज लोगोको ऐसा षान्तिका नाटक दिखा दो कि जिसे देखकर लोगोमे शान्ति उत्पन्न हो। दूसरा कहता है कि शान्तिका क्या नाटक दिखावें? शान्ति तो स्वभाव ही है। सभी लोगोमे शान्ति स्वभावसे मौजूद है। बस जो अशान्तिके कारण लगे है, उनको दूर करें तो शान्ति अपने आपमे पैदा होती है। सो मेरा स्वभाव शान्ति है, क्योकि मेरा स्वरूप ज्ञानमात्र है और केवल जाननमे अशान्ति नही है। जो दूसरोको अपनाते हैं, अपना इष्ट मानते हैं, उनमे ही अशान्ति होती है।

भैया! यह संसार एक अजायबघर है। इस अजायबघरमे चीजोको देखते जाओ, ज्ञाताद्रष्टा बने रहो, पर इसमे किसी भी चीजमे हाथ न लगाओ। अगर किसी चीजमे हाथ लगाया तो गिरफ्तार कर लिये जावोगे और दंड मिलेगा। यह सारा संसार अजायबघर है। यहाँ मेरा कोई सम्बध नही है। किसीसे अपना स्नेह न लगाओ। ऐसा अपना ज्ञान जगाओ। केवल उनके ज्ञाताद्रष्टा रहो तो तुम्हारी कुशलता है और जहाँ स्नेह जगाया तो बस पराधीन हो गये, परेशान हो गये। ज्ञाता द्रष्टा रहो, उनमे चित्त न लगाओ। कभी-कभी कहने लगते है कि तेल देखो और तेलकी धार देखो, ऐसी कहावत है। यह कहावत किस बात पर है, सो तो पता नही है। इसका मतलब यह है कि देखते जाओ, पर कुछ मत बोलो। उसमे बाधा कुछ न डालो। अपनी ओरसे कुछ न कहो। दुनियाको देखते जाओ, पर केवल ज्ञाता द्रष्टा रहो। कोई ज्ञाता द्रष्टा रहे, न बोले तो कितनी बडी उसकी शोभा रहती है। यह होती है कि यह बड़ा गभीर है, बडा नम्र है, बोलता कम है, सोचता विशेष है। जो बोलते है उनके झंझट भी ज्यादा होते है। बल भी मन, वचन, कायमे नही रहता है। मैं ज्ञानी हू, निर्भय हूं, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मेरेमे नही है ऐसा शुद्ध, स्वच्छ जो ज्ञायकस्वभाव है, उस ज्ञायकस्वभावमे ही अपना उपयोग लगाऊँ और वैसा ही ज्ञान रखकर अपनेमे अपने

लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

ज्ञस्वभावे मयि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं स्वभावतः।
तत्रस्थितौ सुखं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३२॥

मैं आत्मा ज्ञानस्वभावी हूँ। आत्मामे और ज्ञानमे कुछ अन्तर नही है। लक्ष्य लक्षण मे भेद है। ज्ञान लक्षण है आत्मा लक्ष्य है, पर ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। जो ज्ञानभाव है हम उसको ही आत्मा कहते है। जो ज्ञानस्वभाव है बस उसको ही आत्मा कहते है। तो ज्ञानस्वभाव जो मैं आत्मा हू उस ज्ञानभावके जान लेनेपर स्वभावसे ही सब कुछ ज्ञात हो जाता है। जिसमे प्रतिबिम्ब पडनेका स्वभाव है ऐसे दर्पणको देख लेने पर दर्पणके सामनेकी चीजें सब देख ली जाती है। देख रहे है हम दर्पणको, पर सामनेकी सब चीजें देखनेमे आ जाती है। इसी तरह ज्ञानस्वभावी एक आत्माको जान लेने पर सब पदार्थ स्वभावसे जाननेमे आ जाते हैं। क्योकि यह आत्मा पदार्थोंको नही जानता है। क्योकि जितना ज्ञान है गुणकी परिणति है और ज्ञान गुण आत्माके प्रदेशमे है। आत्माके प्रदेशोमे रहने वाले गुणकी परिणति आत्मप्रदेशमे ही है और उस ज्ञानपरिणमनका प्रयोग भी आत्मा पर ही होता है, अन्यत्र नही। पर आत्माका ज्ञान ही इस किस्मका चलता है कि जैसे सब कुछ पदार्थ हैं उनका ग्रहण रूप जानन आत्मामे होता है। यदि आत्माको जान लिया तो सभीको जान लिया और एक आत्माको नही जाना तो सब जाननेमे आ ही नही सकता।

भैया! आज इस चीजको जानने चले, कल और चीज जानने चले, परसो अन्य चीज जानने चले। बाह्यमे दृष्टि देकर पदार्थोंको जान-जानकर कोई सर्वज्ञ बनना चाहे तो नही बन सकता है। सचय करके तो जान ही नही सकते है। आज इतना जाने तो कल दसोको जानने चले। ऐसा संचय करके नही जान सकते है। सबके ज्ञाता बन सकते है तो केवल आत्माके जाननेमें बन सकते है। क्योकि केवल आत्माके जाननेके प्रयोगमे वह शक्ति विकसित होती है कि इसका पर्दा या इसका आवरण सब समाप्त हो जाता है। पर्दा और आवरण तो उनमे रागद्वेष है और व्यवहारमे कर्म है। ज्ञानका पर्दा साक्षात् तो रागद्वेष है और व्यवहारमे कर्म का उदय है। कर्मके उदयका निमित्त पाकर रागद्वेष उत्पन्न होते है और रागद्वेषके विभावोमे उपयोग उलझा तो यह आत्माको नही जान सकता। तो एक आत्मा जान लेनेपर सब सारा विश्व ज्ञात हो जाता है।

कल्याण वह ही कर सकता है कि जो दुनियाके लिये अपनेको मरा समझे। दुनिया के लिए हम मरे हैं, इतना कोई समझ ले तो आत्मकल्याण कर सकता है। दुनियाके बीच हम जीवित है, जिन्दा रहना चाहते हैं अर्थात् दुनिया इसे समझे, जाने, बस जिसके यह भीतर

मे आशय हुआ कि वह आत्मकल्याणसे गया। आत्मकल्याण वही कर सकता है जो अपना सर्वस्व त्याग सकता है। जीवका वर्तमान सर्वस्व क्या है? अपना अहंकार, अपनी पर्यायबुद्धि, अपना यश, अपनी कीर्ति, अपना मान। मैं मनुष्य नही होता, कीडा मकोडा होता अथवा कही बहुत दूर देशमे होता तो मेरा फिर यहाँ क्या था? तो यह समझना जरूरी है कि मेरा कुछ नही है। क्या ऐसा हो नही सकता कि मैं और पर्यायमे होता। हम अन्य पर्यायमे थे तब तो वह जबलपुर तथा लाटगज न था। ऐसा ही सोच लो तो वाञ्छा नही रहती, चाह नही रहती, अपने आपकी पोजीशन रखनेका, पोजीशन बढानेका भाव नही रहता।

भैया! शाति और आनन्द तो वहाँ ही है जहाँ किसी प्रकारकी तरग न उत्पन्न हो। जैसे कि कोई मनुष्य विरोधियोके बीच पडा हो और वह पुरुष यह चिल्ला उठे कि इन लोगो ने हमको मार डाला, किसी आक्रमणमे यह कहा जाये। बीचमे पड़ा हुआ पुरुष जो चिल्ला उठता है सो इसी तरहसे हुमे चिल्ला उठना चाहिए कि इन इष्ट पदार्थोंने हमे मार डाला। ऐसे इष्ट पदार्थ जिन्हे हम प्रिय समझते है, उन इष्ट पदार्थोंने हमे बरबाद कर दिया है। क्योकि उन इष्ट पदार्थोसे अतमे हमे मिलता कुछ नही। राग करने, स्नेह करनेसे मिलता कुछ नही है बल्कि जितना राग और स्नेह घरमे किया जाता है, बच्चोसे किया जाता है, अज्ञानी जनोसे किया जाता है, उससे भी कुछ कम राग घर गृहस्थी त्यागकर अपने ज्ञान और चारित्र की साधनामे यदि उत्पन्न होता तो कुछ हाथ भी लग सकता था, कुछ अपनेमे लाभ भी देकर जा सकता था, पर उन मित्रोमे, कुटुम्ब परिवारमे रात-दिन लगे रहते है, पर उसकी एवजमे उन्हे क्या मिल जाता है? यदि हिसाब देखा जाये तो शून्य मिलता है। कुछ नही मिलता, उल्टी कषाय ही मिलती है, क्षोभ ही मिलता है, फँसाव ही मिलता है। उल्टी हानि ही मिलती है।

परकी दृष्टि हटाकर केवल ज्ञानस्वभावी निज आत्माको जाना जाये तो वहाँ ऐसी ऋद्धि प्रकट होगी कि सारा विश्व, तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थ एक साथ अवभासन मे ही जायेंगे। जब हम सारे विश्वको जान जायेंगे तो हमे अणुमात्रका भी प्रयोजन न रहेगा और जब तक हमे प्रयोजन है तब तक ज्ञान विकसित नही होगा। सो न यहाँ मुझे लाभ है, न भगवान्‌को लाभ है। भगवान्‌को लाभ इसलिए नही है कि मुग्धोकी दृष्टिमे जानना, न जानना सब बराबर है, जब कुछ वहाँ मतलब नही निकलता। जैसे कोई रोजगार या सट्टा को जानता हो तो नफा मिले तो उसके जाननेसे फायदा है। यदि भगवान् बातें जानता रहे, पर कोई प्रयोजन नही साधता है तो जानना लाभरहित हुआ। संसारी लोगोकी दृष्टिसे यहाँ

यो हम लोगोकी जानें, यह यो लाभ हो, इस विकल्पमे तो हम कोरे बनते है, रीते बनते है, फसाव आता है।

भैया ! यह मूढोके लिये बडी समस्या है कि सिद्ध हो गये तो मतलब नही रखते है और यहाँ लोग मतलब रखते है तो उनको जानकारी होती नही है। जो जानता है उसको जानकारीसे मतलब नही और जो मतलब रखता है उसको जानकारी होती नही। सो जानने तककी उत्सुकता छोडकर अपनेमे कृतकृत्यताका यत्न करो। ज्ञानवृद्धिका भाव न करके कृत-कृत्यताका यत्न करो। जाननेमे दुनिया आवे तो क्या, न आवे तो क्या ? मगर कृतकृत्यतापे क्षोभ नही हो सकता है। कृतकृत्यताके मायने सब कुछ कर लेना, अब कुछ नही बाकी रहा। करने योग्य जो था सो कर लिया, अब मेरे करनेको दुनियामे कोई काम नही रहा। ऐसा भाव होनेका नाम ही कृतकृत्यता है। मेरेको कोई काम नही पडा है। जो है सो होता है, ठीक है। कृतकृत्यताका भाव यदि आता है तो शांति है। मेरा करनेको कोई काम नही है क्योकि मैं किसीको करता तो नही हूँ। मैं किसी भी पदार्थकी परिणति तो नही करता, तो करनेकी उत्सुकता ही क्यो रखें, वह तो व्यर्थकी चीज है। तो ऐसे विश्रामसे यदि अपने आपमे आ जाये तो ज्ञानस्वभावी इस आत्माके सब कुछ जाननेमे आ जायेगा। स्वके जानने पर सारा विश्व जाननेमे आ जाता है।

प्रत्येक पदार्थके जाननेका यत्न अगर छोड दिया जाये या परपदार्थको विशेष रूपसे न जानकर सामान्य रूपसे ही देखा जाये तो उसमे आत्माका ही ज्ञान होता है, आत्माका ही दर्शन होता है। ज्ञान और दर्शन हो तो उसमे दर्शनका स्वरूप यह कहा गया है कि—

जं सामण्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टुमायार।
अविसेसिदूण अट्ठे दसणमिदि भण्णदे समये ॥

पदार्थका विशेष आकार ग्रहण न करके जो सामान्य दर्शन होता है वही सामान्य दर्शन कहलाता है याने पदार्थको विशेष न जानकर सामान्यका स्पर्श करे सो दर्शन है। एक जगह यह लिखा है कि आत्माके स्पर्शका नाम दर्शन है और परपदार्थोंके प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है यो दो लक्षण हो गये। आत्माके जाननेका नाम और पदार्थोके जाननेका नाम है।

भैया ! दर्शनके लक्षण ये दोनो जुदे है क्या ? नही, जुदे नहीं हैं। कहे कि इन पर-पदार्थोको हमने विशेष नही जाना, चौकी, पुस्तक, कमडल इत्यादिको हमने विशेष नही जाना, पदार्थोंको सामान्य ही हमने जाना। तो पदार्थोंका सामान्य क्या ? इन पदार्थोका सामान्य, ऐसा यदि कहें कि इस सामान्यका अर्थ तो वह विशेष हो गया। जिस दृष्टिमे कोई पदार्थ नजर आ जाये तो वह विशेष हो गया। पदार्थोंका सामान्य, ऐसा यदि कहे कि इस सामान्य

का अर्थ तो वह विशेष हो गया । जिस दृष्टिमे कोई पदार्थ नजर आ जाये तो वह विशेष हो गया । पदार्थोंका सामान्य तो वह कहलाता है कि जहाँ जाननेके समय पदार्थोंकी खबर भी न रहे । अगर किसी पदार्थकी खबर है तो वह पदार्थोंमें सामान्य हुआ कि विशेष ? किसी एक पदार्थका अगर हमे पता लगता है तो वह विशेषका ज्ञान हुआ कि सामान्यका ज्ञान हुआ ? वह विशेषका ज्ञान हुआ । जिस ज्ञानसे कोई पदार्थ नजर आवे तो वह विशेष ज्ञान है । सामान्य ज्ञान वह है कि जिसमे कोई विशेष पदार्थ ध्यानमे न रहे तो यही अस्तित्व सामान्यका ज्ञान हो रहा है, सर्व पदार्थोंमे जो सत्ता सामान्य है उसका ज्ञान हो रहा है । सत्ता सामान्य के ज्ञानमे क्या यह कह सकते हैं कि इस पदार्थका सत्त्व सामान्य जान रहे है । इन पदार्थोका, फिर सत्त्व सामान्य, यह विरुद्ध बात हो गयी । तब यह है पदार्थ, यह जाननेमे आ गया तो विशेष सत्ता हो गयी । तो सत्त्वसामान्यके जाननेके समय सर्वपदार्थ उसके उपयोगसे निकल गये । अगर कोई पदार्थ उसके उपयोगमे रहे तो वह सत्त्वसामान्यका उपयोग नही है । इस सत्त्वसामान्यके उपयोगमे बाहरी पदार्थ तो रहते नही, और यह ज्ञाता स्वय है । सो यह कहो निकल नही जा सकता है । तब वहाँ ज्ञाता सामान्यका ही प्रतिभास होता है तो चाहे यह कहो कि पदार्थके सामान्य प्रतिभासको दर्शन कहते हैं, चाहे यह कहो कि आत्मप्रतिभासको दर्शन कहते है । दोनोका एक अर्थ है ।

ज्ञानस्वभावी निज आत्माको जान लिया तो सारा विश्व ज्ञात हो जाता है । क्योकि इस आत्माके अन्दर जाननेका ही स्वभाव है कि विश्वमे जो है उसकी जानकारी हो जाये । हमे जो थोडी-थोडी जानकारी रहती है तो मेरे स्वभावके कारण नही है, किन्तु जाननेके विकासमे रोड़ा अटकाने वाले मौजूद है । इसलिए हमारा ज्ञान थोडा रह गया । स्वभावकी ओरसे कमी नही है, किन्तु उसमे आवरण है, रुकावट है, जिसके कारण हमारेमे ज्ञानकी अल्पता है । मैं तो स्वभावसे ब्रह्म हू । ब्रह्म कहते उसे है जो अपने ज्ञानसे रहता हो । अणुमे यह स्वभाव नही पाया जाता कि वह अपने रूप, रस, गध, स्पर्शके विकासमे बढा हुआ रहे । जघन्यगुण वाला भी अणु हो वह मध्यम गुण वाला भी हो सकता है, उत्कृष्ट गुण वाला भी हो सकता है और उत्कृष्ट गुण वाला उतरकर जघन्यमे आ सकता है । बढनेका स्वभाव परमाणुमे नही है, मगर आत्मामे है । परमाणुमे तारीफ उसकी मानी जाती है जिसमे जघन्य गुण रहे । आत्माकी तारीफ उसकी मानी जाती है जिसमे उत्कृष्ट विकास हो । परमाणुमे शुद्धताके लिए तारीफ उसकी मानी जाती है कि जघन्यगुण आ जाये, एक डिग्रीका स्पर्श आ जाये तो पूर्ण शुद्ध हो गया और जीवमे पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्ति हो जाये तो शुद्ध मानते है ।

ज्ञानस्वभावी इस मुझ आत्माको जान लेनेसे सारे विश्वका स्वभाव ज्ञात हो जाता है और फिर इस पुरुषार्थसे सारे विश्वका ज्ञान हो जाता है। सो कहते है, ऐसा मै ज्ञानस्वभावी निज आत्मतत्त्वमे ठहरूँ तो मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता हूँ। मेरा सुखी करने वाला कोई दूसरा नही है, अपनी शुद्ध दृष्टिसे ही खुद मैं सुखी हो सकता हूँ। किसीका भरोसा न रखो कि ये मुझे आराम देंगे, मेरे संकट मिटा देंगे, ऐसा दुनियामे कोई नही है। वैसे भी देखो—जो मेरे ४ साथी होते है वे भी मेरे अच्छे चारित्र, अच्छे आचार व्यवहारके कारण होते है। तो असली साथी कौन है ? क्या वे चार साथी ? नही, मेरा चारित्र और व्यवहार ही मेरे साथी है जिसके कारण चार लोग मेरा साथ निभाते है।

साधुवोकी बहुत भक्ति करते है और उन्हे बहुतसे लोग पूछते है। कौनसी ऐसी बात है जिसके कारण बहुतसे लोग उन्हे पूछने लगते है। एक चारित्र और सद्व्यवहार ही उनका ऐसा है कि बहुतसे लोग उनके पूछने वाले हो जाते है। तो बताओ किस कारणसे बहुतसे लोग पूछते है ? चारित्र और संयमसे। क्या फलाने सागर कहलानेसे, क्या फलाने कीर्ति कहलानेसे ? नही, भक्तिसे, संयमसे और ज्ञानकी शुद्ध दृष्टिसे। और आगे बढकर देखो उस साधु की शुद्ध भक्ति चारित्र आदि ही उनको सुहा गया जिसके कारण लोग उसका आदर करते है याने वे लोग अपने ही चारित्रका आदर करते है, साधुके चारित्रका आदर नही करते हैं। सो मै ही अपने शुद्ध ज्ञायकस्वभावको जानूँ और उसमे ही रहूँ तो सुखी हो सकता हूँ। मेरा सुखी होनेका कोई दूसरा उपाय नही है।

कल्पनालोलकल्लोलैस्त्यक्तः शान्तः स्वय सुखी।
तत्राश्रयः परो नास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३३॥

कल्पनारूप चंचल तरगोसे जो छूटा हुआ पुरुष है अर्थात् जिस पुरुषमे कल्पनाओकी तरंगें नही उत्पन्न होती है वही पुरुष शांत है और वह ही सुखी है। जैसे कहते हैं ना कि बैठे बैठे आफत मोल ले लेते है। तो इसी प्रकार जितने भी सकट हे सो बैठे-बैठे ख्याल बनाकर आफत मोल ले लेते है। आफत कुछ नही है। देखो ये सब कितने अच्छे बैठे है, कितने शांत बैठे है, हमे तो यह लग रहा है कि इनमे आफत ही नही है। देखो सभीकी कैसी शांत मुद्रा है और जैसा हम समझते है तैसा सब समझते होंगे कि हम बैठे बैठे आफत ले रहे है। ऐसा विरला ही होगा कि जो सोचता हो कि जो होता है सो होता है। इस जीवको सोचो तो कुछ तकलीफ नही है। तकलीफ इसको अपने आप कल्पनाएँ करके मिल जाती है। इसमे सम्बन्ध है निमित्तनैमित्तिक भावोंका, कर्मोदयका, मगर यह देखो कि दूसरी चीज चाहे परिवार हो, चाहे धन हो, चाहे लोक हो, कोई चीज इस आत्माके भीतर घुसकर इसमे आफत

नही करती ।

भैया ! जितने लोग है वे अपनी जगह बैठे-बैठे अपने हाथ-पैर फैला रहे हैं, अपने गाल मुह फैला रहे हैं, इसके अलावा और कुछ नही कर रहे है, मगर यह जीव अपना ख्याल बनाकर दुःखी हो रहा है । सो जो क्लेशकी चंचल तरगोसे छूटा हुआ है वह ही शांत है, स्वयं सुखी है, क्योकि सबकी स्थितिमे पर-आश्रय तो रहता ही नही । कल्पनाएँ छूटें तो उसमे कोई परपदार्थ आश्रय नही है । और जब पर-आश्रय नही है तो वहाँ परेशानी नही है । एक शब्द है ना—परेशान । यह आदमी बहुत परेशान है । परेशानी उर्दूका शब्द है । इसको हमने सस्कृतमे लिया है । संस्कृतमे इसका क्या अर्थ है—पर ईशान । परके मायने दूसरा पदार्थ, ईशानके मायने मालिक । परको अपना मालिक बनाना और परको स्वयं ईशान बनाना । याने पर है ईशान जिसका, पर है मालिक जिसका और परके मायने है अन्य पदार्थ । अन्य पदार्थोंको अपना मालिक बना लिया । ऐसा काम करने वालेको कहते है परेशान और परको मालिक बनाना इसके ही मायने है परेशान । सो देख लो कि जितनी भी परेशानियाँ है उनमे ही यह बात आती है कि किसी दूसरे पदार्थका स्वामित्व माना तो परेशान है, नही तो कुछ परेशानी नही है ।

एक साधुके पास कुछ शिष्य थे । साधुके पास एक पाँच सेरकी सोनेकी ईंट थी । सोनेकी ईंटको एक शिष्य उठाये हुए साधुके पीछे-पीछे जा रहा था । साधु किसी जगलके बीच मे शिष्यसे बोला कि बेटा ! यहाँ संभलकर चलो, पैरोकी आवाज न हो, क्योकि यहाँ डर है । शिष्य बेचारा बहुत परेशान हो गया । स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दतासे चल नही सकता था । दोनोको इस ही प्रकार चलते-चलते दसो दिन हो गये । सोचा कि अब मैं क्या करूँ ? चलते-चलते रास्तेमे एक कुवेंमे शिष्यने ईंट पटक दी । गुरुको मालूम न हुआ । दोनो आगे चलते गये । दोनो फिर किसी जगलसे गुजरे । गुरु बोला—बेटा ! यहाँ चुपचाप चले चलो, क्योकि यहाँ पर डर है । शिष्य बोला—गुरु जी, अब आप निःशङ्क होकर चलिए, मैंने डर को तो एक कुवेंमे पटक दिया ।

भैया ! यहाँ पर परको अपना स्वामी भी बनाते और परके स्वयं स्वामी बनते, इसी कारणसे तो लोगो पर परेशानी है । कोई भी यदि परेशानीमे नजर आ रहा है तो समझो यही अपराध कर रहा है ।

भैया ! देखो स्त्रीने ऐसा कह दिया कि माँ यो बिगड गयी, लडकेने मेरी बात नही मानी, पिताजी ने हमारी उपेक्षा कर दी, बस इसीसे मानसिक दुःख हो गया लोगोको । वह दुःख किस बातका है ? परको अपना मालिक बनानेका या परका खुद मालिक बननेका । यही

दुःखका कारण है । आदमियो पर दूसरा कोई दुःख नही है । सो यह कितना व्यर्थका ऊधम है ? परको अपना मालिक बनाना या परका मालिक बनना कितना ऊधम है ? सो यह एक तरहका कषाय आदिका ऊधम है ।

थोडे पुण्यके दिन है तो मौजमे रहता है । पर यह मौज जल्दी ही खत्म हो जायगी । जहाँ पुण्य खत्म हुआ तहाँ यह ऊधम मिट जायगा । एक समुद्रमे एक बूँदकी गिनती है । क्योकि एक-एक बूद मिल करके समुद्र बन गया । पर इन अनन्त कालोके आगे १०० वर्ष की क्या १००० सागरकी भी कुछ गिनती नही हो सकती है । समुद्रकी बूँद तो गिननीके काबिल है । यद्यपि अनगिनत बूँदे है, पर बूद बूँद करके देख लो सख्यातमे आयेगी । असंख्यातमे प्रकट हो गयी तो असंख्यातमे उत्कृष्ट हुई । वह बूँद संख्यात है, किन्तु अनन्त कालोके सामने ये हजार सागर, एक लाख सागर, एक लाख क्या दस पन्द्रह लाख सागर भी कुछ गिनती नही रखते । वर्षोंकी बात जाने दो । तो फिर यह कितने दिनोका ऊधम है ? तो इन कल्पनाओकी चंचल तरगोसे निवृत्ति हो तो उसका उपाय यह है कि स्वभावदृष्टि हो । उन कल्पनाओकी निवृत्ति हो तो शान्ति प्राप्त हो सकती है ।

भैया ! जब किसी इष्टका वियोग हो जाता है तो बडा क्लेश होता है और उस समय बडे हितू लोग समझाते है कि अरे वह तुम्हारा नही था । कोई भी किसीका नही होता । कोई किसीके साथ नही आया और न साथ जायेगा । वह कहता है कि यह तो ठीक है । मैं भी समझता हू, पर वे कल्पनाएँ छूटती तो नही है । देखो इन बातोको जानते तो हम भी है, पर ये कल्पनाएँ यो नही छूटती है । तो एक कल्पना ही क्यो करो, अभी देखो कोई बिटिया की सगाई हो । सगाई न हुई हो, केवल बात चलती हो तो बिटिया दबकर चलेगी । अभी कुछ नही हुआ, जरासी बात केवल हुई । सगाई पक्की नही हुई, मगर कल्पनाएँ देख लो कितनी आ गयी कि ससुराल बनने वाली है, ऐसी कल्पनाओसे ही वह लडकी प्रसन्न हो गयी । अभी किसीके बच्चा न हो, किसी लडकेको गोद लेनेकी बात ही चल रही हो तो बस ममता इसी समयसे हो गयी । अभी किसीका मकान गिरवी रख लिया और जान रहे कि वह तो गरीब हो गया । अब वह इस कल्पनामे आ गया कि मैं ही इस मकानका मालिक हू । बस मालिकका जैसा बर्ताव उस गरीबके साथ होने लगा । तो जितनी भी अटपटी क्रियाएँ है वे सब परेशानीकी क्रियायें है । वे सब परेशानियाँ कल्पनाके कारण है ।

एक कविने लिखा है कि दुनियामे सबसे बडा दानी कौन है ? उसने बताया है कि दुनियामे सबसे बडा दानी महाकजूस है । सबसे बडा दानी इसलिए है कि एक पैसा भी वह खर्च न करेगा और मरते समय साराका सारा दूसरोको छोडकर चला जायेगा । वह महा-

कजूस कितना बडा दानी है। जो धन खर्च करते रहते हैं, अभी फलांको देना है, अभी फलां को देना है, इस तरहसे सब खर्च कर डालते है, पर जो कजूस दूसरोको धन देना जानता ही नही है और अंतमे इकट्ठा सब दे जाता है तो वह कितना बडा दानी है। अरे मरने पर साथ मे कौन ले जा सकता है ? अगर सब ले जाया जा सकता होता तो वह कजूस उसे भी न छोडता। अरे भाई कितना बडा अन्याय हो रहा है। धन तो परभवमे सग जा ही नही सकता है। इसीसे तो वह कजूस अंतमे गम खाता है। अगर धन भी साथमे जाता होता तो वह कजूस गम नही खाता। अरे साथ जानेकी बात तो छोडो अपना ही कुशल नही है कि हम मरकर क्या बन जावें ? अपनी तो कुशलता नही है। आज मनुष्य है तो कल पता नही क्या हो जावेंगे ?

कल्पनाका जो जाल है उसे कम करना चाहिए और ज्ञानतत्त्वमे अपना उपयोग देना चाहिए तब जीव सुखी हो सकता है। जिस स्थितिमे परपदार्थोंका आश्रय नही लिया जाता वह स्थिति सुखद होती है और जिसमे परपदार्थोंका सहारा लिया जाता है, परपदार्थोंका आश्रय लिया जाता है वह स्थिति सुखद नही होती है। ये कल्पनाएँ चचल है किन्तु चंचल होने पर भी यह किसीकी चीज नही है। निमित्त तो है अन्यका और ठहरनेकी जगह मिली आत्मामे, अगर एक ही के कारण उसमे ठहरें तो वे चचल न रहे। ठहरने वाला भी वही हो और जगह भी उसकी हो तो कुछ समय ठहर सके। ठहराने वाले है कर्म और जगह मिलती है आत्मामे किनको ? कल्पनाओको। इसलिए वे सब कल्पनाएँ ही है और नष्ट हो जाती है। न आत्माकी बनकर रहती है और न कर्मोकी ही बनकर रहती है।

जैसे यह छाया है चोकी पर तो इस छायाकी क्या कीमत है ? हाथके निमित्तसे यह छाया हुई और चोकी पर हुई, मगर वह छाया हाथ पर होती तब गनीमत थी। जैसे हाथमे रूप है, रस है, पर यहाँ छायाका निमित्त तो है हाथ और हुई है चोकीपर तो कुछ कुशलता नही है। मिटनेके लिए जा रही है। इसी तरह रागद्वेषकी कुशलता खुद नही है। क्रोध कषायप्रकृतिके निमित्तसे क्रोध हुआ और हुआ है आत्मामे, तो उसकी कुशलता नही है। जो स्वयं मर मिटने वाला है, अशरण है, अध्रुव है उससे प्रेम करते है, उसका गर्व करते है, अहकार रखते है कि यह मैं हू, बस यही अज्ञान है।

भाई ! एक कहावत है कि 'गले पडे बजाय सरे' बोलते है ना ? जैसे ५-१० मित्र फिर रहे हो, आपसमे मजाक कर रहे हो। एकने दूसरेके गलेमे ढोल डाल दिया, मानो मजाक किया कि वह झेंप जाये। जिसके गलेमे ढोलक डाली वह भी चतुर था, उसने दो डडे उठाये और ढोलका बजाना शुरू किया। इसका अर्थ यह निकला कि जो गलेमे ढोलक डाले

है वह नेता है। उनका वह नेता बन गया। फँसाना तो दूर रहा। जिसने गलेमे ढोल डाल दिया वह खुद फँसकर रह गया। जिसके गलेमे ढोलक डाली उसने समझा कि बजा दें, नही तो धो-धो हो जायगी। इसी तरह ये सब समागम जबरदस्ती हो रहे हैं। ठड नही सह सकते, भूख नही सह सकते, प्यास नही सह सकते, पचेन्द्रियके विषयभोग बिना नही रह सकते, ऐसा आज समागम मिल गया है इससे बरबादी है। मगर ज्ञानी पुरुष वह है जो गृहस्थीमे रहकर भी अपना कल्याण करे। अरे यह गृहस्थी गले मढ दी गयी है तो गले पड़े बजाय सरे।

अब गृहस्थी मिल गयी है तो पालन किए ही पिंड छूटेगा। तो ठीक है, मगर भीतर मे अपनी करुणाके लिए, अपनी अनाकुलताके लिए यह समझना चाहिए कि ये सब मेरा कुछ नही है। सब कुछ भी अगर स्वाहा हो जाये तो हो जाये, मगर शोकको कोई बात नही है। मगर शुद्ध ज्ञान यह अवश्य हो जाय कि मेरा कुछ नही है, मैं क्यो शोक करूँ, मुझे शोक नही होना चाहिए। इतनी हिम्मत ज्ञानी गृहस्थके होती है। इसी कारण वह कल्पनाएँ नही बढाता और जो होता है उसका ज्ञाता द्रष्टा रहता है। वह कल्पनाओकी चचल तरगोसे अगर छूटे तो शांति मिल सकती है। उसमे ही यह जीव आनन्द पायेगा जिस निर्विकल्प स्थितिमे किसी परको यह उपयोगरूपी आसनमे किसी पर मैलको स्थान नही देगा। किसी परतत्त्वको हम अपने उपयोगमे नही रखें तब वहाँ यह निज प्रभु प्रसन्न रहेगा। मित्रके दुश्मनने बोल दो तो मित्रका प्यार नही रहेगा। मित्रके दुश्मनसे अगर राग बढ़ाते हो तो मित्रका हृदय तुममे न रहेगा। इसी तरह चैतन्य प्रभुके बैरी कषायोको अपने आपमे बुलाते हो तो वह चैतन्य प्रभु तुम पर कृपा नही कर सकता है। तो इन चंचल कल्पनाओंको छोड़कर अपने स्वभावके दर्शन करो और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

इद सुखमिद दु.खमज्ञस्यैव हि कल्पना।
स्वच्युतौ सर्वक' क्लेश. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–३४॥

कहते है कि यह सुखी है और यह दुःखी है ऐसी कल्पनाएँ अज्ञानी जीवके ही होती है। ज्ञानी जीव तो उन सब बातोमे क्लेश समझते है। जो जो बातें अपने स्वभावसे च्युत होनेके समय होती है। चाहे वह सुख हो, मौज हो, विषयोंका आनन्द हो वह सब उसके लिए कष्ट मालूम होता है क्योंकि यह मौज कब तकका मौज है? कहते है ना कि चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात। कितने दिनके आनन्द है, किसमे मोह हो रहा है? स्त्री है, पुत्र है, परिवार है, यह सब क्या है? जैसे स्वप्नमे देखे हुए दृश्य सही मालूम होते है वैसे ही रागद्वेषकी बातें सही मालूम हो रही है। यह दुःख तो रागसे ही होता है। परमार्थसे यहाँ

कुछ भी चीज सारकी नही। यहाँ तो सब अंधेरेमे रखने वाली चीजे है। प्रगतिके मार्गमे वे सब इस जीवके लिए घाटियाँ है।

जो लौकिक विवेकी पुरुष होता है वह बहुत भविष्यकी सोचता है। यही देख लो, घर गृहस्थीमे जो एक जिम्मेदार गृहस्थ होता है वह आगे तककी सब बातें सोचता है और यहाँ तक कि गांठमे दो हजार भी हो तो उनको भी खर्च न करेंगे। ५ साल, १० सालका जो ब्याज होगा उसीसे अपना गुजारा करेंगे। हिसाब अगर लगावो तो ज्यादासे ज्यादा १० वर्ष और जीवेंगे। बूढे हो ही गये है। हजार भी अगर एक सालमे खर्च करें तो १० सालमे १० हजार ही हुए। पर बहुत दिनोकी सोचते है कि यह रकम बनी रहे तो अतमे सब दान कर देंगे। पर परमार्थसे विवेकी लोग बहुत ऊँचा सोचते है कि ऐसा उपाय बना रहे कि जिससे अनन्तकाल तक आनन्द चले, क्लेश न सहना पडे। जब ऐसा चित्तमे बन सके तो विषय प्रसंगोके जो मौज हैं वे भी उसे फीके लगने लगते है। वह समझता है कि ये पराधीन है, कषाय देनेके लिए है। ये तब तक रहते है जब तक कि दूसरोका मन साधे रहे। दूसरोकी जरूरत पूरी करते रहे याने दूसरोके नौकर बने रहे तब तक यह मौज है। इन मौजोसे वर्तमानमे उन्नतिमे बाधा है और आगे तो कुछ मिलता ही नही है। ऐसे ही विषयभोग है जिनके कारण सब फीके लगते है। चाहे सुख हो या दुःख हो सभीमे क्लेश है, क्योकि स्वभावसे च्युत होनेकी अवस्था है ना? उसीमे सुख और दुःख प्रतिभास होता है। तो यह सुख है यह दुःख है, यह अज्ञानीकी ही कल्पना है। ज्ञानी तो उन सुखोसे और दुःखोसे अलग रहकर अपने स्वभावके दर्शनमे ही मस्त रहना चाहता है।

भैया! जैसे जिसको कोई बडा लाभ होनेको दीख रहा हो और कोई लोग उसे थोडी बातोमे बहलावें तो वह नही बहकता है। जैसे कोई बडा हीरा है, रत्न है, वह जान गया है कि यह ५० हजारकी कीमतका है तो अब उसे बनिया या और कोई कहे, भाई दो चार बोरे गेहूं दो चार साल खानेके लिए ले लो और इसे फेंक दो तो वह नही बहक सकता। चाहे कितने ही हीरे गँवा चुका हो, लेकिन अब उसे यह मालूम है कि यह ५० हजारकी कीमतका है। इसलिए वह बहक नही सकता है। इसी तरह जिस ज्ञानीको यह पता हो गया है अपने आपकी आत्मामे कि यह तो क्लेश है और यह सामर्थ्य है, वह आनन्द है कि जिसकी उपमा लोकमे किसी वस्तुसे नही दी जा सकती है। अब उसे स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत ये बहकाना चाहे तो बहका नही सकते है अर्थात् वह उनमे अपने आप नही लग सकता। यह सुख है, यह दुःख है, ये अज्ञानीकी ही कल्पनायें है। अपना स्वभाव तो जाननेका है।

भैया! सुखमे भी क्लेश समझे कोई तो वह बडा ज्ञानी पुरुष हो सकता है। अच्छी

आय है, दुकान है, सर्विस है, लोगोका सम्पर्क है, लोग बड़ा मानते है, अच्छे साधन है, रईसी ढंगसे रहते है, ऐसे भी साधन उस ज्ञानीको विष लगते है, बेकार लगते हैं, उसे कुछ जँचते नही है, क्योकि उसने तो सत्य स्वरूपके आनन्दको समझ लिया है कि उसका वास्तविक स्वरूप सिद्ध समान है। वह ज्ञानी पुरुष इन विषयोके बहकानेमे लग नही सकता। यह सुख तो एक कर्मके आधीन है। उदय हो तो मिले। उदय उसका अनुकूल नही है तो कैसे सुख मिल सकता है? पुण्यका उदय बड़ी चीज है या ज्ञानका रसास्वादन बड़ी चीज है। पहिले भी देखो अनन्त साधु हो गये जिनको उनकी जिन्दगीमे जानने वाला भी कोई नही था। जो मोक्ष गये है उनमें से कितने साधु ऐसे है कि उनको जीवनमे यश नही मिला, इज्जत नही मिली, पूछने वाला भी नही मिला, दु:खोमे ही उनकी जिन्दगी बीती, उपसर्गमे ही जिन्दगी बीती, ऐसे भी बहुतसे साधु हुए है। सबसे महान् जो वैभव है, मूल्यवान चीज है वह ज्ञानका आनन्द है वह उन साधुवोमे था।

जैसे व्यवहारमे भी लोग कहते है ना कि हम तो अपने घरके बादशाह हैं, दूसरोसे क्यो दबें? वे अपने घरके बडे होगे, हम अपने घरके बडे है, हम क्यो दबें? सब अपने-अपने घरके राजा है। ऐसी बात सोचकर कोई दूसरेके आधीन नही होना चाहता है। सभी अपने-अपने स्वरूपमे परमात्मा है, प्रभु हैं, सब कुछ है, किन्तु दूसरोकी आशा लग जाये, दूसरोका मुह ताका जाये, दूसरोके आधीन रहा जाये यह तो ठीक नही। अरे दूसरोको परेशान करने के लिए क्यो नाना यत्न किए जायें? अच्छा होना भी उल्टा असर है। अगर किसीके मनाने का यत्न करो, राजी रखनेका उपयोग करो तो वह समझता है कि वे मुझे बहुत मनाते है, तो राजी मुश्किलसे होता है और कोई उसके मनानेकी बात न करे, उसको राजी रखनेकी बात न करे तो वह खुद चाहेगा कि भाई किसी दिन कुछ बोल दें, किसी दिन कह दें तो हमारा भाग्य है। किसीको खुश रखनेका यत्न करो तो वह कठिनाईसे होगा और समतासे अगर रहे, किसीको खुश करनेका यत्न न करें तो दूसरे लोग उसके दर्शनसे खुश हो सकते है। अपने यथार्थ काममे लगना ही बुद्धिमानी है और अन्य काम तो स्वयं अपने आप होते है।

दो आदमी थे। उनमे विवाद हो गया कि भाग्य बड़ा है या पुरुषार्थ बड़ा है। तकदीर बडी है कि तदबीर बडी है। तकदीर भाग्यको कहते है और तदबीर पुरुषार्थको कहते है। तो दोनोमे विवाद हुआ सो राजा तकके पास मामला पहुचा। राजाके दरबारमें तो यह होता है कि पेशी लग जाती है। जब राजाके यहाँ यह मामला आया तो मालूम हुआ कि कलकी पेशी है। राजाने नौकरोको आज्ञा दी कि इन दोनोको ऐसी कोठरीमे बंद कर दो कि

जहाँ कोई न आवे । और वहाँ किसी गुप्त जगहमे दो लड्डू छुपाकर रख दो किसी आलेमे ऊपर और दोनोको कोठरीमे बंद कर दो । अब दोनो भूखों मरें । पेशी दो दिन बादमे रखी । तकदीर वाला सोचता है कि अगर तकदीर होगी तो कुछ मिल जायेगा । तदबीर वाला क्या करता कि इधर-उधर खोजता कि चाहे घास ही मिल जाये खा लेवे । तदबीर वाला जब खोजते-खोजते और ऊपर बढ़ता है तो दो लड्डू मिल गये । तकदीर वाला बैठा रहा । तग-बीर वाला बोला—देखो मैने पुरुषार्थ किया, तदबीर किया तो दो लड्डू मिल गये । फिर उसके दया आई, कहा—अच्छा भाई जो विवाद है उसे मैंने माफ किया, तू भी खा ले जिससे पेट भर जाये । दोनोने खूब खाया । अब दोनो ही पेशीमे हाजिर हुए । राजा बोला—तुम दोनोपर दो दिनमे क्या गुजरा ? तदबीर वाला बोला—महाराज यह तकदीरमे ही बैठे रहे और भूखो मरे । हमने तदबीरका तो खुद खाया और इनको भी खिला दिया । तो तकदीर वाला कहता है कि अगर मेरी तकदीर न होती तो लड्डू कहाँसे मिल जाते ? तुमने खोजा, हमारी नौकरी की, हमारे नौकर बने तो तुमने नौकरी खोजी और हमे बैठे ही बैठे मिल गये ।

भैया ! ये जो संसारके काम है, जिनकी हम आप चिन्ता रखते है । यह नही ध्यान मे लाना है कि हम बच्चोका पालन करते है । यह तो भाग्य है । देख लो, घर गृहस्थीमे बापसे बढ़कर पुत्रोका भाग्य निकलता है । बापकी परिस्थिति ऐसी है कि वह अनपढ है, गरीब स्थितिमे है, समाजमे उसकी कुछ नही चलती । किन्ही-किन्हीको देख लो कि बापके जिन्दा रहते हुए ही लड़के बापसे अच्छे रहते है । बच्चा हो, बच्ची हो, माँ हो, स्त्री हो, सभी की तकदीर है तो सभीका भरण होगा, पोषण होगा । वैसी ही बात बनती, फिक्र किसका करना है ? अच्छे साधन मिले है, अच्छी बुद्धि मिली है । यह क्षण बडा कीमती है । यहाँ अपने परिवारकी फिक्र करनी है या अपने आत्महितकी फिक्र करनी है । परिवारकी फिक्र यो नही करनी है कि भाग्य तो परिवारके लोगोके साथ भी है, मगर आत्महितकी बात तो खुदको ही करनी पडेगी । उसमे परिवारका भाग्य मदद न करेगा । वह तो अपनी ज्ञानकी स्थिति पर निर्भर है । सो आत्महितकी फिक्र करो । इसमे एक उत्कृष्ट तत्त्वका अनुभव होता है, ज्ञानरसका स्वाद मिलता है । विषय कषायोके रस इस स्वादके आगे फीके मालूम पडते है ।

दूसरी बात यह है कि लोकमे रहने वाले ये अज्ञानी जीव बडी विपत्ति पा रहे है । शरीरका बन्धन है, कर्मोका बन्धन है, अशुद्ध पर्यायमे है, अशुद्ध स्थितिमे है, बडी विकट आपत्ति है । जो उत्कृष्ट ज्ञान और आनन्द है, उससे हम दूर हो रहे हैं । उसको हम पा नही रहे है । ऐसा अपनेमे बड़ा सकट दिख रहा है । तो देखा होगा कि जिस मनुष्य पर कोई बडा

संकट आ जाता है तो उसके आगे मिठाई भी खानेको रखी जाय, बड़े अच्छे रिस्तेदार लोग मना-मनाकर खिलाना भी चाहते है सो भी उसे कुछ खाना-पीना नही सुहाता है। कल्पना करो कि कोई बडा इष्ट था, स्त्री या पुत्र एकदम गुजर गया, सो उसे इतनी बडी परेशानी रहती है कि कोई मनाकर भी बढिया मिठाई, पकवान खिलावे तो भी वे सब कुछ उसे नीरस लगते है कि नही ?

इसी प्रकार ज्ञानी अपनेको बडे संकटमे देख रहा है। कर्मका बन्ध है, शरीरका बधन है तथा और भी मानसिक व शारीरिक व्याधियां लगी है। आज मनुष्य है न चेते तो कल इससे भी अधिक हीन दशा मिल सकती है। और कदाचित् असंज्ञी हो गये याने चीटा चीटी हो गये तो फिर सब उत्कर्ष धरा रह गया। यहाँ तो सब प्रकारके प्रकाशकी स्थिति है, सत्संग है, मंदिर है, धर्मध्यान है, शास्त्र है। किसी भी प्रकार ज्ञानके विनोदमे अपने समयका अच्छा गुजारा किया जा सकता है। क्या सकट है ? संकट तो यह लदा है कि उपाधिका बधन है। ये निमित्तनैमित्तिक भावकी रगडें भी कैसी है ? संकट तो यही है। इतने बडे सकटका समझने वाला ज्ञानी इन विषयोके सुखको सुख नही मानता है, दुःख ही मानता है। किसी को अपने इष्टका वियोग हो गया तो खोवाकी जबलपुरकी बनी जलेबी भी अच्छी नही लगती है। चित्त तो इष्टकी ओर लगा है। यही दशा ज्ञानी पुरुषकी होती है। उसे विषयोके सुख नीरस क्यो लगते है ? एक तो वह अपनेका सकटोमे पा रहा है, दूसरे वह सुखसे भी कई गुणित ऊँचे आनन्दका अनुभव कर चुका है, ऐसे तुच्छ विषय रसोके स्वादके लिए इसको चाह नही है। इस कारण जिनको अज्ञानी जीव सुख और दुःख मानता है उनको ज्ञानी जीव क्लेश ही क्लेश मानता है। तो उन सब क्लेशोसे रहित होकर अपने ही आनन्दसे अपनेमे अनाकुल होऊँ।

नृत्वं कुलं मतिः सत्त्व सत्संगो देशना व्रतम्।
स्वस्थित्यर्थाय सन्त्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३५॥

कहते हैं मनुष्यभव मिला, उत्तम कुल मिला, उत्तम बुद्धि मिली, श्रेष्ठ बल मिला, सत्सग भी मिला, उपदेश भी मिलता है और व्रत भी करते है तो ये सब किस प्रयोजनके लिए है ? सबका प्रयोजन एक यह है कि आत्माकी स्थिरता हो जाये। ये सब बातें कितनी दुर्लभ है ? संसारमे लाखो योनियां, लाखो, करोड़ो कुल है जिनमे ये जीव मरते हैं, भटकते है उनमे एक मनुष्य ऐसा भव है कि जो सब भवोसे उत्कृष्ट है। अभी ये पशु-पक्षी है, ये अपने मनकी बात बता नही सकते, कोई बात बोल नही सकते, कोई विशेष चर्चा नही कर सकते या कुछ भी चर्चा नही कर सकते और मनुष्योको देखो तो कैसी उनकी वाणी है, कैसा

वे बोलते है ? दूसरोको समझाते है, दूसरेकी सुनते हैं, अर्थ भी सुनते है और तत्त्वचिन्तन भी करते है। तो सब भवोसे मनुष्यभव श्रेष्ठ हैं।

मनुष्य भी हो और उसमे हीन कुल वाला हो, जहाँ जिस जातिमे मांस मदिराका रिवाज हो, जीवहत्याको कोई घृणित काम न मानता हो, ऐसे नीच कुलमे उत्पन्न हो गये तो वहाँ धर्मसाधना क्या कर सकते है ? सो देखो अपनेको कुल भी उत्तम मिला। कुल भी उत्तम हुआ और बुद्धि न हुई तो बतलावो क्या वह अपना हित कर सकता है ? सद्बुद्धि भी होनी चाहिए। सो देख लो अपने बुद्धिमय स्वरूपको; विवेक करो, विचार करो। बुद्धि भी मिल गयी, किन्तु बल न हो तो दुर्बलताके कारण बुद्धि भी काम नही देती। सो देखो अपनेको बल भी मिला हुआ है। बल भी मिल गया, पर एक सत्सग न हो तो अटपट उपयोग बनेंगे। हम सबका दुरुपयोग करेंगे। सत्सग भी प्राय मिला हुआ है। सत्संगकी बहुत बडी महिमा अन्य लोगोमे भी गायी जाती है। सत्सगमे कथा होती, शास्त्र होता, पूजन होता। सत्सगकी बडी महिमा गायी है। सत्संगमे बसने वालेका उपयोग मलिन नही होता है। एक धर्मके लिए प्रेरणा मिलती है। सो अपनेको सत्सग भी मिल गया।

सब कुछ मिल गया, पर अगर उपदेश न मिले तो इससे कुछ भी सिद्ध न होगा। उपदेशमे ऋषियोके वचनोमे वह शीतलता है कि आन्तरिक संतापको दूर कर देते है। और किसी चीजमे सतापको दूर करनेकी सामर्थ्य नही है। न चदनका लेप इतनी शीतलता ला सकता है, न बडा शीतलाहार, न ठडी हवा ही इतनी शीतलता ला सकती है जितनी शीतलता ऋषियोके वचन पैदा करते हैं। देशनामे बहुत बडी शक्ति है। देशनाके बिना तो सम्यक्त्व नही होता, चाहे किसीको कभी देशना मिली हो। पूर्वभवमे उपदेश मिलते है उसके अगले भवमे भी बिना उपदेश दिये सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है। तो उपदेशका भी बहुत बडा महत्त्व है। और व्रत, चारित्र, व्रतसे तो साक्षात् अपने आत्मामे स्थिर होनेकी प्रेरणा मिलती है। ये सब आत्मामे स्थिरता लानेके लिए है।

भैया ! व्रतकी तो खास बात ऐसी समझो कि व्रत वही कहलाता है जो अपने आत्मामे अपनेको रमण करनेका मौका दे सकता है। नही तो ऐसा व्रत जो एक खाने-पीने और शुद्ध रहने तक सीमित हो उस व्रतसे क्या प्रयोजन निकला ? ऐसे व्रतसे शांति मिलती तो दूर रही, और क्षण-क्षणमे अशान्ति हो जाती है। किसीने छू लिया तो क्रोध हो गया। किसीने कुछ चौकेमे अशुद्धता लादी, कोई चौकेमे घुस गया, लो सब छोड दिया। तो ये सब चीजें करना तो चाहिए, शुद्धता तो होती है, पवित्रता तो होती है, मगर यह ध्यानमे रखकर कि इतना जो हम ध्यान करते है, पवित्रतासे भोजन बनाते है तो इसका प्रयोजन यह है कि

बहुतसे पापोसे हम बच जायें और अपनी आत्मामे हम लग जायें। यह है व्रतोका प्रयोजन न कि उसकी क्रिया ही कर-करके इस समयको बिता देवें और अपना जो आत्मध्यान है, आत्मज्ञान है उसको मौका ही न दें। तो ये सब जो प्राप्त होते हैं ये सब अपने आपमे अपने आपकी स्थिरताके लिए होते है। सो मै अपने आपमे अपनेको स्थिर करके अपनेमे स्वयं सुखी होऊँ।

रागिणो जन्मने मृत्युर्वीतरागस्य मुक्तये।
स्वस्थितेर्वीतरागत्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३६॥

मृत्यु तो सबपर आती है। आयुका क्षय होता है। आयुके दोषका नाम ही मृत्यु है। सो आयु एक पुद्गल कर्मकी प्रकृति और उपाधि है। सो यह उपाधि तो मिटेगी ही। आयुका तो क्षय होगा, मृत्यु भी होगी। मगर रागी पुरुषकी जो मृत्यु होती है, वह जन्मके लिए होती है। मरे तो फिर जन्म लिया, किन्तु वीतराग पुरुषकी, ज्ञानी परमसंन्यासी आत्माकी एवं ऋषियोकी जो मृत्यु होती है अर्थात् आयुका क्षय होता है, वह मुक्तिके वास्ते होती है। अरहंत भगवान्‌की आयुका क्षय है कि नही ? मनुष्य ही तो अरहत है। परमौदारिक शरीर हो गया, चार घातिया दूर हो गये, उसका नाम है अरहत। अरहंतके मनुष्यायुका उदय चल रहा है और उसके मनुष्यायुका उदय खत्म होता है तो उसके बाद फिर नया जन्म नही होता है। उसके बाद तो मुक्ति ही होती है। रागी पुरुषकी मृत्यु तो जन्मके लिए है और वीतरागी पुरुषकी मृत्यु मुक्तिके लिये है। तो वीतरागता कैसे प्रकट हो कि जिसके बाद फिर कभी भी जन्म मरण न हो, वह स्वास्थ्यसे होता है।

भैया ! अपनेको अपनेमे अपने आप समा लेनेसे वीतरागता प्रकट होती है। सो इस जीवनमे यह ध्येय होना चाहिए कि मेरा जो शुद्ध स्वरूप है, मेरा जो कुछ भी स्वभाव है, वह मेरे उपयोगमे रहे और इसका ही विकास बने। जगत्‌मे मुझे अन्य कुछ भी चीज नही चाहिए। धनसे सुख नही होता। धनसे सुख होता तो जितने भी धनिक लोग है, फिर उनको कोई आकुलता नही होनी चाहिए। अरे ! धन तो परपदार्थ है। धनसे सुख तो होगा क्या, किन्तु धनका उपयोग आ गया तो उससे दुःख स्वयं हो गया। सुख तो धनसे होता ही नही है। धन अगर बन गया तो दुःखका कारण ही बन गया। धन सुखका कारण नही बनता है और नामवरी, ख्याति ये चीजें भी सुखके लिए नही है। जिसकी जितनी नामवरी है, ख्याति है, उसको उतने ही अधिक क्लेश हो गये है। क्योकि कोई अचानक बात बिगड़ जानेपर वह नामवरी वाला पुरुष अपने आपकी हत्या भी कर सकता है। अब इस दुनियामे क्या मुह दिखायेगा ? जिसने अपनी ख्याति सारी दुनियामे कर ली हो, वह यही सब कुछ

सोच करके अपनी हत्या तक भी कर डालता है ।

भैया ! एक बात ऐसी बनारसकी सुनी भी गयी । एक बहुत बडे पडित थे, वृद्ध हो गये, बडा अनुभव था, फिर भी वे रातो रात दीया जलाकर याद करते रहते थे । पुस्तकें ही पढा करते थे । तो कुछ लोगोने आकर पूछा कि पडित जी, आप तो इतने बडे विद्वान् है कि आपकी विद्वत्ताका यश आस-पास सभी जगह फैला है, तुम्हे और क्या चाहिए, जो तुम अभी तक रात-दिन पढा करते हो । तो पंडितजी बोले कि देखो यदि विद्याको हम ताजी न बनाये रखें और किसीसे हमारा शास्त्रार्थ हो जाये और हम हार जायें तो कुवेंमे गिरनेके सिवाय और कोई चारा नही होगा । अपनी विद्वत्ताकी छाप इस नगरमे लिए हू, अगर किसी समय शास्त्रार्थमे हार जायें तो जिन्दा कैसे रह सकते है ? कुछ दिन बाद हुआ भी ऐसा ही । एक नवयुवक विद्वान्ने, छोटी ही उम्र वालेने शास्त्रार्थ किया । किसी एक बातका उत्तर देनेमे पडित जी चूक गये याने पडित जी हार गये तो दूसरे दिन फिर उनका शरीर नही मिला । उन्होने कुवेमे गिरकर अपनी हत्या कर ली ।

कीर्ति व धनसे क्या सुख है ? सुख किसी भी परतत्त्वमे नही है । सुख तो मोह दूर करनेसे है । मोह दूर करो और खूब सुखी हो लो । सुखी होनेका उपाय मोहका नाश कर लेना है । पर वह मोह मिटे कैसे ? तो मोह मिटानेका उपाय वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान कर लेना है । कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तुमे कुछ नही लाती है । प्रत्येक वस्तु अपने-अपने सत्मे है, वह अपने आपमे ही अपना अस्तित्व बनाये है । किसीके सत्त्वके कारण किसी दूसरे पदार्थ मे सत्त्व नही है । कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका रक्षक नही है । सब है और परिणमते है । इसके आगे किसी पदार्थका किसी अन्यसे कोई ताल्लुक नही है, ऐसा वस्तुस्वरूप यदि हम देखें और उन पदार्थोंका निर्णय करें तो बहुतसी आपत्तियां अपने आप शांत हो जावेंगी । आपत्तियाँ तो मोहसे प्रकट होती है । मोह नष्ट हो तो आपत्तियाँ भी नष्ट होगी । इस कारण तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर करके भी यदि हमने आत्मस्वरूपका यथार्थज्ञान पा लिया है तो वह तन, मन, धन, वचन क्या चीजें है ? अगर दूसरोके उपकारमे लग गये तो भला है । सो सब कुछ न्योछावर करके भी अपना आत्मज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । इस आत्मज्ञानसे ही आनन्दकी प्राप्ति होगी । जितने भी धर्मकार्य किए जाते है या व्रत, संयम किये जाते है वे सब अपने आपकी आत्मामे रमण करनेके लिए किये जाते है । ऐसा जो नही करते वे इस संसारमे रुलते फिरते है ।

वर्षार्घं नूतनं लोके तत्त्वतस्तत्त्वबोधनम् ।
स्ववृत्तिर्यत्र तत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३७॥

इस लोकमें नया दिन किसे बतलाते है ? जो सालका पहला दिन हो । जैसे—१ जनवरी, उसे नया दिन बोलते है या हिन्दीके महीनोमे कार्तिक सुदी एकमको व चैत्र सुदी एकमको नया दिन कहते है । तो लोक व्यवहारमे सालके प्रथम दिनको नया दिन कहते है । मगर हमारा और तुम्हारा नया दिन कौनसा है ? जिस क्षण तत्त्वज्ञान होता है वही अपना नया दिन है और वह तत्त्वज्ञान क्या चीज है कि अपने आपकी अपने आपमें समझ हो जाना यही तत्त्वज्ञान है । नया दिनके मायने है कि कुछ अपूर्व बात मिले और अपूर्व बात तो वही है कि ऐसा ज्ञान जगे कि जिसमे मोहका ध्वंस हो जाये ।

इस जीवको विपत्ति केवल मोह है और कुछ विपत्ति नही है । सब अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए है, सभी पदार्थ अपने आपमे परिणमते है । किसी पदार्थसे किसी दूसरे पदार्थ मे कोई गुण पर्याय प्रभाव, असर कुछ नही आता है । पदार्थ ही स्वयं परका निमित्त पाकर अपना विभावरूप असर अपने प्रति बना डालता है । सब मामला ठीक है, सब बात व्यवस्थित है, सब है, हम है, सब न्यारी-न्यारी बातें है, लेकिन ऐसा भाव हो जाना कि यह मेरा है, ऐसा परिणाम जागना, ज्ञान करना, यह बहुत मलिनताका परिणाम है । पर पर ही है, उसको मानना कि यह मेरा है, यह मलिनताका परिणाम है, अज्ञानमय भाव है । यह परिणाम मिट जाये और ज्ञानका उजेला जग जाय, वही अपना नया दिन है और बाकी तो सब वही कीचड है, वही प्रसग है, वैसा ही रुलना है, उसमे कोई सारकी बात नही है । सो अपने आपका ज्ञान हो और ज्ञानमय स्वरूपको देखनेका उपयोग हो तो वह अपने कल्याणकी बात है । सो इसका यत्न क्या है ? पदार्थोंके स्वरूप सीमाको देखना । यह है तत्त्वज्ञानका यत्न ।

पदार्थ कितना होता है, यह ध्यानमे हो तो वस्तुस्वरूप उपयोगमे आता हैं । एक वस्तुसे दूसरी वस्तु पृथक् है, भिन्न है, यह बात तब समझमे आयेगी जब वस्तुकी स्वरूपसीमा नजर आवे कि पुद्गल परमाणु इतना होता है वह गुणमे ही रहता है । इस ही प्रकार स्वरूपसीमा ज्ञानमे रहे तो वहाँ मोहका विकल्प नही होता है । क्या मेरा है ? वे भिन्न है । मृत्यु हो गयी तब तो कुछ पता नही कि मरकर कहाँ पहुंचें, किस जगह जाये तो इतनी जिन्दगीमे, इतनेसे जीवनमे परपदार्थोंके साथ सम्पर्क बनाकर, सम्बंध बढाकर अपने आपको सदा के लिए दु.खके गर्तमे डाले रहना चाहते हो । वस्तुकी स्वरूपसीमाको देखो । यह स्वरूपसीमा उपयोगमे अच्छी तरह आ सकती है । यह भी तो एक ज्ञेयतत्त्व है । जैसे इन पदार्थोंके जानने की कोशिश करते है तो ये पदार्थ जाननेमे आते है । इन पदार्थोंकी स्वरूपसीमाको जाननेका यत्न किया जाय तो क्या यह जाननेमे नही आ सकेगा । बस रुचिकी बात है ।

भैया ! जीवमे तो बड़ी सामर्थ्य है, कुछ भी कर डाले, भला कर डाले, बुरा कर

डाले, सिद्ध बन जाये, निगोद बन जाये, पशु-पक्षी बन जाये। सामर्थ्य तो इसमे विचित्र है। बस एक रुचि चाहिए। सब रुचिके परिणाम है। तत्वमे रुचि हो, ज्ञानमे रुचि हो तो वह सकटकालमे सिद्ध बन जायेगा। और पर्यायकी रुचि हो, बाह्य वस्तुवोको विषयभूत बनाकर अपने आपके विभावमे रुचि हो तो संसारमे भ्रमण करता रहेगा। सब रुचिका परिणाम है। जैसी रुचि हो तैसा अपनेको बना लो। इस जीवमे सामर्थ्य बहुत है। एक मनुष्य है और वह निगाद मानो बन गया, प्रदेश आकार भी बदल गया, भाव भी बदल गया, गति भी बदल गयी, इस प्रकारकी रचना हो जाना यह क्या सामर्थ्यकी बात नही है ? अपनी शक्तिको पतनकी ओर लगा दो, पर सामर्थ्य बिना तो निगोद नही हो सकता है। खोटी योग्यता बनाई या अच्छी योग्यता बनाई। जो मनुष्य संयम करके सिद्ध हो जाते हैं वह भी एक सामर्थ्यका फल है। जिसने अपना विकास किया तो उसने सामर्थ्यसे ही अपना विकास किया। तो सामर्थ्य तो जीवमे पूर्ण है। बस रुचिकी बात है। जैसी रुचि करो तैसी अपनी दृष्टि बना लो। तो अपना चितन कैसे हो जिससे कि हम बाहरी पदार्थोंके चितनसे छूटें। इन बातोको कहते है कि—

स्वय यत्कर्तुमायाति तत्कृतौ न विपत्क्वचित्।
अन्यथा क्लेशता तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३८॥

जिस समय स्वय जो कुछ करनेको आता है वह आवे, उसके करनेमे कही विपत्ति नही अर्थात् विपत्तियाँ सम्यक् श्रद्धाके विपरीत कार्य करनेमे होती है। विपत्तियाँ अपने आप ही होती है। एक काम करनेके बाबतमे इच्छा उत्पन्न की और उस इच्छाके साथ ही उस कार्यमे जुट गये तो इससे तो विपत्तियाँ है, क्योकि इच्छा ही विपत्ति है। इच्छा की और सकटोमे पड गये। तो जो स्वयं अपने आप करनेमे आता है आवे। उसके करनेमे कोई विपत्ति नही है। परन्तु जो इच्छा करके, हठ करके बाह्य पदार्थोंमे झुककर जो बात आ जाती है उसमे विपत्ति है। जो ये संन्यासी अपनी समाधिमे धर्मसाधनामे लग रहे है, इस स्थितिमे भी कितने ही रागद्वेष उस आत्माके अन्दर चलते रहते हैं, मगर वह अशुद्धि पूर्वक है। जो बुद्धि पूर्वक परिणमन चलाता हो, उसके कारण इसमे विपत्तियाँ होती है।

भैया ! जो स्वयं करनेमे आवे तो आओ, उससे विपत्तियाँ नही हैं। किन्तु जो होता है, निमित्तनैमित्तिक भाव है, उस जातिका कर्म विपाक है और आत्मबुद्धिमें उस प्रकारका विभाव परिणाम हो, किन्तु उपयोग तो शुद्ध तत्वके ध्यानमे है, ज्ञानस्वभावके ज्ञानमे है। तो वह परिणमन इसको दुःखी नही करता। इसकी तो जानकारीमे ही वह कषाय नही आया या उसके ज्ञानमे रागद्वेष नही आये तो इसका बिगाड करेगा ही क्या ? स्वभावको मेरेमे

देखो, विपत्तियाँ नही है । विपत्तियाँ तो हम आपने स्वयं अपने अज्ञानसे अपने आपपर मोल ले ली है । विपत्तियाँ कुछ नही है । परपदार्थोंसे जो बोलेगा वह फंस जायगा । किसीने स्नेह को थोडी भी प्रवृत्ति की तो बंध गया । हम जब अपने ज्ञानस्वभावसे हटकर इन बाहरी बातो मे लगते है तो हम सबको क्लेश ही क्लेश होते है । दूसरा हमे कौन दुःखी करता है ?

यह ज्ञान अमृत है, ऐसा मनमे निर्णय करो कि मुझे जब भी दु:ख होते है तो मेरे ही अपराधसे होते है । दूसरेके कहनेमे, दूसरेके कसूरसे, दूसरेकी मूर्खतासे या दूसरेको किसी प्रकारकी परिणतिसे हमे दु ख नही होते । जब भी मुझे दुःख होते है, अपने ही कसूरसे होते है । सबसे पहिले देखो तो दु:ख बात सुननेसे है ।

इन्होने ऐसा क्यो कह दिया ? अब देखो व्यर्थकी चीज है, वह मलीन है । जो कहता है, बोलता है, वह कम्पन भी इसमे नही है । मगर पर्यायबुद्धि तो है । दस जनोमे अपने इस पर्यायका महत्त्व तो रखना चाहता है । अपनी आत्माका महत्त्व नही रखना चाहता, किन्तु इस पर्यायसे लोगोके बीच महत्त्व रखना चाहता है । सो जो महत्त्वाकांक्षा है, वह नाना विप-त्तियोको बना देती है । बडेसे बडे उपसर्ग हो, शत्रु शस्त्रसे छेद दे, सिह शरीरको छेद दे, अचानक ही कठिनसे कठिन विपत्तियाँ आ जाती है । क्या उन सब विपत्तियोसे भी बहुत अधिक बडा उपसर्ग है, जिसमे हम इतना अधिक घबडाते है ? नही ।

हम अपने आपमे बसें और बाहरी जितनी बातें होती है, उनकी हम उपेक्षा करें तो ऐसा अपने आप होने वाली बातोमे कोई विपत्ति नही । जैसे बरसातके दिनोमे जब कि एडी तक कीचड रहती है, वहाँ जब चलते है तो चलनेमे सदा अपने आपको सावधान बनाए रखते है । यदि जरा भी असावधानी की और पैर जरा भी सरका तो वह सरकता चला जायेगा और इस कीचडमें गिर पडेमे । इसी तरह जब हमे ज्ञानसे हटना है, अज्ञान और कषायोमे लगना है तो जरा भी हटे और जरा भी विकल्पोमे लगे तो वह लगना बढता जाता है । उससे हम मुक्ति नही पा सकते है । इस कारण ऐसा ही ध्यान बने कि स्वयं अपने आप जो होता है, सो हो । बुद्धिपूर्वक हमे कुछ नही करना है । क्योकि कुछ भी करनेसे हमको लाभ नही । सो कुछ करनेका विकल्प हटायें और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवे ।

सयमेन् नरा धीरो गंभीरः शल्यनिर्गत. ।
संयमः स्वस्थितिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–३६॥

संयमसे मनुष्य धीर होता है । सयमसे मनुष्य गम्भीर होता है, निःशल्य होता है और सुखो होता है । आत्मामे भली प्रकारसे स्थित हो जानेको संयम कहते है । इसका नाम संयम है और इस संयमके लायक हम बने रहे । ऐसी प्रवृत्ति करनेका नाम भी संयम है ।

शुद्ध खाना, विषयोका त्याग करना, परिग्रहका त्याग करना, अनशन करना, तपस्या करना, ये सब सयम होते है । इन सभी प्रवृत्तियोमे रहने वाले लोग अपने अन्तरंग संयमका पालन कर सकनेकी योग्यता रख सकते है । जो विषयासक्त है, कषायमे लीन है, मांसभक्षी है, मद्य-पायी है, अन्टसन्ट इधर उधर बोला करते है, ऐसे जन क्या आत्मामे स्थिर होनेका यत्न कर सकते है ? नही कर सकते । इस कारण वे सब सयम कहलाते है, जिनमे सभी परपरिणतियो से हटकर हम अपने शुद्ध चारित्रके पात्र रह सकें । सो ऐसा संयम जब होता है तब मनुष्य धीर होता है । अधीर तब होता है जब कोई क्षोभ हो । क्षोभ कब होता है ? क्षोभ जब होता है, जब अपना कोई कषाय बढाया जाय । विषय कषाय कब बढते है ? जब सत्यस्वरूपके उपयोगमे न रहे और उससे हट गये तो विषयकषाय बढते है । तो धीर बननेका श्रेय सयम से है ।

सयमी पुरुष धीरवान् होता है और अधीरतासे कोई सयमी बातें करे तो वैसे भी व्यवहारमे शोभा नही देता है । धीर कहते है कि 'धी बुद्धि राति ददाति इति धीरः ।' जो बुद्धि दे, उसे धीर कहते है । समता हो, सयम हो तो इस प्रवृत्तिसे वृद्धि बढती है, क्षोभ नही होता । सयमसे मनुष्य धीर बनता है और गम्भीर बनता है । गम्भीर कहते है गहरे और अथाहको । दूसरेने कोई प्रतिकूल बात कही तो भी उसे क्षमा कर दिया, हृदय ऐसा ही गहरा होता है ।

ये जगत्के जीव है, परिणमते है, ये ज्ञानरूप भी परिणमते है, विरोध भी किया करते है या हो जाता है । इसमे मेरी कोई हानि नही हैं । उसके भी ज्ञाताद्रष्टा रह सकें, ऐसी गम्भीरता सयमसे पैदा होती है और यदि विवेक साथ नही दे रहा है तो बाह्यसयमसे तो क्रोध दूना बढ जाता है । कषाय दूनी बढ सकती है ।

भैया ! यदि विवेक मदद नही देता तो द्वीपायन मुनिकी तरह हाल हो जाता है । उनको तैजस ऋद्धि नही प्राप्त हो सकती है । चाहे अशुभ ही क्यो न हो ? शुभ तैजस और अशुभ तैजस ऋद्धिके ये दो भेद है । कोई कषाय बढ जाय, विवेक न रहे तो उस ऋद्धिका फूटना अशुभमे होता है । सिद्धि तैजसकी है, चाहे अशुभरूपसे फैलाये चाहे शुभरूपसे । जिसमे विवेक है, सयम है, सत्यसमता है ऐसा मनुष्य गम्भीर ही रहता है । सयम जिसके है उसके शल्य नही है । संयम उसके ही होता है जिसके बराबर अपने ज्ञानस्वरूपका स्मरण होता है । जिसके कारण वह अपने ज्ञानस्वरूपमे स्थित रह सकता है । ऐसा ही मनुष्य तो शल्यरहित होता है । शल्य क्या है ? तीन प्रकारके हैं—(१) माया, (२) मिथ्या और (३) निदान । मायामे है छल, कपट । मायाचार क्या है ? कहना कुछ और सोचना कुछ ।

मायाचार व्यर्थ है । सोच तो रहे है कि दूसरेका बुरा हो, वह मिट जाये, पर दूसरे के लिए भला होता है । मायावी लोग ऊपरसे तो भली-भली बातें करते है, पर सोचते है कि वह मिट जायें । व्यवहारमे भी घरमे, समाजमे व्यर्थकी बातें बोलते है और सोचते कुछ तृष्णा की बातें है । ज्ञानी पुरुष ऐसे मायाचारसे दूर रहता है । उसको तो यह खबर है कि मुझे दुनियामे अन्य बात कुछ करने लायक भी नही है और न कुछ बढाकर जाना है, सब कुछ यहीपर रह जायेगा । जितने भी पदार्थ है सब मिटने वाले है । सब यहीके यही रहते है । हम सबको सब कुछ छोडकर जाना ही होगा । यहांका कोई भी पदार्थ मेरा नही है । फिर किसके संचयके लिए, किस-किसकी वृद्धिके लिए मायाचार किया जावे ? मायाचार करने वाला शल्यमे रहता है । घरमे मित्रने अथवा किसीने कुछ बोल दिया, किसीने कुछ कह दिया सो अन्दरसे छल-कपटकी वृत्ति मनमे रहती है तो वह धर्मध्यानका पात्र नही बन पाता है । अपनी करनी अपनेको पता रहती है । दुनिया जाने न जाने । अपनेको विदित रहता है कि खोटी करनीकी है, धोखेकी बात की है तो वह सब उपयोगमे है तो उसको शल्य रहा करता है ।

दूसरा शल्य है मिथ्यात्व । अनेक धनिक जनोको देखो, कितनी शल्य है कि अरे अब तो यह लाखो करोडोका धन छूट जायेगा । अब तो लाखो नये-नये कानून बन रहे हैं, पता नही क्या होगा ? अनेको बातें चित्तमे आती है । यह क्या है ? यह सब मिथ्याशल्यके कारण दुःख है । सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अपने आपको देख लो कि मै तो इतना ही हू । इससे आगे मै कुछ नही हू, मेरा कुछ नही है, ऐसा अपने आपका अनुभव कर ले तो किसी भी स्थितिमे अपनेको दु खी नही पावोगे, शल्यसहित नही पावोगे । दुखी सुखी तो लोक ही है, सम्यग्दृष्टिके भी दु ख सुख रहता है, पर वह सम्यग्दृष्टि उनमे विह्वल नहीं होता । दु खी होना और बात है और विह्वल होना और बात है । वह तीव्र दु खकी बात है । मिथ्यात्व एक शल्य है । वस्तुका जिसने सत्य स्वरूप नही समझा और अमुक पदार्थका अमुक मालिक है, अमुकका अमुक अधिकारी है उसका यह है, इसका मैं हूँ, इस तरहका जब विश्वास रहा तो शल्य रहता है, क्योकि पदार्थ तो उसका है नही । वह तो अपने परिणामसे परिणाम गया । उनकी तो हम कोई जिम्मेदारी नही रख पाते । पर सोच रखा है जिम्मेदार, सोच रखा है अधिकारी तो वे आपकी इच्छाके अनुसार नही चलते तो दुःखी होना पडता है ।

जहां सत्य ज्ञान है कि ये तो सब निराले है, मेरी इच्छाके अनुसार नही परिणमते है तो ठीक ही बात है । स्वभाव ही वस्तुका ऐसा है कि वे अपनी-अपनी विधिविधानसहित बातोमे रहा करते है । इसका वह दुःख नही मानता है । देखा होगा कि अविवेकियोको स्त्री

पर, पुत्र पर जरा-जरासी बातोमे क्रोध आता है, क्योकि यह जानता है कि हम इनके मालिक है, ये हमारे अण्डरमे है। जैसा हम चाहे वैसा इन्हे करना पडेगा। सो उन बेचारोको करना ही पडता है, पर सब बातें कैसे हो सकती है? पदार्थ तो भिन्न-भिन्न है सो कोई और प्रकार का परिणमन करता है और कोई और प्रकारका परिणमन करता है। दुनियामे बहुतसे पुत्र है, बहुतसे लोग है, बहुतसी स्त्रियां है। उनकी करतूत पर उनकी परिणतिसे कभी क्षोभ नही होता है। जब चित्तमे यह बैठ जाता है कि मैं इनका मालिक हू तो सिवाय दुःखके और कुछ हाथ नही लगता। क्लेश ही उसके बोझमे आते है। जब सम्यग्ज्ञान होता है तब ये मिथ्यात्व शल्य आदि नही रहते है। सम्यग्दृष्टि पुरुष मिथ्यात्वसे रहित होता है।

तीसरा शल्य है निदान। निदानमे आगामी कालके लिए वांछा बने सो निदान है। ज्ञानी जानता है कि समस्त पदार्थ जुदे है। जब जो चीज परिणमना है परिणमती है। उनका मैं कुछ हेर फेर नही करता, उनका मैं परिणमन नही करता और फिर ये बाह्यपदार्थ सब मिलकर भी मेरे सामने स्थित हो तो भी उन बाह्यपदार्थोंसे मेरेमे कुछ नही आता है। मैं हूं और अपने आपमे आप बन गया। ज्ञानीके निदान शल्य नही होता। धर्म करो, मगर अच्छा भव पाऊँ, इतना संचय करूँ—ये बातें चित्तमे न लावो। वह तो समय पर छोड देना है कि जैसा जो कुछ उदय है तैसा समागम होगा। हमारे सोचनेसे कुछ नही होगा। कौन प्रायः ऐसा नही चाहता है कि मैं कुबेर बन जाऊँ और यत्न करते हैं और होता क्या है? तो ज्ञानी पुरुष वह है कि धनको भी हेय दृष्टिसे देखे, तुच्छताकी दृष्टिसे देखे।

भैया! जीवका धन है संयम, जीवका धन है ज्ञान और जीवका धन है श्रद्धा। जिसके कारण यह जीव सदाके लिए क्लेशोसे मुक्त हो जाता है। मैं धनकी दृष्टि करूँ तो उसको तुच्छ दृष्टिसे देखूं। मै तो केवल ज्ञाता द्रष्टा रहू। ये जगत्के लोग जो नाम चाहते है, जो लोकमे अपनेको अच्छा कहलवाना चाहते है वे स्वय दुःखी है। उनके कर्म मलीन है, पापमय है, मोहमय है। ससार भावमे लगे हुए है। ये कोई ईश्वर नही है जो मेरेको कुछ डरा दें, कुछ कर दें और ईश्वर भी हो तो मेरा कुछ परिणम नही कर सकते। मैं स्वय जैसा सोच लेता हू वैसा ही बन जाता हू। सो कोई बाह्य पदार्थ मेरे हितरूप नही है, इसलिए किसी भी पदार्थका निदान न हो। ज्ञानी वह सुखी रहता है जिसके किसी भी परपदार्थका निदान नही होता है। संयम और है क्या? अपने आत्मामे स्थित हो जाना बस यही संयम है। इस संयम भावका आदर करके और जितने अपने आपमे यत्न बन सकते है उन समस्त यत्नोको करके मैं अपने आपमे स्थित रहू, अपने सर्व वैभवको देखता रहू कि यह मैं हू और क्या परिणम रहा हूं। इसके आगे यह अमूर्त ज्ञान ज्योतिमात्र मैं आत्मा कुछ भी नही करता

हूं ? सोचता हूं, जानता हूं, इतना ही तो मेरा काम हो रहा है। इससे आगे और मेरी कोई करतूत नही है। सो बाह्यविकल्पोंको त्यागकर, अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपको देखकर अपने मे ही स्थित रहू, और अपनेमे अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

यावद्दूरं कषायेभ्यस्तावात्धीरः सुखी बुधः।
आकषायः स्ववृत्यात. स्या स्वस्मै स्वे सुखो स्वयम् ॥५-४०॥

जितना कषायोसे दूर रहो, उतनी ही शांति है। मोक्षमार्ग प्रकाशमे बहुत वर्णन करते करते यह लिखा है कि कषायोकी कैसी स्थिति है और लिखा है कि यदि सुखी होना है तो कषाय न हो। कषायोका स्वरूप ही विह्वलता लिए हुए है, झझट लिए हुए है। कषायोसे दूर होनेके लिए अन्तरङ्गमे ज्ञानरूप बहुत यत्न करनेकी जरूरत है। यो तो साधारण तथा सब कही सुनी बाते तो है ही। सब कहते ही है, पर उन बातोसे अपना ही व्यवहार बने याने अपनेमे कषाय न उत्पन्न हो, इसलिए ज्ञानरूप भारी पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता है। तभी मनुष्य कषायो पर विजय प्राप्त कर सकता है।

भैया ! जब सबसे तेज कषाय होता है तो वहाँ यह रहता है कि मै चारके बीचमे हूँ, ठीक हूं इत्यादि। इस प्रकारके कषाय, ये सबसे अन्तमे विनष्ट होते है। वे क्रोध भी छोड सकें, माया भी छोड सकें, मनमे गर्व करना व माया, लोभ इत्यादि जिसे कहते है आकाक्षा करना, उसे भी छोड़ दें, इसलिए इस तरह जो तरङ्ग उत्पन्न हो, मनमे उसे छोड दे तो धर्म का मार्ग सुगम है, नही तो बहुतसे नियम हो गये। धर्मके नामपर बहुतसे जलसे भी हो गये, पर भीतरमे पर्यायकी कामनाके विभाव नही कम हुए है तो यहाँ कुछ भी असर नही होता।

जो कल्याणार्थी पुरुष है, उनका कल्याणार्थ यह ही एक मार्ग है कि बाहरके सब जंजालोसे हटकर अलग होकर कल्याणमय ज्ञानसुधासागरमे डुबकी लगायें। जैसे यमुना नदी मे कछुवे बहुत रहते है। कछुवे कभी-कभी अपने शौकसे पानीसे बाहर मुह निकालकर तैरते चले जाते है। जब वे कछुवे तैरते चले जाते है तो उन कछुवो पर हमला करनेके लिए पक्षी ऊपर मँडराया करते है। तो जब कछुवेके ऊपर बहुतसे पक्षी मडराकर आ गये चोच मारनेके लिए तो कछुवोको उनसे बचनेके लिए केवल एक ही काम करना है कि वे कछुवे पानीमे डुबकी लगा लें। जहाँ ४ इच पानीमे डुबकी लगा ली तो उनके सारेके सारे उपद्रव समाप्त हो गये। इसी तरह बहिर्मुखतामे बड़े सकट है और मूल सकट बहिर्मुखता ही है। बाहरी चीजोमे कोई संकट नही है। बाहरी पदार्थोंसे आत्मामे कोई बात नही आती। आत्मा ही अपना ख्याल बनाता और उसके अनुकूल हो अपने सक्लेश करता है। पर बाहरसे देखो तो बडे संकट है, परिवारसे अपना उपयोग लगाये है, इधर-उधर भागते है, व्यापारमे, रोजगार

मे परेशान है, समाजमे, देशमे अपना उपयोग लगाये हैं और दुःखी होते है। संकट तो इस जीवपर बहुत पड रहे है। पर इस आत्माको तो केवल एक काम करना है, फिर सारे सकट विफल हो जायेंगे। उसे काम केवल यह करना है कि अपना जो सहज स्वरूप है अर्थात् जिस स्वरूपके कारण अपने आप जैसी हमारी परिस्थिति हो सकती है, वस उस परिस्थितिमे आ जायें याने इसका काम है केवल जाननमात्र होना। उसमे और कुछ विशेष ऐसी स्थिति यदि बन सकती है तो वे मारेके सारे सङ्कट विफल हो जाते हैं।

आत्महितके इस वडे कामको करनेके लिए हमे वहुत वड़ा ख्याल करना चाहिए। यह चीज तो कही भी बैठे हो, लेटे हो, एकान्तमे हो, कुछ मनन कर रहे हो तो भी हो सकती है। नही तो मनुष्य हैं, सब बातें अच्छी हो रही है। पशुओंकी अपेक्षा, पक्षियोंकी अपेक्षा, जगली जीवोकी अपेक्षा बहुत बातें तो ठीक चल रही हैं, पर परिणाम हमारा उत्तम न हो, मोहसे हटे हुए न हो, अपने स्वभावकी पहिचान न हो और कषायोके परिणाम ही रहे, बहिर्मुख दृष्टि ही रहे तो हमे इस मनुष्यभवको पाकर भी कुछ अच्छा परिणाम न मिला।

भैया! मरकर यदि कही कीडे मकोडे बन गये तो मनुष्यभव पाकर भी क्या लाभ पाया? अपने आपमे विचार करो कि यदि मरकर असञ्ज्ञी पर्याय बन गए तो क्या होगा? तो फिर कुछ बडप्पन रहा क्या? जिसने जब चाहा तब पेड काट डाला, जब चाहा पक्षियो को उडा दिया, जब चाहा तब जङ्गली जानवरोका शिकार कर लिया।

भैया! जरा जरासी बातोमे क्रोध कर लिया, कषाय कर लिया, झगडा कर लिया। भिन्न-भिन्न भाव कर लेनेसे अपना भला नही। दूसरा कैसा ही दुःखी हो, पर अपना स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए। ऐसी बातें होती है तो वे इसके लिए सब अनिष्टकी बातें है। हम तो हम है, हम ज्ञानमात्र है। समस्त द्रव्योके बीच रहकर भी उन उन स्वरूपमे मैं नही हू, उनमे मुझे नही रहना, आगे भी उनमे नही रहना है। किसी भी स्थितिमे रहे, यह ऐसा हमे ध्यान करना है और इसका सीधा उपाय है कि श्रद्धा सच्ची बने, उसमे कषाय न हो।

भैया! इतना ही काम करना है। जैसा भी हो, अपनी श्रद्धा बनाऊँ और कषाय न करूँ। यह ज्ञान कर सकूँ, तो कुछ अच्छा रहे और भीतरमे यह काम न कर सके, तो जैसे रबड तानी जाती है तो किसी तादाद तक ही, किसी सीमा तक ही तन सकती है, नही तो टूट जायगी। इसी तरह हम ज्ञानकी परिणतिमे शौक शान बनाकर ज्ञानमार्गमे, त्यागमार्गमे, कुछ सज्जन कहलानेके मार्गमे, कुछ समझ पर व्यवहारकी बोल-चालको बनाये रहे और भीतरमे कुछ परिणति ऐसी कर सकें कि कषाय न कर सकें और अपनी श्रद्धाको हम बना सकें तो लोग भले ही समझे कि बहुत अच्छा है, विद्वान् है, सद्व्यवहारी हैं या न भी समझें,

पर अपने भीतरमे ऐसे ही भाव बनाते है ।

भैया ! जैसा हम भीतरमे कर रहे है, उसीके अनुसार हमारा भविष्य होता है । दूसरोके अनुसार हमारा भविष्य नही है । तो जितना हम कषायोसे दूर रह सकें, उतनी ही शाँति है, उतना ही आनन्द है । आनन्द शब्दको व्याख्या है कि आत्मामे सर्वसमृद्धि उत्पन्न हो । इन्द्रियजन्य जो विषय मिल गया, उससे सुख मानने लगे तो यह गन्दी परिणति है । आनन्दकी परिणति नही है, क्योकि उसमे समृद्धिकी बात तो दूर रही उसमे हानि ही हानि बढती है । वे पुरुष धन्य हैं जिनको किसी चीजकी आवश्यकता नही, केवल एक चद्दरमे ही रहने वाले पुरुष है, जिस पुरुषका उपयोग ऐसा है कि विषय कषायोके उपभोगसे दूर रहने वाला है वह पुरुष धन्य है । वह दूसरोके लिए धन्य नही है, बस इतनी तरक्कीके लिए वह धन्य है । सबसे बडी तरक्की उसकी यही है कि वह वर्तमानमे असक्लिष्ट रहे, सकटरहित रहे, बस यही उसकी तरक्की है । एक कथानक है कि एक देश ऐसा था जिसमे यह परम्परा थी कि किसीको एक सालके लिए राष्ट्रपति बना दिया जाता था और फिर एक सालके बाद मे जगलमे छोड दिया जाता था । तो जैसे साल भरके लिए राजा बना दिया जाये और फिर उसे जगलमे छोड दिया जाये तो फिर उसकी दुर्गति है । इसी प्रकार हम मनुष्य है अच्छा भव है । अगर भीतरमे, पर्यायमे आत्मत्वके विकल्प होते रहे, जो हमारा जाननमात्र स्वरूप है, सामान्य वृत्तिरूपसे अपना उपयोग न बन सका अर्थात् सब विभावोको यदि हम विच्छिन्न न कर सके और मरकर कही असज्ञी बन गये तो फिर कौनसी बुद्धिमानी की ? उस राजाके यदि ऐसी बुद्धिमानी आ जाय कि साल भर केवल राज्य करना है फिर नही करना है, फिर तो जगलमे ही रहना पडेगा । तो जगलमे रहनेकी सारी व्यवस्था बना ले, खेती वगैराका इंत-जाम कर ले तो अच्छा है । क्योकि एक सालके राज्यमे वह सब कुछ कर सकता है । तो जितना ज्ञानवल चाहो उतना ज्ञानवल बना लो, ऐसा यदि अपना पुरुषार्थ बना लो तो वह तुम्हारे काम आयेगा । वाकी जितने भी कुटुम्ब परिवार इत्यादिके व्यवहार है, वे सब मेरे साथ नही जा सकते है ।

भैया ! सोच लो, मेरे साथमे तो अपना ज्ञान वल अगर दृढ कर सके तो वह रहेगा, मेरे काममे आयेगा । ज्ञानवलके बिना कुछ नही काममे आयेगा । ज्ञानवलमे भी कोई बोलने वाला, जानने वाला या जिसके व्यवहारमे अपना बल है वह ज्ञानवल नही, किन्तु यह ज्ञान-मय है आत्मा ज्ञानस्वरूप ऐसा जब ज्ञानमे आ जाये और उस ज्ञानोपयोगके कारण विलक्षण आनन्दका अनुभव करते रहे, ऐसा जो ज्ञानप्रकाश है वह ज्ञानवल इतना रह सके तो हम सुखी रह सकते है । यदि इतने ज्ञानवलकी अनुभूति हमने पा ली तो ऐसे स्मरणके कारण,

अपनेमे आनन्दके अनुभवके स्मरणके कारण हम निराकुल रह सकते है। यदि निश्चयतः आनन्दका अनुभव आ जाये तो उन कषायोको छोड सकते है। और वह अनुभव एकके आधीन है। केवल इसके आधीन है, अपने आपके स्वरूपकी ओर झुकना, जानना। यदि अपने आपकी ओर यह झुके तो उसे आनन्द प्राप्त हो सकता है। यदि यह ज्ञानबल हो सकता है तो यही इसका सहायक होगा।

जगत्की कीर्ति, जगत्के यश आदि इन सब कषायोसे दूर रह सकें, इतना धैर्य हमें ज्ञानबलसे ही प्राप्त हो सकता है। इस ज्ञानबलसे ही धीरता उत्पन्न हो सकती है। इन्हीं कषायोसे तो अधीरताकी ज्वाला जलती है, जिसके कारण कषाय बढते है। यदि कषाय हो तो धीरता अपने आप नष्ट हो जायेगी, आनन्द अपने आप नष्ट हो जाता है। कषायरहित स्वभाव होनेपर आनन्द अपने आप प्राप्त होगा और धैर्य अपने आप बढेगा। यदि कषायरहित वृत्ति न बनी और ऐसा मनमे बना रहा कि हम चार लडको वाले है, स्त्री वाले है, फलां कुल वाले हैं तो इससे आकुलता ही बनी रहेगी।

परतत्त्वको अपना मान लेनेसे इस प्रकारकी क्रिया चलती है और अपने आत्मस्वरूप मे, ज्ञानस्वरूपमे ज्ञानवृत्तिकी क्रिया चलती है। यहाँ लोग यह सोचते है कि मैं इतने लडको का बाप हू, मुझे लडकोके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए। क्योकि लोग यह श्रद्धा रखते हैं कि मैं इनका बाप हूँ, और लडके यह श्रद्धा रखते हैं कि मैं इनका लडका हूं, मेरा तो अब यह बाप है, इसलिए वे चिंता करने लग जाते है, जिससे कषाय बढाते जाते है।

भैया! जब कोई किताब लेकर, किसीके पास पढने जाता है तो उसके यह भाव होते हैं कि हम पढ़ने जा रहे है, विद्या पढनेका काम करने जा रहे है, इसलिए कुछ क्रोध कम हो जाता है और विषय वासनायें कम रहती हैं और कुछ काम वासनायें भी कम रहती हैं। जैसे गांधी जी के आजादीके आन्दोलनके समयमे चरखेसे सूत काता जाता था। कोई कहे कि चरखेसे सूत कातनेमे क्या लाभ? पर अतमे उस चरखेसे सूत कातनेमे स्वराज्य मिला। चरखेसे सूत कातनेमे यह हो गया कि सूतसे बने भावोसे मनुष्यके दिमागकी व्यवस्था हो गयी, लोगोमे, रईसीका अहकार समाप्त हो गया। अच्छे ही भाव बननेकी वजहसे स्वराज्य प्राप्त हो गया। देखो, चरखेसे सूत कातनेकी वजहसे ही स्वराज्य मिल गया।

भैया! इसी प्रकार जब वे विद्या पढने गये, तो अंदरसे विद्या पढनेके भाव हुए, तो ऐसे भावोसे ही उनमे कुछ न कुछ अन्तर आ जायेगा, कषायोमे मंदता आ जायेगी, विषय वासनाओमे मंदता आ जायेगी। यदि हम सहज शुद्ध स्वरूपको सोचकर उसीमे अपनी वृत्ति बढा लें, तब विषय कषायोमे मदता आ जायेगी। भैया! सब कुछ अपने आप पर ही निर्भर

है। अपना उत्थान पतन अपने ही ऊपर निर्भर है। सबसे पहली बात यह है कि अपने आप की श्रद्धाका अभ्यास करके उसको मजबूत बनाना है। इसीसे अपना आत्मकल्याण संभव है।

रागद्वेषोदयस्तस्मिन्नवङ् का कृपा कृता।
स्ववृत्तिः स्वदया तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५–४१॥

रागद्वेषका उदय हुआ और उसमे बह गये, तो हमने क्या कृपा की? अपनी हमने क्या दया की? परन्तु जगत्‌के जीवोका यह हाल हो रहा है कि उनमे रागद्वेष होते है, क्लेश होते है, परन्तु मरनेके समय तक भी विवेक नही आता है। इन विकारोको हटाने, विकारोसे दूर रहने, विकारोको निष्फल कर देनेकी यही विधि है कि यह ख्याल रहे कि यह विकार, कर्मोंके उदयसे होता है और यह निकल जायेगा। जो भी वर्तमानमे विकार हो रहे है, उन पर यदि हम ध्यान रख सकें कि ये विकार कर्मोंके उदयसे होते है, और ये निकल जायेंगे, यदि यह ध्यान रहे तो विकारोमे फसाव नही हो सकता है।

भैया! विकारोमे फंसाव कब होता है? जब यह परको अपना स्वरूप मानने लगता है तब विकारोमे फसाव होता है। जो कि घर हमारा है, जो वैभव हमारा है, जो कुटुम्ब हमारा है, उसके बारमे ये कल्पनायें नही उठती कि वे मिट जायेंगे। जितनी सरलतासे दूसरो के बारेमे कल्पनाये हो जाती हैं वैसे अपने बारेमे नही हो पाती है।

भैया! देखो मोहका ऊधम दूसरोमे दोष है, यह बात बडी जल्दी समझमें आ जाती है और अपने बारेमे नही समझमे आती है। अभी छोटे बच्चोको कुछ खोटी बात कह दो कि तू ऐसा है, तो झट वह कह देगा कि हट तू ही ऐसा होगा, तूने ऐसा किया है। यह बच्चा उसकी बातको रिटायर्ड कर देता है। यही सबसे बड़ा झझट है कि यह मेरी निन्दा करने वाला है, मेरी आलोचना करने वाला है, मेरी बुराई करता है, पर अपने दोष नही देखते है। दूसरोके दोष तो सुगमतामे दिख जाते है। यह प्राकृतिकता है कि मोही जीव निन्दा करने वाले, बुराई करने वाले लौर आलोचना करने वाले होते है। दूसरोकी निन्दा करना, आलो-चना करना, बुराई करना यह एक महान् ऐब इस जीवको लगा है। उसमे जीव तरक्की नही कर सकता है।

भैया! बडे पुरुषोको क्या कही निन्दा करते देखा है? जो लौकिक विद्या पढ़े हुए प्रोफेसर, डाक्टर, वैज्ञानिक आदि है, जिन लोगोका दिमाग कभी फुरसतमे नही रहता है, वे दूसरोकी बुराई करना, निन्दा करना क्या जाने। भैया, इस स्वच्छ हृदय पर दूसरोकी बुराई क्यो जम गयी? इसलिए कि हमे अपने वचनोमे उलझना पडे, हममे यही सबसे बडा ऐब है।

किसी पुरुषको जैसे कोई बडी चोट लग जाय, शारीरिक ही नही, किसी भी तरहकी

हो । वह चोटको जैसे तैसे गुपचुप रहकर सहन कर लेता है और किसी भी प्रकारसे काम कर लेता है । इसी तरह इस जगत्मे कर्मविपत्तिकी और रागद्वेषकी बडी चोट लगी हुई है । हमे गुपचुप रहकर, शांत रहकर अपने क्लेशोको दूर करनेका उपाय निकाल लेना चाहिए । दूसरोसे मुझे क्या पडी है ? इस समय रागद्वेषका उदय है, यदि हम उसमे बह गये और अयोग्य काम किया तो हमने अपनेपर क्या दया की ? हमने अपने आपको तो गड्ढेमे ही डाल लिया । अपनी दया तो यह है कि हम खुदमे रमे, दूसरोमे न रमे ।

अपने आपमे रहना कितने तरीकोसे हो सकता है ? उसके प्रीवियस तरीके अनेक हैं—जैसे सबसे पहले वस्तुविज्ञान देखो, यही सबसे पहला तरीका है । अपने आपमे रमनेकी तैयारीमे सबसे पहला उद्योग, वस्तुका ज्ञान करना है । यह वस्तु क्या है ? आत्माकी तो अभी बात छोडो । यहाँ पहली बात कह रहे है, इसमे उत्सुकता रहनी चाहिए ।

किसी भी पदार्थके बारेमे उक्त ज्ञान करनेके लिए पहले पदार्थोंका ज्ञान करो और फिर अपना ज्ञान करो । क्योकि उस लक्ष्यमे स्थिरताका ज्ञान रहता है । आत्मा आत्माको ग्रहण करती है । इसका यह अर्थ है कि वह ज्ञातामात्र रहता है । केवल जाननहार रहना ही आत्माका ग्रहण है, आत्माका कल्याण करना है, यही सबसे सर्वोत्तम बात है ।

देखो भैया ! बिना प्रयोजनके भ्रमकी बात लग बैठी है, जिससे कुछ मतलब नही है, कोई बात नही है, कुछ मिलता वही है । यदि कुछ फायदा मिलता है तो क्या मिलता है ? लोभकी वृत्ति मिलती है । अपने कुटुम्बके द्वारा देख लो कि बच्चो और स्त्रीसे अनुराग करते है, तो क्या मिलता है ? लाभ क्या गांठमें रह जाता है, क्या चीज रह जाती है ? केवल क्षोभ और आकुलतायें रह जाती हैं । पहले अनुराग किया, बोले-चाले और किसी बातपर झगड़ा हो गया तो बस विषाद करने लग गए । यह हर घरमे होता है । उस परिणामके अंत मे मिलता क्या है ? केवल क्षोभके अलावा कुछ नही मिलता है । अभी यह कहे कि भैया ! इन तुम्हारे बच्चोसे तुमको कोई लाभ तो मिलता नही है, केवल क्षोभ मिलता है ।

भैया ! वह तो जहाँ मोह लगा है, जहाँ व्यर्थका राग लगा है, बस वह ही इसका है । कहो भैया, तनिक देर हम ही को समझ लो, जितना भिन्न वह है उतने ही तो भिन्न हम हैं और चाहे हम आपकी आकुलताओमे विशेष कारण न बनें, पर घरके बच्चोको ही वे मानेगे । वह लडको चाहे चपटी नाकका हो, चाहे छोटे कानका हो, चाहे धँसी हुई आँखोका हो, पर कहे कि भैया ! यह दूसरा लडका सुन्दर है, इससे राग करो तो वह उससे राग न करेगा । वह लड़का कितना ही ठीक हो, पर उससे वह प्रेम नही करेगा । बतलाओ कि मोह क्या है ? राग करनेसे अतमे क्या मिलता है ? अतमे बस यही मिलता है कि उसे छोडना पड़ेगा ।

हैरान होकर छोडनेसे तो यह अच्छा है कि विवेकपूर्वक छोडो। आखिर परेशान होकर छोडना ही पड़ेगा। जीवनभर यदि चल भी जाय, तो अंतमे छोड़ना ही पडेगा।

भैया! किसीके घरमे कोई मर जाय और उसके यहाँ जाते है, जिसे कहते हैं फेरा करना। तो चित्तमें यह रहता है कि यह मर गया। लोकमे दूसरे भी तो मरा करते हैं। ऐसे ही यह मर गया। इसमे अचरजकी क्या बात है? मित्र समझाते भी है, मगर थोडा बहुत क्या, यह भी ख्याल होता है कि मेरे कुटुम्बके लोग भी तो इसी तरहसे मर जावेंगे। इस तरहकी बात अपने लिए नही उत्पन्न होती। रागद्वेषका उदय हो, उसमे हम बह गए तो बतलाओ कि हमने अपने पर क्या दया की? हमारी दया तो स्ववृत्ति ही है। अपने आपमे रम जाना है। सो यह मैं अपने आपमे रमकर अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ।

वधिका किन्न चेष्टेय चेष्टेय किन्न वधिका।
स्थित्वा ह्यचेष्टिते भावे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४२॥

चेष्टा तो सम्मुख आती है, उद्योग तो हमारे सामने रहता है, परिणाम तो मेरे सामने रहता है। उस चेष्टाके प्रति यह भावना करो कि क्या वह चेष्टा बध करने वाली नही है। चेष्टाका अपने आपमे उदय होता है, पर ऐसा सोच लो कि वह चेष्टा क्या बध करने वाली नही है? क्या यह परिणाम खोटे कर्मोका बध न कर देगा कि मरकर गधा और सूकर आदि होना पडेगा। क्या यह चेष्टा बंध करने वाली नही है? क्या ये रागद्वेपभाव कर्मोका बध कर देने वाले नही है?

अपने विकारोके प्रति, चेष्टाके प्रति ऐसा विचार बार-बार उठना चाहिए—क्या यह चेष्टा बंध नही करती? ऐसा सोचनेसे चेष्टासे अनुराग न रहेगा। अपने ही घरमे रहने वाले किसी जीवके प्रति अहितकारिताका भाव हो जाये कि यह तो वडा चालाक है, यह मुझे नीचा दिखाना चाहता है। किसी तरहका विरोधीभाव नजर आ जाये तो उससे राग नही रहता। इसी तरह अपने आपमे जो परिणाम विकार चेष्टा आदि हो रहे है वे असलियतमे समझमें आ जाये कि ये खराब कर देनेके लिए है तो उन परिणामोसे भी उपेक्षा हो जायेगी। अपने विकारोसे उपेक्षा हो जाना ही कल्याणका मार्ग है।

भैया! करो जिसको जो करना हो, जहाँ जो होता हो। पर अपने रामको तो मजा केवल ज्ञाता दृष्टा रहनेमे है। यह चेष्टा क्या बध नही करती? जिस परिस्थितिका ज्ञातापन हो, दृष्टापन हो उस परिस्थितिके अनुकूल उत्तर आता है। किसी ज्ञातृत्वमे तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान दोनोका कोर्स है और किसी ज्ञानमे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र

तीनोका कोर्स है। जब अपनी चेष्टामे अपनेको उपेक्षा हो जाये तो अचेष्ट परिणामोमे ठहरना बन जाये। तो निष्क्रिय स्वतन्त्र, निश्चल निष्काम जो परिणाम है वह सहज स्वाधीन है, अचल है, काम, क्रोध आदि भावोसे रहित है, ऐसे चेष्टारहित स्वरूपमें मग्न होना चाहिये।

बडे बडे लौकिक लोग भी यह चाहते है कि जो मेरे मनमे आये वह उस वक्त ही हो जाना चाहिए, और इसीमे अपनी शेखी मारते है कि जब जो चाहा उसी वक्त हमारा काम हुआ। हमारा उदय उत्तम है, पुण्य है क्योंकि जो चाहा वह तुरन्त हो गया। वह तुरन्त होना ही चाहिए इस प्रकारका परिणाम है तो उसमे पर्यायबुद्धिकी बात है, वह हितके लिए नही है, भलेके लिए नही है। जैसे कभी इच्छा हो गयी कि अब पापड खाना है घरमे कह दिया। अगर देर होती है तो अपना अपमान समझते है कि देर क्यो हुई ? सो उसका क्षोभ होता है। जो चाहा वह तुरन्त होना चाहिए—ऐसी मनमे आकांक्षा रहती है, सो घरके लोगो पर जल्दी क्षोभ हो जाता है और बाहरके लोगोसे चाहे महीनो तक न हो तो भी धैर्य बना रहता है। फिर उद्योग करो, फिर मिलेगा उसमे धैर्य रहता है। और घरके लोगोमे बात न मानी जाये, काम तुरन्त न हो जाये तो झट अधीर हो जाते है।

प्रश्न—उस अधीरताका कारण क्या है ? उत्तर—स्वामित्व बुद्धि। इनके हम मालिक है, ये मेरे आश्रित हैं और इन्होने हमारी उपेक्षा की है, सो इस आशयमे वह अधीरता हो जाती है। अधीरता वहाँ होती है जहाँ विवेक नही रहता है। जहाँ विवेक होता है वहाँ धीरता रहती है। सो अपने ही विकार परिणामोके प्रति यह चिन्तन किया जावे कि क्या यह परिणाम बध करने वाला नही है ? क्या मुझे आकुलतावोमे ले जाने वाला नही है ? ये मुझे बरबाद करनेके लिए ही पैदा हुए हैं ना ? ऐसी बातें विकारके प्रति, परिणामके प्रति विचारकर चलना चाहो, विकारोसे हटकर अचेष्ट निज भावोमे उतरना बन जाये तो वहाँ ही अपनेको अपनेमे अपने लिए अपने आप सुख हो सकता है।

> दु:ख द्वन्द्वश्च सतापो विपत्तृष्णाऽन्ययोगत:।
> एकेऽनिष्टं न किञ्चिद्धि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४३॥

दु ख, द्वन्द्व, सताप, विपत्ति, तृष्णा—ये अन्यके सम्बन्धसे होते हैं। केवल एकमे कोई अनिष्ट नही। जहाँ अन्यसे सम्बंध है वहाँ दुःख है। जहाँ अन्यसे सम्बध है वहाँ द्वन्द्व है, जहाँ अन्यसे सम्बंध है वहाँ सताप है। जहाँ प्रकृति हैं वहाँ तृष्णा है। अभी कोई देहाती आदमी है, बेचारा रोटी भाजी खाकर खुश रहता है और किसी कारणसे कही शहर वाला उस देहाती पर नाराज हो जाये या उसको कुछ बडा दंड देना चाहे, उसका बुरा करना चाहे तो सबसे बुरा जो किया जा सकता है वह यह है कि उसे या तो कुछ अच्छी मिठाई खिला

दे, फिर वह जिन्दगी भरको दुःखी हो जायेगा ।

एक हजामत बनाने वाला एक सेठकी हजामत बना रहा था । सो एक दो जगह उस्तरा लग गया । दाढीमे खून आ गया । सेठने सोचा कि इसे दड देना चाहिए । इसने दो जगह छुरा मारा । सो उसने क्या दड दिया कि उसको दो रुपये दिये । सेठ बोला—भाई तुमने बहुत अच्छी हजामत बनायी देखो दो जगह छुरा मारकर तुमने हमारी तबियत ठीक कर दी । हम अब ठीक हो गये । दो जगह लगनेसे मैने तुम्हे दो रुपये दिये । यह बडा खुश हुआ । इसके बाद किसी बाबू साहबकी हजामत बनायी । सोचा, वैसा ही काम करना चाहिए जिसमे दो रुपये मिलें । उसने बाबू साहबके भी दो जगह छुरा लगा दिया, उसने उठकर १०-५ जूते लगाये । कहा—अरे बाबू जी यह क्या कर रहे हो ? हमारा हिसाब तो सही है । हमारा हिसाब तो गलत नही है । अभी-अभी सेठजी की हजामत बनाकर आया, उनके दो छुरे मारे तो उन्होने दो रुपये दिये । बाबू साहब हमारा हिसाब तो सही है । सो किसीसे अगर दुश्मनी निकालनी हो तो उसको कुछ विषयोका स्वाद चखा दो । उन विषयोके वश वह जीवन भर दुःखी रहेगा । और अगर उसके एक दो लाठी मारो तो क्या है ? वह तो ५ मिनटमे ठीक हो जायेगा । जितना दुःख है, द्वन्द्व है, संताप है, विपदा है, तृष्णा है वे सब अन्यके सम्बधसे होते है ।

किसी जंगलमे एक ही घर हो, एक ही कुटुम्ब हो, अपनी खेती करके खुश हो और जब वही पर पचासो घर बस जाते है तब फिर कोई पंचायत स्थापित की जाती है, कुछ सभा सोसायटियाँ होने लगती है । कुछ कुटुम्ब और बस जाते है तब फिर वहाँ सम्मान अपमानका सवाल हो जाता है । जब केवल एक ही था तब आनन्द था । किसीके एक ही लडका है तो खुश है । उसका दिमाग १० जगह नही है और अगर चार लडके हो गये तो कषाय सबमे है ही, तो वे चारो लडके बडे होनेपर आपसमे लडेंगे कि नही ? अगर अकेला रह जाये तो वहां संतोष रहता है । जहाँ चार हो गये और बडे हो गये तो भले ही छोटी अवस्थामे उन भाइयोमे प्रेम हो, एक दूसरेको गोद लिया करता हो, अगर किसी दूसरेने मार दिया, पीट पिया तो क्यो मेरे भाईको मारा ? इस तरहसे भाईका पक्ष करते और जब वे बड़े हो जायेंगे, कोई २० वर्षका हो गया, कोई २५ वर्षका हो गया, कोई ३० वर्षका हो गया तो आपसमे धन-दौलतके पीछे, लडको बच्चोके पीछे लडते है और अगर एक लडका हो तो कोई विपत्ति नही, कोई कलह नही । तो यह आत्मा केवल एक ही रहे, अकेला ही रहे तो वहाँ कोई विपत्ति ही नही है जहाँ अन्यसे सम्बध होता है वहाँ तो विपत्तियाँ है । एकमे कोई अनिष्ट नही है । इस कारणसे मैं एक निजमे ही रमकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय

सुखी होऊँ ।

कषायविषयत्यागे स्वास्थ्यमन्तर्वहिर्द्वयम् ।
तत्यागो ज्ञानमात्रं हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४४॥

कषाय और विषयोके त्यागमे अतरगमे भी स्वास्थ्य रहता है और बहिरंगमे भी स्वास्थ्य रहता है । जो बहुत ही दुबले पतले होते है उनको कहते है कि इनमे गुस्सा भरा है । इस गुस्सेके कारण ही वह मोटा नही हुआ । किसीमे मान मायाकी मात्रा ज्यादा हो तो वह भी मोजमे नही लग सकता । चित्तमे भ्रम हो जाय, दिमाग दसो जगह लगे और किसीकी बात न सुने तो स्वास्थ्य भी ठीक नही रहता, यह उसकी परिस्थिति हो जाती है । लाभ तृष्णा रहे तो जो पासमे है उसका भी आनन्द नही ले सकता है । किसीके पास एक लाख रुपयेकी जायदाद है और कही जायदादमे से दो हजारका नुक्सान हो गया तो ९८ हजार पासमे है, मगर उसकी दृष्टिमे तो केवल दो हजार ही है, जिनका नुक्सान हो गया है । हाय दो हजारका नुक्सान हो गया, इस तरहसे रोनेके कारण वह ९८ हजारका आनन्द नही लूट पाता है । उसके लोभ तृष्णा ऐसी है जिसकी वजहसे जो मिल गया है उसका भी उसे आनद नही मिलता है । जो नही मिला उसकी तो मौज ही क्या लूटेगा ? जो पासमे है उसका तो आनन्द लूट नही पाता है ।

कषायोका और विषयोका त्याग हो जाये तो अतरंगका स्वास्थ्य ठीक रहे और बहिरंगका भी ठीक रहे तो कषाय और विषयोका त्याग है क्या चीज ? ज्ञानमात्र रह जाना, केवल ज्ञानस्वरूप रह जाना यही कषायका और विषयोंका त्याग है । कषायोका त्याग करना, इसका अर्थ क्या है कि ज्ञाता दृष्टा रहना, ज्ञानमात्र रहना—यह इसका अर्थ है । मेरा त्याग यही है ज्ञाता दृष्टा रह जाना । ममता छोडी जाती है क्या ? ज्ञानमात्र हो जाये, केवल ज्ञाता रह जाये, इसीके मायने है ममताका त्याग ।

वस्त्र मलीन हो गये, मैले हो गये तो कोई कहे कि भैया, मैल निकाल दो तो इसका दूसरा अर्थ है कि यह कपडा जिस स्वभावका है वैसा बना दो । यह तो मैल निकालकर दिख भी जायेगा । लो वह मैल है, बडा मैला पानी है, देखो कितना मैल निकला ? क्योकि वह मैल भी एक पौद्गलिक संचय है और कपडा भी एक पौद्गलिक पदार्थ है । यहाँ मैल क्या बतावेंगे ? कषायोका, विषयोका विकल्प और क्या बताया जा सकता है ? विषय कषायोका त्याग करो, इसका अर्थ क्या है कि ज्ञानमात्र रहे । केवल देखन जाननहार रहे तो । सब छूट जावेगे । बुद्धिमान् जो पुरुष होते है, गृहस्थ होते है उनमे झगड़ा निपटानेकी बडी अमोघ कला रहती है । घर गृहस्थीका कोई झगडा होवे वे उन झगडोको महत्त्व नही देते है । वे

उन झगडोंकी उपेक्षा कर देते हैं, ज्ञाता बन जाते है। इनकी जब कषाय कम होगी तब होगी। तो यह उपेक्षा भाव और ऐसा ज्ञाता दृष्टापना, झगडोमें कमसे कम बोलना, यह झगडा निबटानेका बडा ही विलक्षण उपाय है।

सास बहूका झगडा हो, जेठ जेठानीमे झगडा हो और उनके बीचमे कोई पुरुष ज्यादा बोले, ज्यादा अपमान करे तो उनके झगडेका निबटारा करनेमे पहिले तो झगडा बढेगा, निबटारा नही होगा। ज्यो-ज्यों निबटानेको यत्न किया जायेगा त्यो-त्यो झगडा बढ़ेगा और निबटानेका यत्न न करें और उन्हीकी बातोकी देखते जायें तो अपने आप ही वे दोनो अपना झगडा बन्द कर सकती है। और न कर पावें तो अतमे उनके लिए लाभदायक है और उनकी शान्तिके कारण बन जायेंगे। और ज्यादा बढनेसे उनका कोर्स निकल जायेगा। यह बात तो कह ही रहे है। अभी भोजन करनेमे भोजन बनाने वालीको अगर रोज-रोज नाम धरें इसने यह किया, इसने यह किया तो बनाने वाली पर असर नही पड़ता। समझेगी कि ये तो रोज ही ऐसा कहते है। तो किसीके बीचमे पडना अच्छी चीज नही।

सभ्य सभ्य लोगोकी गोष्ठीमे जो खेलते हो तो उनके बीचमे नही पडते। दो हँसते हो, मत्रणा करते हो, फिर भी उनके बीचमे नही पडते। बस जहाँ द्वितीय पर दृष्टि है, द्वैत पर दृष्टि है वहाँ ही स्वास्थ्य बिगड़ गया। अपने कषाय और विषयोका त्याग हो जाये तो अतरग स्वास्थ्य अच्छा रहे और बहिरग स्वास्थ्य भी अच्छा रहे, क्योकि उन विषय कषायो का त्याग क्या कहलाता है ? ज्ञानमात्र रह जाना। यही उनका स्वास्थ्य है। सो मै ज्ञानमात्र रहता हुआ अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

परैः शरणमान्यत्वं नाशोऽशरणमान्यता।
सुख स्व. शरण तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४५॥

लोकमे जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वरूपको ही लिए हुए है। सबमे ६ साधारण गुण है, जिनके कारण सभी पदार्थोंमे यह व्यवस्था बनी है कि वे हैं और अपनेमे परिणमते रहते है। यह व्यवस्था पदार्थोंमे पदार्थोंके स्वरूपकृत है। विकारभावोके लिए परपदार्थ निमित्त है। तिसपर भी परिणमने वाले पदार्थ परिणमते हैं। अपनी परिणतिसे वह विकार निमित्त बिना नही हो सकता। निमित्तका सान्निध्य है फिर भी होता है उस ही अकेलेमे। सारे पदार्थोंकी ऐसी ही व्यवस्था है कि वे हैं और परिणमते रहते हैं। इस कारण कोई भी जीव किसी दूसरे जीवका परिणमन नही करता। कोई जीव किसीकी रक्षा करने वाला नही है। ऐसी स्थितिमे यदि यह बुद्धि रखी जाये कि मेरे लिए तो भैया शरण है, पिता शरण है, अमुक मित्र शरण है, ऐसी बहिर्मुखी दृष्टि होती है तो इस दृष्टिमे वह अपना

विनाश कर रहा है। दूसरोसे अपनेको शरण हो जायगी, ऐसी मान्यतामे उसने अपना तो घर छोड दिया, अपनी तो कोई मान्यता रही नही। स्वय् तो शून्य बन गये, उसकी रक्षा तो स्वयकी ही थी, ऐसी दशामे उसकी स्थिति अपनेको छोडकर बाहरमे भ्रमण करने लगी। इस स्थितिमे वह दु:खी रहता है।

भैया! सबसे बडा दुःख है पराधीनताका। एक पद है—'पराधीन सपनेहु सुख नाही।' श्रद्धामे अपना सत्त्व पराधीन है, ऐसी बात यदि आती है तो उसको कभी शांति नही मिल सकती। दूसरोके द्वारा मुझे मदद होगी, वे मेरेको शरण होगे, ऐसी श्रद्धाको मान्यता हो तो उसमे अपना विनाश हो है। दूसरे मेरेको शरण नही है। मेरा शरण मेरे ही स्वभाव से होता है, ऐसी मान्यता करनेमे सुख और शांति है। जगत्मे सबसे दुर्लभ चीज है तो सम्यग्ज्ञान है। भूधरदास जी कविने भी कहा है कि "धन, कन, कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान। दुर्लभ है ससारमे एक यथार्थ ज्ञान।" सब चीजें सुलभ है, धन, वैभव, राजसुख इत्यादि सभी समागम हो जावेंगे, कल्पनामे ऐसा लावो कि सारे जगत्का वैभव भी यदि मेरे निकट है तो भी उन समस्त जगत्के पदार्थोंसे इसको परिणति क्या हो जायेगी? कहांसे आनन्द हो जायेगा? जो जैसा है अपनेमे उस योग्य, वैसी ही यह अपनी बात उगलेगा।

भैया! कई लोग क्रोधी स्वभावके होते है तो उनको जरा-जरासी बातोमे क्रोध आता है। कोई नौकर है, काम करता है तो जरा-जरासी बातोमे भी नौकर पर क्रोध आता है। सोचता है कि यह बडा खराब है इसको निकाल दो, दूसरा रखेंगे। दूसरा रखा तो उस दूसरे के प्रति भी क्रोध आने लगा तो झुझला जाता है। फिर अपने आपमे निश्चय करता है कि मैं अब नौकर नही रखूंगा। सब काम अपने हाथसे करूंगा। अपने हाथसे काम करते हुएमे भी गुस्सा आता रहता है। जिसमे गुस्सा आनेकी प्रकृति है वह किन्ही साधनोमे हो वह तो क्रोध ही उगलेगा, और जिसके ज्ञानवृत्तिको प्रकृति है वह किन्ही साधनोमे रहे, वह ज्ञानका ही विकास करेगा, ज्ञानका ही उपयोग करेगा। ये सब बातें तो अपने आपकी स्थिति और योग्यता पर निर्भर है। दूसरे मेरी शरण नही, हो ही नही सकते। वह अपना परिणमन करेगा या मेरा परिणमन कर देगा।

भैया! समझाने वाले लाखो है, मगर समझने वाला समझना ही नही चाहता तो वे क्या करेंगे? एक कथानक है कि एक अपने गांवका मुखिया था। किसी सभामे पच लोगो की बैठक हुई। कोई बात ऐसी चल उठी, कहा कि ४० और ४० कितने होते है? तो वह मुखिया बोला कि ४० और ४० मिलकर ६० होते है। तर्क होने लगा। ४० और ४० मिलकर ८० होते है। कहा—नही, ४० और ४० मिलकर ६० होते है। लोगोने बहुत

कहा—४० और ४० मिलकर ६० नही होते । तब मुखियाने कहा—अगर ४० और ४० मिलकर ८० हो जायें तो हमारे घरमे चार पांच भैस है जो पाँच-पाँच, सात-सात सेर दूध देती है । वे सब भैंसें हम पंचायतको दे दगे । कहा—४० और ४० मिलकर ६० होते है, ८० नही होते । सब बडे खुश हो गये, सोचा अब तो भैसें मिलेगी । सबने सोचा कि अब तो बच्चे खब दूध पीवेंगे, कसरत करेंगे । कहा—बहुत ठीक । यह बात स्त्रीने भी सुन ली । घर पहुचे तो देखा स्त्री बडी उदास, मुखिया बोलता है कि तुम उदास क्यो हो ? कहती है कि तुमने बोला है कि ४० और ४० मिलकर ६० होते हैं । यदि ४० और ४० मिलकर ६० न होते हो तो हम सब भैस दे देंगे । तो अब तो ये बच्चे भूखो मरेंगे । मुखिया बोलता है कि तू तो बडी भोली है, अरे ४० और ४० मिलकर अगर ८० होते हो तभी तो भैसें जावेंगी । हमने यही तो कहा कि ४० और ४० मिलकर ६० होते है । यदि ६० न होते हो तभी तो हमने भैंसें देनेको कहा । जब हम मुखसे बोल दें कि ४० और ४० मिलकर ८० होते हैं तभी भैस जावेगी ।

भैया ! स्वय ही सारे पदार्थ सत् है । जब तक यह स्वतन्त्रता अवगत न होगी तब तक तृप्ति और शांति तो प्राप्त हो ही नही सकती है । क्योकि इस सम्यग्ज्ञानके भावोमे तृष्णा कही रुक ही नही सकती । तृष्णा तो आगे ही आगे बह जावेगी । क्योकि पदार्थोंका स्वय सत् तो समझमे आया ही नही । कृतकृत्यता तो भ्रममे आ ही नही सकती । मेरा जगत् मे करनेको कोई काम नही पडा है, ऐसी दृष्टि आये बिना आत्मा शांत हो ही नही सकता । अगर बाह्यपदार्थोमे से कुछ कर देनेका श्रद्धान् है तो बतलाओ कि विराम कब मिलेगा ? यदि कोई पदार्थ परिणम जाए, पर किसी पर दृष्टि न डालें तब शांति प्राप्त हो सकती है ।

भैया ! अपनी ही पुरानी बातो पर ध्यान करके देख लो कि सभी जो कल्याण चाहने वाले हैं, उन्होने यह सोचा होगा कि २ वर्ष पहले, ५ वर्ष पहले और ७ वर्ष पहलेका इतना काम बाकी रह गया है, यह भी ४-६ माहमे समाप्त हो जायेगा । फिर कोई काम नही रहेगा और आनन्दसे धर्मसाधना करेंगे । इस प्रकारसे प्रायः कई वर्ष पहले भी अनेकोने सोचा होगा, मगर वह समय निकल गया होगा, बल्कि उससे चौगुना काल भी निकल गया होगा, पर आज अपने आपको ऐसा पा रहे होगे कि उन व्यतीत हुए वर्षोंकी अपेक्षा हम अब ज्यादा फसे हुए है ।

भैया ! कोई जीव किसीसे बँधा हुआ नही है । किसी भी जीवसे किसी जीवका कोई बंधन नही है, नाता नही है और न ही कोई रिश्ता है । यह मेरा है, ऐसी कोई पहिचान भी नही है । यह जीव तो आज इस घरमे है और कल किसी घरमे पहुच गया । किसी जीवका

किसीसे कोई नाता नही है, फिर भी वे श्रद्धामे बन गए है, ऐसी बुद्धिका होना एक अन्धकार है। जितनी सेवा और जितना व्यय हम अपने बच्चो पर करते है उसका ८वां हिस्सा भी यदि किसी दूसरे बच्चे पर व्यय करें तो वह उप आपके पुत्रसे भी कही अधिक आज्ञाकारी होगा और ऐहसान भी मानेगा।

भैया! यह बात कही जा रही है कि कोई व्यवस्था नही हो रही है। व्यवस्था तो होगी और उससे भी बढकर होगी। चाहे शास्त्रोमे या भगवानकी परम्परामे कितना ही लिखा हो कि भाई! ममत्व छोडो। अगर यहाँ यही हठ रही कि चाहे भगवान कहे, चाहे आचार्य देव कहे, मगर हमारा तो वही काम रहेगा, वही घर रहेगा, वही ममत्व रहेगा और वही पुत्र रहेगा। अब यह हठ छोड दो, ऐसी बात नही कही जा रही है, मगर भीतरमे प्रकाशको सही संभाल लेनेकी बात कही जा रही है।

राजा भोजके समयकी बात है कि जब कवियो और विद्वानोको हजारो व लाखो रुपयोंका पुरस्कार दिया जा रहा था, उस समय सब लोग बैठे हुए थे, राजा भी थे और एक विद्वानका पिता भी बैठा था। यह कोई नियम नही है कि विद्वान्का पिता भी विद्वान् ही हो, डाक्टरका पिता डाक्टर ही हो। हमने तो डाक्टरके बापसे इलाज करवाया, डाक्टरकी बात जाने दो, ऐसा नही है। तो कोई नियम नही है कि विद्वान्का लडका विद्वान् ही हो। उस विद्वान्का पिता देहाती था। उसको एक समस्या दे दी गयी। राजाने क्या समस्या दी— 'क्व यामः किं कुर्म. हरिण शिशुरेवं विलपति।' कहा कि इस समस्याको पूर्ति करो। अब वह बेचारा मतलब ही न जाने। लडका पासमे बैठा था। उस लडकेसे देहाती गवार बापने कहा कि 'पुरारेवापा' जो राजाने समस्या दी है, श्लोक बोला है, इसको पूरा बना दो।

'पुरारेवापा' इस देहाती वचनको सुनकर जो लोग वहां पर थे, मनमे हसने लगे। तो उस लड़के ने श्लोक बनाया 'पुरा रे वापा' से शुरू करके उसने सीधा श्लोकमे फिट कर दिया ताकि लोग समझें कि यह पिता मूर्ख नही है, क्योकि इन्होने ही कहा कि इन शब्दोमे पूरा करके इस श्लोकको बना दो। वह बनाता है—'पुरारेवापारे गिरिरतिदुरारोहशिखरे, गिरौ-सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकर। धनुःपाणिः पश्चान्मृगयुशतकं धावति भृशम्, क्व याम किं कुर्मः हरिण शिशुरेव विलपति।' पुरारेवापा, इसके आगे एक रे और लगा देता है। 'पुरारेवापा रे' यो बोला। पुरारेवापा रे—केवल शब्द जुडनेकी कला है। आगे रेवा नदीके तट पर बहुत पानी पडता है और दाहिने और बायें विकट जगल है, आग जगलमे लग रही है और पीछे १०० शिकारी धनुषबाण लिए हुए हिरणके पीछे दौड लगा रहे हैं, ऐसी स्थिति है। उस स्थितिमे हिरणका बच्चा बोलता है या कवि कहता है—आगे रेवा नदी है। दोनो

ओर पहाडमे आग लगी है । पीछेसे सौ शिकारी धनुषबाण लिये हुए हिरणके बच्चेके शिकार के लिये दौड रहे है । ऐसी स्थितिमे हिरणका बच्चा विलाप करता है कि मै कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?

भैया ! ऐसी ही स्थिति हम आप सबकी है । क्या हुआ कि योग्यता खोटी है, कर्म बंधन साथ है, शरीरका सम्पर्क नही छूटता है, बाहरकी ओर दृष्टि बनी रहती है, परसमागम मे, इस सयोग वियोगमे अपने अनुकूल प्रतिकूल कल्पनाएँ की जाती है, ऐसी परिस्थितिमे यह आत्मा कहां जाये ? क्या करें ? कैसे शांति प्राप्त हो ? उसका कोई मार्ग नही ।

एक राहगीर था । वह शामके समय भी रास्ता चलने लगा । अधेरी रात थी, पग-डडियां बहुत ही छोटी थी मार्ग भूल गया । मील डेढ मील चलनेके बाद वह परेशानीमे फस गया कि कहां जाये, किधर जाये, घना जगल है, वह घबडाने लगा । पर बादमे विवेक किया कि घबडावो मत । अब आगे न बढो, तुम मार्ग भूल गये हो तो अपनी भूलको मत बढावो । यही ठहर जावो । जो कुछ होगा देखा जायेगा । रात्रिके १०-११ बज गये । अचानक बिजली चमकी, क्षण भरको उजेला हुआ । उसे दिख गया कि वह सामने सडक है, यहांसे आधा मील दूर पर । बिजली खत्म हो गयी, प्रकाश नही रहा, अंधेरा ही अँधेरा है, लेकिन उसे बहुत सतोष हो गया । समझमे आ गया कि इतनी हमारी भूल है और हमे उस रास्तेसे जाना है । इतने ज्ञानकी बात आ जानेसे उसको बडा सतोष है । हालांकि वह जगलमे बैठा हुआ है, लेकिन उसे पता हो जानेके कारण उसे संतोष है । उसके धैर्य हो गया—ठीक है, सुबह होने दो, ६ ही घटेकी बात है और सुबह होते ही यह पगडडी उस सडकसे मिलती है, सडकपर पहुचती है । विश्रामसे, आरामसे चलता है और अपने इष्ट स्थानमे पहुच जाता है ।

इसी प्रकारसे हम और आप चलते रहते है, यात्रा कर रहे है, परिणम रहे हैं, ज्ञान कर रहे है, कल्पना कर रहे है । इन कल्पनाओके पैरोसे चलते हुए हम भूल जाते है । उस विषय अटवीमे भूल गये, भ्रमण कर रहे, आकुलताए हो गयी, विह्वल हो गये । कुछ थोडा विवेक हो तो थोडा गम रहे । बाह्यपदार्थोमे दौड़ लगाकर उनमे ही विश्राम करते कुछ मालूम हो रहा है कि हम भूल रहे है, हम विपरीत मार्गमे आ गये है । हम अब अपनी भूलको न बढावें, लम्बा न करे तो अचानक कोई ऐसी झलक समझमे आ गयी कि यह विषय वन है, यह भूल बहुत है, इसमे अगर गये, बढे तो भूल ही बढ़ेगी, आगे जाना नही है, क्योंकि रास्ता खराब है, रास्ता कौनसा जो एकाको अनुभव किया और समझा, अपनी स्वतत्रताको बात । वह कैसा है ? आनन्दस्वरूप है, वही परमपद है, वही रास्ता चलने योग्य है । यह दिख गया एक क्षणकी झलकमे । गम खाते है कि मिलेगा वह रास्ता । चल सकेंगे उस रास्ते पर ।

सुबह हो, प्रभात हो, ज्ञानविकास कुछ हो, जिसे कहते है एक देशचारित्र । कुछ भी चारित्र हो कि उस पगडंडीसे चलना है जिससे आत्माका अनुभव पुष्ट होने पर कुछ अधिक अवसर मिलता है । फिर राजमार्गपर सडकपर पहुच गया । जिसे महाव्रतका पथ कहा है । उससे और आगे बढकर इस निर्विकल्पकी अनुभूतिमे चलकर वह अपने परम इष्ट निजपदको प्राप्त कर लेता है ।

भैया ! दूसरे मुझे शरण है, इस भ्रममे जो रहेगा वह अपना जीवन खो देगा । और जो अपनेको अपना ही शरण मानेगा, वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप अपना परिणमन बनावेगा । मैं ही अपनेको शरण हूं ऐसी उत्सुकता है, इसलिए अपना प्रयत्न भी करेगा तो उसको शांति मिलेगी, सुख होगा । जैसे कोई पुरुष बापकी बडी सेवा करता है याने खूब भोजन देता है और उस पिताकी एक भी बात नही मानता है, उल्टी ही बाते करता है और दो चार ऊटपटांग गालियाँ ही देता है तो बतलावो वह पिताका उपासक है कि नही ? सच्चे मायनेमे उपासक नही हुआ । पिता सही मार्ग बतलाता है तिस पर भी लड़का उल्टा सीधा कहता चला जाता है, पर हाँ इतनी बात है कि भोजनमे वह दुःखी नही करता, यो ही हम अपने परमपिता परमात्मदेवकी बडी उपासना करें, सज-धजके श्रृङ्गार के साथ सब कुछ करें, किन्तु प्रभुकी जो आज्ञा है उसे न मानें तो क्या उसे भक्त कहा जावेगा ?

भैया ! सब अपने अपने ही परिणमनमे रत है । कोई कभी किसीकी फिक्र नही करता, सब केवल अपना ही परिणमन करते है । सोच तो लो, जरा अनुभव तो कर लो, यथार्थ जाननेके लिए उत्सुकता भी नही । तो फिर बतलावो कि इस प्रकारसे प्रभुके भक्त कैसे कहला सकते हो ? जो सुख और शांति उत्पन्न कर सकनेका उपाय है उस उपायसे नही चलते, इतनी मनमें हिम्मत नही रखना चाहते कि मुझे अपना कल्याण करना है । परपदार्थों का संयोग हो जाये, वियोग हो जाये तो भी मेरा कुछ बिगाड नही है, मैं तो परिपूर्ण हूं, सुरक्षित हूं, क्या मैं अधूरा हूं ? सो मुझे कोई कुछ बनावेगा या मैं किसीको कुछ बना दूँगा, ऐसा नही है । फिर बाहरमे किसकी चिन्ता करते हो ? बाहरमे ही अपनी व्यवस्था बना ली है, पर कही भी अपना सहारा नही मिलता है ।

यदि प्रभुकी आज्ञा न मानो और भीतरमे अपने शुद्धस्वरूपका विश्वास न बना सके तो भला बतलावो कि क्या ये घरके लोग आपके सहायक हो जावेंगे ? ये परिवार मित्र जन आदि क्या आपके सहायक बन जावेंगे ? क्या ये परिवारके लोग व मित्र जन आदि मरनेसे बचा लेंगे ? मरना तो एक दिन पडेगा ही । मरनेसे क्या कोई रोक देगा ? पंडित आशाधर

जी ने एक श्लोकमे कल्पना की है कि श्राद्ध करने वाले लोग पिताके मरनेके बाद श्राद्ध करते है और गाय, बछिया, कपडा, सोना, चाँदी इत्यादि पंडोको देते है। इस भावसे कि ये मेरे पिताके पास भेज देंगे। तो मरा हुआ पिता मानो कहता है, कविकी कल्पनामें कि 'ऐ पुत्र जनो मरनेके बाद हमे ये चीजें देते हो। अरे जिन्दगी भर तो सुखसे पानी भी नहीं दिया, पर मरनेके बादमे गाय, बछिया, कपडा, सोना, चाँदी इत्यादि देते हो, अब ये मेरे किसी कामके नही। सोचो तो सही कि क्या कोई सहायक हो जायेगा ? किसपर भरोसा रखो कि बस इनसे मेरा काम बन जायेगा ? अब किसी चीजकी चिन्ता रही तो ऐसा नही हो सकता। भाई इस जगत्मे अपनेको केवल अपना ही नही भरोसा है, कोई दूसरा मददगार नही है। यदि खुद भले है, खुद अच्छे है तो चार भाई भी सत् कामोमे मददगार बन सकते है। अगर खुद भले नही, खुद अच्छे नही, खुद बलिष्ट नही, खुद धीर बीर नही तो दूसरे साधक कैसे बनेंगे ? दूसरोको अपना शरण न समझो, किन्तु अपने आपका हो भरोसा रखो। वह भरोसा है ज्ञानबलका। सही-सही स्वरूपको समझना ही ज्ञान है। यदि यह बात बनी है तो मेरे लिए मैं शरण हूँ। इससे ही सुख होगा, शाँति होगी। इस कारणसे ऐसा ही अपनेको देख-कर अपनेमे ही तृप्त होकर मै सुखी होऊ।

दुःखमूलं स्वधीरन्ये न परेऽर्थाः परे परे।

स्वच्युतिः सा च स्वस्थोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४६॥

दुःखोका कारण अन्य पदार्थोंमे आत्मबुद्धि होना है। परपदार्थ कोई क्लेशके कारण नही है, किन्तु अपने आपमे वस्तुस्वरूपके विपरीत ख्याल बना ले तो उससे दुःख उत्पन्न होता है। परपदार्थ तो पर ही है, भिन्न ही है, उनसे मेरेमे कोई परिणमन नही आता है, पर हम ही परबुद्धि बनाकर जो अपना ख्याल बनाते है, उस ख्यालसे ही क्लेश उत्पन्न होते है। किसी भी प्रकारका दुःख हो, उस दुःखके अनुभवकी जो स्थिति है, वह अपने आपके स्वभाव से च्युत होनेकी स्थिति है।

भैया ! स्वकी ओर जहाँ उपयोग है, वहाँ क्लेश नही है। यह बात यद्यपि हम सबकी पूरी तरह गुजरती है और किसी न किसी रूपमे कुछ न कुछ ख्याल बनाकर हम अपने आप को संतोषमे रखते है। ठीक है कि दुःख आते है, पर एक दृष्टि सही स्वरूपकी बन जाए तो उस दृष्टिके प्रसादसे बाहरसे दुःख होने पर भी अन्दरमे भी दृष्टि कर लेगा और अपने आपमे भी धैर्य बना लेगा कि दुःख रहता है तो कब तक रहेगा ? ऐसा अन्दरसे बल प्रकट होता है। एक सत्य और असत्य स्वरूपकी दृष्टि होनेसे और इस ही कारण अपने आपसे अन्दरमे जो स्वाद आता है, आनन्द होता है, वह एक सत्य आनन्द होता है।

भैया ! बाहरमें दुःख है। फिर भी भीतर सुख है। ऐसी स्थिति सच्ची दृष्टि रखने वालेकी होती है। जैसे हम किसी कामकी जल्दीकी वजहसे भागे दौड़े जा रहे है और कदाचित् सिरमें कही कुछ लग जाय, चोट आ जाए, खून निकल जाए, मगर सुध अन्यत्र लगी है, जल्दीकी वजहसे हम भागे जा रहे है, हमे दर्दका ख्याल नही रहता है और जब उस ओरकी सुध हो जाती है तब उसका ख्याल होता है कि यह खून कहाँसे आया ? जिस तरफ दृष्टि लगी है, अनुभव उसका ही होता है।

भैया ! यदि भ्रमरूप दशामे उल्टा सीधा उपयोग बना हो तो उस उल्टे सीधे उपयोग के बन जानेसे ही दुःख हो जाता है। जैसे एक जगह समयसारमे दृष्टान्त दिया है कि 'एक कमरेमे एक मनुष्य बैठा हुआ ऐसा अनुभव करने लगा जैसे कि अन्य लोग गरुडका ध्यान करने लगते है कि मैं गरुड हू तो ऐसा ध्यान कमरेमे बैठे-बैठे करने लगा कि मैं भैसा हूँ बहुत मोटा ताजा हूं, बडे लम्बे-लम्बे सीग है। उसे ऐसी एकाग्रताकी भावना है कि उसे यह ध्यान में आ जाए कि इस कमरेका दरवाजा छोटा है, इसमें से मैं कैसे निकलूगा ?

भैया ! जिस ओर दृष्टि लगी है, उस ओरका ही सारा वातावरण बन जाता है और वैसा ही परिणमन होता है। हम अपनेको मनुष्य समझते है तो मनुष्य जैसा काम करनेकी नौबत आती है। हम अपनेको कई पुत्रोका बाप समझते है कि मैं पिता हू तो बच्चोके साथ भीतरसे अपना पिता जैसा व्यवहार रखना चाहता है। पिता जैसा व्यवहार करनेकी नौबत आती है। यदि अपनेको केवल यह देख सको कि यह मै एक चैतन्यमात्र एक वस्तु हू, इस तरह अपने आपको सबसे निराला केवल चेतनाशक्तिमात्र समझ सकता हू तो वे मनुष्यादिक जैसी प्रवृत्ति नही करते, अन्तरङ्गमे ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी प्रवृत्ति कर लेंगे। जैसी आपकी मान्यता है, वैसी ही यहाँसे बात निकलती है। जब भ्रमरूप बाह्य पदार्थोंमे ममत्व करते है, यह मैं हूँ, यह मेरा है, इतनी ही बुद्धि होनेमे कारण क्लेश होना तो प्राकृतिक बात है।

भैया ! क्लेशोंसे मुक्ति पानी है तो वह सम्यग्ज्ञानसे ही पायी जा सकती है। जहाँ ज्ञानशक्ति हो, निजको निज परको पर जाननेकी वृत्ति हो वहाँ यह आत्मा अपने आपमे स्वस्थ हो सकता है और यह स्वास्थ्य ही शांतिका कारण है। गुरुजी बताते थे कि देखो भाई यह जो संसार है उसे एक अजायब घर समझो। जैसे अजायब घरमे लोगोको देखनेकी इजाजत है, देखते जावो, पर किसी चीजको छूनेकी, उठानेकी कोशिश न करो या किसी भी चीजका प्रयोग करनेकी इजाजत नही है। अगर वे बेइजाजतका काम करते हैं तो वे बांधे जाते हैं, दडित होते हैं। इसी प्रकार यह जो समस्त पदार्थोंका समूह है एक अजायब घर है। इसके देखनेकी इजाजत है, आतमवस्तुके स्वरूपकी ओरसे केवल देखने जाननेकी इजाजत है। इस

तरहसे पदार्थोंमें राग करनेकी, द्वेष करनेकी या इस तरह आपा माननेकी इजाजत नही है। लेकिन जो इजाजतके विरुद्ध बाह्यपदार्थोंमे स्वत्व बताया करते हैं, आत्मीय भाव करते हैं तो वे अपने आप ही बंधनको प्राप्त होते है।

वस्तुतः कोई बंधन नही है, पर बंध जाते है। जैसे गायको बाँधते हैं लोग गायके गलेको पकडकर और गिरवाके एक छोरसे दोनो छोरोको बाँध देते हैं। गायका गला सुरक्षित है, गायके गलेको गिरवेसे नही बाँधा जाता है। किन्तु गिरवेका एक छोर दूसरे छोरसे बाँध देते है। ऐसी स्थितिमे ही ये जगत्के जीव पंचेन्द्रियोमें ही बँधे रहते है और उन्हीमे ही विहार किया करते है। जैसे गिरवेसे गायका गला नही बँधा है वैसे ही यह जीव कर्मोंकी उपाधिसे तिरोहित हो गया है। पर साक्षात् बंधन नही है। साक्षात् बंधन तो पुद्गलका पुद्गलसे है। जैसे निमित्तनैमित्तिक भावोके कारण गाय बंधनको प्राप्त है, इसी प्रकार यहाँ भी इन कर्मोंका कर्मोंसे बंधन है, मूर्तसे मूर्तका बधन है। परंतु ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि कर्मों की उपाधिके बीच रहने वाला यह जीव बंधा हुआ होता है, बंध जाता है और उन कर्मोंके विपाकके कारण इस जीवके नाना ख्याल, नाना कल्पनाएँ जो इसकी भूमिकासे उत्पन्न होती है, उससे यह जीव अपनेको पराधीन अनुभव करता है, परतंत्र हो जाया करता है। तो कोई अन्य पदार्थ उसे साक्षात् नही बाँधे हुए है, किन्तु इनमे वह भ्रम करता है व रागद्वेषकी भावनाएँ लाता है तो वह परतंत्र बन जाता है।

भैया! पराधीनताके भावमे शाति नही प्राप्त होती। अपने स्वरूपमें अभेदरूपसे प्रविष्ट हो तो शान्ति है। जितना हम भेद भिन्न होते जा रहे हैं, उपयोगमें उतना ही हमारा बिगाड है। हम स्वतः जैसे हैं सामान्य स्वरूपसे अथवा साधारणतः चैतन्यमात्र इस तरहका उपयोग बनाये। यह ज्ञातृत्व पर्याय और यह लक्ष्यभूत चैतन्यस्वभाव यह कर्ता कर्म एकमेक हो जाये अर्थात् उपयोगमे यह चैतन्वस्वभाव इस प्रकारका ज्ञेय हो जाये कि वहाँ बदलनेकी आकुलता नही हो। केवल एक शाश्वत स्वभावके अनुभवका स्वाद लिया जा रहा हो, ऐसी अभेद अनुभूतिकी दशामे जीवकी शुद्ध पर्यायका विकास होता है। यह कार्य भीतर ही भीतर गुप्त रूपमे ही अपने आपके द्वारा अपने आप कर लेनेका है और यह मात्र ज्ञान साध्य है। इस ही कामकी स्थिरता होना ही चारित्र है। चारित्रका जो पालन है वह ऐसा प्रयोजक है कि कही मेरी इस आत्मानुभूतिकी पात्रताके विरुद्ध आचरण न हो। अगर विरुद्धाचरण हुआ, विषय कषायोकी आसक्तिका आचरण हुआ तो वहाँ इस अनुभूतिके पात्र भी नहीं हो सकते हैं। अतः अपना प्रवर्तन जितना है, इतनी सावधानीका हो कि किसी जीवकी हिंसा न हो, किसीके प्रति असत्य व्यवहार न हो, झूठ न बोलें, किसीकी चीज न चुरावें, बेईमानीका व्य-

वहार, कामवासनाका प्रसंग न हो, परिग्रहबुद्धिता न हो, ऐसा अगर चारित्र रहता है तो आत्मानुभूतिका स्वाद लिया जा सकता है ।

अन्यायकी वृत्तिमे तो अपने आपको शल्य रहता है । जिसके कारण हम मोक्षमार्गके पात्र नही बन सकते है । इसलिए मिथ्यात्वका त्याग हो, अन्यायका त्याग हों तो हम अपने ज्ञानको ज्ञानके मार्गमे सुगमतासे ले जा सकेंगे । अच्छा ! एक यही श्रद्धान् हो कि मुझे जितने भी दु'ख होते है वे सर्व मेरे अपराधोके कारण ही होते है । दूसरोके अपराधसे मुझे कोई दु'ख नही होते । कल्पना बनाते है परवस्तुके बारेमे और परवस्तुवोंका परिणमन हमारी कल्पनाओके कारण कुछ होता नही, इसलिए हम दुःखी बने रहते हे । सो जब इस वस्तुस्वरूपका सम्यक्बोध करे और अपने आपमे यह निर्णय करें कि मेरे किस कसूरके कारण, किस अपराधके कारण मुझे दु'ख हुआ ? अपने अपराधके सोचनेमे लग जायें तो शांति मिलेगी । जब दु'ख होते है तो उस स्थितिमे दूसरोका अपराध हम सोचते है । ऐसा सोचनेके कारण हमारे दुःख और बढ जाते है । हम दुःखी होते हैं अपने ही अपराधोसे, यह पूर्ण निश्चित बात है । तो दुःखी होनेके समय हम अपने अपराधोके खोजनेमे लग जायें कि मैंने क्या कसूर किया है ? किस वस्तुमे राग किया है इसलिए दुःख है । इसी प्रकार हम अपने अपराधको खोज लें तो निश्चित तत्क्षण शांति प्राप्त हो सकती है । अगर दूसरोमे दृष्टि लगी रही कि अमुकने यो अपराध किया, अमुकने यो किया, इसलिए बिगाड हुआ, ऐसा अपने मनमे जो दूसरोका अपराध सोचे उससे दु ख बढेगा, घटेगा नही तो अपने जीवनमे एक यह ही बात आ जाये कि जब भी मुझे दु ख होते है तो वे दुःख मेरे ही किसी कसूरसे होते है ।

एक घटनाका और विचार करो । कभी हम अपने न्यायसे चिगते नही, अपना आचार विचारसे चलते है तिसपर भी कोई मुझे सताए, कुछ भी करे तो उसमे मेरा कौन सा अपराध है जिससे मुझे दु.ख हुआ और कुछ नही तो यह ही अपराध है कि हम अपनी स्वभावदृष्टिको छोडकर किसी परकी दृष्टिमे लगे है, अनात्मतत्त्वकी ओर झुके है तो बस यही हमारा अपराध है । कोई दुःख हुआ तो समझो कि मेरे ही अपराधसे मुझे दु ख हुआ । अन्यके अपराधसे मुझे दुःख नही हो सकता है और वह अपराध इतना ही है कि हम वस्तुके सच्चे स्वरूपकी दृष्टि न कर सकें । एक स्वयंके ज्ञानके बीच एक बाधा डाल सकने वाली चीज है तो वह यहाँ मूल दो ही है—कर्तृकर्मभाव और निमित्तनैमित्तिक भावके यथार्थ निर्णयका अभाव । जहाँ दोनो बातें दिखती है कि कर्तृकमभाव परस्परमें नही है, पर निमित्तनैमित्तिक भाव इस प्रकारसे चल रहे है, ऐसी दोनो ही बाते जिस दृष्टिसे हो, जिस निर्णयसे समझमे आती है वह बड़ी सावधानीका ज्ञान है । किसी ओर एकांत न कर सके, किसी एकांतमे न

झुक सके और सर्व प्रकारकी सावधानी अवश्य बनी रहे, यह बडी प्रामाणिक दृष्टिका काम है।

परपदार्थ अपने ही स्वरूपमे अवस्थित है। यहाँ जो बिगाड़ रहता है, वह इसीका विकार है। जितनी जो कुछ परेशानियाँ होती है वे सब अपने ही भावके कारण होती है। किसी दूसरेके भावके कारण परेशानियाँ हो ऐसा नही होता। यह दुःख क्यों विकृत कहलाता है कि वह पर-उपाधिका निमित्त पाकर प्रकट होता है। फिर भी यह देखो कि अपने ही भावोके कारण यह जीव बिगडा हुआ है किसी दूसरेके भावोके कारण यह जीव नही बिगडा हुआ है। इसलिए यह जीव अपना ही वास्तवमे कर्ता है, कर्म है, करण है और कर्मफल है, ऐसा जो मानता है वह जीव मोहका विनाश कर सकता है। किन्तु मोहीको वह ज्ञान नही रुचता है। यह मेरा ही तो घर है, यहाँसे उठकर मैं सीधा उस ही घर तो जाता हूं। मैं किसी दूसरे घर तो नही जाता। यह मेरा घर है। अरे ये सब व्यवस्थाकी बातें है। वस्तुत: मेरा तो मेरे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको छोडकर कुछ अन्य है ही नही। ये बाकी तो सब व्यवस्थाकी चीजें है या अज्ञानकी अवस्थामे मोहको बढाने वाली वासनायें है। ज्ञानीको अपने सत्य स्वरूपका ज्ञान होता है और वही प्राप्त हो जाता है। प्रभो! केवल मुझे यह स्वभावदर्शन का ही परिणमन हो तो ही भला है। पर-परिणतिसे हटकर जो विचार विभिन्न परिणति लगी हुई है बस यही अकल्याण है। मेरा एक ही निर्णय है, स्वस्थिति हो, कल्याण हो। स्वसे च्युत होकर बाह्यमे रमना वही अकल्याण है।

स्वलक्ष्यता महादुर्गस्तत्रस्थस्य न बाधनम्।
तत्र गुप्तो न जेयोऽत. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४७॥

अपने आपकी आत्माका लक्ष्य करना वह महान् किला है। जैसे कोई अपनी रक्षाके लिए मजबूत किलेमे बैठता है तो उससे भी अधिक जबरदस्त मजबूत किला है अपने आपके आत्माका लक्ष्य रखना। उस ईंट पत्थरके किलेके भीतर भी कल्पनाएँ करके यह जीव दुःखी हो सकता है, पर अपने आत्माके लक्ष्यमे रहता हुआ पुरुष दुःखी नही हो सकता। सो अपने आपका लक्ष्य होना ही महान् किला है। उस किलेमे रहने वाले पुरुषको किसी प्रकारकी बाधा नही होती। उसमे जो गुप्त है, सुरक्षित है, ऐसा पुरुष दूसरोके द्वारा जीता नही जा सकता, अजेय है। संसारमे सबसे महान् यही कार्य है कि अपने आत्माके यथार्थस्वरूपका परिचय हो जाये और उसमे ही यह लीन हो जाये। ऐसा जिन्होने किया है। उनको ही राजा महाराजाओने, इन्द्रोने पूजा है। उस किलेमे गुप्त सुरक्षित जो रहता है वह विजयी पुरुष है। सो मैं ऐसी बाहरकी वृत्तिको छोड़कर अपने ज्ञायकस्वभावके लक्ष्यरूप दृढ किलेमे बैठूं और अपनेमे

अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

भैया! दुर्ग उसे कहते हैं जहाँ बड़ी कठिनाईसे पहुंच हो सकती है। दुःखेन गम्यते प्राप्यते यत्र स दुर्गः।' बडी मुश्किलसे जहाँ जाना होता है उसको 'दुर्ग कहते है। यह आत्मा दुर्ग ईंट पत्थरके किलेसे भी मजबूत होता है। वह ऐसा मजबूत होता है कि उसके भीतरमे अन्यका प्रवेश होना असभव है। आत्माके लक्ष्य होनेकी बात इतनी कठिन है कि इसमे सर्व साधारण जीवका प्रवेश नही हो सकता। जिनका ससार निकट है, जिनकी मुक्ति पास है, ऐसे ही जीव अपने आपके आत्माका लक्ष्य कर सकते हैं। सो ऐसा अपना लक्ष्य हो यही एक सुरक्षित अपना महल है, जिसमे निवास करके यह जीव व्यग्र नही होता, आकुलित नही होता। तब यह अपने आप स्वयं सुखी हो जाता है।

स्वलक्ष्यता सुधासिन्धुस्तत्रत्यस्य न तापनम्।
तत्राविष्टः सदा शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४८॥

अपने आपका लक्ष्य होना यही अमृतका समुद्र है। उस समुद्रके निज लक्ष्यमे रहने वाले जीवको किसी तरहका संताप नही है। जैसे कोई बड़ी गर्मीसे सताया हो और वह समुद्र मे नहाये, डुबकी लगाये तो उसको संताप नही रहता। सारा खेद उसका दूर हो जाता है। इसी तरह संयोग वियोगके नाता दुःख-संताप इस जीवमे लगे हैं। सारे संतापोसे यह जीव बहुत संतप्त है। उसका संताप इन दोनो लक्ष्योरूप समुद्रमे नहानेसे दूर हो सकता है। इस निज लक्ष्यके काममे किसी प्रकारका अनिष्ट नही, सदा शांति है। सो यह मैं निज ज्ञानसुधा सागरमे मग्न होकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

पापोदये न हानिर्मे हानिः पापमये निजे।
पाप पराच्च्युतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४६॥

पापोका उदय होनेपर मेरी कोई हानि नही, पर पापमय मैं खुद बन जाऊँ तो उसमे हानि है। निश्चयतः पाप क्या चीज है कि परपदार्थमे मैं मोही हो जाऊँ, स्नेही बन जाऊँ, यही पाप है, इसमे ही हानि है। और जो व्यवहारतः पापप्रकृतियाँ है उनका उदय बाह्य बात है। देखो पापोका उदय बड़े-बड़े पुरुषोपर भी आया। आदिनाथ भगवानको ६ माह आहार नही मिला। गजकुमार मुनिराजके ससुरने उनके सिरपर अगीठी जलाई, क्योकि भगवान् नेमनाथके समवशरणमे गजकुमार विरक्त हो गये थे। दो दिन पहले शादी हो गयी थी, लेकिन विरक्त होकर साधु बन गये थे। जब भीतरसे राग और मोह हटता है तब यह जीव अपने ज्ञानका ही कार्य करता है। राजकुमार साधु हो गये, तो उनके ससुरको क्रोध आया कि अगर साधु होना था तो विवाहके पहले क्यो न हो गया? सो राजकुमार मुनिराजके सिर

पर अंगीठी जला दी। कितना बडा पापका उदय है। सुकोशल स्वामीको पूर्वमाता सिंहनीने उन्हे मार डाला। कितना बड़ा पापका उदय है, किन्तु हानि कुछ नही।

सुकुमार जब गृहस्थ अवस्थामे थे, यदि उन्हे दीपक दिख जाये तो आंखोसे आंसू आ जायें। वे तो रत्नोके उजेलेमे रहते थे। यदि चावलोकी जातिमे से कोई रद्दी चावल होता था तो उसे निकाल देते थे। समस्त चावलोमे उत्तम जातिके चावल उनके भोजन थे। जिन गद्दोमे बिनौला रह जाता था उनपर वे सुखसे नही बैठते थे। लेकिन कुमारको अपनी सुकुमारताका कोई ख्याल नही हुआ। वे अपने आत्मीय ध्यानमें रत हो गये। जिस समय पूर्व भवकी स्यालनी अपने बच्चे सहित वहाँ घूम रही थी, इस सुकुमारको देखकर उसे एकदम स्मरण हो आया कि इसकी ही वजहसे मुझे नाना कष्ट उठाने पडे थे। क्रोधमें आकर सुकुमार मुनिराजके पैरोको चाटने लगी। खून निकल आया और कुछ मांसके टुकड़े भी खा लिए, लेकिन सुकुमार आत्मध्यानमे नही ड़िगे। यद्यपि स्यालनीको हटाना कोई बड़ी बात न थी। एक हाथसे डंडा उठाकर उस स्यालनीको यों ही भगा दिया जाता, मगर इतने आत्मस्नेही सुकुमार महाराज कि आत्मध्यानको छोडकर कोईसा भी विकल्प करना उन्हे नही सुहाया। उन्होने विकल्प नही किया और अपने आत्मध्यानका ही पोषण किया। सो पापका उदय भले ही था मगर उनकी आत्मा पापमय न थी, पुण्यमय थी। तो पापके उदयमें हानि नही होती, मगर पापी बन जाये कोई तो वहाँ हानि है।

जैसे बडे-बड़े राजा महाराजा अहकारके गर्वमे आकर, लालसा और तृष्णामे फंसकर अनेक अत्याचार करते है, अनेक पाप बन गये। सो पापमय बन जानेसे हानि है, खोटा बंध है। सो पापके उदयसे नुक्सान नही है, किन्तु पापमय परिणाम करनेसे नुक्सान है। पापोका उदय बड़े-बड़े पुरुषोके आया, पर वे शांत सदाचारी ही रहे। उनको विकारभाव नही हुआ। और जो बड़े पुण्यके ठाठमे रहते हैं उनको विकारभाव हो जाता है। तो अब बतलावो कि पापके उदयमे हानि क्या है ? पापके उदयमे हानि नही है, किन्तु अपने आपको पापमय बना लेनेमे हानि है। पाप इतना ही है। यही सब पाप है। जिसकी अपने आपकी प्रतीति मिटी, अपने आपसे हटा, बाह्यमे अन्य पदार्थोमे लगा तो वे सब काम पाप है। जिन्हे अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी खबर नही और परभावोमे लिपटा है, जो परिणति होती है उस परिणतिसे मुग्ध है तो वह पापमय है। और तब उसे फल बुरा भोगना पड़ता है। सो पापोको छोड़कर अपने आपको अपने आपमे देखकर यह मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

पुण्योदये न लाभो मे लाभः पुण्यमये निजे।
पुण्यं स्ववृत्तिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-५०॥

देखो भाई पुण्यके उदयमे मुझे लाभ नही है। पुण्यका उदय हुआ, धन वैभव पास हो गया, लोग मेरी जी हजूरी करने लगे और यदि मेरी वृत्तिमे आसक्ति चलती है तो सक्लेश ही सक्लेश रहते है। पुण्यमय परिणाम नही है और बडे पुण्यका ठाठ है तो यह जीव आनन्द नही पा सकता। पुण्य क्या है ? पवित्रता करना अपने आपको अपने आपमे जानना, यही पवित्र काम है। पुण्यका अर्थ है पवित्र, सो जैसा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है उसरूप अपने उपयोगको बना लिया तो यही सकटोसे दूर हो जानेका उपाय है।

बडे-बडे राजाओके पुण्यके उदय आये, बादशाहोके वर्तमान इतिहासमे जो महापुरुष हुए उनका बडा पुण्यका उदय आया और उस उदयमे दूसरोपर अन्याय किया, अत्याचार किया तो उन्हे क्या पुण्यसे लाभ मिला ? बोलो, उनकी दुर्गति हो गयी, खोटे कर्मबध हो गये, कुछ थोडे समयके लिए काल्पनिक मौज ले ली। मगर इन कल्पनाओके मौजसे ही तो पूरा नही पडता। सो पुण्यके उदयमे कोई लाभ नही। लाभ तो अपने आपको पवित्र बना लेनेमे है, अपना शुद्ध स्वभाव बना लेनेमे लाभ है, अपने आपको सभालना, मोहसे बचा लेना यही अपना पुण्यभाव है।

भैया ! मोहके समान कोई पाप नही। मोह स्वय एक पाप है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ—इनमे जितने पाप है उससे भी अनन्तगुना मोह मे पाप है। मोहमे अपना आत्मा अपने आधीन रह ही नही पाता। पराधीन हो जाता है। तो मोह ही एक विकट पाप है और निर्मोहता ही वास्तविक पुण्य है। अपना आत्मा देखने जानने वाला पदार्थ है तो बस जानो और देखो। उसमे राग द्वेष करनेसे लाभ क्या है ? मिलता तो कुछ है नही। पर प्रत्येक वस्तुके विषयमे विकल्प विचार बना लेनेसे इस जीवको केवल क्लेश ही होते है। सो पापवृत्तिका त्याग करो, अपने आपके दर्शन करो, इस ही ज्ञान-स्वरूपमे प्रसन्न होकर अपनेमे अपने आप सुखी होओ। प्रसन्नताका अर्थ है निर्मल होना। निर्मल होनेमे ही आनन्द है। इसलिए प्रसन्न होनेको आनन्द पाना लगा लेते है, पर वास्तवमे प्रसन्न होनेका अर्थ-खुश होना नही है बल्कि निर्मल होना है। सो आत्माकी निर्मलता यही है कि मोह छूटे, कषाय छूटे मोह और कषाय छूटनेसे ही निर्मल हो गये और आत्माकी मलीनता यही है कि मोहका भाव पैदा हो और कषायोका इसमे जागरण हो। सो उस मोहसे परे होकर अपने आपको पवित्र बनाता हुआ मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

प्राङ्मया चेष्टित यत्तत्स्वकषायविचेष्टितम्।
अकषायः स्ववृत्तिः श स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-४१॥

मैने जो पहले चेष्टाएँ की, वे सब अपने आपकी ही चेष्टाएँ हुईं। मैंने दूसरोका कुछ

काम नही किया, किन्तु जब जो कषाय उत्पन्न हुई, उस कषायका इलाज किया। कोई किसी से राग नही करता, किन्तु उसमे रागकी कषाय उत्पन्न हुई तो अपने राग कषायको वह मिटाना चाहता है। सो सर्वत्र यह जीव अपने कषायोकी ही चेष्टा करता है दूसरोका कुछ नही करता, घरमे रहते हुए बच्चोकी कितनी खबर रखते, मित्रोकी कितनी खबर रखते, पर उनमे जब इस तरहका कषाय नही रहता तो वही परिवारके लोग है, वे ही मित्र जन है, पर उसे नही सुहाते और जब राग कषाय रहता है तो वे परिवारके लोग चाहे न पूछें, पर वह अपने रागभावसे अपने कषायकी चेष्टा करता रहता है।

एक पौराणिक कथा है कि एक देवरति नामके राजा थे और उनकी स्त्रीका नाम रक्ता था। सो देवरति राजा अपनी रानीसे बड़ा मोह रखते थे। जब राज्यके कामोमे फर्क आने लगा तो पुरवासियोने राजासे कहा कि महाराज या तो आप रानीसे ही मोह कर लें या राज्य सम्भालें। दोनो बातें नही हो सकती। राजाने कहा कि हम राज-काज नही करेंगे। सो रानीको लेकर राज्यसे निकल गये। चलते-चलते एक छोटे नगरके बाहर खेतोके पास ही ठहर गये। राजाने रानीसे कहा कि तुम यही ठहरो, हम कुछ भोजन सामग्री ले आयें। राजा भोजन सामग्री लेने गया और रानीका क्या हाल हुआ कि एक लूला कुबडा आदमी चरस हांक रहा और गा रहा था। उसका कठ सुरीला था, उस सुरीले कठको सुनकर रानी मोहित हो गई। कुबडेसे रानीने जो कुछ कहना था, कहा। कुबडा डरा और कहा कि तुम बडे राजा की रानी हो, यदि राजाने सुन लिया तो न तुम रहोगी और न मैं जीवित रहूगा। रानीने कहा कि यदि राजाको खबर मिल गयी तो हम सभाल लेंगे। राजा आया तो रानी उदास होकर बैठ गई। इस सारी कथामे यह समझे कि कोई किसीसे प्रेम नही करता, सब अपने-अपने कषायकी चेष्टायें करते है। रानी उदास होकर बैठ गयी तो राजा कहते है कि तुम्हारे लिए राज्य छोडा, तुम्हारी इतनी उदासीका कारण क्या है? रानी बोली कि आज आपकी वर्षगांठ मनाते। राजा बोला कि वर्षगांठ जिस तरहसे मनाना चाहो मना लो। रानी बोली कि बहुतसे फूल ला दो और बहुतसा सूत ला दो, डोरा ला दो १०-२० गज। हम २-३ मालाएँ बनायेंगी। जब मालाएँ बन चुकी तब रानी राजासे कहती है कि राजा महलमे होते तो ऊँचे दरबारके ऊँचे सिरेपर बैठाकर वर्षगांठ मनाती। चलो उस पहाड़पर वर्षगांठ मनाएँ। पहाड पर चले गये। रानी जब राजाको पहाडकी चोटी पर ले गयी तो वहाँ चारो तरफ मालावो से राजाको जकड दिया। वह तो केवल उसके मनानेका बहाना था। रानीने एक धक्का लगा दिया जिससे राजा पहाड़से लुढककर एक नदीमे गिर गया।

नदीमे बहकर राजा एक किनारे पर पहुचा। तो जिस देशमे पहुंचा वहाँका राजा

गुजर गया था। उस देशके मंत्रियोंने सलाह की कि आज प्रधान हाथीकी सूंडमे माला डालकर फिराओ। हाथी जिसके गलेमे माला डाल देगा, उसीको राजा बनाया जायेगा। हाथी गया घूमता-घूमता, देवरतिके ही गलेमे माला डाल दी और देवरतिको सूडसे चढाकर मस्तक पर बैठा लिया। देवरति तो यहाँ राज्य करने लगा। रानीका क्या हाल हुआ कि कुबडेपर आसक्त हो गयी थी। कुबड़ेसे चलते नही बनता था तो एक चगेडीमे अपने सिरपर रखकर नाचे, कुबड़ा गावे और नाचे। जो रुपया आठ आने मिल जाते उससे ही अपना पेट पालते। दुनिया मे बतावे कि हम सती है और अपने पतिको सदा सिरपर रखे रहती है। वह रक्ता इस तरह से पहुचते पहुंचते उसी नगरमे पहुची जहाँ देवरती राजा थे। वहाँ भी नाचे और गावे। थोडी देरमे देवरतीने कुछ पहिचान लिया कि यह तो हमारी स्त्री मालूम पडती है। सो जब दरबार से उठ गये तो उस नाचने वालीसे पूछते हैं कि तुम कौन हो, क्या हो? ऐसी बातें करते करते उस राजाने समझ लिया। उस राजाको यह जगत् बडा असार मालूम हुआ कि एक मेरी ऊँची पटरानी भी ऐसा काम कर सकती है, ऐसा सोचकर ही ये विरक्त हो गये। इस कथानकमें शुरूसे अंत तक यह देखो कि कोई किसीसे राग नही करता है। जो करता है वह अपने कषायकी चेष्टा करता है।

भैया! आप बच्चोका पालन पोषण नही करते। आप एक अमूर्तवस्तु हैं। सो जैसा कषाय आया उसका आप इलाज कर रहे है। यदि भ्रम साथ लगा है तो यह मान रहे है कि मैं बच्चोका पोषण करता हू, ये बच्चे मेरे ही तो है। सो मैंने जो भी चेष्टाएँ की वे सब अपनी कषायकी चेष्टाएँ की। वास्तवमे मेरा जो कार्य है, मेरी जो वृत्ति है वह तो कषायरहित ही है। सो कषायरहित जो मेरी आत्माका स्वरूप है उस स्वरूपमे ही मैं रमू और अपनेमे अपने लिए अपने आपस्वयं सुखी होऊँ।

मनोवाक्कायिकी यावच्चेष्टेच्छातस्ततोऽसुखम्।
सुखं स्वास्थ्यमनिच्छा तत्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥५-५२॥

कहते है कि जब तक मनकी, वचनकी, कायकी चेष्टा रहेगी तब तक इस जीवको सुख नही हो सकता। जब तक इच्छा है तब तक इसको शांति नही है। इच्छा ही तो व्याधियोको उत्पन्न करती है। इच्छा ही क्षोभ मचाती हुई प्रकट होती है। कुछ हुआ और उससे दुःख हो गया, ऐसी बात नही है किन्तु इच्छाका स्वरूप ही दु.ख है। इच्छा जब उत्पन्न होती हैं तब इस जीवकी परिणतिको हिलाती हुई ही प्रकट होती है। देखो जब तक इच्छा है तब तक सुख अपनेमे प्रकट नही हो सकता। वैसे तो यह जीव स्वयं दुःखी है, स्वय आनन्दस्वरूप है। सब आनन्दस्वरूप है। सब मामला ठीक है। बस समझका सब फेर है।

एक बादशाहके यहाँ एक सेठ खजांची था या प्रधान था। सो बादशाहकी स्त्री बादशाहसे कहती कि देखो हमारे भैयाको प्रधान बना लो। दूसरे सेठको प्रधान क्यो बनाते फिरते हो? बादशाह बोला कि यह न सोचो, यह तो सब बुद्धिका खेल है। जिसकी जैसी बुद्धि होती है उसको वैसा ही पद मिलता है। स्त्रीने फिर कहा कि हमारे भैयाको ही प्रधान बनाओ। राजाने कहा कि अभी जरा अक्लसे और अंदाज कर लें, फिर बना देंगे। बादशाहने मंत्रीसे सलाह की। मंत्री बादशाहके सालेसे बोला कि देखो तुम्हारी दाढी अच्छी है, इसकी एवजमे तुम्हे १००-५०० रु० मिलेंगे। यह बादशाहको दे दो। साला बोला—बड़ी अच्छी बात है, झट नाईको बुलाया और दाढी बनवा दी। मन्त्रीने ५०० रु० सालेको दे दिये। मंत्रीने सेठसे कहा कि सेठजी अब यह दाढ़ी बादशाहकी हो चुकी है। तुम जो चाहो ले लो और दाढी दे दो। कहा—बहुत अच्छा, नाई जब दाढी बनाने बैठा तो नाईके एक थप्पड मारा और सेठ बोला—अबे बादशाहकी दाढी पर हाथ फेरता है। सेठजी दाढी लेकर अपने घर चले गये। दो महीने बादमे एक पत्र लिखा कि मेरी लडकीकी शादी है तो बादशाहकी दाढ़ीकी इज्जत रखनेके लिए इतना-इतना खर्च पडेगा, सो मान लो २० हजार ५० हजार चाहिएँ, सो खर्च भी आ गया। तो सालेको इस बातको देखकर बड़ा दुःख हुआ कि सेठ जी दाढी भी नही बनवा पाया और वहीसे बैठे-बैठे गुलछर्रे उड़ा रहा है। बादशाहकी दाढ़ीकी इज्जत रखनेके लिए सेठने हजारो रुपया बना लिया। अब सालेको बादशाह पर गुस्सा आ गया। सालेने कहा कि हमारी दाढी वापस दी जाये। मंत्रीने बनी बनाई दाढी वापिस कर दी। अब बादशाहने स्त्रीसे कहा कि देखो आपके भाईमे कितनी बुद्धि है? तो अपनी-अपनी बुद्धिसे अपना-अपना पद मिल जाता है।

भैया! किसी प्रकारकी इच्छा चलती है, विशेष आकांक्षा उठती है तो आधी बुद्धि तो यो ही खत्म हो जाती है। इच्छा जब तीव्र होती है तो बुद्धि काम नही कर सकती। इच्छाके होनेसे बुद्धिमान् बुद्धू बन जाता है। जहाँ इच्छा होती है वहाँ धीरता नही रहती है। धीर किसे कहते हैं? धी और र। 'धी बुद्धि राति ददाति इति धीरः।' जिसकी बुद्धि अत्यन्त प्रगत है, उसे धीर कहते है। तो इच्छा रहते हुए धैर्य नही रह सकता। सो जब तक इच्छा है तब तक दुःख ही है। सुख तो अपने आपमे स्थित हो जानेमे है। सो जब अपने आपमे स्थित हो तब इच्छा न रहे या जब इच्छा न रहे तब अपने आपमे स्थित हो। सो वास्तवमे सुख तो स्वास्थ्य ही है और स्वास्थ्य भी क्या, इच्छाओका जो अभाव है वही स्वास्थ्य है और वही सुख है।

पुण्यका उदय जब आता है तो यही रोना रह जाता है। इच्छा बढ़ रही है, तृष्णा

बढ रही है, सो पूर्वपुण्यके प्रसादसे जो पाया उसका भी सुख, सामग्रियाँ पायीं, धन वैभव पाया उसका भी सुख तृष्णा वालोको नही रहता है, क्योंकि वह तो अधिक उमगमे आकुल व्याकुल रहता है। पासकी प्राप्त सम्पदाका भी भोग नही करता है। इच्छा तृष्णा ऐसी डाइन है और इच्छा तृष्णाके कारण ही सम्पदा है। कुछ सम्पदा मिली तो कुछ इच्छा बढेगी, तृष्णा बढ़ेगी। तो उन अनर्थोकी जड यह सम्पदा है जिसके पीछे लोग इतना मरते है। वह सम्पदा आत्मोन्नति नही करने देती है। विपत्तियोमे तो फिर भी स्वाधीनता रहती है, सदाचार बना रहता है, गरीबोका ध्यान बना रहता है, न्यायसे चलनेकी उमग रहती है। सम्पदा मे सब भूल जाता है। सो किसी भी सम्पदाकी, कीर्तिकी इच्छा उत्पन्न न हो और अपने सहजस्वरूपके दर्शन होते रहे तो मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी हो सकता हू।

भ्रमे नष्टे यथा स्वप्ने दृष्टं भ्रान्तिस्तथा सदा।
निष्क्रियोऽहं यत. स्वस्थ. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-५३॥

जैसे जब स्वप्न आता है तो स्वप्नमे देखी हुई बात स्वप्नके समय ऐसी मालूम होती है कि यह बिल्कुल सच है। यही तो बात है। उसे झूठ नही समझ सकते है। और झूठ ही समझ ले तो स्वप्न ही कैसा है? यह तो जागना हुआ और स्वप्न जब नष्ट हो जाता है, जाग जाता है तो उसे यथार्थ मालूम होता है कि अरे वे सब बातें झूठी थी। इसी तरह जब तक मोह लगा है तब तक भ्रमकी बातें बिल्कुल सच मालूम पड रही है। हमारा ही तो घर है, हमारा ही तो कुटुम्ब है, हमारे ही तो लोग है सब सत्य-सत्य मालूम होता है। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब उसे ख्याल होता है कि अहो, वे सब बातें झूठी थी। इतने परिभ्रमणमे जो हम पडे है वे सब मिथ्या है। मिथ्यामे दुष्कृतम्। तो कैसे पाप मिथ्या हो? वह मालूम पड रहा है कि अरे जो पापोका परिणमन था वह तो औपाधिक था। जब आत्माके ज्ञानस्वभावका उपयोग है तो उस समय पहलेकी सारी बातें मिथ्या मालूम होती है। अरे वह सब झूठा था। तो जब ज्ञान जग जाता है तब पता पडता है कि वह भ्रान्ति थी।

भैया! भ्रमके समयमे भ्रम क्या भ्रम मालूम पड सकता है? रस्सीको साँप जान गये है और उसी समय यह जाननेमे आ जाये कि हमारा ज्ञान भ्रमरूप है तो रस्सीको रस्सी ही जान गये। फिर उसे भ्रम कहाँ कहेगे? यदि भ्रम हो जाये और यथार्थ ज्ञान न आवे तो यही निर्णय रहेगा कि यह साँप ही तो है। जहाँ भ्रम मालूम होता है वहाँ उसको लगन नही रहती है। तो ज्ञान हो जानेपर ही यह पता पडता है कि मेरा वह पीरियड मेरा वह समय मिथ्यात्वमे बीता। वे सारी बातें उसकी इन्द्रजालकी थी। मैं तो ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ। मिच्छा मे दुक्कडं। सबसे बडा प्रायश्चित है निज सहज ज्ञानस्वरूपका अवलोकन। यह भाव

बना तो पाप नियमसे कटेंगे । यदि पाप किया है तो आचार्य महाराजके पास जायें । वे जो कहेगे उसका प्रायश्चित्त लें । ये बातें यद्यपि विधिवत् है, मगर इतने तक ही जो रह गया वह तो एक व्यापारवत् रह गया । जैसे लोग अपना व्यापार करते है तो सोचते है कि ऐसा कर लें, ऐसा करनेमे लाभ है । जैसे गृहस्थीने अपनी आजीविकाका व्यापार किया । इसी तरह ज्ञानहीन साधुने अपने धर्ममे धुनको चीज समझी तब मौज मानते है । तो सबसे बडा प्रायश्चित यही है कि अपने आपमे यह बात दृढतासे जम जाये कि मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हूँ यही जानन बना रहा करे । जाननवृत्तिसे ही चले, बस इतना ही मेरा काम है और इसके अतिरिक्त नानारूप मै नही हू, ऐसी ईमानदारीका उपयोग बने मो पाप मिट जाते है, कर्म स्वयं मिट जाते है, आगेका रास्ता मिलता है ।

भैया ! ज्ञानामृत पान यदि नही हो सकता तो यह कषायोका खेल है । किसीको जंचा कि स्त्री पुत्र, विषयभोगोमे लाभ है, उनमे लग गये, किसीको जचा कि इस तरहसे धर्म साधन व्यवहार करें तो उसमे लग गये । मगर कर्म जिस विधिसे कटते है वह विधि तो एक ही है । वह विधि है सहज ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि । इसके सिवाय धर्मका मार्ग कोई दूसरा नही है । यदि यह ज्ञान जग गया तो पापोमे प्रवृत्ति न होगी । सो मुझे और क्या करना पडेगा ? यही व्रतरूप परिणति ही तो करना पड़ेगी । ज्ञानी इस व्रतके प्रवर्तनको भी अपना स्वरूप नही मानते । उसे भी मन्द कषायका फल समझते है । पाप है, वह तीव्र कषायका फल है और व्रत है वह मंद कषायका फल है । और धर्म है वह रत्नत्रयका फल है । यदि हिम्मत हो तो तुम्हारी आत्माके पास सब कुछ है । कहां जाते हो कही भटकना जरूरी नही । क्या करने योग्य काम है ? इसमे अधूरापन तो कुछ है हो नही । क्यो व्यर्थकी तृष्णा करते हो । यह भगवान् आत्मा स्वय ही परिपूर्ण है और यह तो इस तरह कमर कसे कह रहा है कि यह मैं भगवान् तो तेरे साथ अनादिसे बैठा हु, पर तू ही मेरी ओर दृष्टि नही देता तो मै क्या करूँ ?

स्वभाव है भगवान् और उपयोग है भक्त । यह भगवान् भक्तसे कह रहा है कि ऐ भक्त, मैं तो तेरे निकट सदासे रह रहा हू । और इस शैलीसे रह रहा हू कि तेरा भला ही कर दू, तुझे सतुष्ट कर दूँ, आनन्दमय कर दू । पर हे भक्त ! तू मेरी ओर दृष्टि ही नही देता । दृष्टि तो तू फेर, फिर मैं अपनी कला दिखाऊँ । पर तू दृष्टि ही नही देता । तो इतनी गल्तीके कारण मै तुझे अपना महत्त्व नही दिखा सकता । सब कुछ है पल्ले । कही कमी नही है, सिर्फ दृष्टिके उपयोगसे अपने आपको देखने भरकी आवश्यकता है और कुटुम्ब भी न हो तो न हो । वे भी एक स्वय सत् है, उनका भी परिणमन उनके साथ है । हो तो हो और न

हो तो न । उनका परिणति उनमे है । उनसे मेरेमे फर्क क्या आ गया ? अज्ञानी घबडाता है । अरे घबडाते क्यो हो ? यह तो बिल्कुल साफ निर्णय है कि हम आप जितने भी बैठे हुए है वे सब एक एक करके हट जावेंगे, मिट जावेंगे, चले जावेंगे । यह तो साफ निर्णय है फिर क्यो घबडाते हो ? हाय अमुक न मर जाये, अमुकका क्या हाल होगा ? अरे यह तो निश्चय है कि एक दिन वह अवश्य आयेगा कि सब अपना-अपना रास्ता नाप जावेंगे । कोई किसीका सहाय नही है ।

भैया ! जब भ्रम खत्म होता है और अपने ज्ञानप्रकाशकी स्थिति आती है तो उससे बढकर विभूति दुनियामे और कुछ नही हो सकती । यही सबसे बडा भारी वैभव है । देखो अपने स्वरूपको कि यह मैं आतमा निष्क्रिय हूं अर्थात् यह अमूर्तमय आत्मतत्त्व किसी विकार का करने वाला नही होता । मेरे ही सत्त्वके कारण मेरेमे विकार आता हो, इसमे मैं कभी शुद्ध नही हो सकता । आता है मुझ सत्मे विकार, पर मेरे सत्त्वके कारण नही आता, कर्म उपाधिका निमित्त पाकर आता है । जैसे इस चौकी पर यह छाया पडी, यह छाया आयी तो चौकी पर है, पर चौकीके सत्के कारण नही आयी है । जैसे पुद्गलके सत्के कारण चौकीमे रूप है, इस तरहसे चौकीपर चौकीके कारण छाया नही है । चौकी पर जो यह छाया है यह छाया यदि चौकीके अस्तित्वके कारण है तो फिर सदा रहे । हाथ हटाया, छाया मिटी, यह ऐसा क्यो हो गया ? इसलिए हो गया कि चौकीका यह छायारूप परिणमन चौकीके अस्तित्व के कारण नहीं है । है चौकीमे, पर है एक बाह्य पदार्थका निमित्त पाकर । तो इसी प्रकार यह भ्रम क्या है ? इस छायाकी ही तरह यह भ्रम है । छाया, माया, काया, भोया, खाया, गाया सभी ऐसी ही बातें हैं । सो यह उपाधिका सान्निध्य पाकर प्रकट होता है । जब ज्ञानबल बढता है तो ज्ञानबलके प्रसादसे भ्रम खत्म हो जाता है सो उपाधि भी खत्म होने लगती है । भ्रम समाप्त होनेपर मालूम होता है कि वे सब विडम्बनाएँ मिथ्या थी । भामंडल सीताकी मूर्तिके रूपको देखकर मोहित हो गया ।

भामंडल और सीता भाई बहिन थे । भामडलको यह पता न था कि सीता हमारी बहिन है । उत्पन्न होते ही दोनोका वियोग हो गया था । इतनी आसक्ति भामंडलको हुई कि जब तक यह न मिले तब तक अन्नका त्याग, खान-पानका त्याग । नही खायेंगे, मर जावेंगे । उनके हठ हो गई और ऊधम किया । सीताको देखनेके लिए जब वहाँ चले तो रास्तेमे जब जङ्गलसे निकले, जिस स्थान पर कोई पूर्वजन्मकी घटना घटित हुई थी, झट ध्यान आ गया कि अरे सीता तो मेरी बहिन है उसी समय यह पछतावा हुआ कि अरे ये सब बातें मिथ्या है ।

ये जो सब संकट है, ये संकट क्या हैं ? ये तो केवल कल्पनाओंके संकट हैं । जहाँ अज्ञानज कल्पनाएँ मिटी तहाँ सकट मिट गये । यदि सकट मिटाना है तो बाह्य पदार्थोंमे कुछ नहीं कर सकता हूं । वस्तुस्वातन्त्र्य है । भावना बनाकर अपने ज्ञानबलको दृढ़ बनावें तो वे सारे संकट खत्म हो जाते हैं । जैसे कोई मेढकोंके तौलनेकी व्यवस्था क्या कर सकता है ? वे एक सेर मेढक बोलो तुल जावेंगे ? धरोगे झट उचट जावेंगे, मेढकोंको तौल कैसे सकते हो ? उनकी व्यवस्था नहीं बना सकते हैं, इसी तरह हम परपदार्थोंकी व्यवस्था क्या बनायेंगे ? एकको बनाया दूसरा मिटा और परमार्थसे तो जिसको बनाया कहते हैं, उसको भी नहीं बनाया । उसने विकल्प किया और ऐसा सहज योग था कि उसके अनुकूल परिणमन हो गया ।

भैया ! कर्तृत्वका भ्रम, स्वामित्वका भ्रम, यह आत्मीय भ्रम खत्म हो जाय तो यह जीव सुखी रह सकता है । जब तक भ्रम साथ है तब तक इस जीवको शांति नही मिल सकती । सो उस सर्वभ्रमको समाप्त कर निष्क्रियस्वभाव ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वको देखो और उसीमें उपयुक्त रहो । जैसे सावनमे मूसलाधार वर्षा होने पर यदि रहनेका घर बडा अच्छा मिल गया, जिसमे जरा भी चूता न हो तो फिर उस घरसे बाहर होनेकी क्या इच्छा होती है ? नही । इसी तरह निर्विकल्प आनन्दघन आत्मस्वभावी निवास हो रहा हो तो संकटोकी बरसातमे क्या आत्मगृहसे निकलनेकी भावना हो सकती है ? नही । मैं ऐसे स्वरूप में ही रहूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

॥ ॐ ॥

सुख यहां चतुर्थ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज
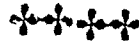
नोट—इस पुस्तकके ८ श्लोककी प्रेस कापी प्रथम संस्करणके समय आगराके एक प्रेसमे ही थी वह उसने गुमा दी। अतः नवें श्लोकसे प्रारम्भ किया जा रहा है।

सम्पदा विपदा भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-९॥

चाहे सम्पदा हो जाय, चाहे आपदा आये, ये सब बातें बाहरकी है। मैं तो ज्ञानमय हूं। इस निज आत्माको तो देखो कि यह कितना है और यह ऐब करे, ऊधम करे तो यह कितना क्या कर सकता है? केवल अपने सत्त्वको देख करके यह अपनेमे जो चाहे परिणमन करे, इतनी ही तो बात है। अब वह परिणमन पदार्थोंके स्वरूपके प्रतिकूल है तो दुःखी होता है और पदार्थोंके स्वरूपके अनुकूल ज्ञानपरिणमन है तो सुख होता है।

मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, किसमे सतोष करूँ और किसमे रोष करूँ? सबसे बडी विपत्ति जीवपर अज्ञानकी है, मोहकी है, भ्रमकी है। वास्तवमें विपत्ति एक ही है। इस एक ही विपत्तिके विषयभूतसे अनेक रूप बन जाते है।

अगर किसी दु.खीके पास आप बैठ जायें और उसकी कहानी सुनने लगें तो सुनते जावें और परखते जावें तो आपको विदित होगा कि इस बेचारेने अपनी दृष्टि किसी परमे लगायी है। उसने मोह किस जगह किया है, यह सब निरखते जाओ, उसकी सारी दुःखकी कहानीमे परद्रव्यका मोह मिलेगा। और निर्णय करते जावो कि इसने अमुक परद्रव्योसे मोह किया है, इसलिए दु.खी है। कोई क्या कहेगा? कोई लडकेकी बात सुनायेगा। लडका ऐसा कपूत हो गया है, यो धन बरबाद करता है, सभालता भी नही है। कोई क्या कहेगा कि

स्त्री लडती है, घरमे बनती नही है, ऐसी ही और-और बात भी करेगा। व्यापार की, लेन-देनकी। इन सब बातोका जो क्लेश है उसे मैंने स्वय निर्मित किया है। जिसे अमुक पदार्थों का व्यामोह है इसलिए उसे क्लेश ही क्लेश बाहरी पदार्थोंसे नही आते, किन्तु अपने आपके स्वयं विचारोसे आते है।

एक राजा था। उसने एक दूसरे राजापर चढाई कर दी, जीत गया और बचे हुए पुरुषोमें से एक पुरुष जंगलमे चला गया और साधु हो गया और बाकी बचे हुए पुरुष भी सब मर गये। अब राजा सोचता है कि अब राज्यका क्या करना है ? जीतना था सो जीत गये। अब ढूढते फिरते कि किसी परिवारका कोई पुरुष मिले, उसे राज्य दे देते। बहुत ढूढा, पर वे सब मर गये थे सो कैसे मिले ? उनको खबर मिली कि एक पुरुष बच गया है। वह धर्मसाधना कर रहा था। सो राजा उसके पास पहुचे। बोले—इस धर्मसाधनाको छोड़ दो और अब महलोमे चलो। जो चाहोगे सो तुम्हे मिल जायगा। उस साधुने कहा—हाँ, हाँ चला, पर मुझे ऐसा सुख देना कि जिसके बाद फिर कभी दुःख न मिले। पहिली चीज यह माँगी। राजाने सोचा कि हम तो यह नही दे सकते। कहाँ तक क्या दे सकते है ?

एक जगलमे एक साधु महाराज थे। वे कठिन धूपमे तपस्या कर रहे थे। सो राजा को उनको देखकर दया आ गयी। राजा बोले—महाराज नीचेसे भी तपन और ऊपरसे भी तपन, कितनी परेशानियां आपको होगी ? आपको जूते बनवा दें। साधुने कहा कि अच्छा हमे जूते बनवा दोगे तो गर्मी तो मिट जायगी। ठीक है, बनवा देना। राजा बोला—हाँ बनवा देंगे। साधुने कहा—पर एक बात तो बताओ कि नीचेकी तपनके लिए जूते हो गये, पर ऊपरकी धूप तो सताती है। राजाने कहा—छतरी ला देंगे। तो छतरी हो जायगी, जूते हो जायेंगे, पर सारा शरीर ढकनेको तो कुछ चाहिये। राजाने कहा—रेशमके कपडे बनवा देंगे। कहा—ठीक है, ऐसी वेशभूषाके हो जानेसे खानेको कौन देगा, खायेंगे क्या ? अत्र तिष्ठ अत्र तिष्ठ कौन कहेगा ? कौन खाना देगा ? खाना कौन बनायेगा ? राजाने कहा—शादी कर देंगे। स्त्री खाना बनायेगी। ५ गाव और लगवा देंगे। मगर चलनेमे तब तो आलस्य आ जायगा। कहा—मोटर दे देंगे। फिर बच्चे होगे उनका गुजारा चाहिये। कहा—१० गाँव और लगा देंगे। कहा—ठीक है, पर एक बातका ख्याल आया कि लडके जब होगे, लड़कियां जब होगी तो उनकी मृत्यु होगी, दामादोकी मृत्यु भी होगी तो रोना भी पड़ेगा। तो राजा बोले—महाराज, और सब कुछ तो हम कर सकते हैं, पर रो नही सकते हैं। रोना तो उसे ही पड़ेगा जो मोह करेगा। हम तो रो नही सकते। रोनेकी जिम्मेदारी तो उसी पर है जो

मोह करेगा।

घरके लोग, मित्रजन, रिश्तेदार आदि बहुत हैं। सभी मन बहलाते हैं, मौज करते हैं, पर जिसके चोट लगी होगी, जिसके इष्टवियोग होगा ही तो उसे चोटको भोगना पड़ेगा जिसके चोट लगी है।

यह जीव बिल्कुल असहाय है। यह जैसा भाव करता है तैसा ही इसपर बीतता है। इसकी मदद दे सकने वाला कोई भी पदार्थ नही है। सो चाहे सम्पदा हो, और चाहे विपदा हो मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र ही हू। फिर मैं किन बातोसे सतोष करूँ? क्यो जी, कोई धन चाहने वाला हो और उसके आगे लाख, करोड़, अरब, खरब कितने ही रुपये पटक दें तो उसे संतोष हो जायगा क्या? संतोष चाहे न हो पाया, मगर घबडा जरूर जायगा।

जगत्मे कौनसी विभूति, कौनसा परपदार्थ ऐसा है जो इसके आनन्द गुणके सीधे परिणमनको बना सके? किसीमे भी सामर्थ्य नही है। सो बाह्य पदार्थोंसे सतोष और रोष न करके अपने आपमे ही अपने आपको सुखी करनेका यत्न करूँ।

अयशो वा यशो भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-१०॥

चाहे अपयश हो, चाहे यश हो, देखो भीतरकी एक बडी हिम्मतकी बात है। यदि ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी प्रतीति हो गयी है तो उस अपयश और यश पानेसे भला हुआ। तेल की तरह उसकी ऊपरी बातें मालूम होती है। भीतरमे उनको अङ्गीकार न करना और उनके ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहना, यह है बडी हिम्मतकी बात और एक शुद्ध ज्ञान दर्शनके परिणामकी, यश, अपयशकी बात होकर भी यह अपने आपको अछूता तके। अपने आपको देखे कि मैं क्या हूँ? जगतके सब जीव भी किसी प्रकारका परिणमन कर दें ऐसा हो ही नही सकता है। यह ही बिगडकर, खुदसे हटकर याने भ्रष्ट होकर जब बर्तता है तो दुःखी होता है। कहनेकी बातें बहुत है, साहित्य है, पुस्तकें है, सब कुछ है, मगर फल उसको ही मिलता है जो इस तरहकी वृत्ति अपनेमे कर सकता है। यह इज्जतका ध्यान, ख्याल एक विकट व्यामोह है। इज्जत कौन करता है और इज्जत किसकी होती है? मेरा यश और अपयश करने वाला कोई नही है। यह जो परमार्थतत्त्व है वह तो सबसे निराला अपने स्वभावमात्र है। सो यह प्रसग तो ऐसा है जैसा कि इस कहानीसे विदित है—

किसी ऊंटका विवाह हो रहा था। ऊंट तो टेढे मेढे होते है। उनको यदि छू लिया जाय तो हाथ उलासने लगें। सो किसी ऊंटका विवाह था, विवाहमे गाने वाला कोई न कोई

चाहिए ही तो ऊंटने गारी गानेके लिए गधोंको बुलावा लिया। गधोने क्या गाया कि दूल्हा और बरातियोकी प्रशंसा की। बडा सुन्दर रूप है, जगतमे अनुपम आप लोगोका शरीर है। ऊंट बोले—वाह, वाह कितनी सुन्दर ध्वनि है, कितना सुन्दर राग है, कितना बढिया गला है। ऊटोने कर दी गधोकी प्रशसा और गधोने कर दी ऊटोकी प्रशसा।

सो कडवी बात हो तो तनिक कोमल बना लो। सो ऐसा हो रहा है कि यहाँ प्रशसा यश, अपयश, इज्जत इत्यादि बातें चल रही है। ये जो सम्मान समझते हैं और जो सम्मान करते है उनकी यह बात है। यो तो व्यवहारमें प्रत्येक सत् पुरुषका यह कर्तव्य है कि दूसरो का सम्मान करे। मगर जहाँ द्रव्यदृष्टि नही, यथार्थदृष्टि नही, और उस ही इज्जतमे एकमेक हो रहे है उनकी बात कही जा रही है। अरे भाई चाहे यश हो, चाहे अपयश हो, यह मैं तो ज्ञानमात्र ही हूँ। तो किसमे सतोष करूँ और किसमे रोष करूँ?

हे भगवान्! ऐसा कब बल आये कि सरासर अपमान सामने हो, दुर्वचन सामने हो और यह मै अपनेको यो तक सकू कि यह अपना स्वरूप पूर्ण स्वच्छन्द 'अमर' किसी परके द्वारा कुछ भी इसमे नही हो सकने वाला ऐसा यह मैं आनन्दमय ज्ञानतत्त्व हू, ऐसा निरखकर अपनेको बलिष्ट बना सकूँ ऐसा क्षण कब हो? और ऐसी भावना जागृत हो कि मै अपने ज्ञानको इतने दृढ उपयोगसे देख सकूँ कि इन बाहरकी घटनाओसे अपने आपमे क्षोभका कारण न बन सकूँ। बात कठिन, मगर करने वाला जीव ही तो होता है। और देखो—

अरि मित्र महल मसान कंचन कांच निन्दन थुति करन।
अर्घावतारन असि प्रहारनमे सदा समता धरन॥

जिन्होने ऐसा किया, वे जीव कुछ और नही थे; बिल्कुल हम आपकी ही तरहसे थे, कुछ भेद नही था। जो स्वरूप उनका था वही स्वरूप हमारा है। वे कर सके तो यह मैं भी कर सकता हू।

कोई युद्धका मौका था, स्त्रीने अपने पतिसे कहा कि युद्ध हो रहा है, तुम भी अपने देशकी सेवाको चले जावो तो बोले कि युद्धमे चले जायें तो यो ही प्राण चले जायेंगे। जो छोटी चक्की होती है उसमे स्त्रीने चने डाल दिए और दाल बनायी, पर कुछ चने समूचे रह गये। कहा—देखो ये चने तो फूटनेसे बच गये ना? यदि हम ऐसा सोचते है कि हम सिद्ध देव जैसे नही है हम तो लटोरे खचोरे जैसे विषयी पतित जीवोमे से है—यदि ऐसा विचारें तो फिर अपना उत्थान कहाँसे हो? अपना ज्ञान बल बढे इसमे ही सार है, जिससे कि किसी परपरिणतिका अपने आप पर कोई असर नही हो सकता।

जीवनं मरणं भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।६-११।।

यह आत्मा एक स्वयं सत् है । जो सत् होता है वह अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहता है । जो कभी न था और अब हो जाय, ऐसा जगत्मे कुछ नही है । जो है और वह बिल्कुल मिट जाय, ऐसा भी लोकमे कुछ नही है । यह मै आत्मा स्वयं सत् हू, अनादिसे हूँ और अनन्तकाल तकके लिए है, किन्तु कर्म उपाधिके बन्धनके वशसे विधानपूर्वक यहजीव नारक, तिर्यंच, मनुष्य, जीव पर्यायरूपमे उपस्थित है । जैसा जो मनुष्य आयुका उदय है निमित्त है । जिस क्षण मनुष्य न रहेगा अन्य कोई गतिका उदय आयेगा, उस क्षण यह स्थूल शरीर न रहेगा और दूसरे स्थूल शरीरके लिए यह चला जायेगा । बस इसी परिस्थितिका नाम जीवन और मरण है । वैसे आत्माका मरण नही होता, किन्तु होता क्या है ? शरीरका बदलना । जिसे लोग कहते है चोला बदल गया । एक चोला समाप्त हुआ और दूसरे चोलेका ग्रहण किया ।

सो यदि अपने आपकी निजी बातें सोचते हो तो जीव वही है, परिणमनशील है सो अपने परिणाम कर रहा है । ये बातें अब भी है और जिसे मरण कहते है उसके बाद भी यही बातें है । जीवन हो और मरण हो आत्माके लिए एक ज्ञेय परिस्थिति है । "तन उपजत अपनी उपज जान । तन नसत आपको नास मान ।।" ऐसी उपयोगवृत्ति बनती है, उन्हे मिथ्यादृष्टि कहते है । मरण समय इस जीवको बडे संक्लेशके अवसर हो सकते है और कुछ तो परिस्थिति ऐसी है कि जब जीव शरीरसे निकलता है तो शारीरिक कष्ट होता है । जैसे कि देखते भी हैं लोगोको कि दुःखमयी प्राण छातीके दिलमे है । छाती भी उत्तर देना बद कर देती है । कुछ अवसर भी इस प्रकार है और फिर अपने आपकी ममता इस दु.खको बोस गुनी बना देती है । मरते समय जो क्लेश है, देखे जाते है ये दुःख मोहके कारण है । अब भैयाको छोडकर जा रहे है, घर छोडकर जा रहे है । दस साल रहकर इतनी बडी हवेलियाँ बनायी थी, इतना बडा वैभव इकट्ठा कर लिया था अब आरामके दिन थे, बडे मौजसे रहते, हाल क्या हो रहा है ? नन्हे नातीको यह जायदाद लिख देना, फलांको तार दे देना कि जल्दी जल्दी आ जायें । कितने-कितने विकल्प होते हैं जिनके क्लेश बना रहे है ।

सच पूछो तो जन्म उत्सव मनाया करते है उससे तो अच्छा है कि मरणका उत्सव मनावें, क्योकि जन्मते समय प्रत्येक मनुष्यकी मलिनताकी वृत्ति रहती है । वहाँ परिपक्व ज्ञान नही होता है । परन्तु मरते समय पुरुष ज्ञान, ध्यान, सावधानी रख सकता है और इसका भावी जीवन इसके होनहार उस मरणके समयके परिणामोपर निर्भर है । बिना जीवन

के जन्यके समयके परिणामों पर जिन्दगी निर्भर नही । मरणके समय सावधानी रखनेकी अत्यन्त आवश्यकता है तो भी जिसने अपने स्वरूपास्तित्वका निर्णय किया है, सबसे प्रकट भिन्न ज्ञानबलसे उसे आत्मा नजर आ रहा है, ऐसे ज्ञानी पुरुषका जीवन और मरण उसकी ज्ञेय परिस्थितियाँ है ।

जीवन हो या मरण हो, मैं तो ज्ञानमात्र हू । जीवन और मरण मेरी ये दोनो चीजें नही है । मैं तो एक ज्ञानमात्र हू । फिर मै कहां तो सतोष करू, कहां रोष करू ? इस जीवनसे मैं क्या सतोष करू ?

यदि बुरे परिणामों सहित जीवन चल रहा है तो वह ऐसे मरणसे भी भयंकर है और यही बडी सावधानीसे शुद्ध आत्मस्वभावकी दृष्टि प्रतीति सहित मरणके लिए रहता है तो वह सबसे बढकर चीज है । जन्मके बाद दुःख कहांसे उठता है और मरणके बाद अरहत भगवान्‌के दु ख मिट जाते है । खैर अरहंतके दु.ख है तो अपने आपके ही ऊपर अपने आपसे मिटते है, पर यह बताना है कि आयुके क्षयका निर्माण होता है । आयु द्वारा बडा निर्माण नहीं होता है । निर्वाण गमन कहो या मरण कहो एक ही बात है । मरण शब्द जरा कठोर बात है और निर्वाण यह उत्तम शब्द है । तो जीवनसे सतोप न करो । कोई जिन्दा है, चल रहा है, क्या चल रहा है ? इस जीवनसे क्या लाभ निकला ? इस जीवनसे हित है नही, मरणसे हित है नही, अज्ञानसे हित है नही, पर ज्ञानसे हित है । इसलिए उस जन्ममे क्या सतोष करू और मरणमे क्या विषाद करू । ज्ञानमात्र वृत्ति रह सकती है तो संतोषके लायक बात है और ज्ञानमात्र वृत्ति नही रह सकती है तो उस जीवनसे फायदा क्या है ?

मायास्था मयि हृष्टाः स्युः रुष्टा मे ज्ञस्य का क्षतिः ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–१२॥

पश्चिमसे आये हुए ये लोग, लौकिक भाषामे रहने वाले लोग चाहे मुझपर खुश हो जायें, चाहे मुझपर रुष्ट हो जायें, पर इस ज्ञानमात्र मुझ आत्माकी क्या क्षति है ? माया नाम है पर्यायका और परमार्थ नाम है द्रव्यका । जैसे अन्य जगहमे परमार्थ नाम है द्रव्यका और माया नाम है इन सब खटपटोका । मायाके मायने मत, नही यह है । जो परमार्थ नही सो यह है, जो यह है सो म मायने परमार्थ नही है । स्वरूपदृष्टिका माहात्म्य महान् है । द्रव्य और पर्याय अस्तित्वमे होते हुए भी इसमे स्वयभेदसे भेद है । एक चीज होते हुए भी इसमे स्वयभेदसे भेद ही अतद्भाव है, प्रदेश भेद नही है । यह मैं ज्ञानस्वरूप स्वभाव और ये क्रोध, मान आदिक कपाय ये भिन्न-भिन्न क्षेत्रमे नही हैं, जुदे सत्‌मे नही हैं, लेकिन जो मेरे

ज्ञानस्वभावका स्वरूप है वह कषायोका स्वरूप नही है और जो कषायोका स्वरूप है वह मेरे स्वभावका स्वरूप नही। स्वरूपभेद करके ध्रुवस्वरूपमे आत्मीयताका अनुभव करना और अध्रुवस्वरूपमे आत्मीयताका अनुभव न करना। इस प्रज्ञाके प्रयोगसे अद्भुत फल प्राप्त होता है। इसलिए आत्मस्वभावकी दृष्टि करने वाले जन ऐसी भावना करते है, सोचते हैं कि माया मे ठहरे हुए ये लोग, विषय कषायोमे लगे हुए ये लोग यदि मुझपर हर्षित हो जायें, मुझपर प्रसन्न हो जायें तो ये मेरा लाभ क्या करेंगे, और मुझपर कष्ट हो जाय तो मेरी हानि क्या करेंगे? उनका परिणमन उनमे होता और समाप्त होता है, हमारा परिणमन हममे होता और समाप्त होता है। और यदि ये मायास्थ पुरुष खुश हो जायें तो खुश होनेके प्रसादसे भी आपदा मिलेगी और कष्ट होनेके प्रसादमे भी आपदा मिलेगी।

जैसे पिता अपने बेटोपर कितना खुश रहता है? इस खुश रहनेके परिणाममे वह क्या करता है कि बच्चोकी चौथी कक्षामे यदि मास्टरने पीट दिया तो वह बोलता है कि हमे अपने बच्चेको नही पढाना है या वह उनपर खुश हो गया है। और आगे चलो तो जल्दी ब्याह कर देते हैं और और साधन जुटा देते है। दुकान कराते, अमुक काम कराते। ये साधन उसके मोह बढानेके साधन हुए या ज्ञान बढानेके साधन हुए? कौनसा पिता ऐसा होता हे जो यह सोचे कि मेरा बच्चा आनन्दकी दृष्टि पा ले तो अच्छा है। ऐसा कोई बाप हो तो हमे पता नही। पर प्रायः जो हमे दिखते है वे यही कि पुत्रके आत्माकी हितकी बात तो नही देखते, किन्तु अपने कषायोकी बात देखते है। तो ये मायास्थ पुरुष खुश हो तो क्या, रुष्ट हो तो क्या?

कभी किसीने स्वप्न देखा है या नही, पर हमने तो देखा है इसलिए कह रहे है कि जब बहुत बुखार है, रजाई ओढ़े है, जाड़ा लग रहा है, कुछ नीद आ गयी है, स्वप्न देखने लगे कि कही पडा हूँ रेलकी पटरी पर या पटरीके बीचमे, ऊपरसे रेल निकल रही है, मैं अपनेको बहुत संभाल रहा हूँ, जमीनसे चिपककर अपनेको सभाले हूँ। देख रहे है कि गाडी निकल रही है और मैं सुरक्षित हूँ, थोड़ीसी और रह गयी, अब सब निकल गयी, अब मैं आनन्दमय हो गया। नीद खुल गयी, वहाँ कुछ नही था और बुखार मिट गया। ऐसा स्वप्न कभी-कभी जब बुखारसे निवृत्ति होती है तब आता है, इसी ढगका आता है।

आपमे उन सब परिस्थितियोमे कोई खुश हो रहा है, कोई रुष्ट हो रहा है, कोई किसी प्रकार चल रहा है, कोई किसी प्रकार चल रहा है। उन सब परिस्थितियोके बीच जिन्हे कल्पनाओसे आपदा मान लेते है, उन परिस्थितियोके मध्य भी अपने आपको इतना दृढ

बनाये रहे, अपने आपको केन्द्रसे सटा हुआ, चिपका हुआ, अपनेको ऐसा मजबूत सावधान बनाये रहे कि यह बात अमुक जगहसे यो आयी और यो निकल गयी। आपसकी बात उठ निकलेगी। अपना जीवन इस तरहसे गुजार दो कि अपने आपको भीतर अपने केन्द्रसे सिमटा हुआ मजबूत बनाकर इन सब आपदाओको निकाल दो। आपदा क्या है ? ये मायास्थ जन कोई खुश हो गया है, कोई रुष्ट हो गया है। उनकी यह परिणति है, उनका यह विकल्प है, आपदा कुछ नही है। आपदा तो मोहसे मान ली है।

सो ये कोई कही कैसा भी परिणाम नही, उससे मेरा सुधार बिगाड नही है। किस बातका संतोष करूँ, किस बातका रोष करूँ ? क्या करोडोका धन हो जायगा तो संतोषकी स्थिति हो जायगी ? केवल स्वप्न देख रहे है ऐसा मात्र लगता है। करोडोकी सम्पदाके बीच क्या गुजरा है, सो उन सेठोकी परिस्थितियोको देख लो। प्राय. सब लोग जानते ही है, दूसरो के द्वारा सुनकर, खबरोके द्वारा सुनकर क्या उनपर गुजरा है ? सतोष नामक चीज क्या है ? आत्माके गुणोकी पर्याय है आनन्द। मेरी गुणोकी पर्याय किसी अन्य वस्तुसे प्रकट होती है। यह कितनी असम्भव बात है। वे प्रत्येक पदार्थका निमित्त पाकर यह करते है, पर जो शुद्ध आनन्दकी बात है वह तो परका आश्रय करके होती ही नही है तब कहाँ संतोष करूं ?

उस मृगकी तरह हालत है जो प्यासा है, रेतीले स्थानपर खडा है। कही आगेके रेत को देखता है तो पानीकी आशासे दौडता है, पास पहुचता तो पानी नही मिलता। फिर सिर उठाया, बाहरका रेत पानी जचने लगा, दौडा, पास पहुचता है तो पानी नही पाता है। पानी को आशासे दौड लगा-लगाकर दुःखी होकर वह हिरण प्राण गंवा देता है। इसी तरह नवीन नवीन विषयोकी आशामे अपने जीवनमे दौड लगाकर, भटककर, थककर अन्तमे यह भी प्राण गंवा देता है। देते कही कुछ हो, अपने आपको देखो, अपने आपको सही व्यवस्था बना लो जिससे अपने आपका कल्याण हो।

ज्ञानी ज्ञानरतोऽज्ञानी मायास्थः परलोचकः।
मायास्थवाचिके रोषः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६ १३॥

ज्ञानी पुरुष ज्ञानमे रत रहता है और अज्ञानी पुरुष मायामे स्थित रहता है। जो दूसरोकी आलोचना करने वाले है वे मायास्थ हैं, ज्ञानरत तो नही हैं। जो दूसरोकी निन्दा और भी विवाद आदि करने वाले है। इतना तो निश्चित है कि वे ज्ञानसे रत नही हैं, मायास्थ हैं। सो और भी अधिक देखो तो जिसकी निन्दाकी प्रकृति है और निन्दा करता है उस पुरुषको उन्मत्त मोही कहेगे। जिस आत्मामे स्वाधीनता नही है, बाह्यमे ही दृष्टि फसी है और अपने आप पर चाहे यह कैसी हो निन्द्य परिणति वाला हो, पर मानते हैं उच्च, इसी

कारण दूसरे मेरी नजरमे निभ्न है। तब ऐसी वृत्ति वाले पुरुष मायास्थ कहलायेंगे या ज्ञानी? उत्तर मिलेगा — मायास्थ उन्मत्त।

जब आप सडकसे निकलते है। कोई पागल मिलता है और वह गालियां देता है, बुरे वचन बोलता है और आपको यह मालूम पड जाय कि यह तो पागल है तो फिर उसके वचनोसे आपको बुरा न लगेगा, क्योकि आप यह जान गये कि यह पागल है, होशमे नही है, यह तो दयाका पात्र है। इतनी बात समझमे आने पर कि पागल है, दीन है, उसकी गालियोको बुरा नही मानते। सोचते है कि बेचारा खुद पागल है।

इसी तरह जो निन्दा करने वाले है, आलोचना करने वाले है वे पुरुष उन्मत्त है, ज्ञानी तो नही है, वे खुद अपनी सावधानी खो बैठे है, दयाके पात्र है, स्वयपर अज्ञान अन्धेरा छाया है, ऐसा जब ज्ञानमे आये तो उसके वचनोका बुरा तो नही मानता है। सो मायास्थ पुरुषोके वचनमे यह रोष हो कि मैं तो अपनेमे अपने आपकी स्वाधीनता रखता हुआ अपनेमे तृप्त रहू।

ये स्तुवन्ति च निन्दति ते दृश्य न तु मोमिमम्।
शंसा निन्दा न गुप्तस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-१४॥

जो स्तवन करते है, प्रशसा, निन्दा करते है, वे इस दिखने वाले पुतलेका ही लक्ष्य बनाकर प्रशंसा करते है और निन्दा करते है, पर जो परमार्थ सत् मैं हू उसकी न तो प्रशंसा वे करते और न निन्दा करते। मुझे तो वे जानते ही नही हैं। तो उस ज्ञायकस्वभाव मुझ आत्मतत्त्वको वे जानते ही नही। तो उनके इस ज्ञानमे यह व्यक्ति ही नही ठहरता, किन्तु एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप वर्तता है। ऐसी स्थितिमे वे क्या प्रशसा कर सकेंगे या निंदा कर सकेंगे? और जिसने मुझे देखा ही नही इस दृश्य पुतलेको हीं निहारते है तो जिसको देखकर उसने गाली दी वह गाली उसको हुई, मेरेको नही हुई। जैसे कोई पुरुष गाली बकता है तो समझने वाले समझते भी जाते है कि मुझे कहा है लेकिन उसका नाम लेकर नही कहा तो कहते है कि न जाने किसको कह रहा है? वह समझकर भी ऐसा बोलता है। वह दुनियामे यह बताना चाहता है कि इसने मुझे गाली नही दी और दी भी हो तो मैंने मानी नही।

जब खुद मान लिया तो अपने-अपने लिए सोचते है कि मेरा प्रभाव है, मेरा असर है और जब खुद नही मानते तो उसका प्रभाव नही होता। हमे इतना जो दु.ख है, जन्म-मरणके चक्कर काटते ही रहते है, इसका कारण क्या है कि मैं जैसा सहज नही हू वैसा मान लिया है। मैं सुखी हू, दुःखी हू, मेरे धन है, घर है, मेरा प्रभाव है आदि अपने आपको मान लिया तो भैया सारा खेल, सारा सुख-दु.ख सब एक माननेपर निर्भर है। कोई कितना ही

कुछ कह रहा हो, पीठ पीछे आलोचना, निन्दा करे और जब तक ज्ञान आया हो तब तक बडा प्रसन्न भी है, और अगर यह कल्पना आने लगे कि हमे तो किसीने कुछ कहा तो दुःख हो गया ।

इस जीवके अन्दर ही विकल्पोकी चक्की चलती है, उस चक्कीमे यह प्रभु आत्मभगवान् पिसा जा रहा है । कोई दूसरा इसे दु खो करने वाला नही है । सो चाहे प्रशसा करें, चाहे निन्दा करें वे इस दृश्य पुतलेकी कर रहे है, मुझ आत्मतत्त्वकी नही । क्योकि यह मैं गुप्त हू । इस गुप्त ज्ञायकस्वभाव प्रभुकी न तो प्रशसा हो रही है और न निन्दा हो रही है । प्रशंसा और निन्दा हो ही नही सकती सो अपनेसे उठकर बाहर ढूढकर विकल्पोको क्यों करूँ ? अपनेको ही निहारकर अपनेमे अपने आप सुखो होऊँ ।

प्रशंसया न मे लाभो निन्दया का च मे क्षतिः ।
स्वे हिन्म्येव विकल्पेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।६-१५॥

प्रशमासे मेरा लाभ नही है । ससारी प्राणियोपर इतना विकट भ्रमका पहाड लदा है कि इसे चैन नही है । प्रशंसासे लाभ मानते है । प्रशंसा हो तो बेचैनी, न हो तो बेचैनो । इस जगत्मे किसीका कोई लगता नही है । और न किसीकी प्रशसा हो जानेपर मुझे कुछ लाभ मिलता है पर एक व्यर्थका कारोबार प्रशंसाकी धुन हुई । यह विकट अज्ञानका पहाड़ शांति समाधिका अन्त दूर हो जाता है । जगत्मे यह एक प्रकारका रोना है । यह एक गोरखधन्धा है और इन रागोको लगाने वाला है पुण्यकर्म । सम्पदा तो दुःखका साधन है । जो दु:खी है, पीडित है उसको प्रशंसाकी चाहका रोग नही लगता । जो धनी है, ऐश्वर्यवान् है उसके पास सुख सामग्री है, चार आदमियोमे थोडीसो पूछताछ है, ऐसी स्थितिमे प्रशसाका रोग लगता है ।

भला खुदके जीवनका गुजारा करनेके लिए कितने द्रव्य आवश्यक है ? कितनेमे पेट भर जायगा और कितनेमे कपडोकी व्यवस्था बन जायगी सो सोच लो । मामूलीसी बातें है, कोई लखपति हो या करोडपति हो, वह भी अधिकाधिक धन चाहता है । इसलिए कि अभी पेट भरनेका, तन ढकनेका, कपडा मिलनेका जरा प्रबंध नही है । क्या इस कारणसे अब करोडपति होनेकी धुनमे है ? नही । करोडपति हो जायें या अरबपति हो जायें, किन्तु धन सभी चाहते है । क्या कुछ जीवनका गुजारा होनेमे कमी है ? कमी नही है, पर इन सब प्रयत्नोका कारण है प्रशंसा लूटना । मैं जगत्मे सर्वाधिक कहलाऊँ । अरे किसकी दृष्टिमे धनी कहलवाना चाहते हो ? मोही अज्ञानी जन्म मरणके चक्रमे फँसे हुए है, उनका हित कुछ भी नही होता । ऐसे समुदायमे धनी कहलानेकी चाह कितना विकट रोग है ? गुणी कहलवानेकी

चाह है, सज्जन कहलवानेकी चाह है, यह कितना विकट रोग है ? पुण्योदय हुआ सो कुछ साधन अच्छे हुये, पर जो यह बहुत बडा विकट रोग है कि मेरी प्रशसा हो, उस प्रशंसासे मेरा कुछ भी लाभ नही है । और निन्दासे मेरी कुछ भी क्षति नही है । निन्दा होना मेरा भाव है और कषाय है और उस कषायका निमित्त पाकर वचनवर्गणाओका ऐसा फैलाव है, वह सब वही समाप्त है । किसी अन्यका इस मुझ आत्मामे प्रवेश नही है । तो फिर उस निंदा मे मेरी क्षति क्या हुई ? मैं तो अपने ही विकल्पोसे अपने आपकी क्षति कर रहा हू ।

और भी देख लो—समझते है कि प्रशंसा करने वालोसे हमारा हित है और निन्दा करने वालोसे हमारा अनिष्ट है । तो प्रशसकके द्वारा हमको मिला क्या और निन्दकके द्वारा हमको मिला क्या ? कुछ मोही जीवोने प्रशसा कर दी, बड़े सज्जन है, बडे ज्ञानी हैं, तो प्रशसा करके वह अपने घर चला गया और उसको सुनकर यह हृदयमे उर्दाको चुनने लगा, बेचैनी हो गयी, क्षोभ मच गया । प्रशसक मेरा बडा हितू है । वह तो कहकर चला गया है, पर यह तो प्रसन्न हो गया, और निन्दा करने वालेने क्या किया ? एक वचन ही बोला, किंतु उन वचनोको सुनकर सावधानीका भाव आया, सयम चारित्र । सभी प्रकारके आचरणोसे रहित भाव आया तो निन्दकके निमित्तसे यहा कुछ सत्पथ मिला । तो प्रशसासे क्या मिला और निन्दासे क्या मिला ? वास्तवमे तो दोनो ही वृत्तियोसे क्षोभ मिला । वहाँ विकल्प करके अपने आपको ही घात किया और भी देखो, निन्दक पुरुष कितना उपकारी है कि आपके दोष कहकर, बुराई कहकर आपको तो नरकसे बचा लेगा और खुद नरकमे जानेकी तैयारी कर लेगा ।

दूसरोको दुर्गतिसे बचाकर खुद दुर्गतिमे जानेका उपकृत करने वाला उपयोगकारी है या निन्दक ? अरे न कोई दूसरा उपकारी है न कोई दूसरा अपकारी है । सब अपने-अपने परिणामोकी बात है । सबसे बडा धन क्या ? अपना परिणाम । अपना परिणाम यदि पवित्र है, शुद्ध है, स्वभावदृष्टिमे लगा हुआ है तो ठीक है और "पापनिरोधान्य सम्पदा किम् प्रयोजनम् ?" यदि मेरे पाप रुक गये है तो अन्य सम्पदासे क्या प्रयोजन ?

सबसे बडी सम्पदा तो पापनिरोध ही है । यदि पापोका आस्रव है तो अन्य सम्पदासे क्या प्रयोजन ? पापोका उदय आ गया तो हमे दूसरा कौन बचा लेगा ? क्या सम्पदा बचा लेगी ? नही । तो सबसे बडा वैभव है आत्मनिर्मलता । मोहमे बडी दौड लगाने वाले बंधुवो को सोचना चाहिए कि क्यो ऐसी विकट दौड लगा रहे है ? अपनेको तो देखो सभालो, अपने आपमे ही समस्त सुख, वैभव भरा हुआ है । जो यह है वह बाहर नही है और जो बाहर है वह बाहर वालेका है । वहाँ मेरा नही है । सब कुछ पूरा पडेगा अपने आपसे ही, सो स्तवन

निन्दाके विकल्पोंको तोडकर इन फंसाने वाले मायाजालोको तोडकर अपने आपमे गुप्त रहते हुए अपने आपमे देखू और स्वयं सुखी होऊँ ।

ज्ञानमात्रमह तस्माज्ज्ञानादन्यत्करोमि किम् ।
किं त्यजानीह गृह्णीयाम् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६·१६॥

मै आत्मा ज्ञानमात्र हूँ । अपने आपके स्वरूपके बारेमे मैं परखना चाहू कि मै कैसा हू तो पहिले अपनेमे पायेंगे क्या ? शुद्धदृष्टि करके अपने आपके स्वरूपको देखेंगे तो कुछ विवेक उसमे है, कुछ राग है, द्वेष है, मोह है, विकल्प है, अशांति है, मौज, सुख है, दु.ख है । जिसमे ये सब पाये जाते है वही तो जीव है, नही तो अभी निशान ठीक ही जमा है । यह एक अशुद्ध दशाकी दृष्टिसे विचार हुआ है । इस तरह अभी पता नही पडा कि जिससे ज्ञान होने पर अद्भुत अनुपम आनन्द होता है और सत्य परिचय मिलना है । मैं क्या हू ? अपने आप को ही निरखो, परमे तो मालूम होगा कि ये कुछ नही है । यहां कुछ अड़नेकी चीज नही, लेने देनेकी चीज नही, किन्तु और गहरे चिन्तनसे परखेंगे तो यही निर्णय होगा कि मै ज्ञानमात्र हूँ, जाननमात्र हूँ । यह हो गया ग्रहण । जानन मामान्य ऐसा है कि जिसमे स्वरूपके कारण अर्थ ग्रहण भी होता है, पर अर्थ ग्रहणका विकल्प प्रतीत नही होता । ऐसा शुद्ध जानन मात्र मै आत्मा हू । तब फिर ज्ञानसे अन्यमे मैं करता ही क्या हूँ ? प्रत्येक जगह पर कहते है कि यह मैं आत्मा ज्ञान परिणमनके सिवाय करता ही क्या हू ? आत्माका असाधारण लक्षण चैतन्य है, ज्ञान है, इसमे इस चैतन्यकी वृत्ति चलती है । उसके अतिरिक्त और मैं करता ही क्या हूँ ? और उस ज्ञानमे भी मैं क्या करता ? केवल ज्ञानरूप परिणमन होता है । जैसे अचेतन पदार्थोमे हम करनेका शब्द नही लगाते । लगाते भी है तो समझते रहते है कि क्या कुछ नही रहा जाता है ?

जैसे पूछा जाय कि इस वृक्षने क्या किया ? तो इसने अपनेमे हरियाली कर ली । और हरियाली करनेका अर्थ क्या है ? हरेपनका परिणमन हुआ, अचेतन पदार्थोंके करनेकी बात कम जंचती है, होनेकी बात स्पष्ट जचती है तो यह सब पदार्थोका ही तो नाता है । जितने पदार्थ है उन सबकी भी यही बात है कि वे है और परिणमते है । विभावरूप परिणमते है तो इसी अनुकूल निमित्त पाकर ही परिणमते है । परिणमन करनेका अर्थ क्या ? अरे कहते भी है—

य. परिणति स कर्ता, यः परिणामे स्वभावतः स कर्मः ।

बस परिणमनका निमित्त करना है । मैं ज्ञानमात्र हू तो ज्ञानके अतिरिक्त मैं करता ही क्या हूं ? जैसे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र प्रसंगमे ये तोनो चोजें ज्ञानवृत्ति

रूप परिणमती हैं। ज्ञानका 'जीवात्मक श्रद्धान् स्वभावसे है। सो सम्यग्दर्शन है।

ज्ञानका अर्थ है आत्मग्रहण। स्वभावका होना सम्यग्ज्ञान है और ज्ञानका रागादिको के स्वभावसे बने रहना सो सम्यक्चारित्र है। इसी प्रकार यह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र भी इस ही ज्ञानसे सम्बंधित बात है। ज्ञानका विपरीत श्रद्धा भावसे परिणमना सो मिथ्यादर्शन है। ज्ञानका विपरीत ज्ञानसे परिणमना मिथ्याज्ञान है और ज्ञानका रागादिको मे लगते हुए होना, परिणमना सो मिथ्याचारित्र है।

भेदवादका गुणभेद होता है, सो सर्वत्र यह देख लो कि उस ज्ञानके सिवाय और करता क्या हूँ ? घरमे बैठे हुए झुंझला गये तो वहां पर भी उसने अपने ज्ञानका परिणमन किया। कभी-कभी सभाओमे या देशसेवाके कामोमे या अन्य कोई प्रकारके पारिश्रमिकताओ मे कुछ सफलता पायी और यहां कुछ गौरवके साथ अपनी वृत्ति दिखाई तो उन सब साधनोमे भी इस आत्माने क्या किया है ? ज्ञानका काम किया है, विपरीत रूपसे अथवा सही रूपसे। ज्ञानसे अन्यत्र मैं करता ही क्या हू ? किसीको ऐसा मान लेनेसे कि यह मेरा पुत्र है, तो क्या उसका पुत्र बन जाता है ? यह मेरा घर है, इतना सोच लेनेसे क्या घर उसका हो जाता है ? और यह सोच लेनेसे क्या घर उसका हो जाता है ? और यह सोच लेनेसे कि मैंने दरीको बनाया, घडीको बनाया, इस चौकीको बनाया, इस चौकीको जला दिया इतना सोच लेनेसे क्या सब कुछ हो गया ? नही। क्या उस चौकीको जलाने वाला आत्मा हो गया ? नही। क्या उन चौकी कागजको तोडने फाडने वाला आत्मा हो गया ? नही। आत्मस्वरूपको देखो। आत्मा क्या है ? कितना मात्र है ? क्या वह किसीको छू भी सकता, पकड भी सकता है ? यह ज्ञानमात्र है, ऐसा यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा ज्ञानके सिवाय और करता ही क्या हू ? फिर मैं किसको छोडू और किसको ग्रहण करू ? यह बहुत अन्तर मर्मको पहचानकर आत्मस्वरूप का बोध करने वाला चिन्तन कर रहे है। छोडना क्या ? सब बाहर ही तो है। ग्रहण करना क्या ? क्या किसी भी तरहसे परपदार्थ इसके ग्रहणमे आते हैं। यह जो विकल्प करता है, यही तो पदार्थोंका ग्रहण है। और उसे विकल्पोको छोडना हो तो यही पदार्थोंका त्याग है। इसे आत्माके निज चतुष्टयको देखकर सोचना चाहिए।

कोई पदार्थ अपने स्वरूपचतुष्टयसे बाहर कुछ अपना अस्तित्व रखता है क्या ? नही। फिर मै क्या छोडू और क्या ग्रहण करू ? अरे उन विकल्पोका त्याग करना है, जिन पदार्थो से हमने परपदार्थोंका ग्रहण करना माना है। उन विकल्पोके त्यागकी आवश्यकता है। यह बात कही जा रही है बहुत अतरदृष्टि लगाकर योगके साथ चिंतन करनेकी बात है, तब फिर सबसे उपेक्षित होकर मै अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी होऊं।

संसारवाहिमूढेनासाम्यमभ्रान्तवेदिनः ।
अलिप्तो हि सदा शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।६-१७।।

एक मोही और एक ज्ञानी इनकी समानता क्या की जा सकती है ? नही । मोही संसारमे रोने वाला आत्मा है और ज्ञानी, भ्रांतिरहित, सत्य स्वरूपका जानने वाला आत्मा है । इन दोनो आत्माओकी क्या तुलना की जा सकती है ? कोई समानता क्या बतायी जा सकती है ? नही । बहुत अन्तर है, यह मोही जीव अपने ऊपर संसारका बोझ लादता और बढाता चला जा रहा है । धन्य है वह सम्यग्ज्ञान जिसके प्रतापसे संकट दूर हो जाते है । वह संकट भी इन्द्रजाल है । है कुछ नही, कल्पनामे बसाया हुआ एक विभाव है । उसके मिटानेमे कुछ बाहरमे उद्यम नही किया जाता है । जैसे बाहरके कितने ही काम होते है ? हथौडी छेनी आदिसे खटपट काम किया जाता है ।

एक भीतमे कपडा टाँगनेका यदि पटिया बनाना है तो काठ लायें, ठोकें, पीटें, छेद करें, पेंच कसें, टाँगने जैसा कसे, और बाहरकी चीज ही मिटाना हुआ, तोडना, फोडना, सुधारना ही हुआ । हथौडा लाये फिर उसमे खटपट किया । क्या जीवको अपने सकट मिटाने के लिए कोई बाहरी औजारोकी आवश्यकता है ? नही । संकट क्या है ? एक विचार, कल्पना, अशांति ही संकट है ।

कुछ पुरुष सडकपर जा रहे है, कुछ सेठ हैं, कुछ जानकार है । उन्हें दो-चार आदमी साधारणसे सामने मिले । उन्होने राम-राम भी नही किया, वह सेठ भीतरसे आग बबूला हो गया । इन्होने मुझे कैसा समझ लिया है ? ये मुझे कुछ भी नही समझते है, जमाना बडा खराब है । सब उद्दण्ड बन गये है, ये राम-राम भी नही करते, ये मुझसे बात भी नही करते, झुकते भी नही है । सेठ बडे संकटोमे पड़ गया है, बडा बेचैन हो रहा है । उसके आकुलताएं बन गयी है, संकट हो गये है, देखिये बात वहां कुछ नही है, पर सेठपर सकट गुजर रहे है ।

एक बात ही सभालना है । ये भी जीव है, स्वय है, उनसे मुझे क्या होता है ? वे मेरे न स्वामी है, न अधिकारी है, क्या सम्बध है, वे घटनाको ज्ञेय नही बना सकते । सकट विकट आ गये । और ये सकट मिटेंगे कैसे ? क्या दौड धूप करके इन सकटोके सामने लगना पड़ेगा ? इन संकटोको मिटानेके लिए और कुछ नही करना पडेगा, केवल अज्ञानको हटाना होगा, ज्ञान जगाना होगा, लो संकट जो थे वे मिट गये । कहाँसे सकट होते है कुछ जरा सोचो तो ? केवल एक ही इस सकटसे इस जीवपर अनेक काँटे लगते चले जा रहे है अथवा किन्ही व्यसनोमें कुछ धन खर्च हो रहा है । इतना खर्च इसमे करना पडेगा, बस सकट हो गये । तो क्या संकट हो गये ? कल्पनाओमे बात आ चुकी थी कि मैं एक इज्जत वाला हू,

मैं इतने परिवार वाला हू, और इतने पैसे वाला हू, और इस तरहसे टोटे पडते जायेंगे तो लोगोके बीच मेरी स्थिति क्या हो जायगी ? इतना केवल भाव ही तो बनाया है, उसीका सारा सकट है। कैसे मिटेंगे ये सकट ? इन सकटोके मिटानेका उपाय एक ज्ञान है।

मैं तो यह एक पूर्ण नग्न अतरगसे शुद्ध ज्ञायकमात्र हू जिसमे किसी भी दूसरी चीज का मेल नही है, केवल अपने ही स्वरूपास्तित्वमे हूँ। ऐसा यह मैं बिल्कुल एकाकी मात्र हू। ऐसा ही था, ऐसा ही हूँ और ऐसा ही रहूँगा। जो भी दिखते हैं ये सब चले जायेंगे। जो कुछ भी व्यवहारमे आता है सब इन्द्रियजाल है, यह सब निमित्तनैमित्तिक भावोका खेल है। इन्द्रियजाल ही निमित्तनैमित्तिक भावको कहते है, क्योकि किसीके सत्की वह बात नही है। परके प्रसंगमे वह सब कुछ हो जाता है। किसी एक सत्मे नही है और फिर भी होता है, वही इन्द्रजाल है। जिस जीवमे सदासे राग नही है, पौद्गलिक कर्मोंमे राग नही है, पर परस्पर निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसंगमे राग परिणति होती है। मान लेनेकी बात आस्रवभूत पदार्थोंके साथ है।

जैसे मान लिया कि यह घर मेरा है तो घर मेरा केवल मानने भरकी बात है। नही, पर घर मेरा है, इस प्रकार जो विभाव परिणमन है वह तो उसमे परिणमन है ही, पर अपना प्रयोजन यह है कि इन्द्रजाल कहो, चाहे निमित्तनैमित्तिक भावोका विस्तार कहो, दोनो एक ही बातें है। तो यह ससारका बोझ लादने वाला मोही जीव और भ्रातिरहित पदार्थोंके परमार्थ स्वरूप ज्ञानी जीव इन दोनोमे क्या समानता हो सकती है ? नही, इनमे तो महान् अन्तर है। एक ज्ञानी जीव अलिप्त रहता है और मोही जीव कल्पनाओमे लिप्त रहता है। सो इस लगावमे तो चैन है नही और अलिप्त रहनेमे चैन है। अहो जो ज्ञानानुभूतिकी ओर ले जाय उससे बढकर दुनियामे कुछ वैभव नही है। वही मेरा सर्वस्व है, वही मेरी शरण है। सो मैं बाह्य पदार्थोंसे अलिप्त होता हुआ अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

रागद्वेषो हि ससारो भ्रमात्तत्रोपयोजनात्।
शुद्ध शान्त विजानीयाँ स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–१८॥

राग और द्वेषका ही नाम संसार है। यह ससार कैसे बना ? तो भ्रम उपयोग करने से ये राग द्वेष बने। एक यह जीव ही तो भ्रम करके अपने आपके सत्य, शांतिस्वरूप स्वभाव से डिगकर क्षोभमे आता है। यह जीव जब तक अपने आपको ज्ञानघन और आनन्दमय समझ नही पाता, अपने स्वरूपका श्रद्धान् नही कर पाता तब तक यह जीव अपने आपमे नही टिक सकता। और जो अपने आपमे न टिक सके उसके राग और द्वेषकी तरगें होती है।

मेरा ससार मेरा विभाव है। लोकमे अनेक जगह है, अनेक चीजें हैं, सयोग है। वे

मेरी कैसे कही जा सकती है ? तो यह संसार मेरा नही हैं । मेरा संसार तो मेरा विभावपरिणाम है । बाहरमे कही कुछ हो तब भीतरमे कल्पनाएँ हानि सोचनेकी बन जाती है तो दुःख होता है और भीतरमे हानि महसूस नही होती । सपत्तिका ही अनुभव करते और सुख मानते है । कोई इष्टवियोग हो तो उस समय वियोगी पुरुष कहने लगते है कि मेरी दुनिया लुट गयी । पर उसके तो दुनिया थी ही नही तब लुटी क्या ? बाह्यपदार्थ थे, यों परिणमना था तब परिणमन हो गया, पर उन बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धमे जो कल्पनाएँ बनायी थी, विचार बनाया था, वह कल्पना अब नही चल पाती है । उनका आश्रयभूत पदार्थ मिट गया, अलग हो गया । सो अपनी कल्पना वैसी बन पाती तो यही कहलाता है कि दुनिया मिट गयी ।

एक प्रसिद्ध चुटकुला या कहावत या कथानक है कि एक नाई बादशाह की हजामत बनानेके लिए आया । बादशाहकी हजामत बनाता जाय तो नाई लोगोकी बिना बात किए तो बात नही बनती । आदत उनकी ऐसी होती है कि चारो तरफके समाचार उनसे सुन लो । तो नाई बहुत-बहुत बातें करने लगा । बादशाहने नाईसे पूछा—क्यो खवास, आजकल प्रजामे सुख हे कि दुःख ? नाई बोला—महाराज, जनतामे बडा आनन्द बरस रहा है । घी दूधकी नदियां बह रही है । बादशाहने पूछा—तेरे घर कितना गोधन है ? बोला—१०-१२ भैस हैं, १०-१५ गाय हैं । बादशाहकी समझमे आ गया कि इसके घरमे खूब घी दूध होता है तो इसे दिखता है कि प्रजा सुखी है । नाई तो चला गया । उधर राजाने मंत्रीसे कह दिया कि कुछ समयके लिए नाई पर कुछ इलजाम लगाकर उसकी गाय, भैस गिरफ्तार कर लो । ऐसा ही हो गया । अब फिर नाई हजामत बनाने आया सो बादशाह पूछता है कि खवास प्रजामे कैसा सुख दुःख है ? नाई बोला—महाराज, प्रजामे बड़ा दुःख हैं । घी दूधका तो किसीको दर्शन ही नही होता ।

तो जैसा अपना परिणाम है बस वही उसके लिए दुनिया है । अपना असर अपने ही उपयोगसे हो जाता है । जब चिन्तातुर हुए तो सभी लोगोकी दशा सम्भवतः जितना देख सकते है, चिन्तातुर ही दिखती है । यदि कोई बड़ी विकट चिन्ता लगी है, किसी प्रकारका दःख है तो ऐसा लगता है कि वे लोग भी बडी चिन्तामे पडे है, सभी चिंतित लगते है, सभी दुःखी दिखते है । और कोई बड़ा खुशी हो तो जो चितातुर है उन पर भी यही ख्याल होता है कि ये बडे खुशी है, ये बडे आनन्दमे है । कभी कभी प्रभुमुद्राको देखकर ऐसा लगता है कि आज तो भगवान् हँस रहा है और कभी उसकी मूर्तिमे ऐसा लगता है कि आज भगवान् उदास है । तो यह क्या है ? क्या वह चेहरा कल और था, आज और हो गया है ? अरे आप अगर खुश है तो आपका भगवान् भी प्रसन्न नजर आ रहा हैं और जब आप शोकातुर हो तो

आपको उस भगवान्की मुद्रा भी उदास नजर आती है। तो जो राग द्वेषका असर है वही ससार है। और इस ससारकी जड है भ्रम, सो मैं निज शुद्ध, सहज तत्त्वको जानू और अपने मे आप स्वयं सुखी होऊं।

अन्तर्बाह्यं जगत्सर्वं नश्वर तत्र किं हितम्।
कर्तव्यमितरद्धयर्थं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–१६॥

अन्तरजगत् और बाह्यजगत्—ये सबके सब विनाशीक है। बाह्य जगत् तो अपने आत्मासे अतिरिक्त अन्य जितनी पर्यायें है वे सब बाह्य जगत् हैं और अपने आपमे जो परिणति, तरंगें होती हैं वह अतर जगत् है सो ऐसा जगत् भी विनाशीक है और यह बाह्य जगत् भी विनाशीक हैं, इसमे मेरा क्या हित है ? न तो इस अंतरजगत्मे हित है और न बाह्य जगत्मे हित है। जो लोग ऐसा विचार रखते है कि मेरी इस दुनियामे, लोगोमे कीर्ति सदा काल रहे, अविनाशी रहे तो ऐसा सोचने वाले विनाशीक हैं या अविनाशी ? द्रव्यकी यह बात नही है। यह पर्यायमे ही गुजर रहा है। तो जो ऐसा चाहता है वह विनाशीक है और जिनमे चाह है कि लोगोमे सदा काल यश रहे, वे लोग भी विनाशीक है या अविनाशी ? वे भी विनाशीक है और जिनकी चाह की जा रही है कि सदा काल यश रहे, वह यश भी अविनाशी है कि विनाशी और इसकी जो चाह होती है यह इच्छा भी विनाशीक है कि अविनाशी ? यह भी विनाशीक है। तो कितने मजेकी बात, गजबकी बात है कि विनाशीक, विनाशीककी चाह कर रहे हैं। अविनाशी होनेकी चाह कर रहे हैं।

यह सारा जगत् विनश्वर है। कितने की काल अब तक बीत गये, अनन्तकाल बीत गये। जिसकी अवधि नही उसके सामने इन १०० वर्षोका भी कितना मूल्य है ? एक स्वयभू रमण समुद्रमे बहुत बडे समुद्रमे जो करीब आधे राजूमे फैला हुआ है, इतने बडे समुद्रमे एक बूंद तो गिनतीमे आ सकती है, पर इस अनन्तकालकी समझो कि १०० वर्ष तो क्या, करोड सागर भी गिनतीमे नही आते। एक कल्पकाल भी गिनतीमे नही आता। तो थोडेसे कालके लिए अपनेको कुछ भी जाहिर कर देनेकी इच्छामे यह अमूल्य नरजीवन व्यर्थ गुजर रहा है। किसलिए आये थे ? क्या करने आये थे और क्या कर रहे है ? इसपर तो विचार करो। आये थे यो समझ लो आत्महितके लिए, और कर क्या कर रहे है विषय और कषाय। बडे से भी बड़े पुरुष, राजा महाराजा बडे अच्छे लगते है सवारियोमे बैठकर आते, चेहरा भी बड़ा साफ-सुथरा रहता है। शृङ्गार भी अलौकिक अनुपम रहता है। पर ये विषयकषायोके घर क्या स्वतत्र है ? तो ऐसे विषयकषायोके घर स्वयं संसारके लिए बने हुए हैं। उन लौकिक बड़ोको देखकर मनमे यह वाञ्छा होती कि मै भी ऐसा ही हो जाऊं। तो इसका

अर्थ यह है कि ऐसे ही अशुद्ध, ऐसे ही विषयकषायोंका घर बनाये रहनेकी चाह कि है अपने हितकी बात कुछ की।

इस जगत्मे करने योग्य कार्य कुछ भी नही है। है तो एक यही कि बस जो जैसा है तैसा जान जावो, केवल जान जावो। किसी पदार्थमें इष्ट और अनिष्ट बुद्धि न जाय सोई भाई तप है, आत्मकल्याणका उपाय है। बात मानो तो रहेगे, न मानो तो रहेगे। वे अपने है ही नही। आत्मीयताकी जो जबरदस्ती करते है यही दुःखका कारण बन गया है। नही तो क्या दुःख है? कोई दुःख नही है। रच भी दुःख नही होता। दु.ख तो केवल कल्पना बनानेका लगा है, पदार्थ तो सब जो है सो पूरे हैं और अपने आपमे परिणमते रहते है। जो आपकी स्थिति है वही उन सबकी स्थिति है। सो यह समस्त जगत् नश्वर है। इस जगत्मे कोई हित नही है। अन्य कर्तव्य करना व्यर्थ है सो अन्य कर्तृत्वकी कल्पनाओंको छोडकर मैं अपने आप सुखी होऊँ।

स्वतन्त्रोऽह परास्तेषां तत्रो, योगवियोगयोः।
कथं हृष्याणि खिन्दानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-२०॥

मे स्वतंत्र हू, अपने तत्र हू, मेरा स्वरूपास्तित्व जो है वह मुझमे है। देखो जो अपने घरमे रह रहा है और घरकी सारी चीजें इधर-उधर पडी हैं तो भी अपनी गद्दी पर बैठे है, गद्दीके आस पास चीजें भी बिखरी है तो भी चूंकि अपना ही सब कुछ है सो विश्रामसे रहते है, परवाह नही करते हैं, विश्वास तो है। ये देहपर भी यथा तथा पडे हुए हैं तिसपर भी गौरव है।

इसी प्रकार अपने आपके निजी आत्मगृहमे जो बैठे हैं, देखते हैं, वहाँ कितनी बातें गडबड भी चलती है; रागद्वेष कषाय, इष्ट बुद्धि, आशा, इच्छा इत्यादि अनेक गडबडियाँ भी इसमे चल रही हैं, पर अपनेको देखो न तो भी एक इस निश्चयदृष्टिसे अर्थात् अपने उपादान की दृष्टि रखने वाले पुरुषको अव्यवस्थित होते हुए भी आकुलतायें नही है। घरमे ही तो हैं, ऐसा हो रहा है, ऐसा जान तो रहे है। यहाँ ऐसा हो रहा है। यहाँ कुछ परद्रव्योमे परकी परिणति नही है। अपना सब कुछ बुरा ही सही, पर अपने आपको देख तो रहा है। व्यव स्थित ढगसे क्रिया चलते हुए आखिर कन्ट्रोल तो कर लिया है। अपने आपमे तो तन्मय है, यह परिणति हो गयी है। ऐसी दृष्टि वाले अपने आपमे इस ही एकत्वकी पद्धतिके प्रतापसे उन वाञ्छाओसे दूर हो सकता है।

मै स्वतन्त्र हू, अपने आपके आधीन हूं और परपदार्थ उनके ही आधीन है, उनका सयोग उनका वियोग हर स्थितिमे उनका उनमे होता है फिर किसी भी प्रसंगमे मै हर्ष क्या

करूँ, किसीमे खेद क्या करूँ ? सयोगमे तो जीव हर्ष मानता है और वियोगमे जीव खेद मानता है। पर जैसे रात्रिको कोई भय या कल्पना या उपद्रव या कोई मानसिक क्लेश है तो यह दृष्टि है कि यह रोगी गुजर जायगा, मिट जायगा। प्रातः हो गया तो ऐसी प्रतीति वालेको यह धैर्य रहता है कि लो रात गयी, प्रातः हुआ है। जैसे जिन्होने रात्रिमे पानी छोड रखा है, प्यास लगी है, पर यह जानते है कि अभी ४ ६ घटेमे सवेरा तो होगा ही। सवेरा होगा तब पानी पी लेंगे। सवेरा हो गया। ऐसी उपेक्षामे वह रात्रिका समय निकाल देता है। प्रात होने वाला है। वह अपने दुःखकी वेदना नही करता है। इसी प्रकार कितना वियोग हो गया, कितना उपद्रव हो गया तो वह जानता है कि संसारमे दुःखके बाद सुख आता है और सुखके बाद दुःख आता है।

ऐसा कौन इन्द्रिय सुख है जिसके बाद दुःख न आता हो ? सब बैठे है, शृङ्गारसे बैठे है, ढगसे बैठे है, मुद्रा तो ऐसी बनी है कि इनको दुःखका कोई काम ही नही है। सजे सजाये बैठे है, पर सभी जानते है कि दिनका जितना अवसर है उसमे अधिक अवसर दुःख माननेका है और थोडा अवसर सुख माननेका है। पर सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख लगा है। इसी प्रकार इन सबमे ऐसा दुःख भी कोई नही है कि पूरे दिन लगातार दुःख ही दुःख रहता हो। दुःख निरतर दिनभर रह ही नही सकता है। दुःखके बाद सुख लगा है और सुखके बाद दुःख लगा है। तो जिस समय यह जीव सुखमे है उस समय यह जानता है कि इसके बाद दुःख आयगा तो वह सुखमे मौज कैसे मान ले ? दुःख है तो यह बात मन मे है कि यह तो मिटने वाला है, इसके बाद सुख आयगा, दिन अच्छे आयेंगे तो वह दुःखमे धैर्य रखता है तब हर्ष करनेकी चीज कुछ नही रही और खेद करनेकी चीज कुछ नही रही।

विशिष्ट ज्ञानी तो वह है कि जो इसका ज्ञाता रहता है, इसमे हर्ष और क्लेश नही मानता। मै अपने तन्त्र हू, बाकी परपदार्थ वे उनके ही आधीन है, फिर मै किसमे हर्ष करूँ और किससे खेद करूँ ? मै तो अपनेमे अपने लिए अपने आप रहकर, समझकर स्वय सुखी होऊँ।

ज्ञानेन ज्ञानमात्रोऽहं भवाम्यन्यगुणानपि ।
साक्षात्कर्तुः कुत क्षोभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-२१॥

मै आत्मा ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानके अतिरिक्त आत्मामे और कोई स्वरूप नही है। सो यह ज्ञानके द्वारा अपने सभी गुणोको जाना करे तो उसमे कोई क्षोभ नही होता। आत्माका काम तो केवल जानना है, राग द्वेष करना नही है। जो रागद्वेष करते है वह इनकी भूल है। आनन्द तो इस जीवमे स्वय मौजूद है, पर बाहरी पदार्थोंमे अपना एकत्व माननेके कारण

इन्हे क्षोभ होता है। आत्माके बाहर सब कुछ पर है। किसीसे कुछ सम्बध नहीं है। पर सम्बन्ध मानते हैं और दु:खी होते हैं। अपने घरके दो-चार बाल बिच्चोके लिए धन कमाना, परिश्रम करना, सारी परेशानियां इसे होनी हैं और हैं वे सब परचीजें भिन्न चीजें। जैसे जगतके और सब जीव हैं वैसे ही घरमे बसने वाले जीव हैं। कुछ भी फर्क नही है, मगर जीव उनको मानने लगता है कि ये मेरे है बस इस रोगसे सब दु:खी है। इनको ऐसा ज्ञान जगे कि मेरा तो मात्र मैं ही हूं और जो कुछ भी हैं वे सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं और वे अपनो साथ नही देते। मृत्यु हो जायगी तो लोग इसको जला देते है।

औरकी बातें जाने दो, जो बडे-बडे आचार्य थे उनकी भी तो मृत्यु हो गयी तो उनके शरीरको भो कोई रखता है क्या ? नही। पहले उनकी पूजा होती थी, पैर पुजते थे, पर मृत्यु हो जानेके बाद शरीरकी भी वही हालत कर दी गयी तो हम आप लोगोकी की जानो है। उन आचार्योंके शरीरको चंदनसे जला दिया गया। सो चदनसे जलायें चाहे लकडीसे, कुछ अन्तर नही है। यह तो लोगोकी भक्ति है कि बडे पुरुषोके शरीरको लोग चदनसे जलाते है।

जितना यह क्षोभ है वह बाहरी पदार्थोंमे ममता करनेका क्षोभ है, नहीं तो क्षोभका कुछ काम नही है। ऐसी भावना होनी चाहिए कि मैं तो सबका ज्ञाता मात्र रहूं, किसी पदार्थ मे मेरा राग न पहुचे वही साधक है। गृहस्थीमे रहते हुए भी यदि वैरागी रह सके तो उसका जीवन सफल है और बैरागी न रह सका तो मोहांध हो जायगा तो इसका जीवन बेकार है। मनुष्यजीवन पाया और न पाया उससे कुछ हित नही निकलता, सो ममताका त्याग हो और अपने आपसे अपने हितके लिए अपनेको सुखी बनाओ दूमरोंसे सुखकी भीख न मांगो। कोई दूसरा जीव सुखी नही बना सकता। कल्पनाएं करते हैं और मौज मानते है। कोई भी तो किसीको सुख देनेमे समर्थ नही है। खुदकी आत्मा निर्मल हो तो सुख हो सकता है और सुखका कोई उपाय नही है।

ज्ञानस्य चेष्टयाऽचेष्टोऽचेष्टीभूतः कृती स्वयम्।
अचेष्टन द्वयोः सारः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६ २२॥

हम चेष्टाएँ तो बहुत करते है, पर विकल्पोकी चेष्टाएँ करते है। यदि ज्ञानकी चेष्टाएँ करें तो सब चेष्टाएँ समाप्त हो जावेंगी। मैं केवल जाननहार हू और जानन ही हमारा नाम है। इस प्रकार जाननरूपमे ही अपने उपयोगको रखकर ज्ञानकी चेष्टाके कारण बाकी सब कुछ चेष्टाएँ छूट जावेंगी। सो चाहे ज्ञानकी चेष्टाएँ कहो, चाहे कृतकृत्यका भाव कहो, एक ही बात है। मैं केवल जाननहार रहू।

ज्ञानीके मायने है कि उसे दुनियामे अब कोई काम नही करना है। जिसे दुनियामे काम करनेकी धुन लगी होगी उसे शांति नही मिल सकती है। क्या करना है ? करनेको कुछ भी है क्या ? विचार करो, कुछ सामर्थ्य भी हो सो बात बन सकेगी। ससारके संयोग में, वियोगमे रच भी अधिकार नही। होना है तो होता है और यदि नही होना है तो नही होता है। ऐसा अपने आपमे अनुभव करना चाहिए कि मेरा करनेका दुनियामे कोई काम नही पडा है, क्योकि मैं दुनियाके पदार्थोंमें कुछ काम कर ही नही सकता। सबकी न्यारी॰ सत्ता है। किसमे क्या करना है ? अपने आपमे सदा ऐसा विश्वास रखो कि जो प्रभुका स्वरूप है सो मेरी आत्माका स्वरूप है। प्रभुका स्वरूप तो व्यक्त हो गया है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानमय है, और मेरा स्वरूप जो है वह तिरोहित है।

सो जैसा द्रव्य प्रभुका है वैसा ही द्रव्य अपना है। अपनेमे और प्रभुके स्वरूपमे कोई अन्तर नही है, सो ऐसे ज्ञानका भाव यदि बन सकता है तो जीवनकी सफलता है। नही तो देखो सभी जी रहे है, जीते जाओ, पर मरण तो होगा ही। क्या मरण न होगा ? होगा। ५० वर्ष जी लो, ६० वर्ष जी लो, मरनेके बाद क्या साथ ले जावोगे सो बतला दो। तो फिर जब तक जिन्दा है तब तक अपने दिलसे हटाये रहो। ऐसी बात तो सोचते रहो कि मेरा दुनियामे कुछ नही है। जो भी जीव सुखी हो सकेंगे वे अपने भावोसे सुखी हो सकेंगे। इस जगत्मे मेरी कुछ चीज नही है। जो यह मान गये कि इस दुनियामे मेरा कुछ नहीं है तो वह उनके हाथ नही आ गया और जो समझा कि मेरा कुछ नही है तो एकदम उसके भीतर ज्ञान और आनन्दका विकास हो जायगा।

जगतके जीव एक ही तरहके रोगी है ममताके। प्रत्येक जीवमे ममता पायी जाती है। पशुओमे देखो तो भी अपनी ममता लगाए है। घोडीको देखो तो वह भी अपने बछडेको देखकर हिनहिनाती है। यदि वह घोडी और पर्यायमे होती तो उसका उस बछडेके साथ क्या सम्बन्ध था ? आज आप मनुष्यके पर्याय है, यदि आप और किसी पर्यायमे होते तो इस विभूतिसे क्या कुछ सम्बन्ध था ? कुछ भी तो सम्बन्ध न था। यदि इस ममता डायनको दूर करोगे तो भगवान्की भक्ति हुई, नही तो भगवान्की भक्ति नही हुई।

इस तृष्णासे रात-दिन व्याकुल होते चले जा रहे है। सबके तृष्णाका ही परिणाम लगा है। इतना धन और हो जाय। अरे कितना धन और हो जाय ? दुनियामे जितना वैभव है मान लो कि मेरा है। जितना धन-वैभव तुम्हारे घरमे है उसको तो माना कि मेरा है तो और भी ससारमे जितना धन-वैभव है उसे भी मान लो कि मेरा है। जितनी चीजें है सब भिन्न हैं। कल्पनाएँ ही करके मान लिया कि यह मेरा है। सबकी केवल कल्पनाओकी

ही बाते चलती, और कुछ बाते हो ही नही सकती है। कल्पना करके सारी दुनियाके वैभव को मान लो कि मेरा है।

कंजूस आत्माका धन पत्थरके ही समान है। कंजूसने धनको गाड़ दिया और मान रहा है कि यह मेरा है, उसी तरहसे तुम संसारके वैभवको कल्पना करके मान लो कि मेरा है तो तुम और कजूस बराबर हो गए। कंजूस खर्च नही करता और तुम उस काल्पनिक धनको खर्च करोगे ही क्या ? तो तुम दोनो बराबर हो गए। सारी वस्तुएँ नाशवान है। जितना भी सदुपयोग दूसरोके उपकारमे बने उतना कर लो। और यदि सदुपयोग नही करते तो सारी चीजे मिटेंगी ही, सारीं चीजें तो जावेंगी ही। व्यर्थमे पाप और बाँध लिया।

सो भगवान्की भक्तिका तो यही प्रयोजन है कि हम अपने ज्ञानानन्दमे लीन हो सके जिससे फिर किसी भी प्रकारकी आपत्ति न समाए। सो ज्ञानरूप रहना, किसी पदार्थमे भी न फसना और न बोलना यही सबका सार है।

ध्याने स्तुतौ च यात्रायां मनोवाक्कायखेदनम्।
निर्विकल्पे कुतः खेदः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-२३॥

देखो अपना जो स्वरूप है उस स्वरूपमे तो रंच भी खेद नही। अपने स्वरूपसे अलग होते है और बाहरी बातोमे पडते है तो खेद है। अभी घरमे अगर देवरानी जेठानीका झगडा हो जाय तो चैन है क्या ? नही। व्यर्थकी लडाई है। सब जुदा जुदा अपना-अपना सत् लिए है। रच भी सम्बंध नही है। यह बना लिया कि यह मेरा है। इसने ज्यादा पहिचान लिया। अरे जिसने ज्यादा पहिचान लिया वह मरनेपर क्या साथमे चला जायगा ? वह साथमे नही जा सकता है। पाखिरकार छोडने ही पड़ेंगे।

सो जितना भी खेद है सब बाह्यपदार्थोंसे खेद है औरकी बात ही क्या, अगर ध्यान करने बैठे है तो उस समय भी मनको खिन्न करना पडता है। उससे भी ध्यान हटाओ। अपने आपके ध्यानमे लगो तो ध्यान करनेमे भी खेद नही होता है। अपना धर्म है ज्ञायकस्वरूप निजतत्त्व देखना, विकल्पोसे छूटना, निर्विकल्प रहना। यही असली चीज है, सारे जगत का काम करनेमे आपत्ति है, मगर अपना काम करनेमे अपनेको कोई आपत्ति नही है। अपना काम है ज्ञाताद्रष्टा रहना। ज्ञाता द्रष्टा रहनेमे रागद्वेष नही होगे, मगर इस जीवमे तो ऐसे कुटेब लगे है कि उसे अपना बच्चा चाहे नाक बहती हो सबसे प्यारा लगता है और दूसरेका कितना ही सुन्दर बच्चा हो, प्यारा नही लगता है।

एक नौकरानीने किसी सेठके यहाँ नौकरी की। सेठानीने नौकरानीसे कहा कि स्कूल जावो, स्कूलमे जो मेरा बच्चा पढता है उसे खानेको दे आवो। नौकरानीने कहा कि मैं तो

तुम्हारे बच्चेको पहिचानती नही । बोली—अरे मेरे बच्चेको क्या पहिचानना ? स्कूलमे जो सबसे अच्छा बच्चा मिल जावे वही मेरा बच्चा है । सेठानी अपने बच्चोको ही सबसे अच्छा बच्चा समझती थी । सेठानीको यह गर्व था कि मेरा जैसा सुन्दर बच्चा और दूसरा नही है । नौकरानीका भी बच्चा उसी स्कूलमे पढता था । उसे अपना बच्चा ही सबसे ज्यादा सुहाता था । नौकरानीने भोजनके डिब्बेसे भोजन निकालकर अपने ही बच्चेको दे दिया । भोजन उस बच्चेको देकर वह नौकरानी चली आयी । जब छुट्टी पानेके बाद सेठानीका बच्चा आया तो बोला—माँ जी आज आपने मुझे खानेको कुछ नही भेजा था ? माँ ने कहा कि भेजा तो था । उसके कहा—नही भेजा । अब उस सेठानीने नौकरानीको बुलाया उस सेठानीने कहा कि तूने मेरे बच्चेको आज भोजन नही दिया था क्या ? कहा—दिया तो था । उस नौकरानीने कहा कि मैंने दे तो दिया था । तुमने ही तो कहा था कि स्कूलमे जो सबसे अच्छा बच्चा तुझे दिखे वही मेरा बच्चा है उसे ही तू भोजन दे देना । यही मेरा बच्चा मुझे अधिक सुहा गया, इस-लिए मैंने उसे ही भोजन दे दिया ।

सो सबको अपना बच्चा प्यारा होता है । सूअरसे कहो कि मेरा बच्चा तो कितना अच्छा है, तू इससे प्यार कर ले तो प्यार नही कर सकता है । सो यह व्यर्थका ऊधम है । ध्यानसे, स्तुतिमे, भजनमे निर्विकल्प अपना ध्यान लगे तो वहाँ खेद नही होता । सो अपने आत्माके स्वरूपको सोचकर, उसमे ही तृप्त रहकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

विरक्तो विषयद्वेषी रक्तोऽस्ति विषयस्पृह. ।
साक्षी रक्तो विरक्तो न स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।६—२४।।

अब विरक्त कौन है ? जो विषयोसे डरा हो, राग द्वेष युक्त हो । कभी-कभी कह देते है ना कि स्त्री, पुत्र ये सभी नरककी खान है । तो स्त्री, पुत्र नरककी खान हैं कैसे ? अरे खुद का परिणाम बिगडा हुआ हो तो वही नरककी खान है । जिसने विषय कषायो द्वेषसे अपने को रहित किया वह तो विरक्त कहलाया । मगर जो साक्षी पुरुष है, ज्ञाता पुरुष है वह न रागी होता है और न वैरागी होता हैं, वह तो जानन देखनहार रहता है । सो बातोका सार यही है कि अगर ममता नही रहती है तो आनन्द पावोगे और अगर ममता रखी गयी तो आनन्दकी स्थापना नही है । ज्ञाता द्रष्टा रहू और अपनेमे अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

किन्ही बाह्य पदार्थोंमे सुख होगा क्या ? जैसे इस घडीमे सुख गुण है क्या ? इस घडीमे सुख हो अथवा यह घडी सुख पैदा कर सके तो ऐसा नही है । ये जो घरके लोग है उनसे सुख है क्या ? उनसे सुख है, मगर उनका सुख उनके लिए ही है । सुख उनसे निकल-

कर दूसरेमे आवे ऐसा नही हो सकता है। किसी परद्रव्यमे कोई लाभ या हानिकी बात नही आ सकती। कुछ ही कल्पनाए करो और दु:खी हो लो। सुख, दुःख तो अपने ही ऊपर निर्भर है, किसी अन्यपर निर्भर नही हैं। जो विषयोसे दूर रहना चाहता है वही विरक्त कहलाता है। उसे विदयोसे द्वेषबुद्धि होती है। जिसे विषयोसे हटना हे और जो विषयोसे रहित रहना चाहते है उनकी रागरहित बुद्धि है, वे रागमे नही लगते है।

ये सब ज्ञानी पुरुष जानता है कि जो विषयसे, द्वेषसे रहित है वह विरक्त है। जो विषयोसे, लोभोसे रहित है वह ज्ञाता कहलाता है, वह जाननहार है। रागी हो तो, विरागी हो तो वह जाननहार नही रहता है। लाखोंका धन भी खर्च हो जाय फिर भी यह समझो कि मेरी कुछ हानि नही हुई अथवा यदि लाखोका धन मिल जाय, फिर भी यह विश्वास रहे कि मैने कुछ नही पा लिया। केवल एक आत्माकी बात न मिली, बाहर ही बाहर भटकता रहे तो इसे कुछ लाभ न मिलेगा। इसलिए हर उपायसे आत्मज्ञान बनाऊ और ममताको दूर करके तो शांति मिल सकती है अन्यथा सुखके स्वप्न देखना केवल कल्पना है।

सुख दुःखं स्तुतिं निन्दां कस्य कर्तुं हि क. क्षम.।
किं श्रम स्वच्युतेः कुर्याम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-२५॥

किसीको सुखी कोई दूसरा नहीं कर सकता है, न दुःखी कोई दूसरा कर सकता है। स्तुति भी कोई किसीकी नही करता, प्रशसा कोई किसीकी नही करता। खुदका जैसा भाव होना है वैसी ही वह अपनी चेष्टाएँ करना है। कोई किसीकी निन्दा भी नही किया करता, जिसका जैसा अपना कषाय परिणाम है उनके अनुसार ही अपनी चेष्टाएँ करता है। फिर जब यह देख रहे है कि इसमे कोई प्राणी किसी दूसरेका कुछ नही करता, सब अपने-अपने कमाये हुए कर्मोंके अनुसार इस लोकमे सुख और दु.ख भोगते हैं। इस लोकमे प्रत्येक जीव अकेला ही है और जो कुछ भी इन जीवोपर बीतता है सुख हो या दु.ख, वह अकेले पर ही बीतता है। इस कारण अपने आप पर दया करना, अपना धर्म करना, यह सबसे आवश्यक चीज है। आजीविका और लौकिक बातोकी अपेक्षा भी आत्मधर्मका सबसे अधिक महत्त्व है, क्योकि यहाँ दिखने वाली सम्पदा और कीर्ति, सन्मान ये सब मायारूप चीजे है। इनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। न आत्माके साथ ये सब आते है और न आत्माके साथ ये सब जायेंगे। ये सब तो यो ही मिले है और यो ही छूट जायेंगे।

आत्माको शांति केवलज्ञानसे प्राप्त होती है। सुख ज्ञान पर ही निर्भर है, सुख काय की चेष्टापर निर्भर नही है। सुख धनसे नही प्राप्त होता है। कोई करोडपति भी है, धनिको मे सन्मानके योग्य भी है तो भी अशांत पाया जाता है, क्योकि वह अपने ज्ञानका अनुभव

अपनेमे नही कर पाता कि मैं सबसे न्यारा हू, केवल ज्ञानमात्र हू, जाननके स्वरूपके अतिरिक्त मेरा और स्वरूप नही है। जब तक यह विश्वास न हो तब तक जीव शांति नही पा सकता। बाहरी बातोमे लगकर, परपदार्थोंसे दुःख मानकर 'कभी अकुशलताए मिट नही सकती।

सभी जीव इस मोहके रोगी हैं, और मोहमे जो कष्ट होता है उस कष्टको दूर करने का उपाय भी यही है कि उस मोहको अपनेसे अलग करना है। जैसे कीचडमे पडा हुआ कपडा कीचडसे साफ नही हो सकता, उसी प्रकार मोहसे होने वाले दुःख मोहसे कभी दूर नही हो सकते। यह जीवन कितना है ? कुछ वर्षोंका। कुछ वर्षोंका जीवन मिल गया और मोह किया जा रहा है, तब आखिर इसका फल क्या हाथ लगेगा ? इसपर कुछ भी गभीरता से प्रत्येक मनुष्य विचार नही करता है और वर्तमानमे जो मौज है, विषयका आनद है, इसको ही सब कुछ समझते है। समझे, मगर विषयोके भोगोके कालमे भी और मोहकी मोज मानने के कालमे भी यह जीव सुखी नही रहता है। आकुलतायें तब भी मची हुई है, आकुलतायें मिटनेका सम्बन्ध तो ज्ञानसे है, मोहके साधन मिलनेसे नही।

मनमे यह निर्णय करना चाहिये कि शांतिका सम्बन्ध ज्ञानसे है भोगके साधनोसे नही है। दो मकान बन जायेंगे तब शांति आ जायगी, दुकान हो जायगी तब मौज हो जायगी, यह सोचना केवल स्वप्न जैसी बात है, शेखचिल्ली जैसी बात है। दो मकान नही, इस मकान हो जायें तो भी चैन नही आ सकती है। जिनके ५० मकान है उनको भी देख लो चैन नही आता है। आनन्दका सम्बन्ध ज्ञानमे है, परिग्रहसे नही है। ऐसे आनन्दकी जिनको चाह है, मुक्तिकी जिनको चाह है, कर्मोंसे छूटनेके जिनके भाव है, ज्ञान उपयोगमे जिनको लगना है, उन्हे परिग्रहको तो बिलकुल छोड देना चाहिए। उदय अनुकूल होगा तो स्वय ही वैसा भाव सामने आयगा। उदय अनुकूल नही है तो करोडो यत्न करो तो भी वैभव प्राप्त नही होता, उसमे हमारे विचारोकी गति नही है। विचारोका असर तो सबको छोडनेसे ही चल सकता है, ससारके कार्योंसे नही। इसलिए इन बाह्य विभूतियोका चित्तमे आदर न करो।

बडी कठिनतासे यह नरजन्म पाया है, उत्कृष्ट कुल पाया है, धर्म पाया है, इस उत्कृष्ट रत्नको केवल परिग्रहकी तृष्णाओमे गंवा दें तो यह बुद्धिमानी नही है। तृष्णाओसे दूर रहना चाहिए। इस परिग्रहको कहते हैं—पिशाच। जो कुछ थोडा बहुत सतोष है वह सतोष भी परिग्रहकी बुद्धिमे नही रह पाता।

एक छोटासा कथानक है कि एक सन्यासीको रास्तेमे पडा हुआ एक पैसा मिल गया। उसने सोचा कि यह पैसा किसको दिया जाय। सोचा कि जो महागरीब हो उसको ही देना चाहिए। वह साधु गरीबकी तलाशमे निकला तो महागरीब न मिला। एक बार नगरका

बादशाह दूसरे राजा पर चढाई करने जा रहा था। बादशाह हाथी पर बैठा था। संन्यासीने वह पैसा उसकी जेबमे फेंक दिया। राजा कहता है कि यह पैसा क्यो फेंका ? साधु बोला कि यह पैसा मुझे मिला था, सो सोचा था कि मैं महागरीबको यह पैसा दूंगा। मुझे तो आपसे गरीब कोई नही नजर आया, सो आपको यह पैसा दे दिया। बादशाहने कहा कि मै गरीब कैसे ? मेरे पास नगर है, बहुतसा वैभव है, मै गरीब कैसे ? साधु बोला—महाराज, आप यदि गरीब नही हो तो एक छोटेसे राजा पर चढाई करने क्यो जाते हो ? आपके पास कुछ नही है, इसलिए दूसरेका धन हडप करने जा रहे हो। आपसे बढकर गरीब कोई नही है। अब तो उस राजाको ज्ञान हुआ। उस साधुने राजाको अमीर बना दिया। राजा उसी जगहसे अपनी सेना लेकर वापिस लौट गया।

अरे भैया ! जितना वैभव है उसका यदि पौना वैभव होता तो क्या गुजारा अच्छी तरहसे नही चलता ? अरे जो है वह बहुत है और नही है तो क्या करोगे ? जबरदस्ती सपदा को आकाशसे खीचा नही जा सकता। इस जीवनमे यदि परिग्रह ही परिग्रह किया तो क्या किया ? इस जीवनका ध्येय तो धर्मका पालन है। सात्त्विक वृत्तिके अनुसार गुजारा चलता रहे। करनेका काम तो धर्मका पालन है। यदि वस्तुस्वरूपका ज्ञान करो, मोह ममताको अपने से हटाओ, अपने आपकी पवित्रता बढाओ और अपना जीवन सफल करो तब तो इस नर-जीवनसे लाभ है, नही तो यह नरजीवन पानेसे कोई लाभ न होगा।

सम्पदाका कमाना यह नरजीवनका उद्देश्य नही है। स्तवनमे तो पढते हो, 'आतमके हित विषय कषाय। इनमे मेरो परिणति न जाय।' और भावनामे परपदार्थोंकी ध्वनि बनी रहे तो इसे दर्शन करना कहेगे क्या ? अपनी दयाका भाव जब तक न आये, अपनेमे बसे हुए प्रभुस्वरूपके जब तक दर्शन न हो तब तक क्या एक क्षणको भी यह मनुष्यभव पाना सफल कहा जा सकता है ? नही। सो बहुत गम्भीरतासे विचार करो और परिग्रहकी ममताको छोडकर उसमे ममत्वबुद्धि न रखकर अपने कर्तव्यको निभाये बिना मुक्तिका मार्ग नही प्राप्त हो सकता है।

सुखे दुःखे च को भेदो द्वयोराकुल्यवेदनम्।
शान्ते ज्ञे स्वे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–२६॥

सुख और दुःखमे कोई अन्तर नही है। दोनो ही स्थितियोमे आकुलताओका अनुभव होता है। सुख कहते है इन्द्रियोको जो विषय सुहावना लगे। सुहावना लगनेकी स्थितिमे आ-कुलताएँ होती ही है। यदि आकुलताएँ न हो तो इन्द्रियोके विषयमे प्रवृत्ति ही क्यो करें ? इन्द्रियोके विषयमे जीव तभी प्रवृत्ति करता है जब उसे कोई दुःख हो। जिसे फोड़ा फुसी

नही है वह मलहम पट्टी ही क्यो लगायेगा ? इसी तरह किसी प्रकारकी अशांति नही है तो वह इन्द्रियके विषयोमे क्यो लगेगा ? जो जीव विषयोंमे हैं उनको आकुलतायें ही हैं अथवा विषयोसे उनका आदर नही होता । तो उस सुखमे आकुलतायें ही पायी जाती हैं और दुःखमे भी आकुलताएँ पायी जाती हैं । इस कारण सुख और दुःख दानोकी कल्पनाओंको छोड़ूं । न तो सुखकी चाह करनेका मुझे सुख हो और न दुःखसे भयभीत होऊँ । दुनियामे दुःख कही नही है, दुःख मात्र अपनी कल्पनाओमे है । सब कुछ सम्पन्न होते हुए भी यदि एक कल्पना बना ली कि मेरी कुछ शान नही है' मेरी कुछ इज्जत नही है, लोग मेरा कुछ कहना नही मानते तो इससे क्लेश ही प्राप्त होगे ।

इस ससारमे प्रीति करने लायक कोई चीज नही है । इसमे सर्वत्र आधीनता ही आधीनता भरी हुई है । बाहरसे पदार्थोंका संयोग जुटाया तब सुख प्राप्त होता है । तो यह सुख स्वाधीन नही है । जिस सुखमे पराधीनता हो, जो सुख होकर दूसरे समयमे नष्ट हो जाता हो, ऐसे ससारके सुखका क्या आदर करना ? यह सुख 'आदरके योग्य नही है । तो मैं अपने शांत स्वभावपर ही दृष्टि दूं और उसमे ही लीन होकर अपनेमे अपने आप सुखी होऊं ।

इस जीवने अपने जीवनमे कुछ पानेका यत्न नही किया, पर जितना ही ये जीव यत्न करते रहे उतना ही फसते रहे । इस लोकमे सुख कही नही है । और जिसने लौकिक सुखको सुख माना है तो वह सुख तो राईके बराबर है और दुःख है पर्वतके बराबर । और राईके बराबर भी सुख सही किन्तु इस सुखमे भी तो विह्वलता कितनी है और वह सुख भी नष्ट हो जाने वाला है । ऐसे सुखका आदर करना व्यर्थ है । यह चीज मेरी नही है । मेरा स्वरूप तो शांत है, शुद्ध ज्ञानमय है, आत्माका लक्षण एक ही तो है । यदि आत्माका हम परिचय पा सकते है तो इस रूपसे जाना करें कि यह मै आत्मा केवल जाननमात्र हूँ । जाननस्वरूप के अतिरिक्त मै कुछ नही हूँ और जाननस्वरूपके अलावा कुछ मेरा है नही ऐसी दृढ भावना बने तो इस जीवको अपने स्वरूपका परिचय मिलेगा ।

यह जितना विवाद जीवनमे होता है । भाई भाईमे भी परस्पर विवाद हो जाता है, ये सब विवाद विषय सुखकी दृष्टिसे होते है । विषयोमे सुख माना तो उस सुखकी पूर्ति परिग्रहसे हुआ करती है । जब परिग्रहमे दृष्टि फँसी तो परिग्रह तो अपने आधीन है नही । परवस्तु है उस परवस्तुके पीछे अनेक प्रकारके विवाद हो जाते है । प्रीति, वात्सल्य, दया सब कुछ हृदयसे विदा हो जाते है । एक परिग्रहकी तृष्णामे फँसे तो इस आत्माको क्लेश ही हैं । मै आत्मा तो केवल ज्ञानस्वरूप हू, मेरा तो मेरे ज्ञानस्वरूपके अतिरिक्त और कुछ है ही नही । यदि इसे ऐसा बोध हो तो आकुलतायें नही होती ।

कितना अज्ञान इन जीवोके छाया है कि इनको अपने मार्गका पता ही नहीं पडता। मैं कुछ परमार्थभूत सत् हूं इसका उसे अन्दाज ही नही होता। जो शरीर मिला है उस शरीर को यह आत्मा सर्वस्व समझता है। जब इस शरीरको ही मान लिया कि यह मैं आत्मा हू तो दूसरोके शरीरको मान लिया कि यह दूसरी आत्मा है। फिर शरीरके पोषणमे विषयोकी पुष्टि हुई। उनमे यह अपनी रिश्तेदारी मानता है। और इस प्रकार इस जगतमे अपना सम्बन्ध बनाता है और अपना जीवन समाप्त कर देता है। इसके साथ रहना कुछ नही।

भाई इस सुख और दु खसे ससारमे बधन होकर इन दोनोमे ही प्रीति न करो और सबमे निराले अपने आत्माकी उपासना यही है कि अपनेको सबसे न्यारा मानते रहो। मैं सबसे पृथक् हू, ज्ञानमात्र हू यह भावना जितनी दृढ बन गयी उतना ज्ञान बढेगा, कर्मोंका क्षय होगा, आनन्द और सत्य शांतिका मार्ग मिलेगा।

धर्म करनेके लिए प्रधान बात यह है कि अपनेको सबसे निराला समझो, किसीसे मेरा सम्बन्ध नही। यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा अकेला ही जन्मता हू, अकेला ही मरता हू, अकेला ही सुख दुःख भोगता हूँ, इसके साथ किसीका भी रंच सम्बन्ध नही है। यदि अपने आपको विरक्त देख लो तो गृहस्थीमे रहकर भी आप धर्मका पालन करते है। यदि परिवार, पुत्र आदिकमे यह मेरा है, ऐसी ममता बनी हुई है तो आप धर्मके नामपर चाहे कितना ही श्रम कर डाले बड़े बडे विधान, पूजन, यज्ञ आदि कितने ही कर डालें, पर ममता तो जब तक हृदयसे न उतरेगी तब तक धर्म न मिलेगा। धर्म तो आत्माका निर्मल परिणाम है। जहाँ राग न हो द्वेष न हो, क्षोभ न हो, जहाँ शांत ज्ञानानन्दमय आत्माका जो परिणाम है उसको कहते है धर्म। जिसके ममताका रंग चढा हुआ है ऐसे हृदयमे धर्मका निवास हो जाय यह बात त्रिकाल असम्भव है। धर्म करनेका तो सबसे बडा काम है कि ममताको छोड़ो। घर छोडनेकी बात नही कही जा रही है, किन्तु ममता छोडो। ममता छोडनेका उपाय शुद्ध ज्ञान है। यदि सम्यग्ज्ञान है तो ममता छूट सकती है। इसलिए धर्मपालनके लिए पहिला काम है कि ज्ञानका अर्जन करो।

नृस्त्र्योः रूपे कुरूपे वा को भेदोऽशुचिता समा।
आकुल्यकारण तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-२७॥

इस जीवको सबसे अधिक मोह शरीरका है। कितनी ही धर्मचर्चा हो जाय, तपस्या हो जाय, अनेक भेदविज्ञानोकी बातें कर डाली जायें, जब भी बुखार होता है, सिर दर्द होता है तो सब भूलकर अपने शरीरकी ओर ही दृष्टि देते हैं।

कोई भी बुढिया हो, बहुत बूढी हो और रोज-रोज भगवानसे यह प्रार्थना करे कि हे भगवान् ! मुझे उठा ले। मेरा मरण हो जाय, ऐसी सुबह शाम भगवानसे विनती करने वाली पुरानी डुकरिया भी जब पासमे उसके साँप दिख जाता है तो वह चिल्ला करके अपने पोतो को पुकारती है कि बेटा दौडो, मुझे साँप खानेके लिए आया है और वे पोते यदि कह दें कि दादी तू तो रोज-रोज सुबह शाम भगवानसे प्रार्थना करती थी कि मुझे उठा ले तो तेरी बातो को भगवानने सुन लिया है, वह तुझे उठाने आया है। वह बुढिया शरीरके मोहसे अपनी जान बचाना चाहती है। इतना विकट मोह होता है।

इस शरीरकी जरा कथा भी तो देखो। चाहे मनुष्यका शरीर हो, स्त्रीका शरीर हो, सुन्दर रंगका शरीर हो, कुरूप शरीर हो सब शरीर आखिर हड्डी, माँस, मज्जा, खून, मल मूत्र आदिसे भरा हुआ है। इस शरीरमे भीतरसे बाहर तक सर्वत्र देख तो लो कि इसके अन्दर सारकी चीज क्या है ? यह शरीर हड्डी, मांसका पिंजडा है, चामकी चादरसे मढा है। यदि यह चामकी चादर इस पर न हो तो कौवे, चील इसको अब तक बचने देते क्या ? न बचने देते। ऐसा यह अपवित्र शरीर है। इसमे सर्वत्र अपवित्रता ही समायी हुई है।

इस जीवको सबसे अधिक पराधीनताका अवसर आता है तो वह इस मनुष्यदेहके रूपमे रमनेमे आता है। पर इस रूपकी अपवित्रता तो देखो। सर्वत्र वही अपवित्रता है। एक बार राजकुमारने घूमते हुए एक सेठके लडकेको देखा और उसके पास सदेश भेजा, लडका था चतुर, सोचा राजकुमार है अधिक हठी बातोमे पार न पडेगा। १५ दिनका अवसर दे दिया कि १५ दिनके बाद आप आना। १५ दिनमे क्या किया कि खूब जुलाब और दस्त होते है ना ? दवा खूब की। १५ दिन तक दस्त करके उसने एक घडेमे दस्त बद कर दिया। घडा भर गया। उस घडेको अच्छी तरहसे ढक दिया। अब १५ दिनके दस्तोके बाद रूप तो बिल्कुल फीका हो जायगा। सो उसका रूप ही बदल गया, हड्डियाँ निकल आयी, भूत जैसा शरीर लगने लगा। राजकुमार आया और हालत देखी तो आश्चर्यमे आ गया कि यह क्या ? १५ दिन पहले तो क्या देखा था ? अब तो यहाँ कुछ भी सुन्दरता नही और डरावना शरीर भी हो गया। तो भी सोचो कि लडका कहता है कि आश्चर्य मत करो, सुन्दरता तो अब भी रखी हुई है। तुम्हे सुन्दरतासे प्रेम था ना ? आवो हम तुम्हे सुन्दरता दिखावें। घडेके पास ले गया। घडेका मुख खोला। उसने कहा—सूँघो इसको। यह है इसकी तुम्हारी सुन्दरता। अपवित्र जो धातुवें भरी हुई है उनका ही दिखावा है, वही सुन्दरता है। न तो अपने शरीर से मोह रखो कि मैं इतना ही सब कुछ हू और इस शरीरके लिए ही हमे सब कुछ करना है, इस शरीरको आरामसे रखना है। शरीरको कष्ट हो, शरीरको खूब काममे लगाया तो आपदा

है यह मत सोचो। अरे शरीर तो शरीर है, मिट जाने वाली चीज है। हमारा इसमे तत्त्व न है। इसको तो जितना ही काममे लगावो उतना ही अच्छा है। यदि इस शरीरको ही माना कि मैं हूँ और उसमे ही मोह बसाये रहे तो धर्म कैसे कहा जायगा, बतलावो ? फिर भगवान्के दर्शन करके लाभ ही क्या पाया ? रात दिन यह किया कि यह मैं हू, यह मेरा है, यह लडका मेरा है, यह सब कुछ मेरा है ऐसा सस्कार ही समाया रहा तो प्रभुके दर्शन क्या किये और धर्मका क्या काम किया ?

गृहस्थीकी तो शोभा है कि वह सही जानता रहे और इन आरम्भ परिग्रहकी बातों मे रहनेका पछतावा बना रहे। गृहस्थी तो वह है कि सच्चा ज्ञान भी जग रहा हो और परिग्रहके संगममे आनेका पछतावा भी हो रहा हो। इन दो बातोका अपने-अपने हृदयमे परिचय तो करो कि इसमे ये दो बातें कितनी है ? ज्ञान कितना जग गया है और घरमे रहनेसे पछतावा कितना आ रहा है ? इतना बडा गांव है। दस पांच ही ऐसे निकलेंगे कि जिनको घर मे रहनेका पछतावा हो रहा होगा। गृहस्थ है वही कि जहाँ ज्ञान और वैराग्यका सम्बन्ध होता है। **(इससे आगेकी कुछ प्रतियां नहीं मिली)**

ज्ञानी सब जीवोके यथार्थस्वरूपका भान कर रहा है। उसकी दृष्टिमे पाप तो घृणाके योग्य हो सकता है, पर पाप आत्मा या जीवद्रव्य उसके घृणाके योग्य नही हैं, क्योकि वह ज्ञानी सर्वत्र निरख रहा है कि जीवस्वरूप तो सर्वत्र समान है। उसमे किसीका किसीसे कुछ भी अन्तर नही है। ऐसी विशद निर्मल स्वभावदृष्टि जिन ज्ञानी पुरुषोमे होती है, ऐसे वे गृहस्थ हो तो भी उन गृहस्थोका बहुत आदर्श आचरण होता है। विजय है पुरुषोकी तो आचरणसे है। ये लोग आदरके पात्र हो सकते हैं तो अपने आपसे हो सकते है। धन वैभव कितना ही हो यदि आचरण मलीन है तो प्रजाजनोके द्वारा वह सन्मार्ग योग्य नही हो सकता है। सेवासे और आचरणसे आजके समयमे बहुत बडा स्थान प्राप्त किया जा सकता है।

भैया ! प्रभुकी भक्ति करते हुए अथवा जब-जब प्रभुको याद आये या किसी धार्मिक कार्यमे लगें तो अन्तरमे यह ध्वनि उत्पन्न होनी चाहिए कि हे प्रभो ! मोह ही एक महान संकट है और मेरा वह अपूर्व अवसर आये जिससे क्षण मोह न रहे, यही प्रार्थना है। यही धुनि प्रभुभक्तिमे और धर्मकृत्योमे हमारी होनी चाहिए और अतरकी आवाजसे होनी चाहिए। सब कुछ सगम होकर भी इस सगममे यदि आसक्ति नही होगी तो अनाकुलता पायी जा सकेगी। सगममे आसक्ति हो तो इसका फल सीधा आकुलता है। यह नही होगा कि भाई हम उत्तम कुलमे पैदा हुए है तो हमारे ऊपर विपत्ति नही आनी चाहिए।

भैया ! अपने आपकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी समझो और अपनेमे गुप्त रहकर अपनेमे

बसे हुए शुद्ध परमात्माके दर्शन करके, अनुभव करके कर्मोंका क्षय करो, मोक्षमार्गमे आगे बढो । यह काम यदि अपने अन्तरमे कर सके तो वह अपने लिए बडी लाभकी बात होगी ।

प्रभुकी भक्तिमे अपनी और प्रभुकी समानता देखी जाती हैं और वर्तमानका अन्तर देखा जाता है और जिस उपायसे प्रभु हम जैसी निम्न अवस्थाओंमे उठकर प्रभु बन गये है, उस मार्गका अनुसरण किया जाता है । यही एक अपनेसे सम्बधित मार्ग है, बाकी तो यहाँ जो कुछ होता है सब जिस जिसके उपयोगसे लगे उस उसके भाग्यसे वह उपार्जित होता है । जो होता है होने दो, किन्तु आप तो आत्महितका सकल्प करो, एक महान उद्देश्य बनाओ । ऐसा उद्देश्य बनाओ कि इन विकल्पोकी तरगें शांत हो जाएँ और जाननमात्र वृत्तिका रसपान किया करें । एक ऐसी अन्तरमे धुनि होनी चाहिए बाकी तो सब बातें जानते हैं, अधर्मसे बचनेका यत्न करते है और बचाये बचाये भी फसते रहते हैं । उन्होने क्या मार्ग नही सोचा उन्होने क्या उपदेश नही ढूढा, मार्ग तो उन्होने सोचा, किन्तु अन्तर धुनके बिना अब तक नही पाया ।

यथार्थ अहिंसाका मूल है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र । अपने आपके ज्ञानानन्दस्वरूपका श्रद्धान हो, अपने आत्माके ज्ञानका अनुभव हो और रागरहित वृत्तिमे रह-कर ज्ञानानन्दका स्वाद लिए रहना, यही सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमे रहना है । इसका मुख्य ध्येय बना लो और अपने जीवनमे ऐसी क्रांति लावो । ये सब कुछ ससारके कार्य, विकल्पोके लिए होते हैं । मेरा करनेका काम तो एक आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मआचरण ही है । जो स्वाध्यायके द्वारा, पढनेके द्वारा जिस तरहसे ज्ञानका विकास हो वही एक करने योग्य काम है, तो इसकी ही धुनि बनाओ और तो सब बातें होती हैं पर फल करनेसे मिलता है । जाननेको सब जानते हैं, पर जो उस मार्ग पर चलेगा विजय वही पायेगा । सब जानते है कि कषाय करना ठीक नही, पर कषाय उत्पन्न न हो इसका साधन अनन्तज्ञान है । दूसरा साधन नही है । ऐसे उपायसे अपने आत्मज्ञानकी वृद्धि करो और बडा शांत वातावरण रखो । वचनव्यवहार अपना ऐसा प्रेमयुक्त रखो कि चाहे कोई कितना ही कडुवा बोलता हो । बोलता है तो उसकी परिणति है । तुम कडुवा बोलने वाले पर विजय प्राप्त कर सकते हो । ऐसा अपने आपमे गौरव होना चाहिए । कडुवा बोलने वालेपर अपनी विजय प्राप्त हो सकती है मधुर और हितकर वचन बोलनेके द्वारा । घर-घरमे लडाइयाँ क्यो बढ जाती है ? इसने दो कहा, इसने चार कहा । यह नही होता कि यह जगत् तो असार है, यहाँ दूसरो पर क्या बगराना है ? ये तो रीते है । कैसा भी व्यवहार किसीका हो, पर अपना व्यवहार मधुर होना चाहिये । देखो अभी कोई आपत्ति नही आ सकती है । ऐसे शांत वाता-

वरणकी बनाकर अपने आपमे अपने आत्मधर्मकी साधना बनाये रहे तो धर्म होगा और नर-जीवन अवश्य सफल होगा ।

नैर्मल्य नान्यनिन्दातो मालिन्यं शल्यमेव च ।
किं क कथ च निन्दानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-३३॥

अन्य पुरुषोकी निन्दा करके निर्मलता नही आती है । प्रत्युत मलीनता ही होती है, शल्य ही होता है । फिर मैं किसकी निन्दा करूँ ? निन्दा करने वाला मोहवश समझता है कि मैं कुछ अपनी बडाईका काम करता हू, पर निन्दासे उसको कितनी हानि हो रही है और लोकमे भी कितनी हानि है, इसका वह ख्याल नही करता । कोई पुरुष दूसरेकी निन्दा करता है तो अभिमानके कारण करता है । अपनेमे अभिमान उत्पन्न होता है तो दूसरोकी निन्दाकी चेष्टा बन जाती है । मैं बडा हू, अमुक छोटे है इस प्रकारके भाव आये बिना निन्दा नही कर सकता । जो लोग छोटी गृहस्थावस्थामे रहकर भी बडे-बडे साधुजनोकी निन्दा करते है तो उनके चित्तमे यह ध्यान है, यद्यपि वे जानते है कि मैं गृहस्थ हू, मेरा साधारण पद है, लेकिन वे यह भी समझ रहे है कि मै अपने साधारण पदमे रहकर भी उत्कृष्ट काम कर रहा हूँ और साधु जन खोटे है । बडोकी निन्दा जब तक नही हो पाती है जब तक अपनेमे अभिमानका उदय न हो । उस निन्दामे तत्त्व कुछ नही निकलता । एक तो अपना उपयोग भ्रष्ट किया और निन्दा करनेके फलमे पडौसियोने अपनी निगाहसे उतार दिया । सो निन्दासे केवल मलिनता बढती है, शल्य ही होता है । दूसरोकी निन्दा करनेके बाद एक मलिनता बढती है, शल्य ही होता है । दूसरोकी निन्दा करनेके बाद एक पछतावा आता है कि मैंने व्यर्थमे ऐसे वचन निकाले । लोगोके बीच हमने तुच्छता ही जाहिर की····ऐसा विचार कर उनको एक पछतावा भी होता है, शल्य भी हो जाता है ।

जो निन्दा नही करता तो प्राप उसे बडे प्रेमसे देखते है, वह सभीके आदरके लायक है । जितने भी संकट है वे सब सकट अपने वचनोकी पद्धतिके कारण है । जीव तो कोई किसीका शत्रु नही । जीव सब एकस्वरूप है, पर यह जो ऐसा अनुभव होता है कि यह मेरे विरुद्ध है या इसकी नजर हमपर ठीक नही है तो उसके कारण खुदका ही अपराध ढूढना चाहिए । अपने अपराध बिना अपनेको क्लेश नही होता । ये बातें सब जानते है । यह वचनो का उपक्रम ही हमारी शांति और अशांतिका कारण बनता है । विवेकी पुरुष जो होते है वे अपने आपमे ऐसा निर्णय रखते है कि भाई बोलनेकी ही तो बात है । जरा भला बोल लिया तो उस भला बोलनेसे सब समयके लिए आराम मिल गया, शान्ति प्राप्त हो गयी, किन्तु जब अभिमानका उदय होता है, अपनेको बड़ा माननेका भूत सवार हो जाता है तो वचन

सुन्दर नही निकल सकते । अभिमानी पुरुष कडुवा ही बोलेगा । अभिमान कहो या कठोरता कहो एक ही बात है । जब अभिमान नही रहता है तो वहाँ मार्दव प्रेम हो जाता है । मार्दव कहो या कोमलता कहो, एक ही बात है । जब तक उपयोग विनयपूर्ण रहता है तब तक इसको बडा आराम मिलता है, शाँति और निराकुलता प्राप्त होती है । जिसके हृदयमे अन्याय और मुखसे जब दुर्वचन निकलने लगे तो वहाँ बेचैनी अपने आप आ जायेगी । किसी मनुष्यके बुरा बोलनेका परिणाम या निन्दा करनेका परिणाम भयकर ही है । उस दुर्व्यवहार से शान्ति नही प्राप्त हो सकती है । इसलिए मैं परकी निन्दा त्यागकर, परसे दुर्वचन बोलना त्यागकर अपनेमे बसे हुए सहज परमात्मस्वरूपको निरखू और उसमे ही लीन होकर अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ ।

प्रशंसकेन दत्तं कि क्षोभ कृत्वा पलायितः ।
किं हित तेन किं रोचै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६·३४॥

जैसे किसीकी निन्दा करनेसे हमे लाभ नही है और दूसरोके द्वारा निन्दा भरी बातें सुनकर अपनेमे अज्ञान विकार उत्पन्न कर लेनेमे लाभ नही है, इसी प्रकार प्रशसाके सम्बधमे भी कह रहे हैं कि प्रशंसासे अपनेको लाभ क्या मिलता है ? प्रशसकने यदि प्रशसा कर दिया उसकी एवजमे उसे प्राप्त हुआ क्या ? वह अपनेमे क्षोभ मचा करके भाग गया । प्रशसा की दो चार बातें सुनी तो आपको एक क्षोभ उत्पन्न हो गया और प्रशंसा करने वालेने किसी प्रकारसे सुखी कर दिया । किसी प्रकार उसको उत्थान दूँ ऐसा उसके चित्तमे श्रम करनेका भाव आ जाता है । प्रशंसा करने वालेसे इसको लाभ नही मिला, बल्कि क्षोभ ही इसको प्राप्त हुआ । क्षोभ करके यह अपने स्थानपर आ गया और प्रशसा सुनने वाला जीव अपने आपमे अनेक प्रकारके विकल्प मचाकर दु·खी होने लगा । मोही प्राणी ही अपनी प्रशसा सुन-कर अपनेमे सुखका अनुभव करता है । तत्त्वदृष्टिसे विचारो तो प्रशंसकसे अपनी हानि होती है । यदि प्रशसक न होते तो इसको बहिर्मुखता करनेका अवसर न मिलता । अपने आपमे बसे हुए आत्मदेवके ध्यानमे इसका उपयोग जमता । वह तो क्षोभका निमित्त बनाकर भाग गया, उससे लाभ कुछ नही होता । मेरा लाभ तो मेरे स्वाभाविक निरुपाधि चैतन्यस्वभावके उपयोगमे है । इन सब पर्यायोमे जो कि विपरीत भी हो रही है, जिनका निषेध किया जाने योग्य है उन पर्यायोमे भी यह अनन्तानन्त नित्यप्रकाशमान मेरा चैतन्यप्रभु विराजमान है, उसकी दृष्टि करूँ और सर्वविडम्बनाओसे दूर होकर मैं अपनेमे अपने समता रसका स्वाद लूँ । जगत-व्यवहारमे जो संकट है वे प्रशसाके सकट है । प्राय· प्रत्येक मानव प्रशंसा सुनने का लोभी है और भिखारी प्रशसा सुननेका बन रहा है । परसे आशा की जा रही है । इनका

राग मिटाना यद्यपि बहुत कठिन चीज है, लेकिन शांति यदि पानेकी अभिलाषा है तो इस रागको समुल नष्ट करना होगा। किसी भी प्रकारकी प्रशंसाकी रुचि न करनी होगी। सबसे दूर अपनेमे विराजमान परमात्मदेवकी उपासना करनी चाहिए। जिस प्रशसकने मुझे कुछ देना नही तो उससे प्रीति करना व्यर्थ है इत प्रकार निन्दकने मेरा कुछ छीना नही, इसलिए निन्दकसे ग्लानि करना, निन्दकको संगमे लेकर अपने आपमे शोक करना भी व्यर्थकी बात है इसी बातको अब कहते है।

निन्दकेन हृतं किं मे दोषमुक्त्वा स्थिरीकृतः।
का क्षतिस्तेन किं शोचै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–३५॥

निन्दा करने वालेने हर क्या लिया ? वह तो मेरे दोष कहकर मुझे स्थिर और सावधान कर गया है। अपना व्यवहार अयोग्य है तो दूसरे भी हमसे विमुख हो जाते है। अपना व्यवहार योग्य है तो दूसरे अपनी ओर आकृष्ट होते है। इस कारण विरुद्ध परिस्थितिमे अपने ही अपराधकी खोज करना चाहिये। यद्यपि जैसे अपना अपराध अपनेसे होता है वैसे ही दूसरे पुरुषोंमे भी अपराध हो जाता है। दूसरे अपराध मेरे लिए पीछे करते है, किन्तु अपराध मैं पहिले करता हू। मौलिक आपदा वही है। हम यदि अशांतिका अनुभव करते है, जिसकी वजहसे जगतके दूसरोका भी उपयोग मेरे विरुद्ध हो गया है। निन्दकने हरा क्या ? निन्दा करने वाला यही तो कहेगा कि यह ऐसा बुरा है। तो यदि बुरा है तो बुराई हटाना चाहिए निन्दा करने वालेसे यह अर्थ निकालना चाहिए कि हमको यह सावधानीका उपदेश दे रहा है, हमारे भविष्यमे कोई बुराई न आ जाय। हर प्रकारसे निन्दकके द्वारा अपना भला ही हो सकता है, बल्कि प्रशसकके द्वारा अपनी बुराई हो सकती है, क्योकि प्रशंसकके संगमे सावधानी बर्तनेका उपयोग नही रहता, किन्तु निन्दकके संगमे अपनी सावधानी बर्तनेका प्रयत्न रहता है, इसलिए निन्दकने हरा कुछ नही। वह निन्दक तो मुझे स्थिर कर गया है। मै क्यो शोक करूँ ? मेरा हित तो मेरे स्वाभाविक इस चैतन्यस्वभावके बर्तनेसे है जो सब क्लेशोमे भी सर्व अवस्थाओमे भी अन्वय रूपसे रह रहा है, कभी मुझे दिखता नही है, ऐसा अपने आपमे गुप्त विराजमान ज्ञानस्वभावकी दृष्टि वाले और अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होवे।

ज्ञप्तिक्रियस्य मे वृत्तौ निवृत्तौ चाग्रहः कुतः।
यत्कर्तुमपि चायातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–३६॥

कहते है जानना ही एक क्रिया है। ऐसे मुझ आत्मामे किसी कार्यकी प्रवृत्तिसे क्यो आग्रह हो और किसी बातकी निवृत्तिका क्यो आग्रह हो ? जो करनेमे आ रहा हो आवे मैं

तो अपने शुद्धज्ञानकी वर्तनाको ही सभालूँ। मैं ज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य करनेमे समर्थ नही हू। क्योकि मै ज्ञानस्वरूप हूँ और ज्ञानकी वृत्तिमे ही रहा करू, ऐसा मेरा कार्य है। सो मैं ज्ञान वर्तनाके द्वारा ही अपनेको पवित्र बनाए रहू। किन्ही बाह्य भावोमे प्रवृत्ति करनेका मेरा स्वभाव नही है और किसी बाह्यपदार्थसे निवृत्ति करनेका मेरा स्वभाव नही है। मैं अपने स्वरूपास्तित्वमे हू। सो स्वय ही बाह्यपदार्थोसे निवृत्ति हो। अब और निवृत्ति क्या होना चाहिये ? मेरा किसी पदार्थमे प्रवेश ही नही, किसीमे लगा हुआ नही हू। लगकर हटना है। केवल विकल्प किसी पदार्थमे लगानेका बनाया था सो उन विकल्पोको ही हटाना है। वे विकल्प ज्ञानभावके द्वारा ही हटाना है। इसलिए मेरी किसी भी प्रवृत्तिमे या निवृत्तिमे कुछ हठ न हो, मैं तो स्वभावसे ज्ञानमात्र हू, निस्तरग हू, सो अपने ही इस शुद्ध ज्ञानस्वभावको ही निरखकर सर्वविकल्पोका मैं परित्याग करू। बडा कष्ट है इस जीव पर कि यह अपने स्वभावका आश्रय छोडकर बाह्य पदार्थोंको ओर संलग्न रहता है सो इन करनेकी विषमताओ को त्यागकर मैं अपने ज्ञानरूपसे ही रहूँ। यह ज्ञास कैसा है ? केवल जाननमात्र है। केवल जाननमात्र मेरी वृत्ति रहे, इस प्रकारके जाननका ही जो यत्न है बस यह यत्न हमारे हितका साधन है। सो हम यह मानें कि मैं अज्ञानसे दूर होऊं, ज्ञानवृत्तिमे रहू और सर्वसकटोसे मुक्त होऊं।

मानापमानता मोहे पर्यायस्य न चान्यथा।
तद्विविक्तस्य न क्षोभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-३७॥

इस मनुष्यको सबसे बडा दुःख है तो मान अपमानका दुःख है। जितने विवाद और झगडे चलते है उनका कारण मान और अपमान है। मान और अपमान तो जानते होगे ? किसीने गाली दे दी या बुरी तरहसे बोल दिया हो यह समझने लगे कि हमारा अपमान कर रहा है। सो इस जीवको यह राग बहुत लगा है जिसके मारे यह परेशान है। घरके बच्चोंने व बहूने बात न मानी तो मानो पर उतना दुःख नही है जितना कि यह दुःख है कि मेरा अपमान कर दिया। हमारी बात नही रही। सो घर-घरमे, देश-देशमे इस जीवको बडे सकट है। पर यह तो बताओ कि, दुनिया अगर तुम्हारा बुरा करती है, अपमान करती है तो तुम्हारी आत्माका क्या करता ? है या इस ढांचेका क्या अपमान करती है ? पहिले यह बतलावो। तुम्हारा जो जीव है, इस शरीरके अन्दरमे उस जीवको कौन जानता है ? उसके शक्ल नही, सूरत नही तो दूसरोकी दृष्टि नही। आपके जीवको तो कोई जानते नही। जो शरीर लगा है यही हाथ, पैर, नाक, कानका इसको ही दुनिया समझती है कि यह फलां है। जीवको नही जानते। यदि कोई गाली देगा तो शरीरको गाली देगा। जीवको तो कोई

जानता ही नही, क्योंकि तुम्हारे जीव तक दूसरोकी पहुंच नही। और जिसकी पहुंच उस जीव तक हो जाय वह ज्ञानी हो जाय। मान अपमानकी जो बुद्धि है शरीरसे होती है। शरीर को माना है कि मैं हू। इसने मुझे यो किया, ऐसा सोचकर दुःखी होने लगता है। सो मान और अपमान मोहसे ही होता है। मान अपमान पर्यायसे होते है। इतना मान अपमान ही दुःखी करता है मेरा मान अपमान कोई नही करता। मान अपमान इस ढांचेका होता है। मान अपमान मेरे जीवका नही किया जा सकता। सो शरीरमे यह जीव है। शरीरमे ममता है तो शरीर मानता है कि मेरा मान अपमान है। इस जीवका कोई कुछ नही करता, पर शरीर सोचता है कि हाय मेरा यह कर दिया। शरीर बहुत संकटोमे आ जाता है। अभी तुम्हारे घरमे कोई बच्चा बीमार हो जाय तो तुम्हारे भी बुखार चढ आता है। बच्चेको बुखार नही चढता किन्तु मोहवश आप भी दुःखी हो गए। सो ज्ञानका यही फल है कि भीतर बसे हुए अपने भगवान्‌को समझ लो। मान और अपमान लौकिक दुनिया करती है। उसका सब ख्याल छोड दो तो सुखी हो जावोगे। सो जब तक शरीरमे यह बुद्धि है कि यह मैं हूँ तब तक समझोगे कि दूसरोने मान किया और दूसरोने अपमान किया और जब ज्ञान जग जायगा कि शरीर अलग चीज है और मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हू, शरीरसे न्यारा हू तो जैसी दूसरो पर बीतती है उसका क्षोभ मनमे न करो। इस शरीरपर जो कुछ बीते उसका ख्याल न हो, इस शरीरसे अपनेको न्यारा समझो तो बहुतसी खटपट बातें अपने आप दूर हो जाती है। अभी देखो शरीरमे जितना मोह लगा है तो १० जगह खावो फिर भी भूख लगती है। शरीरकी स्थिति बार-बारके भोजनसे रहती है। शरीरमे मोह लगा है तो पेट भरा है, फिर भी कोई चीज दिख जाय तो जी कर जाता है कि खावें। यह जीव कुछ नही कराता। ये सब खटपट शरीर ही कराता है। खाने-पीने व गप्पो सप्पोंमे समय गुजार देते है। भगवान् का ख्याल करना, अपना ध्यान करना इसके लिए बुद्धि ही नहीं उत्पन्न होती है क्योंकि शरीरसे मोह लगा है। सो शरीरसे मोह हटाओ और अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होओ।

पराञ् जितैः परैः क्लिश्ये मोहेनैव नात्मनः ।

सुखी ह्यन्येऽपि विरतोऽहन्, सर्वे सम्मो रहे सुखी स्वयम् ॥६–३८॥

जितने जीव है उन सबके साथ कर्म लगे है और जो जैसे कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है। करे और, भोगे और ऐसा अपवाद इस दुनियामें नहीं है। जो करेगा सोई भोगेगा। अच्छा काम करोगे तो अच्छा फल भोगोगे और बुरा काम करोगे तो बुरा फल भोगोगे। जैसा अपना आचरण करे, परिणाम करे वैसा फल भोगता है। कोई जगह नहीं है कि दूसरा मदद कर दे। तुम्हारा अन्दर पुण्य है तो दूसरे भी तुम्हारी मदद कर देंगे और

अगर तुम्हारा पुण्य नही है तो कोई तुम्हारी मदद न करेगा। अपना व्यवहार अच्छा बनाओ, दूसरे जीवोको अपने ही समान समझकर उनसे प्रेमयुक्त वचनोका व्यवहार करो। किसीको परशानी न उत्पन्न हो ऐसा अपना व्यवहार रखना यही लौकिक सुखोका उपाय है और इसीसे परमार्थ सुखका रास्ता मिलता है। कोई जीव किसी दूसरेको न सुखी करता, न दुःखी करता, और न कोई किसी प्रकारकी दुःखकी परिस्थिति बनाता। यहाँ तक कि जैसे हम बोल रहे है तो हम तुम्हे नही समझा सकते आप लोग तो स्वयं ज्ञानमय हो, समझना होगा तो आप लोग स्वयं ज्ञानसे समझ लेंगे। हम नही समझा सकते। हमारा भाव है हम कह रहे है, बोल रहे है, पर आप लोग समझोगे तो अपने ज्ञानसे स्वयं समझ लोगे। मै तुम्हें कैसे समझा सकता हू ? कोई किसीको समझाता नही है। सब अपनेसे समझते है। अगर कोई किसीको ज्ञान देने लगे तो मास्टर लोग १०-२०-२५ बच्चोको ज्ञान देनेके बाद मास्टर तो ज्ञानसे खाली हो जायगा, मास्टर स्वय ज्ञानसे लुट जायेगा। बच्चे स्वय अपने आप ज्ञान पैदा कर लेते हैं। मास्टर तो निमित्त रहना है। कोई जीव किसीका कुछ नही करता, सब अपने ही कर्मोंसे सुख भोगते और अपने ही कर्मोंसे दुःख भोगते है। जैसा ज्ञान है तैसा इस आत्माका बर्ताव चलता है। सो इस दुनियाको असार समझो, अशरण जानो और यहाँ यह विश्वास न बनाओ कि हमारे घरके लोग अच्छे है, घरके लोग प्रेमी है, वे हमारी मदद करते है—ऐसा भाव न रखो। आपका उदय अच्छा है तो आपसे बोलने वाले मिलेंगे और यदि आपका उदय खोटा है तो आपसे बोलने वाला भी कोई न मिलेगा। आपको अपनी बहुत बडी सावधानी रखना चाहिए। किसीको दुःख पहुंचानेका परिणाम न होना चाहिए। एक जीवका दूसरे जीवके साथ कुछ भी सम्बंध नही है कि वे समझाते हो और दूसरे समझते हो। हम आपको न ज्ञान देते है और न आप मुझसे ज्ञान लेते है। इतना भी सम्बध नही है। आप स्वय ज्ञानस्वरूप है। सभी जीव आनन्दके निधान है। आप अपने आपसे अपने विचार बनाते हो और अपने ज्ञान बनाते रहने हो। इसी प्रकार आनन्दकी बात है। कोई किसीको आनन्द नही देता, कोई किसीको सुख दुःख नही देता। खुद कल्पनाए करते है और सुखी दुःखी होते है। कोई किसीका कुछ कर सकने वाला इस लोकमे नही है। सो अपनी जिम्मेदारी है कि न्याय नीतिका व्यवहार करो। अगर अन्याय करके, अनीति करके धनसचय कर लिया तो किस कामका ? अरे न्याय बना रहे, नीति बनी रहे, सच्चाईका व्यवहार बना रहे तो अपने कर्मोंका फल मिलता है। अपनी करतून पर निर्भर है कि हम सुखी हो, हम अपने भाव बिगाडते हैं, अपनी करतूत बिगाडने है और दूसरेपर दोष देते है तो उसका फल अशांति रहेगा, शांति नही हो सकती है।

स्वद्रव्यक्षेत्रभावानामाप्तौ भवति शुद्धता ।
नान्यभावविकल्पोऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखो स्वयम् ॥६ ३६॥

देखो जगत्मे रुलते रुलते चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण करते आज आपने यह मनुष्यभव पाया है । बहुत बार कीडे-मकोडे, पेड, पक्षी आदि बने । आज भी देखो उन नारकी जीवोकी गतियां सुधरी नही है । पेड खडे है, उनके जीभ नही है, नाक, कान, आंख आदि नही है । केवल ढांचा खडा है । उनके जिह्वा तक नही है और वे कीडे मकोडे सुरसरे निकलते है इनके जीभ है, नाक कान नही । उनका विकास अब भी रुका है । वे इतनी छोटी पर्यायमे है कि उनके नाक, कान, आँख भी नही । चोटी चीटा आदिके तो नाक है, पर आंख कान नही । मच्छर जो हैं उनके नाक हो गई, पर कान नही और कान भी हो गए, आँखें भी हो गयी । भैंस, गाय, मुर्गा, मुर्गी, सूकर आदि है तो भी उनसे क्या लाभ ? हम आप आखिर मनुष्य हैं, हम आपको ज्ञान मिला है, और इस जगत्के जीवोको निगाह करके समझ लेते है । हम आपको मनुष्य भव मिला है हम आपको मन मिला है, दिमाग मिला है । चाहो तो अच्छा काम कर लो तो संसारसे तिर जायें और चाहो तो विषयोमे लीन होकर ससारमे घूमते रहे । यह मनुष्य मुक्तिको भी प्राप्त कर सकता है और नरकमे भी जा सकता है । तो इतनी बडी पदवी पायी है, इतना बडा उत्कृष्ट साधन पाया है तो विवेक करना जरूरी है । ऐसा विवेक बने कि अपने द्वारा किसी जीवको किसी प्रकारका सकट न पहुचे । अहिंसा अपनाकर सब जीवोको सुखी बनानेकी भावना बनाओ । कोई जीव मेरे द्वारा दु:खी नही हो, ऐसी अन्तरमे भावना बनाओ । यही है अहिसा । सत्यव्यवहार रखो, किसीसे झूठ न बोलो, सच्चाईसे रहोगे तो लोग तुम्हे देवताकी तरह मानेंगे । सब लोग तुम्हे देवता तुल्य मानेंगे । चाहे हजारोकी चीज पडी हो, लाखोकी चीज पडी हो उसे न छुवो, चोरी न करो । यदि उठा लानेसे वह धन आपके पास आ भी गया तो प्रथम तो धन घरमे रहता नही । वह किसी न किसी बहानेसे निकल जायगा । उस धनका आप उपयोग नही कर सकते । तो वह चीज भी आपके पास न रही और पापी भी बन गए । यदि वह चीज रहे भी तो इस जीवको लाभ क्या मिला ? इसके साथ तो अपना ज्ञान और आनन्द है । बाहरी चीजोसे मनुष्यको सुख नही मिलता, किन्तु सच्चा ज्ञान बने तो सुख मिलता है । धन-वैभव कितना ही हो तो सुख नही मिलता । सुख प्राप्त करनेका साधन तो केवल अपनी सद्बुद्धि है ।

किसीकी चीजपर निगाह न डालो, चोरी न करो । चौथी बात है कि सब स्त्रियोपर मां, बहू, बेटियोपर बराबर निगाह डालो । सब बराबर है । यह शरीर तो एक पिंड है । मनुष्य हुए है प्रभुभक्तिके लिए और आत्मध्यानके लिए हुए है । सो बुरी दृष्टि न हो । सबको

माँ बहिनके तुल्य जानो ५वी बात है कि परिग्रहकी बात न रखो। संसारकी कोई भी चीज आप अपनी न समझें, क्योकि किसी दिन हम मर जायेंगे। साथमे क्या ले जावेंगे? अपना तो यह विश्वास हो कि मेरा कुछ नही है। द्रव्यके बिना गृहस्थी नही चलती है सो आप रखते है, ढगसे खर्च करते है। सब कुछ बातें हैं। पर भीतरमे यह श्रद्धा बनी रहे कि मेरा कुछ नही है। परमाणु मात्र भी मेरी चीज नही है, ऐसी सद्भावना जीवके बने तो आत्माका पोषण होगा। सबसे बडी चीज यह है कि अपनी शुद्ध भावना बनानेके लिए कुछ बातें रोज करनी आवश्यक हैं। कोई न कोई धार्मिक ग्रंथ रोज पढो, क्योकि उन धार्मिक पुस्तकोसे अपनेको एक प्रेरणा मिलती है। प्रभुकी भक्तिमे कुछ समय जरूर बिताओ। तीसरी बात है कि अच्छी सगतिमे बैठो, खोटे पुरुषोके संगमे न बैठो। हमेशा उत्तम कुलमे बैठो। चौथी बात है कि जो गुणी पुरुष मिलें उनका गुणगान करते रहो। किसीकी निन्दा न करो। यदि अपना जीवन उठाना है, अपनेको सुखी करना है और आत्माका उपकार करना है तो अपनी ऐसी उत्तम तैयारी बनाओ कि हमेशा यह सोचो कि किसीकी निन्दा मुझसे न बने। किसीके प्रति दुर्वचन न निकलें। यह चीज है ५वी। छठवी बात यह है कि सबके प्रिय बनो। किसी भी प्रकारका क्षोभ करके प्रिय वचन बोलो। वचन ही तो है, इसमे कौनसी दरिद्रताकी बात है। प्रिय वचन बोलो और सुखी होओ। कथानकमे कहते है कि एक बार दाँत और जीभमे विवाद हो गया। दाँत बोले कि ऐ जीभ! हम तुझे किसी दिन मरोड देंगे। जीभ बोली कि ऐ दाँतो! भूल जावो, हममे वह कला है कि सब तुडवा दें। अप्रिय वचन बोलकर लाठी डडे से दाँत तुडवा दें। ७वी बात यह है कि अपनी आत्माका ध्यान करो। इस शरीरके भीतर कौनसी चीज ऐसी है जो सुखकी आशा कराती है और दुःखसे दूर कराती है। ऐसा जो अपना आत्मा है उस आत्माका भी तो थोडे समय ध्यान करो। और आत्माके ध्यानकी तरकीब है कि (१)इस संसारमे सबको समान जानो, (२) किसी चीजका ख्याल न रखो कि घर कैसा है? मकान कैसा है? लोग कैसे है? कुटुम्ब कैसा है? कुछ ख्याल न रखो। शरीर तक पर ध्यान न दो। केवल अपने इस ज्ञानस्वरूप पर ध्यान दो। मेरा कुछ नही है, ऐसा सोचकर विश्रामसे बैठ जावो और उस प्रभुकी ऐसी प्रेरणा होगी कि आत्माके दर्शन होगे। यदि अपने परमात्माके दर्शन हो जायें तो जिन्दगी सफल है।

कर्म कर्महिताय स्याच्चेदह स्वहिताय हि।
हितं नैर्मल्यभावोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–४०॥

इस जीवके साथ जो कर्म लगे है उन कर्मोंकी ऐसी प्रकृति है कि वे कर्मोंसे दबते जाते हैं। ये कर्म अपना कुटुम्ब बढ़ाया करते हैं। तभी तो देखो जिनमे कषाय जगती है

उनके कषाय बढती रहती है । सो ये कर्म कितने लगे हैं ? कर्मोंका काम है कि कर्मोंकी वृद्धि हो । कर्म अपने हितमे लगे हैं, उन्नतिमे लगे हैं । तो हमे भी चाहिए कि अपनी-अपनी उन्नति मे लगें । जब कर्म अपनी आदत नही छोडते ये और अपनी वृद्धि करनेमे ही संलग्न है तो मैं भी अपने हितके लिए हू । मेरा हित है अपनेमें निर्मल परिणाम बनाना । निर्मल परिणाम वे कहलाते है कि जिनमे विषय और कषायकी बडाई न हो । इन्द्रियोने जो विषय कहा, जिन्होने जो स्वाद चाहा उनमे ही बह गये तो यह मलिनता है । इन्द्रियाँ चाहती है कि बहुत सुन्दर भोजन मिले । मगर आत्माकी ओरसे ऐसा भाव होना चाहिए कि ऐ जिह्वे ! तेरे स्वादके लिए अब तक क्या-क्या किया ? कैसे-कैसे आरम्भ परिग्रह नाज तेरे स्वादके लिए किये, पर तू अब तक तृप्त नही हुई । बल्कि ज्यो ज्यो स्वाद लिया त्यों-त्यो तृष्णा बढी और स्वास्थ्य भी गया । इसी तरह और इन्द्रियोकी बात देखो । चक्षुओसे रूप देखना । कोई रूप ऐसा देख लिया बहुत देर तक, इससे आत्मबुद्धि क्या हुई ? कुछ भी तो कल्याणकी बात नही है । इन्द्रियोके विषयमे न बहना और अपनेमे कषाय उत्पन्न न होने देना, यह ही साधुता है, यही निर्मलता है । सो अपना हित निर्मल परिणाममे है । सर्व प्रकारके यत्न करके अपने परिणामोको निर्मल बनाओ । इस जीवकी इच्छा होती है कि मैं बडाईकी बातें सुना करूँ । प्रशसाकी बातें सुना करूँ, निन्दाकी बातें नही सुनना चाहता । पाप और निन्दाकी बातें भर पेट सुनेगा, क्योकि दूसरा कोई बात ही बोलेगा । उसका मुख है, उसकी जीभ है उसका कषाय है । जो उसे बोलना था बोल दिया, चेष्टा कर लिया । मै कल्पना बनाऊँ और उन बातोको अपने चित्तमे जमाऊँ तो मुझे क्लेश है । मैं नही जमाना चाहता । हो गया, वहांकी चीज वहां रहेगी । ऐसा यत्न करो कि जिससे विषय और कषायकी बातें अन्तरमे न जमे । यही आत्माका हित है । इससे हितकी वृद्धि है । और यह निर्मलता जब आती है तब अपने स्वरूपकी पकड हो कि मैं दुनियासे न्यारा केवल ज्ञानानन्दस्वरूप एक सारभूत चीज हू ऐसा उपयोग आ जाय तो इसमे निर्मलता बढ सकती है । तो कुछ क्षण अपने इस धर्मको पालना चाहिए और अपने आत्माको अपने ध्यानमे जमाना चाहिए । कर्म अगर अपनी बडाईमे लगते है तो लगा करें, हमे अपनी बडाईमे लगना चाहिए और अपनी बडाई निर्मलताके न्यायके विरुद्ध भाव न रखो । उन्माद करके अगर दो पैसे ज्यादा आते है तो उन पैसोकी लानत है । इन सब असार चीजोका सचय करना चाहे तो यह अज्ञानता है । विश्वासघात बहुत भयकर पाप है । किसीको कोई विश्वास देकर उस विश्वासका घात कर दिया, इसे कितने क्लेश होते हैं ? उसका आत्मा ही जानता है । इसलिए अपना आचरण बडी सावधानीका होना

माँ बहिनके तुल्य जानो ५वी बात है कि परिग्रहकी बात न रखो। ससारकी कोई भी चीज आप अपनी न समझें, क्योकि किसी दिन हम मर जायेंगे। साथमे क्या ले जावेंगे ? अपना तो यह विश्वास हो कि मेरा कुछ नही है। द्रव्यके बिना गृहस्थी नही चलती है सो आप रखते है, ढगसे खर्च करते है। सब कुछ बातें है। पर भीतरमे यह श्रद्धा बनी रहे कि मेरा कुछ नही है। परमाणु मात्र भी मेरी चीज नही है, ऐसी सद्भावना जीवके बने तो आत्माका पोषण होगा। सबसे बडी चीज यह है कि अपनी शुद्ध भावना बनानेके लिए कुछ बातें रोज करनी आवश्यक हैं। कोई न कोई धार्मिक ग्रथ रोज पढो, क्योकि उन धार्मिक पुस्तकोसे अपनेको एक प्रेरणा मिलती है। प्रभुकी भक्तिमे कुछ समय जरूर बिताओ। तीसरी बात है कि अच्छी सगतिमे बैठो, खोटे पुरुषोके संगमे न बैठो। हमेशा उत्तम कुलमे बैठो। चौथी बात है कि जो गुणी पुरुष मिलें उनका गुणगान करते रहो। किसीकी निन्दा न करो। यदि अपना जीवन उठाना है, अपनेको सुखी करना है और आत्माका उपकार करना है तो अपनी ऐसी उत्तम तैयारी बनाओ कि हमेशा यह सोचो कि किसीकी निन्दा मुझसे न बने। किसीके प्रति दुर्वचन न निकले। यह चीज है ५वी। छठवी बात यह है कि सबके प्रिय बनो। किसी भी प्रकारका क्षोभ करके प्रिय वचन बोलो। वचन ही तो है, इसमे कौनसी दरिद्रताकी बात है। प्रिय वचन बोलो और सुखी होओ। कथानकमे कहते है कि एक बार दाँत और जीभमे विवाद हो गया। दाँत बोले कि ऐ जीभ! हम तुझे किसी दिन मरोड देंगे। जीभ बोली कि ऐ दाँतो! भूल जावो, हममे वह कला है कि सब तुडवा दे। अप्रिय वचन बोलकर लाठी डडे से दाँत तुडवा दें। ७वी बात यह है कि अपनी आत्माका ध्यान करो। इस शरीरके भीतर कौनसी चीज ऐसी है जो सुखकी आशा कराती है और दुःखसे दूर कराती है। ऐसा जो अपना आत्मा है उस आत्माका भी तो थोडे समय ध्यान करो। और आत्माके ध्यानकी तरकीब है कि (१)इस संसारमे सबको समान जानो, (२) किसी चीजका ख्याल न रखो कि घर कैसा है ? मकान कैसा है ? लोग कैसे है ? कुटुम्ब कैसा है ? कुछ ख्याल न रखो। शरीर तक पर ध्यान न दो। केवल अपने इस ज्ञानस्वरूप पर ध्यान दो। मेरा कुछ नही है, ऐसा सोचकर विश्रामसे बैठ जावो और उस प्रभुकी ऐसी प्रेरणा होगी कि आत्माके दर्शन होगे। यदि अपने परमात्माके दर्शन हो जायें तो जिन्दगी सफल है।

कर्म कर्महिताय स्याच्चेदह स्वहिताय हि।
हित नैर्मल्यभावोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४०॥

इस जीवके साथ जो कर्म लगे है उन कर्मोंकी ऐसी प्रकृति है कि वे कर्मोंसे दबते जाते हैं। ये कर्म अपना कुटुम्ब बढ़ाया करते है। तभी तो देखो जिनमे कषाय जगती है

उनके कषाय बढती रहती है । सो ये कर्म कितने लगे हैं ? कर्मोंका काम है कि कर्मोंकी वृद्धि हो । कर्म अपने हितमे लगे है, उन्नतिमे लगे हैं । तो हमे भी चाहिए कि अपनी-अपनी उन्नति मे लगें । जब कर्म अपनी आदत नही छोडते ये और अपनी वृद्धि करनेमे ही संलग्न है तो मैं भी अपने हितके लिए हू । मेरा हित है अपनेमें निर्मल परिणाम बनाना । निर्मल परिणाम वे कहलाते है कि जिनमे विषय और कषायकी बडाई न हो । इन्द्रियोने जो विषय कहा, जिन्होने जो स्वाद चाहा उनमे ही बह गये तो यह मलिनता है । इन्द्रियाँ चाहती है कि बहुत सुन्दर भोजन मिले । मगर आत्माकी ओरसे ऐसा भाव होना चाहिए कि ऐ जिह्वे ! तेरे स्वादके लिए अब तक क्या-क्या किया ? कैसे-कैसे आरम्भ परिग्रह नाज तेरे स्वादके लिए किये, पर तू अब तक तृप्त नही हुई । बल्कि ज्यो ज्यो स्वाद लिया त्यो-त्यो तृष्णा बढी और स्वास्थ्य भी गया । इसी तरह और इन्द्रियोकी बात देखो । चक्षुओसे रूप देखना । कोई रूप ऐसा देख लिया बहुत देर तक, इससे आत्मबुद्धि क्या हुई ? कुछ भी तो कल्याणकी बात नही है । इन्द्रियोके विषयमे न बहना और अपनेमे कषाय उत्पन्न न होने देना, यह ही साधुता है, यही निर्मलता है । सो अपना हित निर्मल परिणाममे है । सर्व प्रकारके यत्न करके अपने परिणामोको निर्मल बनाओ । इस जीवकी इच्छा होती है कि मैं बडाईकी बातें सुना करूँ । प्रशसाकी बातें सुना करूँ, निन्दाकी बाते नही सुनना चाहता । पाप और निन्दाकी बातें भर पेट सुनेगा, क्योकि दूसरा कोई बात ही बोलेगा । उसका मुख है, उसकी जीभ है उसका कषाय है । जो उसे बोलना था बोल दिया, चेष्टा कर लिया । मै कल्पना बनाऊँ और उन बातोको अपने चित्तमे जमाऊँ तो मुझे क्लेश है । मैं नही जमाना चाहता । हो गया, वहाँकी चीज वहाँ रहेगी । ऐसा यत्न करो कि जिससे विषय और कषायकी बातें अन्तरमे न जमे । यही आत्माका हित है । इससे हितकी वृद्धि है । और यह निर्मलता जब आती है तब अपने स्वरूपकी पकड हो कि मैं दुनियासे न्यारा केवल ज्ञानानन्दस्वरूप एक सारभूत चीज हू ऐसा उपयोग आ जाय तो इसमे निर्मलता बढ सकती है । तो कुछ क्षण अपने इस धर्मको पालना चाहिए और अपने आत्माको अपने ध्यानमे जमाना चाहिए । कर्म अगर अपनी बडाईमें लगते हैं तो लगा करें, हमे अपनी बडाईमे लगना चाहिए और अपनी बड़ाई निर्मलताके न्यायके विरुद्ध भाव न रखो । उन्माद करके अगर दो पैसे ज्यादा आते है तो उन पैसोकी लानत है । इन सब असार चीजोका सचय करना चाहे तो यह अज्ञानता है । विश्वासघात बहुत भयंकर पाप है । किसीको कोई विश्वास देकर उस विश्वासका घात कर दिया, इसे कितने क्लेश होते है ? उसका आत्मा ही जानता है । इसलिए अपना आचरण बडी सावधानीका होना

चाहिए । कम बोलो, व्यर्थ न बोलो, प्रयोजन हो तो बोलो । जिन्दगीमे दो ही प्रयोजन है— एक तो आजीविकाका है और दूसरा प्रयोजन व्यवहारका है । और बाकी अगर संग बढे, अपना प्रचार बनाए, दोस्ती बनाए तो वे सब फाल्तूकी बातें है । सो मैं अपनी निर्मलताको बनाता हू, अपनेसे बढकर रागद्वेषको बाहर कर विश्राम पाऊ और अपनेमे स्वय सुखी होऊ ।

स्वज्ञ शत्रु' कुतो मित्रमज्ञः कस्य सुहृद्रिपुः ।
स्वपरस्य' सहृच्छत्रु' स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४१॥

एक मलीनता और विकट हुआ करती है कि अपने मनमे यह धारणा बना लो कि अमुक मेरा शत्रु है । अरे जगतके इन जीवोमे जो कि सभी मेरे स्वरूपके समान है और मेरी ही तरह कोई मेरेमे सुधार बिगाड नही कर सकता । एक जीवका दूसरे जीवमे अत्यन्ताभाव है, कोई वास्ता नही है । उनमे यह छटनी करना कि अमुक मेरा मित्र है और अमुक मेरा शत्रु है । यह बहुत बडी मलीनता है । कौन मेरा शत्रु है ? कौन मेरा मित्र है ? यह विचार करो कि कौन मेरी आत्माको जानता है ? यदि आत्माको यथार्थसे कोई जानता है तो वह मेरा शत्रु रह नही सकता, क्योंकि यह ज्ञानी बन गया । ज्ञानी जीव किसीका शत्रु नही हो सकता । मेरी आत्माको जिसने न जाना तो वह मेरा शत्रु कैसे ? मुझे तो जानना ही नही है, शरीरको जानता है । और दुश्मनी कोई करता है तो शरीरसे दुश्मनी होगी । अव्वल तो कोई शरीरका दुश्मन नही होता । यदि कोई दुश्मनी करता है तो वह अपनेमे दुश्मनीके भाव करता है । खुद दुश्मन बना है, दूसरोका दुश्मन कोई नही बनता है । दुनियामे कोई मेरा मित्र नही है । हो ही नही सकता । और कोई जीव मेरी परिणतिको बना देगा या बिगाड देगा ऐसी किसीमे ताकत है क्या ? हम ही अपने भाव खोटे करके बिगड गये और अपने भाव ठीक रखें तो सुधर गये । मुझे सुधारने और बिगाडने वाला दुनियामे कोई नही है । तो फिर मेरा कोई शत्रु मित्र कैसे ? जिस विषयका जिसको आप चाहते है उसे मित्र मान लेते है । जैसे कोई बच्चा सिनेमा देखने जाता है और किसी दूसरे बच्चेको भी सिनेमा देखनेकी आदत हो जाय तो वे दोनो एक दूसरेके मित्र हो जाते है । कोई किसीका न मित्र है और न शत्रु है । यदि मैं अपने आपकी आत्माका ज्ञाता होऊँ और अपने आत्माके स्वरूपमे विश्राम पाऊँ तो मैं अपना मित्र बन गया । और मैं अपनेसे चिगकर किसी बाह्यपदार्थमे उपयोग दूं तो मैं अपना ही शत्रु बन गया । हममे ऐसी कला है कि अपनेमे अपना मित्र बन जाऊँ और अपना ही शत्रु बन जाऊँ । पर दूसरे जीवोमे कोई ऐसा नही है कि मेरा शत्रु हो और कोई मेरा मित्र हो । सो इस कल्पनाको त्यागो कि मेरा कोई शत्रु है और मेरा कोई मित्र है । मैं तो ज्ञानमात्र पदार्थ हूँ । मेरे ज्ञानमात्र भावको कोई पहचानेगा तो वह खुद ज्ञानी बन जायगा ।

अब वह रागद्वेष मोह कैसे कर मकेगा ? इस कारण एक निर्णय मनमे रखो कि कोई न मेरा शत्रु है और न मेरा मित्र है। किसीसे मोह मत बढाओ और किसीसे क्रोध मत करो। राग द्वेषको तजकर अपने आपकी ओर झुककर अपनेमे विश्राम लेनेका प्रयत्न करो।

स्वैकत्वस्याप्युपायो मे साम्यं नान्यत्कदापि हि।
साम्यघात: परे बुद्धेः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–४२॥

मेरा जो निजी स्वरूप है वह मेरा एकत्व कहलाता है। मेरा निजी स्वरूप है चैतन्य भाव, ज्ञानानन्द। उस ज्ञानानन्दकी प्राप्तिका उपाय है समताका परिणाम। रागद्वेष करके अपने आत्माके दर्शन कोई नही कर सकता है। प्रभुके दर्शन भी कोई नही कर सकता है। जब समताका परिणाम आयगा, किसी पदार्थमे रागद्वेषकी वृत्ति न जायगी तो समताके परिणामके समयमे ही इस प्रभुके दर्शन हो सकते है। और गृहस्थीका तो मुख्य काम है कि गृहस्थावस्थामे ही पडे है तो कीचड जैसी अवस्था है। गृहस्थीमे उपद्रव है तो कितनी कठिनाइयाँ आती है ? यह केवल एक गृहस्थी ही जान सकता है। घरमे ५, ६ आदमियोंसे संग है तो कभी न कभी अनबन हो जाती है। कोई किसीसे मेल नही खाता है। अपनी-अपनी आदतें जुदा होती है। उनको अनेक आपदाएँ होती है। वे आपदाएँ ज्ञानसे ही दूर हो सकती है। जहाँ यह जाना कि किसका कौन है ? सबकी स्वरूपसत्ता जुदा है, सब अपने आपमे अपना परिणमन करते है। जो करते हैं करने दो। उससे मेरेमे कोई हानि लाभ नही है। हाँ, मेरे हितके वास्ते शिक्षाकी बात जरूरी है। यदि तुममे थोडासा ज्ञान है तो मान जावोगे और यदि कुटेब है तो ज्ञानकी बातोसे उपेक्षा कर जावोगे। अपने ज्ञान, ध्यान और वृत्तिके कामोको करते जावो। ज्ञानी गृहस्थीको कभी क्लेश नही होता। क्लेश गृहस्थीमे नही होते, क्लेश तो अज्ञानसे होते है। गृहस्थीमे रहते हुए जब अज्ञान बनता है तो कष्ट होगा और अज्ञान नही है तो गृहस्थीमे भी सुख है। उसको कोई क्लेश नही है, क्लेशकी जड तो अज्ञान है। सो वह अज्ञान दूर करो। समता अपनेमे लावो। समताका जो विनाश है वह तो पर पदार्थोंमे रागबुद्धि करनेसे होता है। परको चाह रहे है, संचय चाह रहे है, अपने विषयकी वाँछा कर रहे है तो उसमें समता परिणाम नही टिक सकता। यह मेरा है, यह इनका है, घरके दो भाई है, उन भाइयोंके अपने लडकोमे जब यह बुद्धि आ जाती है कि ये मेरे है, इनकी खूब सभाल करनी चाहिए और दूसरे भाईके लड़कोमे यह बुद्धि आये कि ये मेरे नही है तो यह समताका परिणाम नही रहा। वे सब न्यारे है। घरमे रहने वाले सभी व्यक्तियो पर समान बुद्धि रखो। उनमे यह न मानो कि ये मेरे है, ये गैर है। गृहस्थावस्थामे भी यदि ज्ञान जागृत है तो क्लेश नही हो सकते है। क्लेश तो अज्ञानसे होते है। और अज्ञान क्या

है ? मूलमे तो यही अज्ञान है कि यही चोला मै हू, यह शरीर ही मैं हूँ । सो इसकी खुशामद मे रहना अज्ञान है । दूसरोकी सेवा करनेमे आलस्य करना, स्वय आराम करते रहना यह अज्ञान है यही तो मिथ्यात्वकी बात है । इससे बडा मिथ्यात्व है कुटुम्ब परिवारका मोह, सो कुटुम्ब परिवार भी अपने क्लेशोका कारण है । और अपनी समतासे, धैर्यसे कुटुम्बके साथ सद्व्यवहार कर लो । अगर मोह अधिक बनाकर अपनेमे विकल्प बनाऊँ तो यह अज्ञान है । सबसे अपना समताका परिणाम रखो, अपने ज्ञानसे अपने परिणामोको सावधान बनाओ और क्लेशोसे दूर होवो, यही क्लेशोके दूर करनेका एक उपाय है । इसी बातपर विशेष ध्यान दो ।

साम्य विशुद्धविज्ञानं साम्यं रागविवर्जितम् ।
साम्य स्वास्थ्य सुखागारः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–४३॥

समता ही जीवकी सम्पत्ति हैं । जिस मनुष्यके हृदयमे समता नही है बाहरमे चाहे कितने ही आडम्बर हो, वैभव हो फिर भी शांति नही हो सकती है । समताकी बडी महिमा है । बडे-बडे ऋषिगण जिसके सामने झुकते, राजा महाराजा भी झुकते, जिसको देवता भी बडी पूज्यताकी दृष्टिसे निरखते थे वह क्या था ? समताका पुञ्ज । जो क्रोध करता हो, अभिमानमे ऐंठा रहता हो, मायाचार जिसके वर्त रहा हो, लोभकी कितनी ही प्रबलता हो ऐसा पुरुष क्या किसीके द्वारा आदरके योग्य हो सकता है ? समतामे ही पूज्यता और शाति है । वह समता क्या चीज है ? तो उसे कई विशेषणोसे कह सकते है । विशुद्ध ज्ञानका नाम समता है, निर्मल ज्ञान इस आत्माका ही ज्ञान है । सो वह जानता रहता है । उस जाननेके साथ रागद्वेष नही । केवल जानन बना रहे इसे कहते है समता । जिसके राग न उत्पन्न हो उसका नाम है समता अथवा अपने आत्मामे अपने आपकी स्थिति हो जाय उसको कहते है समता । अभी अपने व्यवहार ही मे देख लो, जो जरासी बातोमे भडक जाते हैं, रागद्वेष करने लगते है, गाली-गलौज देने लगते है उनको कितनी अशांति रहती है ? समता सबका काम है । गृहस्थ भी जहाँ तक बनें वहाँ तक अपनी समता बनावें । धैर्य न खोवे तो जितने गुण आते है वे समताके माध्यमसे आते है ज्ञान सही रहे तो आनन्द स्वतः प्रकट हो ।

ये सब बातें समता पर निर्भर हैं । इसलिए समताका अभ्यास करना बहुत आवश्यक चीज है । सो उस समतापरिणामको रखते हुए अपनेमे सुखी होऊ । समता क्या चीज है ? शत्रु और मित्रमे समान प्रेम रखो । शत्रु और मित्रमे समान प्रेम हो इसका नाम समता है । शत्रु जिसे समझा है वह भी एक चेतन जीव है और जिसको मित्र समझा है वह भी एक चेतन है । आत्मा अपनेसे बिल्कुल जुदा है । वे अपने परिणामोसे अपनेमे अपनी चेष्टा करते है । उनमे से कोई भी न मेरा शत्रु है और न कोई मित्र है । ऐसा विवेक

करके अपनेमे समता परिणाम बनाए रहना यही सबसे बडी सम्पदा है। महल मकानोकी सम्पदा, बडी ऊंची अटारी वाले घर मिल गये तो क्या ? एक छोटा घर मिल गया तो क्या ? ये सब बाहरी बातें है। उन स्थितियोको पाकर मनमे किसी प्रकारका विकार न करो, खेद न करो, जो मिल गया सो ठीक है। जैसे मुसाफिर लोग रास्ता चलते जाते है, रास्तेमे कैसा भी वृक्ष मिल गया ठीक है, कैसी भी सडक मिल गयी ठीक है। वह समझता है कि मुझे गुजरकर जाना ही है, इसलिए उसे दुःख नही होता है। इसी तरह धन वैभवकी बात है। थोडा धन वैभव हो गया तो क्या ? अधिक वैभव मिल गया तो क्या ? काम तो इस जिन्दगी मे धैर्यका है। प्रभुके दर्शनकी भक्ति बनी रहे और अपने आत्माके स्वरूपका ध्यान बना रहे जिससे कर्म कटते है तो इससे लाभ है। धन वैभवसे क्या लाभ है ? धन वैभव थोडा हो तो क्या, बहुत हो तो क्या ? धन वैभव बहुत होनेपर लोग इतना ही तो कह देंगे कि यह बडा धनी है। वह तो इतना कहकर अलग हो गया और यहाँ तृष्णा लग गयी। सो धन कमाने की फिक्रमे रात दिन मर गये और जो लोग कुछ प्रशंसाकी बात कह देते है वे भी तो मलिन जीव है। वे भी तो ससारमे जन्ममरणके चक्कर लगाने वाले जीव है। कोई महत नही है। कोई प्रभु नही है। वे भी तो इस ससारमे रुलने वाले प्राणी हैं। उनकी बातोका क्या ख्याल करें ? वे हमारे सहाय तो नही है। मरने पर हमारी मदद कर देंगे या इस जीवनमे वे मेरे सुख दुखके साथी हो सकेंगे, ऐसा कोई नही है। खुदने जैसे कर्म उपार्जित किये है, उनके अनुसार मुझे सुख दुःख मिलेगा। हम ही हमारे सुख दुःखके जिम्मेदार है। जितना समतासे हटते है उतना ही तो कर्म बाँधते है और जितनी अपनेमे समता बनाए रहते है उतना ही कर्म कटते है। यह समता जब पैदा हो तब अतरमे किसी वस्तुके प्रति मोह न जगे। घरमे रहते रहे, पर सच्ची बात जान लेनेमे कौनसी आफत है ? मैं सबसे न्यारा हू कि नही ? सब जुदे है कि नही ? सबके कर्म न्यारे हैं कि नही। उनसे कुछ सम्बन्ध तो नही है। सच-सच बातें जानते रहो बस यही धर्मका पालन है। आप स्तवन करें, मजीरा बजायें, बडे ऊँचे स्वरसे गावें तो यह धर्म नही हुआ। धर्म तो मोह न हो तो होगा और चीजोसे धर्म न होगा। इसलिए ऐसा ध्यान बनाओ और अपने प्रभुसे यह मांगो कि मेरेमे मोह न जगे। सत्य ज्ञान बना रहे। सम्यग्ज्ञानसे ही इस जीवकी सफलता है।

मुनीन्द्रैरपि पूज्यं तत्साम्यं सर्वोत्तमं पदम्।
साम्यं स्वस्य स्वय रूप स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–४४॥

यह समता बड़े-बड़े मुनियोके द्वारा पूज्य है। पूजा किसकी होती है ? किसीकी शक्ल सूरतकी पूजा नही है। पूजा तो गुणोकी होती है। जो अपनेमे गुण रुच गये इससे पूजा होती

है। तो अपने ही गुणोकी पूजा है। इसलिए भगवानकी पूजा करते हो तो वह भगवानकी पूजा नही है। वह आपके अपने गुणोकी पूजा है। सो जो कोई पूजता है वह अपने ही गुणो को पूजता है। समताका ही एक महान् गुण है। यह समता बडे-बडे मुनिराजोके द्वारा पूज्य है। सबसे उत्कृष्ट यह है। यह समता क्या चीज है ? अपना ही स्वरूप है। यह जीव शाति का समुद्र है। इसमे दुःख और अशांति स्वभावसे नही है। पर अपने स्वरूपको भूलकर बाहर से सुखकी आशा लगाये है, इसलिए सब आनन्द खत्म हो गया है और भिखारी बनकर जगह जगह भागता फिरता है। अपना स्वरूप संभाल लो तो सब कुछ चीजें न्यारी है।

प्रभुकी मुद्रा निरखकर यही अपना भाव आता है कि हे प्रभो! तुमने ससारको असार जाना था और सबसे वैराग्य लेकर अपने आपमे अपनेको पूजा था। जिसके फलमे आप सर्वज्ञाता है, अनन्तानन्दनिधान हैं। ऐसी ही शक्ति प्रभु मुझमे है, क्योकि द्रव्यसे आत्मा वही एक है। मैं भी वैसा हो सकूँ, ऐसी भावना प्रभुके दर्शन करके मानी जानी चाहिये, समताका आदर करना चाहिए, तिलमिला नही उठना चाहिए। जरासी विपदा आती है या किसीको कोई दुर्वचन बोला जाता है तो तिलमिला नही उठना चाहिए, क्षमा करना चाहिए। आपका बडप्पन इसीमे है कि दूसरा कोई अपराधकी चेष्टा बनाए तो उसे क्षमा कर दो। इससे बहुत उत्थान होता है। तो यह समता बडे बडे मुनिराजोके द्वारा पूज्य है। वह समता अपना ही स्वरूप है। सो यह मैं अपनेमे ही वर्तता हुआ सुखी होऊँ।

मानापमानयो: साम्य कीर्त्यकीर्त्यो: सुखासुखे।
व्यग्रता पश्यतो न स्यात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४५॥

मान हो, चाहे अपमान हो, उसमे व्यग्रता न होनी चाहिए। ज्ञानानन्द निधानस्वरूप को देखकर अपने ही अनुपम स्वरूपमे सतोषको पाकर मान और अपमानकी व्यग्रता न करनी चाहिए। किसीने सन्मान दिया तो उससे तिर तो नही जावोगे, तिरना अपने ज्ञानसे होगा। किसीने दुर्वचन बोल दिया तो तुम बिगड तो नही गए। और दूसरोकी दृष्टिमे तुम खोटे हो तो उसकी ही तो दृष्टि खोटी है, तुम तो ज्योके त्यो ज्ञानानन्दस्वरूप हो। सो अपमानका भी क्षोभ न करो। कोई प्रशंसा करे, कोई निन्दा करे उसमे भी क्षोभ न हो। सुख और दुःख आएँ उसमे भी व्यग्रता न होनी चाहिए। धन्य है वह गृहस्थी, वह पुरुष जो विपदाओका भी स्वागत करता है। दुःख आते हैं तो आवो, दुःखमे मेरा ज्ञान न बिगडे तो कुछ परवाह नहीं। जितने सकट आ सकते हो आवो। ज्ञान अगर बिगडता है तो वह सम्पदासे बिगडना है वह सम्पदा अपने कामकी नही है, वह सम्पदा बेकार है। अपने आपकी पवित्रता बनी रहे ऐसा अपना ज्ञान जमाना चाहिए। सो सुख और दुःखमे व्यग्रता न हो ऐसा उपाय करो। वह

उपाय यह है कि सबसे न्यारा केवल एक ज्ञानानन्दमय अपने आपको देखो, इसमे ही संतोष रहे। मैंने अपना स्वरूप पाया तो सब कुछ पा लिया। ये बातें आत्मज्ञानकी हैं जब तक अपने आत्माके स्वरूपका भान नही होता है तब तक अपने धर्मका कुछ भी पालन नही हो सकता। और आत्माका ज्ञान होना बहुत सरल है, जो चाहो सो कर सकते हो। केवल इतना ही तो करना है कि जगत्के सब पदार्थोंको भिन्न और अहित जानकर उनका विकल्प छोडना है और स्वयं शांत होकर निर्विकल्प बैठना है। अपने आपसे अपना ज्ञान प्रकट हो जायगा। सो आत्माका ज्ञान करो और साथ ही साथ सद्व्यवहार करो। अपना ऐसा व्यवहार हो कि किसी जीवको क्लेश न उत्पन्न हो। कितनी ही विपदा आये, पर झूठ न बोलो। किसीकी गवाही न दो। किसीको फँसानेका जाल न बनाओ। परिग्रहके सचयमे अपनी बुद्धि न फँसावो। परिग्रह तो गुजारेके लिए आवश्यक है ऐसा नही है। गुजारा तो होता है। परिग्रहकी धुन न बनाओ। अपनी धुन तो सदाचारकी बनाओ। मेरा आचरण अच्छा रहे, पवित्र रहे, ऐसा यत्न करो तो उसमे शाँति मिलेगी, परिग्रहसे शाँति कहाँ मिलती है ? वे तो जड पदार्थ है, लौकिक वैभव है, उनसे आत्मामे निराकुलता नही होती। अपने ज्ञानका आदर करो। अपनेको पवित्र रखो और दूसरे जीवोका सम्मान करो। अपनेको चाहे दुःख हो जाय, पर दूसरोको दुखी न होने दो। ऐसा यत्न करो तो यह व्यवहार सुखका कारण हो सकता है।

शसा निन्दा विपत्सपत्स्वाकुलतैव केवलम्।
नैर्द्वन्द्वच ज्ञानमात्रेऽस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४६॥

इस जगतमे जहाँ देखो वहाँ आकुलतायें ही आकुलतायें नजर आ रही है। घरमे रहने वाले लोग है वे समझते है कि मुझे बडी परेशानी है, जो कुटुम्बसे भरपूर है वे समझते है कि हमे बडी परेशानी है, जो गरीब है वे अपनेमे बेचैनी मानते है, जो धनी हैं वे अपनेको बेचैन मानते है। तो फिर यह बतलावो कि इस जगत्मे सुखी कौन है ? किसी आदमीका नाम तो बतलावो कि अमुक सुखी है। आप मिनिस्टर देखे चाहे राजा देखें ये सब दुःखी है, क्योंकि वे सब जीव हैं उनके साथ कर्म लगे है। कर्मोंका उदय है। सब दुःखी हो रहे है। कौनसी बातसे सुखी हैं सो बतलावो। धनसे भी तो सुख नही है। प्रशसा निन्दासे भी सुख नही। सुख तो अपने भीतर बसे हुए शुद्ध ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि देनेसे ही हो सकता है। बाहर देखो तो सुख नही मिलेगा। बाहरसे आँखें मीचो और अपने अंदर ही कुछ पता पडे तो सुख मिलेगा। बाहरमे सुख नही है। यह सारी दुनिया बाहर बाहर ही मे है। इसलिए सुख नही नजर आ रहा है। अपने निज अंतर ज्ञानका पता पड़े तो मैं सुखी बना बनाया हूँ। कोई

सुख हमको बनाना नही है। सुख मेरा ही स्वरूप है, ऐसा मालूम हो तो मोह हटे तो इस जीवको सुख हो सकता है।

अभी चाहे आरामसे भी हो, पर परस्परमें कलह चलता है, विवाद चलता है। उसका कारण क्या है कि कषाय अन्दर है और कषायके वश है सो जैसा कषाय आ गया तैसा कर लिया। जहाँ प्रशंसा है तो वहाँ आकुलता है जहाँ निन्दा है तो वहाँ आकुलता है। गरीब हो तो वहाँ आकुलता और सम्पत्ति आ जाय तो वहाँ आकुलता बाहरी पदार्थोंमे अपनी दृष्टि देनेसे सुख नही हो सकता है। सुख मिलेगा तो अपने अन्तरसे ही मिलेगा। मेरा स्वरूप तो निर्द्वन्द्वता है। इसमे कोई दूसरी खटपट नही लगी है। शरीरके भीतर जो आत्मतत्त्व है, जिसके निकल जानेसे लोग कहते है कि यह मर गया। और लोग मृत शरीरको जला देते है। ऐसी जो चीज है वही तो मैं हू। मैं शरीर नही और बाहरी चीज नही। इस शरीरके अन्दर जो चेतना है जिसके निकल जानेसे लोग शरीरको मृत कहने लगते है, वह चेतना मैं हू। वह मैं चेतना सुखी हूँ, निर्द्वन्द्व हू, ज्ञानमात्र हू, जो भीतरमे एक उजेला है, बस वही मैं हू। इससे आगे अपनेको और कुछ माना तो दुःख ही है। मैंने शरीरको माना कि यह मैं हू तो फिर दूसरोको माना कि ये मेरे शत्रु है और ये मेरे मित्र हैं, ये मेरे भाई है। इससे ही दुख है, नही तो दु.खका कोई काम नहीं है। यह ब्रह्म सुखस्वरूप है "आनन्दम् ब्रह्मरूपम्।" यह खुद सुखस्वरूप है, इसका किसीमे रच भी सम्बन्ध नही। बाहरको अपना मानते है, इसलिए क्लेश होते हैं। बाहरसे दृष्टि हटाओ और अपनी ओर आओ तो इसमे सुख प्राप्त हो सकता है।

अन्यवृत्ते नं मे बाधा स्वस्य विकल्पतः।
प्रज्ञयाऽनाश्रयीकृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४०॥

एक तो यह निर्णय कर लो कि हमे जो दुःख पैदा होता है वह क्यो होता है और किस तरह होता है ? लोग यह समझते है कि अमुकने इस तरहका कार्य किया, इसलिए दुःख हुआ। अनेक प्रकारकी बातें मानते हैं। पर दुःख किसी दूसरेके कुछ करनेसे नही होता। दुःख होता है अपने विकल्पोसे। बडे-बडे राजा महाराजा अपना राज-पाट छोड करके बन मे चले जाते है और बडे सुखसे वहाँ रहते हैं। जहाँ खाने पोनेका ठिकाना नही, अन्नकी सुविधाएँ नही, फिर भी वे अपने आनन्दमे मस्त रहते हैं, क्योकि आनन्द किसी चीजसे नही मिलता। आनन्द तो अपनेमे मिलता है। दुःख तो बाह्यपदार्थोंकी प्रवृत्तिसे होता है। अपना आचरण खराब रखनेमे दुःख होता है। दुःख देने वाला दुनियामे कोई दूसरा नही है। अभी किसीके प्रति बुरा ख्याल हो जाय तो उसकी जितनी चेष्टाएँ है उसे बुरी लगती हैं। जिससे

लडाई हो वह अगर दूर खडा हो तो उसको खडा होना भी बुरा लगता है। उसका कोई मानो काम हो, उसे लगेगा कि यह मेरा बुरा करनेके लिए कर रहा है। दूसरा बुरा नही करता है। अपना ख्याल बुरा बना लिया इसलिए बुराई आ गयी। अपना हृदय स्वच्छ हो तो भगवान् प्रसन्न होगा और यदि हृदय मलीन है तो भगवान् दर्शन नही दे सकता है। यह मनुष्यजीवन बहुत दुर्लभ जीवन है। ऐसे दुर्लभ नरजीवनको पाकर यदि अपना जीवन तक न बनाया तो भला बतलाओ कि कौनसी ऐसी गति मिलेगी जिसमे अपना सुधार कर लोगे ? इस मनुष्यभवको पाकर अपने कल्याणके अतिरिक्त और बातें न सोचो। ऐसी बातें तो पशु पक्षियोमे भी मिलती है। स्त्री पशु पक्षियोके भी होती है, बच्चे होते हैं। मनुष्य खाते है तो पशु पक्षी भी खाते है। अगर खाने पीनेके लिए अपनी जिन्दगी समझी तो मनुष्यजीवनमे और पशु पक्षियोके जीवनमे क्या अन्तर रहा ? अतर तो ज्ञान और धर्मका ही है। यदि ज्ञान और धर्म न किया तो मनुष्यजीवन बेकार है। कोई तत्व नही निकला। सो ऐसा निर्णय रखो कि चाहे तुम्हारा कोई बिगाड कर दे, पर तुम किसीको बाधा न पहुंचाओ। बाधा तो तब आयगी जब ख्याल बुरा बनेगा। हमारा ज्ञान सही है, हमारा ज्ञान ठगका है तो कोई कुछ करे उससे बाधा नही आ सकती है। भला बतलाओ कोई ऋषि सत जगलके अन्दर बैठा है और कोई शेर आदि खा ले या कोई शत्रु आकर उसपर उपसर्ग करे तो उस साधुका ख्याल जरा भी खराब नही है। प्रभुमे लो लगाये है, आत्मस्वरूपमे ही दृष्टि गडाए है तो उसको रच भी बाधा नही है। देखने वाले जरूर जानेगे कि उस साधुको बडा कष्ट हो रहा है, पर वहां उसे रच भी कष्ट नही है। क्योकि अपना उपयोग, अपना ज्ञान अपने प्रभुमे लगा रहा है। ज्ञानरसका पान कर रहा है। इससे यही निर्णय रखो कि हमको दूसरोसे तकलीफ नही होती। यह विचार रहेगा तो जिन्दगीमे आराम मिलेगा। नही तो दसो बहाने ऐसे मिलेंगे जिससे क्लेश होते रहेगे। हमको दूसरे यो बातें सुनाते हैं, कोई मेरी परवाह नही करता है, दसो ख्याल करने लगते है और अगर यह ख्याल बनाते है कि मुझे दुःखी करने वाला कोई नही है तो मैं प्रभुकी तरह शुद्ध ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज हूँ। मैं बिगडता हू तो अपने आपमे ही कल्पनाएँ करके दुःखी हो जाता हू। मुझे दु.खी करने वाला दूसरा कोई नही है। मैं यहां बैठा हू और शहरमे कोई दुकान है उसमे चाहे हजारोका फायदा हो गया हो और वातावरण ऐसा सुननेमे आया कि दुकानदारोमे हजारोका नुक्सान हो गया है, चाहे वहां लाभ ही हुआ हो, पर ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते है। सो मुझे दु.खी करने वाला कोई नही है। मैं ही अपना ख्याल बनाता हू और दुःखी होता हू। और चाहे दुकानमे टोटा ही पड गया हो, पर यह सुन लिया कि दुकानमे लाभ हुआ, लो सारा दुःख मिट गया। और

अगर यह दृष्टि गडाए रहे कि नुक्सान हो गया तो दुःख ही मिलते रहेंगे। सो दुःख अपने ही द्वारा मिलते है, दूसरोके द्वारा हमे दुःख नही होते है—यह निर्णय बनाओ।

स्वाख्येच्छाजाऽन्यनिन्दा स्यात्तस्मान्निन्द्यो हि निन्दकः।
स्व दृष्ट्वाऽनिन्दकानिन्द्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४८॥

मनुष्योमे सबसे बडा अवगुण है दूसरोकी निन्दा करना। क्या निन्दा करनेसे कुछ मिल जाता है ? सबको अपने जीवनमे इसका परिचय होगा। किसीकी निन्दा कर लिया तो तुम्हे क्या मिल जायगा ? मिलना तो दूर रहा, आपदाएँ जितनी चाहे आ सकती हैं। जिसकी निन्दा की जाती है उसमे यदि सामर्थ्य है तो वह आफत डालेगा। जिसने निन्दा की है उसके कानोमे यह बात आ जायगी कि सम्भव है कि वह आफत डाल सके अथवा किसी उत्तम सतकी निन्दा की हो तो लोगोकी दृष्टिमे वह स्वयं बुरा बन जायगा। इस कारण निन्दा करके लाभ नही मिलता, आपत्ति ही आपत्ति आती है। सो निन्दक जो पुरुष है वह स्वयं निन्दाका पात्र है। निन्दा जब कोई करता है तब उसको अपने यश और कीर्तिकी इच्छा होती है। जब कोई अपनेको बडा समझने लगता है, अहंकार उत्पन्न होता है और अपनी मान्यता दुनियामे चाहता है तो कुबुद्धिके कारण इसके दूसरोकी निन्दा करनेके भाव होते है। निन्दा करना मनुष्यका एक बडा अवगुण है और जीव तो निन्दा कर नही सकते। गाय, बैल, भैंस, सूकर, घोडा जो तुम्हारे घरमे है, पडौसमे है, वे क्या निन्दा करेंगे ? मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो बोलता है अपने भाव दूसरोको बताता है दूसरोकी बातोको सुनकर उसका अर्थ लगा लेता है। यह बात औरोमे नही पायी जाती है। इतनी बडी बात यदि पायी है तो इसका उपयोग करना चाहिए। मनुष्यका वैभव वचन है। वचनोसे ही यह समझा जाता है कि यह बडा पुरुष है।

एक कथानक है कि राजा मंत्री और सिपाही तीनो कही जा रहे थे। रास्तेमे ये तीनो किसी कारणसे ऐसे ही रास्ता भूल गये, अलग-अलग हो गये। पहले सिपाही उस रास्ते से निकला जहाँ एक अधा बैठा था। सिपाहीने पूछा कि अबे अधे! यहाँसे राजा या मत्री कोई निकला है ? तो सूरदास कहता है कि नही सिपाही जी अभी तो कोई नही निकला। बादमे मंत्री निकला तो उस अधेसे पूछता है कि सूरदास यहाँसे अभी कोई निकला है ? तो वह बोला कि मत्री जी सिर्फ एक सिपाही निकला है और कोई नही निकला। बादमे राजा निकला तो पूछता है कि सूरदासजी यहाँसे कोई निकला है ? तो वह कहता है कि हाँ राजा जी पहले तो सिपाही निकला, उसके बाद मत्री निकला। यह सुनकर सब आगे जाकर इकट्ठे हो गए ? बादमे सूरदासकी चर्चा आयी कि उस सूरदासने कैसे बता दिया ? सिपाहीने कहा

कि मुझे सिपाही बताया, मंत्रीने कहा कि मुझे मन्त्री बताया और राजाने कहा कि मुझे राजा बताया। तो वे सूरदासके पास आये। राजाने पूछा कि आप हम सबको कैसे जान गये? बोला—महाराज वचनोसे परख लिया। अबे अधे जिसने कहा वह छोटा ही व्यक्ति हो सकता है तो मैंने अन्दाज कर लिया कि यह सिपाही है। कुछ कोमल वचन जिसने बोल दिये वह मन्त्री है। और अंतमे अति कोमल वचन थे तो मैंने समझ लिया कि यह राजा है। मनुष्य का धन वचन ही है। वचनोसे ही मनुष्य आदर पाता है और वचनोसे ही जूते खाता है। वचनोसे ही दूसरोका आकर्षण रहता है और वचनोसे ही विमुखता हो जाती है तो मनुष्यका जो एक अनुपम वैभव है जो अन्य जीवोंमे नही पाया जाता है, वह वैभव है वचन बोलनेका। सो ऐसी अमूल्य बातको पाकर हम उसका दुरुपयोग न करें। वचन संभालकर बोलें, वचन प्रिय लगें ऐसे बोलें, निन्दाकी बात कभी न करें। सो अपने आपके स्वरूपको तो देखो कि इसका स्वरूप न तो निन्दा करनेका है और न दूसरे जीव इसकी निन्दा करने योग्य है। ऐसा यह मैं अनिन्दक हू, आनन्दमय हूँ। ऐसे शुद्ध ज्ञानस्वभावको अपने उपयोगमे लेकर अपनेमे सुखी होना चाहिए। निन्दाकी बात तो अपने जीवनमें बिल्कुल दूर कर दो। सकल्प कर लो चाहे कैसी भी स्थिति आये, पर दूसरोकी निन्दा न करो। एक यह ही गुण मनुष्यमे आ गया तो आदरका पात्र बन जायेगा।

सर्वे समा: समे मैत्री मैत्र्या शान्तिर्मतेह च।
सुख साम्यं हि तत्स्वास्थ्ये स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-४६॥

जितने जीव हैं सब समान हैं। किसी जीवका स्वरूप मुझसे बढकर हो या मुझसे कम हो ऐसा नही है। सब जीवोका स्वरूप एक चैतन्यमात्र है। कीडा हो, पतंगा हो, पशु हो, मनुष्य हो सबका स्वरूप एक समान है। और मित्रता समानमे ही होती है। जगत्के जीव यदि मित्रता चाहते है तो उनको पहले अपनी दृष्टि पवित्र बनानी होगी, जिससे सब जीव समान दिखें। एक रूप ही दिखे। यदि मैत्रीका रूप है तो दुःख नही उत्पन्न होता। ऐसा भाव बनाओ कि किसी जीवको दु.ख न उत्पन्न हो। ऐसा परिणाम ही मैत्रीभाव कहलाता है। सो मैत्री परिणाम होगा तो शांति आयेगी और यदि अपनेमे अहकारकी बुद्धि हुई तो उसमे अशांति ही होती है। इसका परिणाम क्या हुआ कि समता परिणाम ही सुख है? सब जीवोमे सताकी बुद्धि हो तो उसके फलसे अपने आपकी दृष्टि रह सकती है। और जब अपने आपकी दृष्टि हो तो उसमे ही शांति मिल सकती है। सब जीवोको एक शुद्ध चैतन्यमात्र निरखो। किसीके अगर ऐब आये है तो जानो कि इस जीव पदार्थमे ऐब नही है। कर्मोदय इस जातिका है मि इसमे दुराचार अथवा कोई अवगुण आ गया है। यह तो अनन्तज्ञानस्व-

रूप पवित्र पदार्थ है । ऐसी दृष्टि सब जीवोके प्रति होनी चाहिए । बालक हो, तुच्छ हो, छोटी जातिका हो, किसी भी प्रकारका जीव हो, यहाँ तक कि पेडोको भी देखकर ऐसा विचार करो कि इन पेडोमे भी जो जीव है, वह पदार्थ भी मेरे स्वरूपकी तरह है । यह पर उपाधि की, अन्य उपाधिकी वजहसे जैसा इसका कर्म है उसके अनुसार इस जीवको देह मिली है और इसकी रचना हुई है । है तो यह जीव मेरे ही जीवके समान । ऐसा परिणाम सब जीवोके प्रति रखो तो उससे दूसरोको दु ख उत्पन्न करनेका भाव न रहेगा और इससे बढकर क्या पवित्र हृदय कहा जायगा ? जिस हृदयमे यह भाव आ जाय कि किसी भी प्राणीको क्लेश न हो । इस भावके फलमे आत्मामे शांति उत्पन्न होती है ।

इष्टे न हर्षभावश्चेदनिष्टे स्यान्न खेदना ।
रुध्वेष्टेच्छा स्वबोधेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२-५०॥

इष्ट पदार्थोके सयोगमे यदि हर्षभाव न होवे तो न रहनेपर उसका खेद नही होगा । गृहस्थ जीवनमे गृहस्थीकी ये बडी तपस्याएँ है कि एक तो जो समागम मिला है, इष्ट, प्रिय, आज्ञाकारी, मनपसंद जो समागम प्राप्त हुए है उनके प्रति ऐसा विश्वास रखो कि ये सबके सब कभी न कभी जरूर अलग होगे और जब तक हैं भी तब तक ये परपदार्थ है । इनसे मेरेको आनन्द नही हो सकता है । आनन्द तो मेरे ज्ञानसे होता है । ये समागम अवश्य वियुक्त होगे । ऐसे इष्ट पदार्थोके सम्बन्धमे सोचो तो जब उन पदार्थोंका सम्बन्ध है, जब तक उन पदार्थोंका समागम है तब तक इस जीवको हर्षका अतिरेक नहीं होगा । जब किन्ही इष्ट पदार्थोमे आसक्ति न होगी तो वियोग होनेपर क्लेश न होगा । सो सबसे बडी तपस्या जो गृहस्थीमे बता रहे है उनमे सबसे बडी तपस्या यही है कि इष्ट पदार्थोमे ऐसी बुद्धि रखकर कि ये भिन्न है, कभी मिट जायेंगे, उनमे हर्ष न मानो, आसक्ति न करो । और दूसरी तपस्या यह है कि गृहस्थके पुण्यके उदयके कारण जो कुछ भी मिलता है, जितना भी लाभ होता है, जितना भी द्रव्य प्राप्त होता है उसमे सतोष रहे । क्योकि जगत्के अनेक पुरुषोपर दृष्टि दो । किसीके पास २०-२५ रुपये महीने तकका रोजगार न हो और अपना गुजारा करता है । इसमे कोई सीमा नही कि हमको कितनी आमदनी हो जो शाति हो । धनके हिसाबमे संतोष नही होता । जो भी पुण्योदयसे प्राप्त होता है उसमे ही संतोष रहे उसमे ही सब विभाग बन लें, उससे आगेकी वाञ्छा न करो । किसी भी वस्तुसे मुझे हानि नही है, ऐसा विश्वास करके परिग्रहकी चिन्ता नही करनी चाहिए । यह बडा तप है । जिसके कारण गृहस्थ जीवनमे भी रहकर सुखी हो सकता है । और इसके विरुद्ध परिणाम हो जाय याने जो इष्ट पाया है उसमे आसक्ति हो रही है तो सब कुछ यही है कि दुनियाकी लीलाको बिल्कुल भूल गये । अपनी

आगा पीछा सब भूल गए। एक आसक्ति है धनमें, स्त्रीमे, इज्जतमे, यदि इतना मोह बढ गया, आसक्ति हो गयी तो आप समझ लें कि पग-पगमे ठोकरें खानेको मिलेंगी, क्लेश होगे और भुगत भी चुके होगे। इसी तरह दूसरी बातोंके विरुद्ध परिणाम हो जाय अर्थात् परिग्रह की लालसा ही करते रहे तो इस लालसाका परिणाम आप समझते हैं कि कभी सुख नही हो सकता। जो कुछ पाया है उसका भी आनन्द न पा सकेंगे। इससे गृहस्थको इन दोनों बातोसे कभी न हटना चाहिए और अगर हटते है तो नियमसे दुःख होगा। इष्ट पदार्थोंमे यदि हर्ष भाव नही होना है तो अनिष्ट भावमे उसे खेद नही होता है। तब क्या इन दो बातोंके लिए करना है कि अपने आत्माके ज्ञानके प्रसादसे इष्टकी इच्छा रोककर मनको सयत करके अपने आपमे अपना आनन्द प्राप्त करो। इष्ट वह कहलाता है जो अपनेको सुहावना लगता है। जिसमे अपनी प्रीति जगती है उसमे जो इच्छाएँ बढ रही है उनको रोको। आसक्त होकर एकदम विषयोमे न लग जावो। एक एक प्राणी एक-एक इन्द्रियोके वशमे होकर प्राण गंवा देता है। स्पर्शन इन्द्रियके वशमे हाथीका उदाहरण प्रसिद्ध है। हाथी इसी तरह गड्ढेमे पडता है कि फांसने वालोके द्वारा एक झूठमूठकी हथिनी बना ली जाती है, उसमे आसक्त होकर वह हाथी आता है और उस गड्ढेमे गिर जाता है। रसना इन्द्रियके वशमे मछली अपने प्राण गँवा देती है। मछली पकडने वाले लोग किसी गंदी चीजको कांटेमे लगा देते हैं तो उस कांटेमे आकर वह मछली फंस जाती है। घ्राण इन्द्रियके वशमें भ्रमर कमलके फूलमे अपने प्राण गवा देता है। चक्षुइन्द्रियमे पतंगोका उदाहरण आता है। दीपकको पाकर पतगे अपने प्राण गवा देते है। कर्ण इन्द्रियसे सॉप पकडा जाता है। सॉप राग रागनीका बडा शौकीन होता है। जब बीन बजती है तो सॉप एकदमसे कहीसे फंस जाता है। अब जरा मनुष्यको देखो, किस इन्द्रियमे कम बन रहा है। मनुष्यकी पाँचो इन्द्रियाँ एकदम आगे बढ रही है। जो मनुष्य पाँचो इन्द्रियोके वशमे है उस मनुष्यको दुःखसे बचा सकने वाला कोई है क्या? कौन बचा सकता है? सो एक यही जिम्मेदारीका भव है। इसमे यो ही उपेक्षा न करना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करो। सयम करो, चारित्र बनाओ, आचरण पवित्र रखो। एक भी व्यसन न आ सके, एक भी बुरी आदत न आ सके, इसलिए अच्छा सत्सग बनाओ। प्रभु की भक्तिमे विशेष समय लगावो अपने आप ज्ञान जगेगा और इस ज्ञानकी विभूतिसे वैराग्य बना रहेगा और अपने आपमे वैराग्य बना रहेगा। यदि अपने आपमे वैराग्यकी पूजी है तो आप सकटोसे बच जायेंगे। यदि ज्ञान वैराग्यका नही है तो सकट अनेक आते ही हैं। अभी कोई बीमार हो, कभी कोई गुजर गया, किसीने निन्दा कर दी इत्यादि अनेक बाधायें इस गृहस्थावस्थामे आती है। यदि ज्ञान और वैराग्यमे कुछ बल नही है तो हर जगह यह जीव

रूप पवित्र पदार्थ है । ऐसी दृष्टि सब जीवोंके प्रति होनी चाहिए । बालक हो, तुच्छ हो, छोटी जातिका हो, किसी भी प्रकारका जीव हो, यहाँ तक कि पेडोको भी देखकर ऐसा विचार करो कि इन पेडोमे भी जो जीव है, वह पदार्थ भी मेरे स्वरूपकी तरह है । यह पर उपाधि की, अन्य उपाधिकी वजहसे जैसा इसका कर्म है उसके अनुसार इस जीवको देह मिली है और इसकी रचना हुई है । है तो यह जीव मेरे ही जीवके समान । ऐसा परिणाम सब जीवोके प्रति रखो तो उससे दूसरोको दु ख उत्पन्न करनेका भाव न रहेगा और इससे बढकर क्या पवित्र हृदय कहा जायगा ? जिस हृदयमे यह भाव आ जाय कि किसी भी प्राणीको क्लेश न हो । इस भावके फलमे आत्मामे शांति उत्पन्न होती है ।

इष्टे न हर्षभावश्चेदनिष्टे स्यान्न खेदना ।
रुध्वेष्टेच्छां स्वबोधेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२-५०॥

इष्ट पदार्थोंके सयोगमे यदि हर्षभाव न होवे तो न रहनेपर उसका खेद नही होगा । गृहस्थ जीवनमे गृहस्थीकी ये बडी तपस्याऐं है कि एक तो जो समागम मिला है, इष्ट, प्रिय, आज्ञाकारी, मनपसंद जो समागम प्राप्त हुए है उनके प्रति ऐसा विश्वास रखो कि ये सबके सब कभी न कभी जरूर अलग होगे और जब तक हैं भी तब तक ये परपदार्थ हैं । इनसे मेरेको आनन्द नही हो सकता है । आनन्द तो मेरे ज्ञानसे होता है । ये समागम अवश्य वियुक्त होगे । ऐसे इष्ट पदार्थोंके सम्बन्धमे सोचो तो जब उन पदार्थोंका सम्बन्ध है, जब तक उन पदार्थोंका समागम है तब तक इस जीवको हर्षका अतिरेक नहीं होगा । जब किन्ही इष्ट पदार्थोंमे आसक्ति न होगी तो वियोग होनेपर क्लेश न होगा । सो सबसे बडी तपस्या जो गृहस्थीमे बता रहे है उनमे सबसे बडी तपस्या यही है कि इष्ट पदार्थोंमे ऐसी बुद्धि रखकर कि ये भिन्न है, कभी मिट जायेंगे, उनमे हर्ष न मानो, आसक्ति न करो । और दूसरी तपस्या यह है कि गृहस्थके पुण्यके उदयके कारण जो कुछ भी मिलता है, जितना भी लाभ होता है, जितना भी द्रव्य प्राप्त होता है उसमे सतोष रहे । क्योंकि जगत्के अनेक पुरुषोपर दृष्टि दो । किसीके पास २०-२५ रुपये महीने तकका रोजगार न हो और अपना गुजारा करता है । इसमे कोई सीमा नही कि हमको कितनी आमदनी हो जो शाति हो । धनके हिसाबमे संतोष नही होता । जो भी पुण्योदयसे प्राप्त होता है उसमे ही सतोष रहे उसमे ही सब विभाग बन लें, उससे आगेकी वाञ्छा न करो । किसी भी वस्तुसे मुझे हानि नही है, ऐसा विश्वास करके परिग्रहकी चिन्ता नही करनी चाहिए । यह बडा तप है । जिसके कारण गृहस्थ जीवनमे भी रहकर सुखी हो सकता है । और इसके विरुद्ध परिणाम हो जाय याने जो इष्ट पाया है उसमे आसक्ति हो रही है तो सब कुछ यही है कि दुनियाकी लीलाको बिल्कुल भूल गये । अपनो

आगा पीछा सब भूल गए। एक आसक्ति है धनमें, स्त्रीमे, इज्जतमे, यदि इतना मोह बढ गया, आसक्ति हो गयी तो आप समझ लें कि पग-पगमे ठोकरें खानेको मिलेंगी, क्लेश होगे और भुगत भी चुके होगे। इसी तरह दूसरी बातोंके विरुद्ध परिणाम हो जाय अर्थात् परिग्रह की लालसा ही करते रहे तो इस लालसाका परिणाम आप समझते हैं कि कभी सुख नही हो सकता। जो कुछ पाया है उसका भी आनन्द न पा सकेंगे। इससे गृहस्थको इन दोनो बातोसे कभी न हटना चाहिए और अगर हटते है तो नियमसे दुःख होगा। इष्ट पदार्थोंमे यदि हर्ष भाव नही होना है तो अनिष्ट भावमे उसे खेद नही होता है। तब क्या इन दो बातोंके लिए करना है कि अपने आत्माके ज्ञानके प्रसादसे इष्टकी इच्छा रोककर मनको सयत करके अपने आपमे अपना आनन्द प्राप्त करो। इष्ट वह कहलाता है जो अपनेको सुहावना लगता है। जिसमे अपनी प्रीति जगती है उसमे जो इच्छाएँ बढ रही है उनको रोको। आसक्त होकर एकदम विषयोमे न लग जावो। एक एक प्राणी एक-एक इन्द्रियोंके वशमे होकर प्राण गंवा देता है। स्पर्शन इन्द्रियके वशमें हाथीका उदाहरण प्रसिद्ध है। हाथी इसी तरह गड्ढेमे पडता है कि फांसने वालोके द्वारा एक झूठमूठकी हथिनी बना ली जाती है, उसमे आसक्त होकर वह हाथी आता है और उस गड्ढेमे गिर जाता है। रसना इन्द्रियके वशमें मछली अपने प्राण गँवा देती है। मछली पकडने वाले लोग किसी गंदी चीजको कांटेमे लगा देते हैं तो उस कांटेमे आकर वह मछली फंस जाती है। घ्राण इन्द्रियके वशमे भ्रमर कमलके फूलमे अपने प्राण गवा देता है। चक्षुइन्द्रियमे पतंगोका उदाहरण आता है। दीपकको पाकर पतगे अपने प्राण गंवा देते हैं। कर्ण इन्द्रियसे सांप पकडा जाता है। सांप राग रागनीका बडा शौकीन होता है। जब बीन बजती है तो सांप एकदमसे कहीसे फंस जाता है। अब जरा मनुष्यको देखो, किस इन्द्रियमे कम बन रहा है। मनुष्यकी पांचो इन्द्रियां एकदम आगे बढ रही है। जो मनुष्य पांचो इन्द्रियोके वशमे है उस मनुष्यको दुःखसे बचा सकने वाला कोई है क्या ? कौन बचा सकता है ? सो एक यही जिम्मेदारीका भव है। इसमे यो ही उपेक्षा न करना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करो। सयम करो, चारित्र बनाओ, आचरण पवित्र रखो। एक भी व्यसन न आ सके, एक भी बुरी आदत न आ सके, इसलिए अच्छा सत्सग बनाओ। प्रभु की भक्तिमे विशेष समय लगावो अपने आप ज्ञान जगेगा और इस ज्ञानकी विभूतिसे वैराग्य बना रहेगा और अपने आपमे वैराग्य बना रहेगा। यदि अपने आपमे वैराग्यकी पूजी है तो आप संकटोसे बच जायेंगे। यदि ज्ञान वैराग्यका नही है तो सकट अनेक आते ही हैं। अभी कोई बीमार हो, कभी कोई गुजर गया, किसीने निन्दा कर दी इत्यादि अनेक बाधायें इस गृहस्थावस्थामे आती है। यदि ज्ञान और वैराग्यमे कुछ बल नही है तो हर जगह यह जीव

दुःखी होता है। ऊपरी बातें करनेसे शाँति न मिलेगी। भीतरमे यदि ज्ञानकी बात जगती है और उस ही के कारण वैराग्य कुछ बनता है तो इसे शाँनि मिलेगी, धैर्य प्राप्त होगा अन्यथा यह अधीर होकर ही अपना समय गुजर गया। सो ज्ञानका आलम्बन लो, इष्टका हर्ष न मानो, अनिष्टमे खेद न मानो, ज्ञाता दृष्टा मात्र रहो और अपने सुखका उपभोग करो।

आत्मरूपेऽन्ययोगो न वियोगस्य च का कथा।
कथं हृस्याणि खिन्दानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-५१॥

इस आत्माका स्वरूप जगत्के सब पदार्थोंसे जुदा है। पदार्थ जितने होते है वे सब जुदे जुदे होते है। किसी पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नही। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अपने रूप ही है। तब यह मै आत्मा अपने अनन्तानन्त गुणोसे तन्मय हू। मुझमें किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही है। तब फिर वियोगकी बात ही क्या कहना है ? अर्थात्-उसका न तो इष्टका सयोग होता है और न वियोग होता है। मैं तो अपनेमे अकेला हू। पर हम आप सोचते रहते है कि ये अच्छे हैं, ये मेरे पास है, ये बुरे है। इन सब बातोके सोचनेसे तो वियोग होगा। परद्रव्य रहे चाहे न रहे, उनसे मेरी आत्मामे कुछ नही गुजरता। पर हम आप कल्पनाएँ करके सुख दुःख मानते है। किसी चीजको पाकर हम हर्ष मानते तो यह मूढता है मेरी कि नही ? जब कोई चीज मेरी है नही तो उसको पाकर खुश होना यह मूढता है कि नही ? इन चीजोका वियोग होगा तो दु:ख होगा। यह सब मोहका जाल है जो अपने आपके स्वरूपका ज्ञानी है वह न संयोगमे हर्ष मानता है और न वियोगमे दुःख, वह तो हमेशा ज्ञाता दृष्टा रहता है। कभी किसी मनुष्यकी ऐसी प्रकृति देखी होगी कि ये परवाह नही करते है। कुछ भी आवे या जावे। शिवपुरीमे, ग्वालियर जिलेमे एक गाँव बदवाँ है। वहाँ एक जैनी छोटासा हलवाई दुकानदार था। उसका इकलौता लडका जवान अचानक गुजर गया तो गाँवके सभी लोग दुःखी हो गये कि हाय देखो उसका एक ही सहारा था, इकलौता लडका था, गुजर गया। लोग उसके घरमे आये समझानेको और वहाँ देखा तो बाप प्रसन्न है। उसके जरा भी विषाद नही। लोग बोले कि तुम्हे जरा भी दु:ख नही तो वह बोला कि दुःख क्यो हो ? वह अपनी आयुसे रह रहा था और आयु पूरी हो गयी तो चला गया। हम तो अपने फँसे हुए थे सो अब प्रभुभजनमे हमको स्वतत्रता मिल गयी। बहुतसा भार हट गया। तो जो ज्ञानी होता है वह न सयोगमे हर्ष मानता है और न विषादमे दु:ख। नही तो गृहस्थीमें दु ख क्या है बतलाओ ? सिवाय इष्ट अनिष्ट बुद्धि के और कोई क्लेश नही है। सयोग वियोग सुख दु ख मानकर बहिर्मुखता बनाकर अपनी आत्माको भूलकर विकल्प बनानेमे पड गये, यही तो दुःख है। सो जो ज्ञानी गृहस्थ होगा

वह इन झंझटोमे न पडेगा । वह तो उपासक मुनि धर्मका होता है । उसे ये सब जगजाल दिखते है और चाहते हैं कि हम इस जालसे कब निकले ? ऐसी बुद्धि ज्ञानी गृहस्थके होती है सो कैसी भी परिस्थिति गुजरे वह अपनेको विह्वल नही करता है । ज्ञानीके यह ज्ञान है कि मै तो समस्त बाह्यपदार्थोंके सयोग वियोगसे परे हूँ । इस मुझमे जो तरंग उठती है उससे मैं जुदा हू । इसलिए न किसी स्थितिमे हर्ष मानूँ और न किसीमे विषाद और समता परिणाम रखकर ज्ञानस्वरूपका अनुभव सम्वेदन करता हुआ अपनेमे स्वयं सुखी होऊँ ।

कल्पितेऽर्थेनुतर्केऽश शमन्वर्थे च कल्पिते ।
स्वतन्त्रोऽर्थो हि सर्वोत: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-५२॥

पदार्थोंका स्वरूप है कि वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रहे । पदार्थ हैं और निरतर परिणमते रहते है । उन पदार्थोंमे अपनी कल्पनाके अनुसार परिणमनका विचार करनेसे तो क्लेश होते है और जैसे वे पदार्थ है उनके स्वरूपके अनुसार अपना ज्ञान बनानेसे सुख मिलता है । जैसे परिवारमे ही जैसे अपनी इच्छा है इस तरहसे ये लडके बनें, परिणमे, काम करें, ये सब घरके लोग, मित्र लोग मशामाफिक चलें, ऐसा जब ध्यान होता है तो दुःख मिलता है, क्योकि इच्छाके अनुसार वैसे तो बन जायेंगे नही । उनका जैसा कषाय होगा, जैसा परिणाम है वैसी ही उनकी परिणति बनेगी । आप प्रतिकूल परिणति मानकर अपने हृदयमे दुःखी रहेगे और जैसा उनका स्वरूप है उस तरह जानेंगे तो आपको क्लेश नही हो सकता । जानोगे कि सब जीव है, स्वतत्र है, अपने अपने कर्मोदयके अनुसार भिन्न भिन्न गतियोको त्यागकर यहाँ इकट्ठा हो गये है, उनकी परिणति जुदी है, इनका स्वामित्व इनमे ही है, इनपर मेरा कोई अधिकार नहीं है, ऐसा जब वह जानता है और अपने विचारोको परपदार्थोंके स्वरूपके अनुसार बनाता है तो कोई कैसा ही परिणमे उसे क्लेश नही हो सकता । जैसा पदार्थ है उसके अनुकूल तुम्हारा विचार बने तो सुख होगा और जैसी तुम्हारी कल्पना है उसके अनुकूल पदार्थ परिणमे तो उसमे क्लेश होता है । इस तरहसे निहारो कि सब पदार्थ है, अपने आप अपनेमे वे अपनी दशा बनाते है । किसीके कारण किसी औरमे कोई दशा बनती नही है, इस तरह ही निरखो तो फिर वहाँ क्लेश नही हो सकता । क्लेश तो हम स्वय ही बनाया करते है । जैसे और पदार्थ है वैसे यह आत्मा भी एक पदार्थ है । इसमे क्लेशोका काम क्या ? यह तो स्वभावसे ज्ञाता और आनन्दस्वरूप है । अपने स्वरूपमे अपना उपयोग न लगानेसे नाना विरुद्ध धारणायें बनती है, इन कल्पनाओंके कारण यह क्षोभ उत्पन्न होता है । यदि वे कल्पनाएँ दूर हो तो अशांति दूर हो । सो शांतिके लिए बडा भारी प्रयत्न करते हैं, धन कमानेका, मकान दुकान

बनानेका, बच्चोके पालन-पोषणका । किन्तु अपने आपको यदि ज्ञान मिले स्वाध्यायके द्वारा, किसी पडित, गुरुजनोके उपदेशके द्वारा तो उपयोग बने, वस्तुस्वरूपकी स्वतन्त्रता अपनी दृष्टिमे बनी रहे तो वहाँ किसी प्रकारका क्षोभ नही हो सकता है । क्षोभ मिटानेका कारण, क्लेश दूर होनेका उपाय ज्ञान है । ज्ञानके बिना क्लेश दूर हो ही नही सकते है । इसलिए ज्ञानके अर्जनमे आलसी मत बनो और कामका आलस्य आ जाय तो आ जाय, मगर अपने ज्ञानका आलस्य न आना चाहिए । ज्ञान ही अपना असली धर्म है । अपने ज्ञानकी दृष्टिमे प्रमाद मत करो । कमसे कम एक घटा किसी आध्यात्मिक ग्रन्थके स्वाध्यायके मननमे लगाओ, अपनी आत्माको ज्ञानसे सीचो ताकि यह आत्मा आनन्दसे भरपूर हरा-भरा हो जाय । क्योकि जो मोहकी बात है वह सब बुद्धि उत्पन्न करती है । जगत्के जीव सब चैतन्य है । उनसे आपका क्या सम्बन्ध है ? मगर मान रखा है कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा कुटुम्ब है और इतना ही नही, किन्तु उनके खुश करनेके लिए बडेसे बडे कृत्य करते है । लोकमे और भी जीव है, उनको खुश करनेका क्यो यत्न नही करते हो ? जैसे और जीव है तैसे ही घरमे बसे हुए जीव है । मोहका पर्दा ज्ञानकी आँखोके आगे बँधा हुआ है । वे सब जीव उस एक स्वरूपका दर्शन नही करने देते । अनन्त जीवोमेसे दो चार जीवोकी छटनी कर लो कि ये मेरे हैं, बस उनके लिए ही सारा श्रम करते है, अपनी सुध भूल जाते है, अपनी शांतिका यत्न नही करते है । सो जब तक अपना उपाय न बदलेगा तब तक शातिका दर्शन नही हो सकता है । सो अपनी कल्पनाओमे न दौडाकर और अपनी कल्पनाओके माफिक परमे परिणमन हो ही जावे ऐसा हठ मत करो । सब स्वतन्त्र पदार्थ है । जैसा सहज संयोग बने उसके ज्ञाता द्रष्टा रहो तो यह उपाय शांतिका है ।

हृद्य साम्यं रतो मोहे सस्माज्ज्ञायकरूपिणम् ।
जानन् मुक्त्वा रति मोह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-५३॥

राग और मोह होनेपर हृदयमे समता नही रहती । अभी दो सगे भाई है, बडे हो गए, विलग हो गए, अब अपने बालकोमे राग हुआ तो समता खत्म हो गई । अब भाईसे वह आत्मीयता नही रही । अब जानने लगे कि ये मेरे लडके है । ये दूसरोके लडके है । इस प्रकार मेरा और दूसरेका उनमे भाव आने लगा । उनके समता कहाँ रह सकती है ? बाजार से यदि अमरूद भी खरीदकर लाओ, भाईका लडका और तुम्हारा लडका अगर दोनो ही सामने आ जायें तो उन दो अमरूदोमे से विचार करते है कि कौन अच्छा और बड़ा है, अपने लडकेको दे दें और छोटा या रद्दी कौन है दूसरेको दे दें । तो देखो दो पैसेकी चीजमे ऐसी बुद्धि हो जाती है । जब राग और मोह आता है तो हृदयमे समता नही रहती । पर अपने

पवित्र स्वरूपको तो देखो । कहाँ तो प्रभुके समान शुद्ध ज्ञानानन्दके स्वभाव वाला यह आत्मतत्त्व और कहाँ कहाँ इन बाह्य दो-चार जीवोमे ऐसी मोहकी दृष्टि लग जाना यह इस मुझ पर महान् सकट है । इस अज्ञानको छोडो ज्ञायकस्वामी ज्ञानानन्दमात्र अपने आपको जानो और ज्ञानबलसे बाह्यपदार्थोंके विकल्प छोडते हुए अपने इस सामान्य ज्ञानानन्दमे आवें और निस्तरग निर्विकल्प हो जायें यही शुद्ध आनन्दके अनुभवका उपाय है । जो ऐसा नही कर सकता, बाह्यपदार्थोंमे ही आसक्ति होती है, वह निरंतर क्लेश ही भोगता रहता है, वह आत्मतत्त्व अनुभव नही कर सकता । परिग्रहकी बुद्धि लगी ह, चैन नही है, दिमाग उन्मत्त है, धर्मकी बात, धर्मका श्रद्धान नही समाता है । गेंदकी तरह उचकता रहना है । कभी इस पदार्थमें लगे, कभी उस पदार्थमे लगे, इससे ही क्लेश पाते रहते है । सो राग और मोहको त्यागकर ज्ञायकस्वरूप अपने तत्त्वमे जगो, वस्तुस्वरूपको जानकर ज्ञाता दृष्टा रहो, यही हित का मार्ग है । यह आत्मा किसी भी परपदार्थमे कोई सुधार बिगाड हेर फेर नही कर सकता । क्योकि इसकी शक्ति परस्वरूपमे है ही नही । जो कुछ यह कर सकता है, मात्र अपने स्वरूप का परिणमन कर सकता है । दूसरोका यह बुरा नही कर सकता है । ऐसा भाव बनाना आवश्यक है । बुरा करनेका अधिकार नही है । दूसरोका यह भला नही कर सकता है । इसका भला हो जाए, ऐसा भाव बनाना आवश्यक है । तो हमारी और आपकी भाव बनाने तककी ही गति है । इसके आगे तो हम आप कुछ नही कर सकते । तब आप ही बुरे भाव क्यो बनाएँ ? जब भाव ही बना पाते है इसके अतिरिक्त कुछ नही कर पाते तो फिर भाव बुरे क्यो बनाएँ ? अच्छा भाव बनाएँ जिससे स्वयंको शान्ति प्राप्त हो और दूसरे जीवोको भी लाभ हो । अपने निमित्तसे किसीको अशांति नही प्राप्त होती है । एक ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र अपने आत्माको जानता ह, इसमे ही अपना भाव जमाता हुआ मैं कुछ आनन्दस्वरूपका अनुभव करूँ और कर्म कलकसे दूर होऊँ, जन्ममरणके बन्धन दूर करनेका पुरुषार्थ करूँ ।

यस्मिन् साम्ये विनष्टा स्युराशा साम्यं सदास्तु तत् ।
साम्येन सहजानन्द. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६–५४॥

समता परिणामके होनेपर आशा नष्ट हो जाती है तो व ˇ समता मेरे सदा रहे । हम और आपको दुःखी करने वाली चीज आशा है । अब देखो अपने आत्मामे ही बस रहे हो, आत्माको छोडकर कही बाहर नही जाते, मगर यही बसे-बसे बाहरी पदार्थोंकी आशा बनाते हो और दुःखी हो जाते हो । चीजें तो आपकी कुछ भी नही है । जो चीजें पासमे हैं वे भी नष्ट हो जायेंगी, साथमे न रहेगी तो फिर अभीसे आशा छोड दो । आशा जब उत्पन्न होती

है तब इस आत्मामे बडा क्लेश होता है। आशा दूर करो और समताका परिणाम बनाओ,
समके प्रसादसे शाश्वत सहज आनन्दका अनुभव करो। यह आशा कैसे दूर हो ? जब बाह्य
पदार्थ मेरे हितकर नही है प्रत्युत अहितकर है, ऐसा ज्ञान जगेगा तो उन परपदार्थोंकी आशा
दूर होगी और जब तक चित्तमे यह बना है कि इनसे हमारा हित है ऐसी दुर्बुद्धि जब तक
रहेगी तब तक क्लेश ही रहेगे। इससे तो यदि आप चाहे कि आशा खत्म हो जाय, आशाका
विनाश हो जाय, तो ऐसा नही हो सकता है। सो उस सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे आशाको दूर
करो। कब तक जिन्दगी है और कितनी उम्र हो चुकी है, अब तक बहुत आशा की है, पर
आशा करके क्या आज आप सुखी है ? आप सुखी तो नही नजर आते। आशा सुखका कारण
नही है। सूरदासजी ने लिखा है कि "आशा नहिं मरी अब तक" शरीर मर गया, मन मर
गया, थक गया, पर आशा तो बढ़ती ही जा रही है। अब वृद्ध अवस्था है, बुढ़ापा है, मगर
आशा और बढती ही जाती है। काहेकी बाबा आशा रखते हो, कुछ समय बादमे तो मरण
होने वाला है, यहाँके सारे समागम छूटने वाले हैं। अब मनमे किस बातकी आशा बनाए
हो ? आशाको त्याग दो और अपनेमे विश्राम पावो। यह आशा आराम नही लेने देती।
मनको भ्रमाये रहती है। यहाँ जाना, वहाँ जाना, वहाँ कष्ट, उनको भी कष्ट, इस तरहसे
अपना प्लेटफार्म बनाए अपना क्षेत्र बनाए, कितने प्रकारको इनके आशा लगी हुई है ? इन
खोटी कल्पनाओके कारण परमात्मतत्त्व तिरोहित है, छिप गया है, जिससे आनन्द प्रकट
होता है वह कुचल गया है। केवल एक अपराधके कारण कि बाह्यपदार्थोंकी उसने आशा
लगा रखी है। बाह्यपदार्थोंकी आशा त्यागो तो अपने आपमे ज्ञानस्वरूपका अनुभव होगा और
अपने आपके ज्ञानरसका स्वाद आए तो तीन लोकका वैभव नीरस लगने लगेगा। इसमे फिर
रस नही आ सकता। यह भव आ गया, कब उसे छोड़ें ? देखो पुराने समयमें ऋषिगण हुए
है, बडे-बडे महाराजा हुए हैं, बडा वैभव त्यागकर वे ज्ञानरसके लिए उसके हुए थे। और
यहाँ इस वैभवमे इतनी ममता, इतनी आसक्ति है कि धर्मकी बात व ज्ञानके स्वरूपको सम-
झनेका उत्साह ही नही जगता। तो उन पुरुषोमे और आपमे कितना अन्तर हो गया ? पर-
म्परासे हम उन धर्मात्मा पुरुषोके पुत्र कहलाए। उस धर्मपरम्परासे हम वीतराग सर्वज्ञ देवके
पुत्र हैं। हम उनके कुलको न बढायें। अपने विषय कषायोसे अपने परिणाम मलिन बनाते
रहे तो हम उनके पुत्र कहलानेके क्या अधिकारी हैं ? हम उनके समान बनें तो उनके सपूत
हैं। सो आशाको त्यागकर समता परिणामको लायें और अपने सहज आनन्दका अनुभव करें।

श्रद्धावृत्त श्रुतं ज्ञानं सत्यं साम्यं भवेद्यदि।
तदैव स्वसुखं स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६-५५॥

यह श्रद्धा, यह चारित्र, यह आगमका अभ्यास, यह ज्ञान जब हमारा सत्य है तब मेरेमे समता परिणाम जगे। बडे परिश्रमसे तो कोई रसोई बनावे और रसोई बनाकर मूर्खता से, पागलपनसे या किसीसे लडाई लड झगडकर बादमे कूडेमे फेक दे तो आप उसके भोजन बनानेके पुरुषार्थको क्या सच्चा काम कहेगे ? क्या आप बेवकूफी न कहेगे ? इसी प्रकार जितनी श्रद्धा है, चारित्र है, ज्ञान है ये सब किसलिए किए जाते है कि मेरेमे समता पैदा हो, और धर्मके इतने कष्ट सहकर भी चित्तमे समता परिणाम न लाना चाहते हो तो उसे विवेक नही कहा जायगा। वह सब असत्य है। जैसे अरद्धा सेठसे ८ सेठानियोंकी बात हुई थी। सेठने रानियोसे पूछा कि तुम्हे कैसे सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ ? जरा अपनी कहानी तो बतलावो। तो बडी सेठानीने सम्यक्त्वकी कहानी कही। उसने कहा—सच है, मगर छोटी सेठानीने कहा झूठ। सब सेठानियोने अपने-अपने सम्यक्त्वकी कहानी कही तो सबने कहा—सच है और छोटी सेठानीने कहा—झूठ है। इन बातोको राजा मकानके पीछे खडा सब सुन रहा था। पहिले राजा लोग प्रजाका सुख दुःख जाननेको रातमे गश्त लगाया करते थे। जब राजाने यह हाल अपने आंखो देखा तो सोचा कि सुबह होने दो। सुबह सेठानीको बुलाऊँगा और पूछूगा कि इन सब कथाओको तूने झूठ क्यो कहा ? कुछ कथाएँ राजापर गुजरी हुई थी। जब सुबह हुई तो राजाने बडे सम्मानसे छोटी सेठानीको बुलाया और पूछा कि रात्रिमे जो सम्यग्दर्शनकी कहानी हो रही थी सो तू झूठ क्यो कहती थी ? कहा—सच तो है। तो छोटी सेठानीने मुखसे तो कुछ उत्तर नही निकाला और सब गहने आभूषण और कपडे आदि उतारकर केवल एक साडी पहिनकर वहाँसे जगलके लिए चल दी और यह कहा कि महाराज वे सेठानियां केवल बातें कर रही थी, उसको व्यवहारमे तो नही ला रही थीं। सच तो यह है कि जैसे हमे भाव उत्पन्न होते है, वे तो केवल बाते ही बातें थी। समता परिणाम उत्पन्न होता है तब तो श्रद्धान सच्चा, ज्ञान सच्चा, बाह्यदृष्टियां सच्ची और समता अगर नही जगती तो इस जगत्के बाह्यपदार्थोंमे यह छटनी बनाए रखते है कि यह मेरा है, यह दूसरेका है, सब अलग-अलग। विश्वके समस्त पदार्थोंमे अत्यन्ताभाव है, कुछ भी सम्बंध नही है। फिर भी द्वैत बुद्धि बने तो यह ज्ञान असत्य है, वे सारी क्रियायें असत्य है। धर्मका काम तो अपने आपके आत्मा ही मे लीन होनेके लिए होता है। सो समता परिणाम जगे, उस ही मे सत्य आनन्द है और वही आत्माका सुख है, वही आत्माका वास्तविक स्वास्थ्य है। जब तक अपने आपका आत्मतत्त्व अपने उपयोगमे दृढतासे स्थित न हो जाय तब तक कर्म नही कटते। जन्ममरणका ससार नही छूटता। यदि संसारसे मुक्त होना चाहते हो तो अपने आपके स्वरूपको अनुभवमे लो। अपने इस पवित्र ज्ञान सिंहासन पर मलिन परिणामो वाले संसारजनो

को मत बिठाओ। स्त्री-पुत्रादिक सम्बन्धी जनोको अपने ज्ञान सिंहासन पर मत बिठाओ। उनके ज्ञाता दृष्टा रहो और अपना यह उपयोगसिंहासन प्रभुके विराजमान करनेके लिए सदा स्वच्छ आप केवल बनाए रहो। जब जब ज्ञानमे प्रभुका स्वरूप आता रहेगा तब तब इस जीवके कर्म कलंक ध्वस्त होगे और मुक्तिके मार्गका अनुभव होगा। मोक्षका जो आनन्द है वह आत्माके शुद्ध स्वभावका ही आनन्द है। कही दूसरे पदार्थोंका आनन्द नही है। आनन्द जो यहां भरा हुआ है उस आनन्दको खोलकर यह उपयोगमे न ला सके वही आनन्द है, वही मोक्षका मार्ग है। मोक्ष कोई न्यारी चीज नही है। जो ज्ञान और आनन्द दबा पडा है वह ज्ञान और आनन्द विकसित हो गया इसीका नाम मोक्ष है। पर ऐसा पुरुष जो अपने ज्ञान और आनन्दका पूर्ण विकास कर लेता है उसके कर्म तो रहते नही। शरीर और कर्मों का सम्बन्ध इस आत्मामे, इस ससारमे या उस स्थानसे नीचे रोके हुए हैं। सो जब रोकने वाले कर्म और शरीर न रहे तो यह आत्मा मोक्षस्थानमे पहुच जाता है। पर उस मोक्षस्थान मे अनन्त निगोदिया जीव भी भरे हैं, जहाँ सिद्धप्रभु विराजमान हैं। उन निगोदिया जीवोमे ऐसे ही निगोदिया जीव है जैसे कि ये निगोदिया जीव है। इसलिए किसी खास स्थान पर पहुचनेसे आनन्द नही, किन्तु अपने शुद्ध ज्ञान और आनन्दके विकासमे आनन्द है और इस ही सिद्धस्वरूपके विकासका नाम मोक्ष है।

को दृश्यं नश्वर सर्वं दुःखमूल पृथक् हि तत्।
निन्द्यं हेयमदस्वस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम ॥७-१॥

इस ससारमे जितने भी पदार्थ दृश्यमान हैं वे सब विनाशीक है और अपनेसे बिल्कुल जुदा है। साथ ही वे दुःखोके मूल कारण है। देख लो, जितना जो कुछ दिखता है, विनाशीक है या नही? जो कुछ दिखता है वह सब नष्ट होगा कि नही? पहिले तो इसीका विचार करो। जो भी मिला है वह पदार्थ हेय है या उपादेय? हेय है, त्यागने योग्य है, तो जो विनाशीक चीज है उसमे प्रीति करनेसे अहित ही है। उससे कुछ सम्बन्ध नही। विनाशीक अवश्यम्भावी है। जिसका विनाश जरूर होगा उसमे प्रीति करो तो हित नही है। इसी कारण ये सर्व समागम मेरे लिए निन्द्य हैं। इन समागमोमे प्रीति करनेसे हित नही है। यह जो कुछ दिखता है सब मायारूप है। मायाका अर्थ है जो परमार्थ तो नही है मगर है जरूर, उसका नाम माया है। अगर यह परमार्थ हो तो सदा काल टिका रहना चाहिए था, सदा नहीं रहता, इस कारण यह परमार्थ नही है। किन्तु परमार्थभूत पदाथके मेलसे बना हुआ यह मायारूप है। तो जितनी भी माया है वह सब नष्ट होने वाली होती है। परमार्थस्वरूप एक अविनाशी है सो चेतनतत्त्व तो जीव अविनाशी है और चेतनतत्त्वमे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य,

आकाशद्रव्य और कालद्रव्यपर अवस्थित है, और पुद्गलमें परमाणु अवस्थित है। दिखनेमे जीव तो आता नही, क्योकि वह अमूर्त है। इसी प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य ये भी दिखनेमे नही आते, क्योकि ये भी अमूर्त है। दिखनेमे पुद्गल ही आ सकते है। सो पुद्गलमे जो परमार्थभूत है, वह भी दिखनेमे नही आता। अनन्तपुद्गल परमाणुवोका जो पिड है ऐसा यह मायामय स्कध दिखनेमे आता है तो इन मायामय पदार्थोंकी प्रीति करनेमे हित नही है। किन्तु मोही जीवोको इस मायासे ही प्रेम लग रहा है और इतना घनिष्ट प्रेम लगा लिया कि आत्मकल्याणकी बात भी कुछ समझ नही सकता। आत्महितकी रुचि ही नही है। जो कुछ है सो परिवार है, धन वैभव है, बस इन्हीकी उन्नतिकी चिंता रग-रगमे बसी हुई है। दूसरे जीवोका तो कुछ मूल्य ही नही आंकता है। जो कुछ है सो घरके लोग है, ऐसा ये मोही जीव अपना परिणमन बना रहे है। सो इन विनाशीकठाट- बाटोकी प्रीति करने मे कुछ भी भलाई नही है। फिर ये चीजें सब पर है। परका आश्रय करनेसे, परकी ओर दृष्टि लगानेसे आत्माको शांति मिल ही नही सकती। परपदार्थोंकी दृष्टि आकुलताओका निमित्त ही बनेगी। शांति तो स्वाश्रित चीज है, यह दृश्यमान जगजाल मुझसे न्यारा है, इस कारण निद्य है, हेय है। जिस समय अपना उपयोग अपने आत्मामे आ जाय तो यह सारा मायाजाल भी बना रहे, पर उससे आत्माका अहित नही होता। किन्तु अज्ञानदशामे जब हम है तो किसी भी भी मायाभूत पदार्थका विचार करके हम दुःख उठाते है, क्लेश किया करते है सो इन भिन्न पदार्थोंके देखनेके कारण मुझे सुख नही होता। मैं स्वयं ही अपने स्वरूपके दर्शन करके सुखी होऊँ, ऐसी भावना होनी चाहिए। यह भावना न रहनी चाहिए कि मेरे घरके लोग, कुटुम्बके लोग धन वैभवकी वृद्धिको प्राप्त हो, उससे हित नही है।

न कोऽपि शरणं भूतो न च कश्चिद् भविष्यति।
शरणस्य भ्रमं हत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७—२॥

इस लोकमे मेरा कोई शरण नही हुआ और न कोई शरण होगा। जब पापका उदय आता है तो सगे लोग भी मुख मोड लेते है। जब तक पुण्यका उदय है तब तक पड़ौसी भी बड़ी सम्वेदना प्रकट करते है। तो इस लौकिक तपश्चरणमे हमारी शरण तो हमारा पुण्य-कर्म है और पुण्यकर्म जो बना है, बध है वह हमारे अच्छे भावोके निमित्तसे बँधा है। तब हमारे लिए शरण हमारी भली करनी है। हम अच्छा काम करेंगे तो पुण्यका बध होगा और जब उस पुण्यका उदय आयेगा तब हमको सामग्री मिलेगी। तो हमारे सुखी होनेमे हमारी करनी ही काम देने वाली है। इसलिए निरन्तर ऐसा यत्न करो कि हमारी करनी शुद्ध रहे। मेरे मनमे किसी भी जीवको दुःखी करनेका भाव न उत्पन्न हो। किसी भी जीवको मैं दुश्मन

न मान सकूं। कोई मेरा दुश्मन नही है, किन्तु मेरे कारण यदि मेरी स्वार्थसाधना न हो तो वह शत्रुताकी कल्पना कर लेता है। कोई किसीको शत्रु माने तो कही वह शत्रु नही हो जायेगा। जीव तो कोई शत्रु है ही नही। हमारी खुदगर्जी नही सिद्ध हो पाती है तो इस कारण हम दूसरोको अपना शत्रु मान लेते है। वस्तुत: हमारा कोई शत्रु नहीं है। इसी प्रकार मेरा कोई मित्र नही है। शत्रु और मित्र सबंधी रागद्वेषोको छोडकर अपने भाव शुद्ध बनाओ। तुम्हारे भाव शुद्ध होगे तो पुण्यकर्म बढेगा और पुण्य पल्ले होगा तो लोकमे सुख साता रहेगा। पुण्य खत्म है तो सुख साता नही रह सकता है। हम आपके मनमे झूठ बोलनेका इरादा न हो। झूठ बोलनेका इरादा रहे और झूठ बोल न सकें तो झूठ बोलनेका इरादा होना भी मलिन परिणाम हो गया। और जब परिणामोमे मलिनता आ गयी तो पापोका बध हो गया। पापोके उदयमे जीवको सुखसाता नही प्राप्त हो सकती। तो हमारे लिए शरण तो हमारा निर्मल परिणाम ही है और फिर कोई यदि चाहे कि मैं अमुकका रक्षक बन जाऊँ तो वह दूसरोका रक्षक बन ही नही सकता है क्योकि वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि केवल अपने भाव बनानेमे समर्थ है। दूसरोका सुधार और बिगाड करनेमे समर्थ नही है। यहां कुछ क्रोध की या रागद्वेष भावोकी बात नही कही जा रही है, किन्तु न्याय ही ऐसा है कि कोई जीव किसी दूसरेका शरण हो ही नही सकता और शरण माननेकी आवश्यकता क्या है ? मै एक पदार्थ हू, सत् हूँ तो सत् होनेके नाते ही मैं स्वरक्षित हू। मेरा कोई बिगाड नही करता। जैसे पुद्गलमे उनका कोई विनाश नही कर सकता।

मान लो कोई काठ जल गया तो काठ नही रहा, पर परमाणु तो नष्ट नही हो गये। काठ नष्ट हो जानेके बाद वह राखरूपमे आ गया या आकाशमे फैल गया। तो छोटे-छोटे अणुवोके रूपमे फैल गया। मगर वह विनाशीक तो नहीं हुआ। जो चीज सत् है उनका कभी विनाश नही होता। मैं भी सत् हू, मेरा भी कभी विनाश न होगा तो फिर किसी दूसरे की शरण ढूढनेकी आवश्यकता क्या है ? मैं हू और परिणमनशील हूं, स्वय रहने वाला हू। स्वरक्षित हूँ, इसको भय माननेकी जरूरत ही नही है। पर यह जीव जो निरतर भयकी वासनाएँ बनाए है, इसका कारण है परपदार्थोंमे मोह बुद्धिका होना। मरते समय यह जीव शरीरसे अलग होता है इसका दुःख मरने वाला नही करता, किन्तु हाय यह मेरा मकान छूट जायगा, मेरा यह घर छूट जायगा, ऐसा परपदार्थोंके छूटनेका गम उसे बना है और इसी कारण वह दुःखी है। सो ऐसा जीवनमे यत्न करो कि मरणके समयमे मोहका परिणाम न जगे। देखो मरते समय तो दो मिनटमे ही सर्व खेल समाप्त होनेको है, सब कुछ छूट जानेको है। ये चीजें जबरदस्ती छूट जायेंगी, यदि इनके रहते हुए हम अपने भावोसे इन पदार्थोंको

छोड दे तो कुछ महत्त्व भी है । जबरदस्ती पदार्थ छूट जायें और फिर उससे अपनेको त्यागी मानें तो ये सब मोहकी बातें हैं । त्याग तो तब है जब खुद अपनी इच्छासे सारे पदार्थ त्यागे जायें । जगत्मे कोई भी पदार्थ मेरी शरण नही है—यह बात युक्तिसे भी सिद्ध है और अनुभवसे भी सिद्ध है । इस युक्तिसिद्ध अपने आत्माको क्यो नही देखा जाता ? कोई भी पुरुष मुझे न तो मरणसे रोक सकेगा और न मेरे दुःखोमे कुछ मदद दे सकेगा । इस ही भवमे देखो कितनी बार तो असाधारण रोगी हुए, उस समय कुटुम्बके लोग बैठकर बाते तो बहुत करते रहे, प्यार भी जताते रहे, मगर मेरे रोगको बांटनेमे समर्थ नही हो सके । अभी देखो आप कुछकी कुछ कल्पनाएँ बनाकर चित्तमे दुःखी होते हो और तुम्हारे बाल-बच्चे हस खेल रहे है । उन्हे कुछ भान ही नही है । तो अपना दुःख अपने सिर रहता है और बच्चोका दुःख बच्चोके सिर रहता हे और ससारमे भटकना बना तो अकेले ही भटका करते हो और संसारसे यदि मुक्ति मानते हो तो मुक्ति माननेका उपाय भी आप अकेले ही कर सकते हो । आपका आप ही अपने लिए सर्वस्व है, यह किसी दूसरेका शरण नही हो सकता है । ऐसा वस्तुका स्वतत्र स्वरूपास्तित्व देखकर व्याकुलताओको, छल कपटोको खोटे परिणामोको अपन लोग त्याग दे तो इस त्यागके माहात्म्यसे अपने आपमे सच्चे सुखका विकास होगा । अब मैं शरण के भ्रमको समाप्त करके स्वय शरणस्वरूप निजब्रह्ममे ही ठहरकर अपने आपमे ही सुखी होऊँ ।

न भूतो न भविष्यामि कस्यचिच्छरण कदा ।
कर्तृत्व वारुणी क्षिप्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७–३।।

जैसे कोई मेरी शरण न हुआ और न होगा, इसी प्रकार मैं भी किसी दूसरेका शरण नही हू और न हो सकूंगा । छोटे बच्चेका जब मरनेका समय हो तब गोदमे बैठाये हुए है, देखते जाते है कि बच्चा मरने वाला है, पर उस बच्चेको बचानेका उपाय करते हैं । किसमे बच्चेको बचानेकी सामर्थ्य है ? कोई दूसरेकी शरण हो ही नही सकता । यदि मान लो कि आपने किसी दूसरेको बहुतसी सहायता दी, जिससे उसका बहुतसा स्थिरीकरण हुआ, उसे सुखसाता मिला तो भी आपने उसे अपनी शरण नही दी, किन्तु उसका पुण्यका उदय था तो कोई न कोई शरण उसे मिल ही जाता है । आपके छोटे बच्चे जिनको आप इतने चावसे देखते है, उनसे प्रीति करते है, उनको खुश करनेका यत्न करते हैं जिसपर यदि आप ऐसा समझते है कि मै बच्चोको पालता हू, बच्चोकी रक्षा करता हूं तो यह आपका ख्याल गलत है । उन बच्चोका इतना उत्कृष्ट भाग्य लगा हुआ है कि आप जैसे दसोको उनकी गुलामदमे रहना पडेगा । मैं किसीको शरण नही हू और न किसीका शरण होऊँगा । यह मोह महामद अनादिकालसे जीव पिये हुए है और खोटी खोटी गतियोमे भ्रमण कर रहा है । यह मोहका

नशा कैसे मिटे ? इसका उपाय है ज्ञान । खोटे ध्यानसे इस जगत्मे शाँति न मिलेगी । कई वर्षोंसे यही धूमधाम श्राप कर रहे हो, पर कभी शाँति मिली हो तो बतलावो ? यदि एक-एक वर्ष एक एक दिनको श्राप जोडते रहते तो कितनी शाँति श्राप देखते । पर शाँति तो कभी नही हुई, कभी कुछ कल्पनाएँ हैं, कभी कुछ कल्पनायें है । शाँति पानेका मार्ग दिखने वाली यह प्रभुकी सूरत है जिसके हम दर्शन करने श्राते है । जिस मूर्तिके हम दर्शन करते है उस मूर्तिसे हमे यह शिक्षा मिलती है कि यदि हमे शांत होना हो, सुखो होना हो तो बाह्य श्राड-म्बरोके परिग्रहको तजकर उसके समान ही अपने श्रापमे ज्ञान बनाश्रो श्रौर उस ज्ञानको बनाए रहो तो तुम्हे शाँति मिलेगी । ऐसी श्रावाज मानो मूर्तिकी श्रोरसे श्राए तो समझो कि हमने श्रब प्रभुके दर्शन किये अन्यथा यह भी एक श्रम है कि नहाया, मंदिर श्राये, थोडासा झट-झट बोल गए । भजन करनेमे भी श्रच्छा नही लगता, जब कोई चिंता सवार हो, जगत्को धुनि बनी हो तब वहाँ कोई मार्ग नही सूझता । कर्तृत्वकी बुद्धि इन जीवोके साथ निरंतर लगी रहती है । मेरा यह किया, मैंने मदिर बनवाया, मैं मित्रोंकी श्रच्छी व्यवस्था करता हूँ, मेरा घरके लोग बडा हुक्म मानते है—ऐसी कितनी ही बातोका ख्याल करके यह जीव व्यर्थमे दु:खी हो रहा है । मैं कभी भी किसीका शरण नही हू श्रौर न हो सकूंगा । फिर परपदार्थोंके करनेकी तो बुद्धि लगाए रहना क्या विवेक कहला सकता है ? श्ररे मनुष्य जन्म पाया, संयम से रहो, शुद्ध खान-पानसे रहो, किसी जीवको मर्मभेदी वचन न बोलो । यह जीभ मिली है तो इस जीभका सदुपयोग करो; सरस, मधुर, हितकारी वचन बोलो । श्रापसे दूसरे जीवोका भला न हो सके तो पाप करनेकी चेष्टा तो न करो ! भाव पवित्र बन गये तो स्वय ही ससार श्रापकी श्रोर झुकेगा । चाहो तो यह कि जैसा चाहे भाव बना रहे । हमारे विषयमे श्रानन्द न छोटी श्रौर थोडी टीमटामके साथ श्रपने धर्मका रक्षक बनाया तो उससे क्या दु:ख मिट सकते है ? दु:ख दूर होनेका उपाय मात्र सम्यग्ज्ञान है । तो भैया, ज्ञान सीखो, यह देहातका ग्राम है इसमे कुछ ऐसा काम नही है कि रात-दिन श्राप धधेमे ही जुटे रहो । दुकान चलाने को बहुत टाइम पडा है । दुकानदारी करो, पर बाकी समय तो श्रपना श्रच्छे उपयोगमे लगावो । पर उपयोग तो दूर रहा, बाकी समय शायद गप्पोमे ही बीतता हो, लडाईमे बीतता हो । श्रपने कामसे काम रखो । जिससे श्रपना सम्बध है वह काम करो या तो श्रापकी कमाई होवे तब बोलो या श्रापका धर्म सद् है वहाँ बात बोलो । फाल्तू बातें बोलनेसे गप्प-सप्पमे समय बितानेसे यहाँ वहाँकी दूसरोकी निन्दा करनेसे कौनसा श्रापको लाभ हो जायेगा सो बतलावो ? तो व्यर्थके वचन बोलनेकी क्रियायें, चेष्टायें करनेसे हित नही है । इसलिए धन कमाश्रो, खूब कमाश्रो, जितना बन सके उतना कमाश्रो, हम मना नही करते । कमाईके काम

के अलावा जो समय बचता है उस समयका आप सदुपयोग क्यो नही करते ? गप्पो सप्पोमे अपना समय न लगावो सो यह मनमे निर्णय रखो कि मै किसीका शरण हुआ और न होऊँगा। मुझे कोई शरण न मिला और न मिलेगा। इस ससार वनके अन्दर हम आप केवल अकेले ही घूमते फिरते है। कोई सुयोगवश एक घरमे चार छः जीव इकट्ठे हो गये। अचानक ही कुछ बुद्धिपूर्वक इकट्ठे नही हो गये कि अगर मै ऐसे यत्न करके झेले न होता तो यहाँ न पैदा होता। जो जीव आ गए, आ गये, उन जीवोसे आपका रिश्ता नही है। आ गये है, बिखर जायेंगे। तो यो दुनियाको असार जानकर यहाँकी प्रीतिको छोडकर अपने ज्ञानकी प्रीतिमे लगावो तो यह ज्ञानस्वरूप ही आपका शरण होगा।

बन्धुर्मित्र सुतो दारा भृत्यः शिष्यः प्रशंसक ।
एभ्यो मे न हित शक्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–४॥

बधु, मित्र, पुत्र, स्त्री, नौकर, शिष्य, प्रशसक आदि किन्ही भी जीवोसे मेरा हित नही हो सकता है। भाई मेरा क्या हित करेगा ? बंधु तो एक बधन है। बधुमे मेरा हित नही है, राग या द्वेषरूप बधनका वह कारण है। कहो उससे मन मिल जाय तो विकट राग हो जायगा। उससे यदि भाव न मिले तो विकट द्वेष हो जायगा। भाई-भाईसे बढकर प्रेम कही नही हो सकता है और भाई-भाईसे बढकर द्वेष कही नही हो सकता है। भाई तो एक बधन है। बधुसे हित कैसा ? अनुराग हो गया तो हित नही और द्वेष हो गया तो हित नही। बधु शब्दका सरल अर्थ है— बधयति योजयति स्वहिते इति बधु ।' जो अपने हितमे लगावे, उसे बधु कहते है। दूसरा कोई जीव मुझे अपने हितमे कैसे लगा सकता है ? हित तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे है, सो भला यह रत्नमय आत्माकी परिणति है। सो मेरी आत्माकी परिणतिको कोई दूसरा कैसे कर सकता है ? अभी यही लोकमे देख लो जिस किसीको क्लेश होगा उसे इष्ट वियोगका ही क्लेश होगा। उसे कोई धन वगैरा नष्ट हो जानेसे क्लेश होगा तो वह अपने चित्तमे अत्यन्त दुःखी है, उसको समझाने वाले बहुत-बहुत समझाते है, किन्तु उसकी समझमे नही बैठता। रिश्तेदार भी बहुत समझाते है जितना हो सकता है उतना सहयोग भी देते है, पर दूसरोके हृदयकी व्यथाको कोई दूसरा नही मेट सकता। और व्यथा भी कुछ नही, केवल अपना भ्रम है परवस्तुका लगाव है, सो उस भ्रम के कारण यह जीव दु.खी होता फिरता है। अपने हितमे लगाने वाली आत्मा ही है। इस कारण बधुसे हित न रखो। मित्र किसे कहते हैं ? 'माति रक्षति विपध्ययः इति मित्र ।' जो विपत्तिसे बचावे उसे मित्र कहते है। अब विपदाएँ जीव पर क्या हैं ? केवल अपने भ्रमका रागद्वेषका भाव विपदा है, और कोई विपदा इस जीव पर नही है। जो जीव बड़ी चिन्तामे

बैठा है वह कहीं दूसरे पदार्थोंके कारण विपदाओंसे ग्रस्त नहीं है, किन्तु अपने ही भाव खोटे बनाकर अपनेको विपदाओंमे डालता है । दूसरा कोई हम पर विपदाएँ नही डाल सकता । हम खुद अपनेमे ख्याल बनाकर विपदाएँ डाल लेते हैं । सो मैं ही अपनेको विपदाओंमे डालता हू और मैं ही सद्विचार करके अपनेको विपदाओंसे बचाता हू । मुझे विपदाओंमे डालने वाला कोई दूसरा पुरुष नही है । मैं ही मेरा मित्र हू । लोग यह दृष्टांत दिया करते है कि पुत्र तो रक्षक बनेंगे । पुत्रोंसे बडी-बडी आशाएँ रखते है । क्या पुत्र उसके दु ख परिणमनको मिटा सकते है ? पुत्रको यदि उसकी प्रवृत्ति सह जाय तब तो बाधक नही बनता है और यदि न सुहा जाय तो उल्टा क्लेश देनेको तैयार रहता है । सुतका अर्थ है—'सुइते इति सुत· ।' जो उत्पन्न किया जाता है, उसे सुत कहते है । आपका ज्ञानानन्दघन अमूर्त आत्मा किसको पैदा किया करता है ? आकाशवत् निर्लेप अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मा क्या शरीरको, पुत्रको उत्पन्न कर सकता है ? नही । आत्मा अपने ही सस्कारोको रचा करती है, इस कारण आत्माका सुत आतमा ही है और इस अपने सुतसे तो अपना हित सम्भव है, पर बाहरके जीवोसे जिन्हे पुत्र मान रखा, उनसे अपना हित सम्भव नही है । सुतसे हितकी क्या आशा रखनी ? इसी प्रकार सस्कृतमे दाराका अर्थ स्त्री है । स्त्रीका नाम दारा है । दारासे भी क्या हित है ? दारा शब्द का अर्थ है—'दारयति भेदयति इति दार॰ ।' जो भेद करा देवे उसका नाम दारा है । अब किसका भेद करा देवे ? यह अपने आपसे अर्थ लगा लो । जो भाई-भाईमें भेद करा देवे उसका नाम दारा है । विवाह होनेके बाद फिर भाई भाईमे राग नही रह पाता । अरबो भाइयोमे विरला ही कोई भाइयोका जोडा ऐसा होगा कि स्त्रीके होते हुए भी भाई-भाईमे प्रेम बना रहे । विवाह होनेके बाद भाई-भाईमे प्रेम नही रह सकता है । इसी कारण स्त्रीका नाम दारा है । जो भाई-भाईमे भेद कर दे वह दारा है । अच्छा अब अपने सम्बंधमे अर्थ लगाओ । जो विभावोमे भेद करा देवे उसका नाम दारा है । मेरा ज्ञानघन शुद्ध स्वरूप और राग द्वेषादिक विभाव इसमे भेद करा देवे, इसको जुदा-जुदा समझा देवे ऐसी परिणतिका नाम है दारा प्रज्ञा, भेदविज्ञान । सो प्रज्ञा ही मेरा हित कर सकनेमे समर्थ है । पर यह लौकिक दारा, स्त्री मेरा हित करनेमे समर्थ नही है । इसी प्रकार भृत्य याने नौकर । भृत्योसे अपना सम्बध हो सकता है क्या ? वे भी परपदार्थ है । उनसे मेरा सम्बन्ध कैसे ? भृत्यका शब्दार्थ है—'भरत-विशेषणानि इति भृत्यः ।' जो दूसरोका भरण-पोषण करे, उसका नाम भृत्य है । दुकानमे जो मुनीम आदि लगे है, वे उस धनी परिवारका भरण-पोषण कर रहे है । जो परिवारका भरण पोषण करे उसका नाम भृत्य है । मेरी आत्माका भरण करने वाला कोई दूसरा नही है । मेरी ही आत्मा मेरी आत्माको पोषित कर सकती है । तो यह मैं आत्मा ही अपने लिए

हितकारी हू । पर लोकमे कहाने वाले भृत्य, नौकर-चाकर ये मेरा हित करने वाले नही है । फिर भी कोई मेरा हित करनेमे समर्थ नही है । शिष्य कहते है—'शिष्यते हिते इति शिष्यः ।' जो हित करना अपनेसे सीखे उसका नाम शिष्य है । तो परमार्थसे मेरे हितकी बातको मैं ही सीख सकता हू । दूसरेके हितकी बातको वे दूसरे ही सीख सकते है । कोई किसीको हित सिखा नही सकता है । परजीव मेरा हित क्या करेंगे ? वे तो अपने आपके हित करने अथवा अहित करनेके भाव बनाते है । मेरा हित करनेमे मैं ही समर्थ हूं । इसी प्रकार प्रशंसक लोग मेरा क्या हित कर सकेंगे ? जो प्रशंसा करे उसका नाम प्रशंसक है—'प्रशंसेण ससते इति प्रशसक ।' जो बहुत अधिक रूपसे प्रशसा करे, उत्तम निरूपण करे उसका नाम प्रशसक है । तो दूसरा जीव यदि कोई प्रशसा करता है तो उस प्रशंसा करने वालेसे मेरा हित तो दर रहा, उल्टा अहित ही होता है । मैं अपने गुणोको भूल जाऊँगा और यथा तथा विचार बना डालूंगा । और प्रशंसा रुच जानेके कारण बडवारीमे लग जाऊँगा । प्रशंसकसे मेरा कोई हित नही है । मेरा प्रशसक तो परमार्थसे मैं ही हूं । मैं तो अपने अनुभवके द्वारा अपने गुणोसे ज्ञानरसका स्वाद लू तो यही मेरी सच्ची प्रशंसा है । बाहरी प्रशंसकसे मेरा हित नही है । तो इन सबसे हितकी भावनाओको त्यागकर मैं अपने आपको ही अपना हितकारी समझू और अपनेमे अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ ।

मृत्यौ सत्यां न यास्यन्ति केऽपि ये रागदर्शिनः ।
केभ्यः कुर्यामसदध्यानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-५॥

जितने भी रागके दिखाने वाले है, मृत्यु होनेपर मेरे साथ न जावेंगे । पति पत्नी पर कितना अनुराग दिखाता है ? पर पतिके साथ पत्नीकी आत्मा क्या जायगी ? पिता पुत्र पर कितना भी अनुराग रखे, कदाचित् पुत्रकी मृत्यु हो जाय तो पिताकी आत्मा क्या पुत्रके साथ जाती है ? पुत्र कितना ही अनुराग पिताके साथ दिखावे, पर क्या पिताके मरने पर पुत्रकी आत्मा साथ जाती है ? कितना भी रागदर्शी हो, मृत्यु होने पर कोई साथ नही जाता है । बल्कि एक कथानक है कि एक स्त्री अपने पतिसे बडे प्रेमकी बातें किया करती थी कि आपके जीवनके बिना तो मेरा जीवन ही नही है । एक बार पतिने सोचा कि पत्नीकी परीक्षा करें । रात्रिकों भोजन करने वाली जातिके लोग थे । जब रात्रिको नौ-दस बजे तो अपनी श्वांसको रोककर मरनेका ढंग बनाकर पैर पसारकर मरनेका स्वरूप दिखा दिया कि हम मर गये । अब १० बजे भोजन करनेको बुलाया तो बच्चा बोला कि पिताजी मर गये । वहां जाकर स्त्रीने देखा तो पतिदेव मरे पडे थे । अब स्त्री सोचती है कि यह तो १० ही बजे रात्रिको मर गये और अभीसे रोवें तो लोग जुड जावेंगे और सारी रात्रि रोना पडेगा । अभी हल्ला

न करूँ। पहिले जो यह खीर बनाकर रखी है, खा पी लू, फिर सोकर ५ बजेसे रोना शुरू करूँगी। जो बनाया था; खूब खाया, खूब सोई। सुबह ५ बजेसे रोना शुरू किया। लोग जुड गये। सब समझाते कि रोनेमे क्या लाभ है ? इनको जल्दी मरघटमे ले चलो सो वह तो पैर पसारकर मरा था। अब दरवाजेसे निकालते तो निकलता नही। बहुत यत्न किया, औंधा सीधा, तिरछा टेढा किसी ओरसे फिट नही बैठता। दरवाजेसे न निकला। लोगोने कहा कि देर क्यों करते हो ? कुल्हाडी मंगावो और दरवाजेको काटो फोडो। सो दरवाजा फोडनेको पंच लोग कहते हैं। तो पच लोगोसे स्त्री कहती है कि ये तो मर ही गये, मैं विधवा हो गई, मेरे कमाने वाला कोई रहा नही सो इसको बनवायेगा कौन ? इसमे २०० रुपया लगेंगे। ये तो मर ही गये हैं, इनको जलानेके लिए ही जा रहे हो, सो इनकी टाँग काट लो, यहाँ नहीं काटते तो वहाँ तो जलेगा हो। सो कुछ नये विचारके लडके लोग थे। उनकी समझमे आ गया कि मरे हुएको क्या है ? टाँग तोड देना ही अच्छा है। दरवाजेका काटना ठीक नही है। कुल्हाडी मंगायी। जब कुल्हाडी सामने आ गयी तो अब मरे बननेसे तो काम नही चलेगा। सो धीरे-धीरे अगडाई लेकर जिन्दा होनेका ढंग दिखा दिया। लोग सब खुश हो गये कि यह जिन्दा है। अब सब लोग चले गये। अब दूसरे दिन उसने समझ लिया कि स्त्री कितनी प्रीतिकी बातें करती थी, अब वे सब बातें कहाँ चली गयी ? यह पति पत्नीका प्रेम कब तक है जब तक वासना सरती है, नहीं तो देखो विवाह होनेके दो चार साल बाद तक बडा प्रेम रहता है और फिर ४-५ साल गुजर जानेपर प्रेम नही रहता है। कोई किसीसे प्रेम नही करता है। सब अपना-अपना प्रेम करते है। जितने ये राग दिखाने वाले जन हैं ये सब कोई भी मरण होनेपर मेरे साथ नही जाते। फिर मैं किनके लिए खोटा ध्यान करूँ। खोटा ध्यान करनेका फल परिवारके लोग, मित्रजन न भोगेंगे। मेरे ध्यानका फल तो खुदको ही भोगना पडेगा। 'को वा कुर्यामसध्यानम।' किनके लिए मैं खोटा ध्यान करूँ। कोई भी आत्मसयोगके समयमे मेरी परिणतिके साथ नही परिणमता। जैसी मेरी इच्छा हो, शत प्रति-शत वैसी ही इच्छा दूसरोकी हो जाय, ऐसा कही मिलेगा नही। हो हो नही सकता। सब अपने अपने राग और कषायके अनुसार परिणमते है। जीवनमे भी तो लोग मेरे साथ नही चल रहे है। जैसा मैं चाहूं तैसा लोग चलें ऐसा तो जीवनमे भी नही हो रहा है। मरने पर मेरे साथ कोई जायगा यह बिल्कुल असम्भव बात है। मेरे साथ जावेगा तो मोह राग करके जो हमने अपना बुरा सस्कार बनाया, वह साथ जायगा, और उस संस्कारके कारण जो कर्म बध गए, वे कर्म मेरे साथ जायेंगे। और अगले भवमे खोटे कर्मोंके उदयका फल ही हाथ आयगा। फिर मै किनके लिए अपना खोटा ध्यान करूँ। इस खोटे ध्यानके फलका असर

दूसरो पर नही होता । मैं किसी दूसरेका बुरा विचार करूँ तो मेरे बुरा विचारनेसे उस बुरा हो जायगा ऐसा नही हो सकता है । बल्कि बुरा विचार करनेसे दुर्विचारका असर मुझ पर ही होगा । तो विचार बनाने मात्रसे मेरा कल्याण होता है और विचार ही बना अकल्याण होता है । तो मैं अपने शुद्ध विचारोको बनाए रखनेकी सावधानी रखू । जिन पदार्थोंमे राग किया जा रहा है वे पदार्थ थोड़े समयको भी मेरे सहायक नही है । वे तो जड हैं, और जो चेतन परपदार्थ है वे अपने कषायके पोषणमे लगे है । वे मेरा शरण नही हैं । यदि दूसरोका विचार करके अपना ध्यान खराब न करो । अपनेमे अपने आपके ही चेतनस्वरूपका, परमात्मस्वरूपका ध्यान करके अपनी आत्माकी पुष्टि कर लो । विवेकी पुरुष वही है जो ऐसे प्रसगोके बीच भी इनमे अलिप्त रहकर अपने कल्याणकी धुन रखते है, रागद्वेषोसे परे रहते है । इन रागद्वेषोसे लाभ कुछ नही है । तो इन विकल्पोमे परे रहकर मैं अपने आपमे अपने ज्ञान रसका स्वाद लूँ और सदाके लिए संकटोसे बचूँ ।

यथात्रत्यस्य नार्था. प्रागन्यत्रे मे न केऽपि मे ।
क्व हित क्व सुख मृग्यौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–६॥

वैसे इस समय मुझ आत्माको पहले भवकी कोई चीजें मिली नही है । जिस भवसे मरकर हम यहाँ आये उस भवकी कोई भी चीज मेरे पास है क्या ? जिस घरको छोडकर आये उसकी कुछ खबर है क्या ? जिस कुटुम्बको छोडकर आये वह कुटुम्ब आपकी मदद करता है क्या ? उस कुटुम्बको तो खबर ही नही है और न आपको उस कुटुम्बकी खबर है । जैसे पहले भवके समागमकी बातें कुछ भी आज नही है तो ऐसा ही यह निर्णय रखो कि इस भवमे जो मुझे समागम मिला है इसमेंसे रच भी मेरे साथ जाने वाला नही है । ये तो सब अपने-अपने स्वार्थके साथी है । देखो मोहका विकट सकट ऐसा है कि ज्ञानकी बातें कुछ जानते भी हैं तो भी उनसे दूर नही हटा जा सकता । क्या उन्हे पता नही है कि सब अपने-अपने स्वार्थके साथी है ? लडके यदि कोई बात न मानें तो मनमे आता है और कह भी डालते है कि सब अपने अपने स्वार्थके गर्जी हैं, पर दो मिनट बाद फिरसे उन्हीमे मोह होने लगता है । ये सब अपने स्वार्थके साथी है—ऐसा कहना ज्ञानसे नही होता है, किन्तु घबडाकर होता है । ज्ञानपूर्वक यदि भेदविज्ञानकी बातें आ जायें तो इसे सम्यग्ज्ञान हो गया । कोई भी जीव मेरा साथी नही है । किन्ही भी जीवोसे मेरा हित नही है फिर मैं किनमे हित खोजूँ और किनमे सुख खोजूँ ? बडे बडे पुराणोकी बातें देख लो तो वहाँ यही दृश्य नजर आता है कि एक घरमे कहाँ कहाँसे कैसे कैसे लोग इकट्ठे हुए और कुछ ही समय बाद किस किस विधिसे लोग बिखर गये, उनका वियोग हो गया ।

पुराणोमे देखो तो यही नजर आता है और अपने गांवमे देखो तो यही नजर आता है। कौन किस गतिसे आया है? कैसा वह आत्मा है, इकट्ठे हो गये हैं। बस घरमे आने मात्रसे आप उन्हे अपना मानने लगे। प्रत्येक जीव तो सब एक-एक स्वरूप है। जो घरमे नही आया उसका भी स्वरूप मेरे ही जैसा है और जो घरमे आया उसका भी स्वरूप मेरे ही जैसा है। कुछ अतर नही है। जिन्हे आप पुत्र मानते हो, जिन्हे आप गैर मानते हो सब जीवोमे कोई अंतर नही है। रही समय पर सहयोगकी बात तो आपके पुण्यका उदय है तो पडौस वाले भी आपका सहयोग देंगे और यदि पापका उदय है तो घरमे जाया बालक भी आपका सहयोग नही दे सकता। तो आपका सहयोग आपका पुण्यकर्म है। सो अपने पुण्यका भरोसा रखो, अपनी करनीका भरोसा रखो, किसी दूसरेका भरोसा न रखो। दूसरे लोग भी तभी मददगार होगे जब आपका उदय ठीक है। असलमे तो आपका उदय ही आपकी मदद करता है और दूसरा कोई मदद करता नही है। सदा अपने शुद्ध विचार रखो, उदारता व प्रेम रखो। अभी देखो इस ही गांवमे हजारोका नुक्सान हुआ, किसीका क्या यह विचार हुआ कि पापका उदय आया था सो १० हजारका नुक्सान हुआ। यह तो जबरदस्ती हुआ और अपने मनसे ५ हजारका और दान कर दें जिससे कि पापोका एकदम क्षय हो जाय। विरले ही पुरुष ऐसे होते है कि वे विवेक रखते है। मान लो १० हजारका नुक्सान हो गया तो क्या ११ हजारका नुक्सान नही हो सकता था? पर अपने मनसे एक हजारका भी त्याग किया जा सकता है क्या? जिसको जो कुछ मिला है, क्या वह किसीके पैर पीटनेसे मिला है? पूर्वमे जो कर्म किए उससे यह प्राप्त हुआ है। यदि सुख समृद्धि चाहते हो तो यह कर्तव्य है कि अपने उत्तम विचार बनाओ। अपना हित अपने आपमे सोचो, बाहर हित न ढूंढो, बाहर सुख न ढूंढो। तुम्हे क्लेश क्या है? तुम तो सुखी हो। तुम्हारा स्वरूप ही आनन्दमय है। पर मोह बना रखा है परपदार्थोमे तृष्णा बना रखी है तो निरन्तर आकुलताओका अनुभव करते हैं। उस तृष्णाको हटावो तो तुम्हारा आनन्द अभी प्रकट है। पर यहाँ बैठे हुए तुम शरीरमे भी न हो तुम शरीरको भी भूल जावो। जो शरीर पर कपडे पहिन रखे है उनको भी भूल जावो और जो शरीरका बधन लगा रखा है उसको भी भूल जावो। और जिनमे मोह किए जाते हो उनको भी भूल जावो और अपने शुद्ध आत्मस्वरूपके दर्शन करो तो तुम यहाँ ही पूरे सुखी हो। सो अपने आपको देखो और सुखी होवो।

पास्ता दूरे पुरे वास. संगो दूरे जनैषिणाम्।
दूरे प्रशसका: सन्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७—७॥

यह नगरका निवास, जिसमे लोगोकी बडी रुचि रहती है यह दूर रहे, क्योकि नगर-

वासी जनमोहमे लिप्त है सो यह देख ही रहे हो उनके संगमे निर्विकल्पकी भावना आनी कठिन है। उनके आरामको देखकर, उनकी यश कीर्तिको देखकर स्वयमे भी वैसी आरामकी इच्छा हो जाती है। उनसे हित कुछ नही मिलता है। और ऐसे पुरुषोका भी सग दूर रहे जिनकी यश और कीर्तिकी हो सदा चिन्ता रहती है। कीर्तिकी चाहका नाम है लोकेषणा। प्रशंसा करने वाले दूर हो। किसीकी प्रशसासे आत्मामे निराकुलता नही होती। ये जीव स्वय दु.खी है। जो स्वय दु.खी है वह दूसरोंके दुःख दूर होनेमे निमित्त कैसे हो सकता है ? प्रभु स्वय आनन्दमग्न है। प्रभुके दर्शन भी न हो, किन्तु प्रभुकी मूर्तिकी स्थापना भरकी है तो यह मूर्ति दर्शन भी हमारे आनन्दका और मार्गदर्शनका साधक हो जाता है। अब किसी भी देहाती पुरुषके दर्शन करके हम अपने हितका क्या मार्ग ढूढ सकते है ? इसी प्रकार जिसे ज्ञानकी उपासनासे प्रेम नही है, किन्तु मोह कलकसे दूषित होकर इस असार दुनियामे अपने पर्याय नामको फैलानेके यत्नमे रहता है, ऐसी कलुषित आत्माओके सगमे ही क्या हितका मार्ग मिल सकता है ? प्रशसा करने वाले लोग हमारे हितके साधक नही होते, किन्तु उनकी प्रशसाको सुनकर हम अपने आगामी दुःखोको भूल जाते है। इस जगतमे हम हितके लिए उत्पन्न हुए थे इस मनुष्य पर्यायमे, किन्तु प्रशसाके व्यामोहमे आकर हम अपने हितकी बातें सब भूल जाते है और प्रशसा करता भी कौन है ? जो लोग प्रशसा करते है वे मात्र अपने कषायकी चेष्टा करते है। प्रशंसामे ज्यादासे ज्यादा कोई क्या कहेगा ? यह बडे धनी है। तो धन तो मेरा स्वरूप नही है। धनकी बडवारी करनेसे मेरी क्या बडवारी हो जायगी ? यही कहेगा कि यह बडे परिवार वाले है। तो परिवार मेरा स्वरूप नही है। उनकी बडाईसे मेरी बडाई नही होती। कोई कहेगा कि इनके बडे ऊँचे मकान है। तो मकानकी बडाईसे कही मेरी बडाई नही होती। कोई यह कहेगा कि ये बडे धर्मात्मा है, पूजन करते, पाठ करते, स्वाध्याय करते तो ऐसा कहने वालोने तुम्हारे वास्तविक धर्मको देखकर नही कहा, किन्तु ऊपरी जो बातें है, उनको आत्मा करता ही कहाँ है ? ये धर्मकी ऊपरी बातें मेरा स्वरूप नही है। धर्मकी ऊपरी बातें करते हुए भी शाँति और आनन्द हो सकता है। दुनियामे यश लूटनेके लिए, दुनियामे अपना नाम रखनेके लिए कुछ त्याग कर दिया जाता, ऐसा भी हो सकता था। बाहरी पदार्थोंके त्यागसे वास्तविक त्याग तो नही कहलाता है। वास्तविक त्याग तो वह है कि जिसमे दृष्टि समस्त पदार्थोंसे न्यारी निज ज्ञानमात्र आत्मामे लग गयी है—ऐसी दृष्टिका जिन्हे पता है वे मेरी क्या प्रशसा करेंगे ? वे तो स्वय ज्ञानके पुजारी हो जायेंगे। जो लोग मेरी प्रशंसा करते है वे मेरे स्वरूपको नही जानते है और ऊपरी बातोकी प्रशसा करते है। सो उनकी प्रशंसा सुननेसे हमारा अहित ही होगा। हित नही हो सकता है। तो प्रशंसा करने

वाले भी दूर रहे, यह अन्तरध्वनि उस ज्ञानी संत महंतके है। चाहे गृहस्थ हो, चाहे योगी हो, जिसने अपने स्वरूपको देखा, सर्व परपदार्थोंसे न्यारा अपने ज्ञानमात्र प्रभुको देखा उसकी यह अन्तरध्वनि है कि मुझे घरके निवाससे प्रेम नही। घरमे रहते हुए भी घरसे विरक्त रह सके ऐसा ज्ञानका ही प्रताप है। मैं घरके निवासको नही चाहता, नगरके निवासको नही चाहता, न मैं लोगोके संगकी चाह करता हू। मैं तो केवल अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिको चाहता हू। ये लोग मेरे कुछ शरण नही होगे। जब संकट आयेंगे तब ये मुझे बचा न लेंगे। उनकी खुदगर्जी उनके पास ही रहेगी। पदार्थोंका स्वरूप ही खुदगर्जी लिए है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थसे नही आता है। यो मेरा स्वरूप सबसे न्यारा है। इस स्वरूपमे ही मैं रहू। अन्य किन्ही प्रसंगोमे न रहूँ। सम्बन्ध तो सुखी होनेके लिए मिलाया जाता है, पर यह जगत्का कैसा विकट सम्बन्ध है कि यह सम्बन्ध सुखी होनेका कारण नही है प्रत्युत दुःखी होनेका ही कारण है। मान लो इन मिले हुए समागमोमे खूब आसक्तिसे मिल जुलकर भी रहो तो अतमे क्या मृत्यु न होगी? ये लोग छोडकर जाना न होगा? किस गतिमे जायेंगे? वहां क्या बीतेगा? इसका भी ख्याल रखना चाहिए। ऐसा नही है कि मेरे मरनेके बाद ये रहेंगे नही। जगत्मे जितने भी पदार्थ है वे सब सदा रहेगे। जो है उसका नाश नही होता। वैज्ञानिक लोग भी इस बातको सिद्ध करते है कि जो भी अणु हैं, जो भी सत् है उसका नाश कभी नही होता। जैसे आंखो दिखता है ना कि जो लकडी है उसको जला दिया तो कोयला बन गया। उसका नाश तो नही हुआ और जल गया, राख हो गयी तो कुछ भी अभाव नही हो गया। राख उड गयी, परमाणु बिखर गये, फैल गये, अभाव फिर भी नहीं है। अपने आपकी भी बात विचारो कि मैं भी हू या नही हू। यदि मैं नही हू तो इससे बढकर और बात क्या होगी? मैं भी नही हू तो अच्छा है। सुखी दुःखी होनेका स्वरूप ही नही तो सुख दुःख कैसा? हू मै और इसमे सकट है, सुख है, दुःख है, उपद्रव है, तरंगे हैं। जिसमे यह सुख दुःख है, जिनमे ये तर्क वितर्क है यही तो मैं हू। मै हू इसलिए मेरा विनाश कभी नही होगा। इस शरीरको छोडकर जाऊँगा तो भी रहूगा। क्या रहूगा? जैसे वर्तमानमे इस शरीर रूप हू तो आगे भी किसी शरीररूप रहूँगा। किस शरीररूप रहूगा? कैसा रहूगा? यह इस आजके भावके अनुसार बात है। सो इस जगत्मे यह सब चांदनी जो दिख रही है, चमक वैभव दिख रहा है इसमे राग हो गया तो इसमे कल्याण नही है। बडी संभालका यह अवसर है। यदि इस मनुष्यभवमे सभल गये तो एक शरीर सभल जानेसे संभलते संभलते बढते जायेंगे और यदि कुछ मनसे ढीला कर दिया और भोगोमे आपत्तियोमे बह गये तो बहते ही चले जायेंगे। इसलिए अपनी संभालका उद्यम हो, मनमे लालसा न आये और अपने स्वरूप

के दर्शन करके अपने आपमें सुखी होनेका यत्न करो ।

सुख सत्त्व हितं तश्र तेभ्यः किञ्चिन्न वर्तते ।
न च वत्स्यामि तत्राहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-८॥

इन बाह्यपदार्थोंसे मुझे सुख है क्या ? यदि मुझे सुख हो तो बाह्य पदार्थोंमे लगूं । इन बाह्यपदार्थोंको हृदयमे लगाकर परीक्षा करके देख लो, सुख कैसे कैसे है ? कुछ आह्लाद रूप परिणाम हो, कुछ आनन्द हो उसे सुख कहते है । आह्लाद और आनन्द इन बाह्यपदार्थों मे कहां रखा है ? ये दिखने वाले बाह्यपदार्थ अचेतन है, जड है । इनमे ज्ञान और आनन्दका मादा ही नही है । मे तो रूप, रस, गंध, स्पर्शके पिंड है । इनसे मेरा हित नही । क्या इनमे मेरा सत्त्व है, बल है, शक्ति है ? मेरा बल मुझमे ही तन्मय है । ज्ञानका बल होना, श्रद्धाका बल होना, चारित्रका बल होना—ये बल मेरेमे ही रहते है, बाह्यपदार्थोंमे यह बल नही होता है । लोग बाह्य पदार्थोंमे प्रतीक्षा करते है, अपना बल बढानेका । मेरा बडा बल है, मैं बलिष्ठ हू, मेरे पास इतनी सेना है, इतना वैभव है, मै इतने बल वाला हू, मेरे इतने बलके आगे दूसरे क्या करेंगे ? इस प्रकार अन्य पदार्थोंमे बलका अभिमान रखकर, बलका भ्रम रखकर जगत्के जीव व्यर्थ ही दु:खी होते है । मेरा बल किन्ही भी बाह्यपदार्थोंमे नही रखा है । मेरा बल तो मेरे गुणोका बल है । जो अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण गुण मुझमे है, उनका ही मुझमे बल है । सो अपने ही आपके बलका भरोसा रखो और बाह्यपदार्थोंका बल प्राप्त करनेकी आशा न रखो । स्वभावमे मग्न हो जाते है, तो हमारा बल हममे ही प्रकट होता है । इस बलसे ही सभी लोग ज्ञाता बन जाते है । । और ऐसे अनन्त असीम आनन्दके भोक्ता हो जाते है कि जिस आनन्दको कभी चाह हो नही सकते है । यह अपना बल क्या परकी आशा रखनेसे बढ गया ? मेरा बल मेरेमे ही आनेसे बढ गया । परकी आशा रखनेसे तो यह बल घटता है । सो इस बलके लिए भी मैं दूसरोकी आशा न रखूं । क्या मेरा हित, कल्याण दूसरोमे है ? मेरा हित निराकुलता है, और निराकुलता कहां है ? मोक्षमे है, मुक्तिमे है, अपने इन विकल्पोसे छुटकारा हो जाय, ऐसी स्थितिमे ही अपना हित है । विकल्पोमे हित नही है, किंतु मोहके भावोमे यह जीव ऐसा रगा हुआ है कि इसकी तो यह गांठ बन गयी है । अपना हित, अपना सुख अपने परिवारमे ढूंढते है । औरोमे, परिवारमे सुखका भ्रम करनेसे इसको समय-समय पर नाना सकट आते रहते है । जिन सकटोको यहाँ देखा जा रहा है । दु:खी रहने पर भी यह मोह करनेकी आदतको नही छोडता । जितने क्लेश है ये सब मोह करनेसे है । अपने घरमे जो जीव इकट्ठे हो गये उनको मान लिया कि ये पुत्र है, ये फलां है । घरमे आये हुए लोगोको मान लिया कि ये मेरे है । फिर उनमे मेरा है कौन ? कोई नही ।

आपका मोह पुत्र बन रहे हैं। तो आप जिसे पुत्र मानते हो। कभी कोई बात बिगड जाय, कभी कोई बात कहनेसे बिगड जाय, चित्त पुत्रोमे न रहे तो वे पुत्र आपके पुत्र नही रहते। पुत्र क्या दुश्मनसे भी अधिक हो जाता है ? यदि किसी पुत्रने आज्ञाको भग कर दिया तो आप उसे देखना तक नही पसन्द करते। तो कौन पुत्र है ? आपका मोह है तो आपका पुत्र है। मोह है तो वहाँ आपका कुछ भी नही है। पुराणोमे आप पढते होगे कि कोई पुरुष साधु हो गया। उसके बड़े लडकेने छोटेको ले जाकर मुनिजी के सामने पटक दिया और कदाचित् छोडकर चला जाय। जिनके सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया ऐसा पुरुष क्या मान सकता है कि यह मेरा पुत्र है ? तो जब तक अज्ञान है, मोह है तब तक इस जीवको यह आत्मा बडा प्रिय दिखता है और विवेक हो जाय तो फिर इस दुनियासे प्रीति नही हो सकती। इन बाह्यपदार्थों मे न कोई सुख है, न सत्य है, न हित है, फिर मैं उनमे क्या करू ? अर्थात् अपना उपयोग किसी परपदार्थमे न लगाऊँ। आप स्वय ज्ञानमय है, आनन्दनिधान है, अपने आपकी दृष्टि देते हो तो यहाँ इतनी सिद्धि बढती है कि अनन्त भवोके बंधे हुए कर्म कट जाते है। पापकर्म पुण्यरूप बध जाते है और पुण्यमे आकर थोडा रस हो तो अधिक रस बन जाता है। एक अपने आपकी दृष्टि करनेमे इतना गुण है कि जिसके प्रतापसे इस लोकके वैभवका सुख भी आप पाते है और परलोकके आनन्दको आप पायेंगे और मुक्तिका मार्ग भी आप पायेंगे। तो इन लौकिक वैभवोमे न बसूं, इनसे दूर होकर मै अपने आपके स्वभावमे रहूँ, अपनेमे स्वय सुखी होऊ।

दु.ख सुख विपत्सम्पत्कल्पनामात्रमेव तत्।
किं भिन्नं खेदद कल्पै स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७—६॥

दु.ख है, सुख है, विपदा है, सम्पत्ति है—ये सब कल्पनामात्र है। आपके पास एक कांचका टुकडा हो और यह कल्पना बन जाय कि यह तो रत्न है तो आप बडा गौरव मानेंगे कि मै धनी हू। और हाथमे यदि रत्नका टुकडा रखा हो, और यह ख्याल बन जाय कि यह काच है तो आप अपनेको धनीका अनुभव न करेंगे। हाथमे हजारो लाखोका धन है, पर आपका अनुभव गरोबका है और एक कांचके खडमे रत्नकी कल्पना हो जाय तो अपनेको यह अनुभव करेंगे कि मै धनी हूँ तो सुख दु ख और क्या चीज है ? ये तो एक कल्पना-मात्र है। विपत्ति क्या चीज है ? लोगोमे यह कल्पना बन गयी है कि देख लो मेरे कहे माफिक नही चलते। अरे नही चलते तो न चलें। विपत्ति कहासे आ गयी ? अगर मोह बसा हुआ है, यह टेक पडी हुई है कि जैसा मै चाहू वैसा लोग करें तब तो मेरी शान है, तब तो मेरा अस्तित्व है और नही करते तो मै कुछ नही रहा। इतने बडे मोहके अंधकारके कारण यह

जीव परेशान है। कोई मानना हो माने, न मानना हो न माने, आप स्वयं अपने आपको मना लें। अपने आपको अपने वशमे तो कर लो। जरा-जरासी बातोको सुनकर अपनेसे ही चिगकर बाह्य असार बातोमे लग जाते है। पहिले अपनेको वशमे कर लो। आत्माकी चिता करनेसे लाभ नही है। बस जैसी यहाँ इच्छा होती है तैसा बाहरमे काम नही मिलता है तो हम अपने आपमे विपत्तियोका अनुभव कर लेते है। जरा विवेकपूर्वक तो सोचो। ये सब बाहरी समागम मेरे कुछ लगते है क्या ? उनकी सत्ता उनमे है। मेरा स्वरूप मुझमे है। वे किसी प्रकार परिणमे तो उससे मेरा क्या विगाड है और क्या सुधार है ? एक कथानकमे जैसे कहते है कि दो भाई थे। उनमे से एक भाई दूसरेसे बोला कि अपनी मंदिरकी बारी है तो हम जंगल जाकर लकडी बीन लावें और तुम मन्दिर पहुंचो। एक लकडी बीनने गया। एक मदिर गया। मदिरमे पूजा करने वाला सोचता है कि वह भाई तो किसी आमके पेडपर चढा होगा, आम खाता होगा या किसी जामुनके पेड पर चढा होगा, जामुन खाता होगा। लकड़ी बीनने वाला यह सोचता है कि वह मेरा भाई भगवानके स्वरूपके चिंतनमे आनन्द ले रहा होगा। हम यहाँ कैसे आकर फस गये। अब यहाँ यह बतलावो कि लकडी बीनने वालेको लाभ मिलता है कि मंदिरमे दर्शन करने वालेको ? जो लकडी बीनने गया उसे लाभ हो रहा है और जो मदिरमे हैं, अन्य-अन्य बातें सोच रहा है सो उसे लाभ नही मिलता। सो सुख दुःख विपत्ति सम्पत्ति सब अपने भावोसे भरी हुई चीजें हैं। बाहरी चीजोंसे विपत्ति न मानो। हम आप स्वयं ज्ञानस्वरूप है। गृहस्थीके ज्ञान प्रकट होता है तो गृहस्थीके समागममे रहते हुए भी वह संत है, मोक्षमार्गी है। इस सम्यग्ज्ञानकी कितनी अच्छी करामात है कि घरमे रहते हुए भी वह मोक्षमार्गमे चल रहा है और इसीमे इतनी भी करामात है कि वह नरक निगोदके रास्तेमे चला जाता है और ज्ञानमें कुछ लगता नही है। बल्कि अपने शुद्ध विचार बनाना है। वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना है। इतना करनेमे कौनसी व्याकुलता है ? खूब देख लो, परख लो। वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा देख भर लो तो मोक्षका मार्ग बिलकुल खुला हुआ है। पर ऐसा मोह हो जाय कि ग्रन्थ चाहे कुछ लिखें, आचार्यजन चाहे कुछ कहे और भगवान्के उपदेश चाहे कुछ हो, मगर हमे तो रागद्वेषमे ही रहना है तो इसमे मेरा नाश अवश्य हो जायगा। ऐसा कुटेव लगा हुआ हो तो यह कितनी खेदकी बात है। इनमे हटें तो अपना कल्याण नियमसे होगा।

पराधीनं सुखाभासं परकीयां कृतिं मुधा।
लब्धुं क्लिश्नाति किं स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१०॥

यह मोही जीव परके निमित्तसे होने वाले झूठे सुखको पानेकी चेष्टा किया करता है

ओर परपदार्थोंकी परिणतिको पानेकी चिता किया करता है। पर सोचो तो सही कि परके निमित्तसे होने वाला जो सुख है जैसे इन्द्रियका सुख और प्रतिष्ठाका सुख, उस सुखमे स्वयं क्या बल है ? माया रूप है, स्वयं एक विकार परिणति है, होकर नष्ट हो जाने वाला है। उस सुखकी चाहसे क्या लाभ है ? चाहो तो उसे जो सदा रहता हो।.जो मिट जाने वाला है, पराधीन है, उसकी चाहसे तो कष्ट ही है। इस जगतके स्नेहमे क्या दम है ? यह जगत् अपने आधीन नही है। अपनेसे पृथक् है। उसके स्नेहसे फायदा क्या है ?

जैसे रास्तेमे चला जाता हुआ मुसाफिर किसी चौराहे पर मिल गया, राम राम हुई, कुछ बातें हुई और चल दिये। यदि उससे स्नेह करने लगे तो वह मेरी बुद्धिमानी तो नही है। अरे रास्तेमे चलते हुए मुसाफिरसे स्नेह करनेसे लाभ तो कुछ नही मिलता है। इसी प्रकार ये ससारके प्राणी एक चौराहे पर इकट्ठे हो गये है। कोई किसी गतिसे आया, कोई किसी गतिसे आया। फिर कुछ क्षणो बाद अपने-अपने भावके अनुसार अन्य भवमे चले जावेंगे। इन प्राणियोसे स्नेह करनेका फल बडा कटुक है, केवल अतमे क्लेश ही है। इस पराधीन सुखाभासको पानेके लिए मैं क्यो क्लेश करूँ और पराधीन परकी परिणतिको कुछ बनानेकी क्यो मैं चिंता करूँ ?

यह जीव स्वय आनन्दस्वरूपको लिए हुए है। पर ऐसा ही मानकर रहे तो इसे आनन्द प्राप्त हो, किन्तु यह अपने आपके ज्ञानानन्दस्वरूपको तो मानता ही नही। इसके यह समझ बनी है कि मेरा सुख मेरे बच्चोके आधीन है। मेरा सुख घरके आधीन है, इन बातो से अपना बडप्पन समझते है। फिर बतावो मिथ्याभावसे शान्ति कैसे आवे ? जीव तो सब पूरे है, अपने स्वरूपसे भरपूर है, कृतार्थ है। प्रत्येक जीवका चैतन्यस्वरूप है। सो कितना बडा यह अपराध है कि हम अपनेको अधूरा मानते और दु खी हुआ करते है। अचेतन पदार्थ तो कोई नही दुःखी होता। पुद्गल है, जल जाय तो जल गया, उसको क्या कष्ट है ? धर्म-द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य हैं, जैसे भी हो, वे हैं और परिणमते है। मगर जीव है सब द्रव्योमे सरताज, सब द्रव्योकी व्यवस्था करने वाले है। ज्ञानमय हैं, लेकिन ये सब भूलसे अपने दुःख बना रहे है। कुछ भी हो, ज्ञाताद्रष्टा रहो और प्रसन्न रहो यही भगवान्‌का उपदेश है। जो भगवान्‌का उपदेश नही मानेगा, वह कितना ही ऊधम मचावे, जब तक पुण्यका उदय है, आखिर परिणाममे उसे क्लेश ही होगे।

भगवान्‌का यह उपदेश है कि जो भी समागम प्राप्त हुए हैं, उसमे मोह न करो। पराधीनताका सुख और प्रतिष्ठाका सुख और दूसरोकी परिणति, इनकी प्राप्त करनेकी इच्छा ही बडा संकट है। धन्य है वह गृहस्थ जिसके दुकान भी है, व्यापार भी है, अन्य और तरह

के व्यवसाय भी है, लेन-देन है, चारो ओरकी समृद्धि है, पर चारो ओरकी समृद्धिमे भी वह आसक्त नही है । वह गृहस्थ धन्य है, वह सब ज्ञानका बल है । मोही जीवको यह बात नही रुच सकती । वे तो किसी विरक्त संतको देखकर यह कहेंगे कि यह तो आधा पागल है । इसको अपनी जायदादकी खबर नही । मगर फिक्र करनेसे होता क्या है ? जब तक जीवके पुण्यका उदय नही है तब तक उसमे शांति नही है । अगर पुण्यका उदय है तो उसमे शांति है ।

एक दिन दो भाइयोमे विवाद हो गया । एक तो कहता था कि तकदीर बडी और एक कहता था कि तदबीर बडी । दोनोका यह मामला राजाके पास गया । राजाने एक कोठरीमे दोनोको २४ घंटेके लिए बंद कर दिया । तब तदबीर वाला देख रहा था कि क्या करना चाहिए ? भूख लग रही है । यहाँ देखा, वहाँ देखा, एक जगह दो लड्डू पडे हुए उसे मिले । एक लड्डू इसने खाया और थोडी देरमे उसको दूसरे भाईपर दया आयी । कहा—आखिर विवाद है, विवादके पीछे भूखा क्यो पडे रहे ? उसने दूसरा लड्डू दूसरे भाईको दे दिया । अब जब दूसरे दिन दोनो निकाले गए तो तदबीर वाला कहता है कि महाराज तद-बीर बडी है । अगर तदबीर हम न करते तो भूखों मरते । और देखो तदबीर करनेमे हमने भी लड्डू खाया और इनको भी खिलाया । अब तकदीर वाला बोलता है कि महाराज मेरी तकदीर चोखी थी तभी तो दास बनकर इन्होने मुझे लड्डू दिया । ये जगत्के जितने वैभव है सब पुण्य पापके वश हैं । यहाँ बिल्कुल व्यर्थका अभिमान है । यह सब सम्पदा पराधीन है । इस सम्पदाकी इच्छा करके मै क्यो क्लेश सहूँ ? मैं तो अपने स्वरूपका ध्यान करके अपने आपमे ही सुखी होऊँ ।

स्वच्युतेर्हेतवो भोगा अशान्तिर्भोगवेदनम् ।
नेष्टैः किमेतदर्थं ज्ञः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७—११॥

भोग आत्मासे च्युत होनेका नाम है । भोगोका और काम ही क्या है ? जिसके भोगो की इच्छा है, परकी ओर दृष्टि है तो वह अपने आपके स्वरूपको भूल जाता है । दूसर ही इसे सब कुछ मालूम होते है, दास बन जाते हैं । ये भोग आत्माको च्युत कर देनेमे निमित्त है । वे भोग कौनसे है वे है रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द । ये ५ विषय है पंचेन्द्रियके और छठा विषय है मनका । लोगोसे प्रतिष्ठा चाहे, अपनी बडाई चाहे, यह मनका विषय है । इसमे आत्महितकी बुद्धि करके रमण करना अपने चैतन्यस्वभावसे च्युत होनेकी अवस्था है ।

अपने आपके स्वरूपको छोडकर बाह्य विषयभोगोमे रमना, यह आत्मापर बहुत बडी निर्दयताकी बात है । इसमे केवल अंधकार है, इसमे विकट कर्मबंधन है, जिसके उदयमे आगे

भी बडी-बडी आकुलताएँ भोगनी पडेगी। इसलिए यह बात बिल्कुल सुनिश्चित है कि भोग हमारी विकार परिणतिके ही कारण है। जो बाह्य या अतरंग उपाधिका निमित्त पाकर बन गया वह विकृत ही तो है। अपने आपके ज्ञाननिधान इस प्रभुको न निरखकर बाह्यपदार्थोंकी आशा रखना यह सब आत्माके पतनका ही कारण है तथा भोगोके अनुभवमे केवल अशांति है।

भैया ! खूब ध्यानसे समझते जावो, जो भी आप भोग करते होगे चाहे आप स्पर्शन इन्द्रियके विषय भोग कर ले तो आकुलताएँ है, कोई रसका स्वाद लिया वहाँ आकुलतायें हें। कोई घ्राणसे सूंघ लिया वहाँ भी आकुलतायें है। किसीका रूप देखा तो रूप देखनेके कालमे भी आकुलतायें ही है। इस आत्माको विषयोके प्रसंगमे क्या मिलता है ? आकुलताएँ ही तो मिलती है। भोगसे जितने अनुभव है उनमे अशांति ही है। मेरे लिए मैं क्या चेष्टायें करू ? मैं तो ज्ञानस्वरूप हू। अज्ञानमय परिणामोको लेनेका मैं क्यो यत्न करू।

देखो भैया, जिसने अपने आपको सावधान बनाया वह है ज्ञानपरिणाम और जिसने अपने आपके होशको खो दिया वह है अज्ञान परिणाम। आरम्भ है, परिग्रह है, कुटुम्ब लगा है, आत्माके होशको खो दिया है, ऐसे ये सब अज्ञानमय परिणाम है। ज्ञानमय परिणाम वे है जिसमे महत सतोकी रुचि जगे, अपने आत्माके ध्यानकी प्रीति हो, भगवानकी भक्ति उत्पन्न हो, ऐसी जहाँ सावधानी रहती है वे सब है ज्ञानपरिणाम। मैं ज्ञानी होकर अज्ञानपरिणामो मे क्यो लगूँ ? मेरी तो केवल जानन ही क्रिया है। ये जितने भोगके ख्याल है वे सब मेरेमे भिन्न है। वे मेरे स्वभावरूप नही है। और जिन पदार्थोंके भोगनेका ख्याल बना है वे पदार्थ मुझसे अत्यन्त जुदे है। मेरा तो पुद्गलोमे अत्यन्ताभाव है। फिर ऐसे बिल्कुल भिन्न पदार्थों के लिए मैं क्या चेष्टा करू ?

अरे दुर्लभसे भी दुर्लभ जो अपने ज्ञानानद निधानकी दृष्टि है वह दृष्टि जगनी चाहिए। जिन्होने भी आनन्द पाया, शांति प्राप्त की, उन्होने केवलज्ञानके बलसे प्राप्त की। इस आत्मा का धन मात्र ज्ञान है। ज्ञानको छोडकर अन्य किसी बातमे धनकी कल्पना करनेका फल क्लेश ही है। चाहे रहना कही पडे, मगर अपनी श्रद्धासे न चिगो। अपनी श्रद्धा यथार्थ बनाओ कि मै ज्ञानस्वरूप हू। मेरा धन मात्र ज्ञान है। मेरा काम मात्र जाननका है। मेरा सर्वस्व केवलज्ञान है। जिस दिन इस भवको छोडकर जाऊँगा तो अपने ज्ञानप्रकाश स्वरूपको ही साथ ले जाऊँगा।

एक सेठ जी थे। वे इतने कंजूस थे कि वे अपने घरोकी चाबियाँ अपने ही पास रखते थे। अपने लडकोको नही देते थे। जब सेठ गुजरने लगे तो बच्चोसे बोले कि ऐ बच्चो

लो ये चाबियाँ ले जावो । यह इस घरकी चाबी है, यह उस घरकी चाबी है । बेटे कहते हैं कि पिताजी हमे चाबियोकी जरूरत नही है, आप अपने साथमे लिए जाइये । भला बताओ कि मरनेपर चाबी साथमे कैसे ले जाये ? एक अणुमात्र भी तो साथमें नही ले जाया जा सकता है । केवल एक ज्ञानस्वरूप यहाँसे निकल जाता है । तो सब कुछ यहाँसे छूटना है । अपने चैतन्यस्वरूपको ही अपना धन समझो । ऐसा सच्चा विश्वास बनाओ तो जरूर कल्याण होगा ।

भैया, सच बातकी समझ करनेमे कौनसी कठिनाई है ? कल्याण केवल भावोसे है । उसमे न मनका श्रम करना है, न वचनका श्रम करना है, न शरीरका श्रम करना है, केवल अपने भाव बनाना है । सो अपने शुद्धभाव बनाओ तो मोक्षमार्ग मिले । गृहस्थी है तो क्या यह एक धर्म नही है ? गृहस्थी भी एक धर्म है, साधु भी एक धर्म है, पर श्रद्धान् और ज्ञान है तो धर्म है, पर विकल्प किया तो कितनी ही व्यवस्थाएँ कर डालो उससे धर्म नही होता है । सो भाई इन भोगविषयोकी प्रीतिको तजो । ये विषयभोग आत्मासे च्युत करानेके कारण हैं । और उन भोगोके अनुभवके समयमे केवल आसक्ति रहती है । सो इनसे दूर रहनेकी मै चेष्टा करूँ और अपने लिए स्वय सुखी होऊँ ।

स्वय भिन्ने च कि हेयं भिन्ने काऽऽदेयता मम ।
अतर्क्यो ज्ञानमात्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–१२॥

देखो अपना आत्मा ही मात्र एक अपना है । आत्मातिरिक्त अन्य सब पदार्थ मुझसे अत्यन्त जुदा है । जो जुदा है वह छोडना है । वे तो छूटे ही हैं । आप यहाँ बैठे है तो घर चिपटाकर तो नही बैठे है । वह घर तो उस ही जगहपर पडा हुआ है । वह घर आपके साथ नही है । घरको क्या छोडना है । घरमे जो ममता बुद्धि है कि यह मेरा है, इस प्रकारकी जो भीतरमे ममता लगी है उस आशयको त्यागना है ।

भैया ! अत्यन्त भिन्न इन पदार्थोमे से कौनसे पदार्थ ग्रहण करनेके योग्य है ? ग्रहण करने योग्य तो केवल अपने आपका नित्य सदा प्रकाशमान जो सहज चैतन्यस्वरूप है वह ग्रहण करनेके योग्य है । अपनी आत्मा अपने हाथसे या इन्द्रियोसे नही ग्रहण किया जाता है किन्तु मात्र ज्ञानबलसे ग्रहण किया जाता है । ज्ञान द्वारा अपनेमे होने वाले विकार और विकल्पोको त्यागना है । फिर यह तो सिद्धका सिद्ध ही हो गया ।

यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा तर्कसे परे हू । कोई कहे कि मुझे आत्मा दिखा दो तब हम अपनी आत्माको कैसे दिखा दें ? आत्मा तो दिखती ही नही है । कोई कहे कि हमे समझा दो तब हम मानें । दूसरा कैसे समझा दे ? दूसरेकी समझकी चेष्टासे दूसरोमे समझ तो नही

उत्पन्न होती । परको परिणतिसे परमे कुछ सुधार बिगाड नही होता । तो फिर कैसे समझाया जाय ? यह आत्मा अतर्क्य है, तर्कसे परे है । हमको तो हम ही समझा सकते है । कोई किसीके समझाये नही समझता । आपके ज्ञानका जब वैसा परिणमन नही है तो आप नही समझ सकते है । जैसे कोई गलत बात बोल रहा है और आप गलत समझ रहे हैं, पर गलत बोलने वाला अपने आपको गलत नही समझ सकता, फिर वह कैसे गलती मानेगा ? यह सब सब एक कषाय ही समझिये ।

जब मेरे ही ज्ञानका उस प्रकारका परिणमन हो तो मैं समझा कहलाऊँगा । स्कूलमे मास्टर लोग कितना उपदेश देते है, पर यदि बच्चे जब अपने ज्ञानके परिणमनको उस प्रकार का बनाते है तो समझ जाते है और यदि अपने ज्ञानका परिणमन वैसा न बनाया तो नही समझ सकते है । मैं आत्मा तर्कसे परे हूँ अर्थात् स्वानुभवगम्य हूं । अपने आपको तो अपने ज्ञानके स्वरूपके विचारमे लगा दो, आखिर जानें तो कि कैसा स्वरूप है ? जाननेका क्या लक्षण है ? जाननेका ज्ञान अगर हम करते जायें तो हम आत्मामे झट लग सकते है । अहो, ज्ञानमात्र मै आत्मा हू । तर्कोंसे परे यह ज्ञानमात्र मैं आत्मा हू । इसको छोडकर बाकी सब चीजें हमसे अत्यन्त पृथक् हैं । छोडनेकी चीज क्या है ? ममता । घरको छोड़ें और ममता न छूट सके तो यह छोडना नही कहलाता है । घरमे भी रहते है और ममता नही है तो घरमे रहना नही कहलाता है । घर ही एक बधन है और ममतासे ही तो सारे संकट है ।

भैया ! जिसको अपने आप पर दया हो, अपने आपको सुखी रखना हो तो चुपचाप, कोई किसीके जाननेकी बात नही है, कोई घोषणा करनेकी बात नही है । केवल अपने आपमे ही विचारते हुए, अपने आपमे सोचते हुए भीतरकी ममताको निकाल दो । घर वही है, वैभव वही है, सभाल, व्यवस्था वही है, केवल एक ज्ञानके विकासमे अंतर हो गया । आप यदि यह मानते जाओ कि यह मेरी विभूति है । उसमे जो अडचनें आ जाती तो ये दुःखी हो जाते है । जब यह समझ लिया कि मेरा कुछ नही है तो दुःख नही होता है । जैसे जब तक लडकीकी शादी नही होती तब तक वह लडकी अपने घरको अपना समझती है और बापके घरमे अगर कुछ हानि हो गयी तो उस लडकीको भी चिन्ता हो जाती है और जब शादी हो गयी तो वह लडकी समझती है कि मेरा घर तो वहां है । सो बापके घरमे रहते हुए भी वहांकी कोई चिंता नही रह जाती है । मान लो पिताके यहां कुछ बरबाद हो गया तो उस लडकीको कोई विशेष चिन्ता नहीं होती है ।

सो भैया, जब जहाँ जैसी ममता है तब उसका वहाँ सकट है सो बाधा कहिए, बधन कहिए वह केवल ममता है । ममताके कोई हाथ पैर नही है । कोई पौद्गलिक स्वरूप नही

है। केवल एक कल्पनाकी बात है और देखो हमारे घरमे हमको क्लेश नही होते कि यह मेरा घर है। दूसरोके घरमे दूसरोको क्लेश नही होता कि यह मेरा घर है। पर कैसा रग चढा हुआ है कि बिल्कुल पराई चीजें, मगर जो जहाँ पैदा हो गया वहाँ भी ऐसा रंग चढा कि यह सर्व वैभव है, है वहाँ कुछ नही। केवल अकेले ही नाना ही गये। सो भाई पदार्थ तो सब भिन्न है, उनसे छुडा लेना कुछ नही है। केवल अपना समता परिणाम छुड़ाओ और सुखी होओ।

किञ्चिदिष्टमनिष्टं न कल्पना क्लेशदो भ्रमे।
नाहमज्ञानरूपोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१३॥

ससारमे न कोई इष्ट है न अनिष्ट है तो किसे आप इष्ट कहेगे ? जो पदार्थ रुचे वह मेरे लिए इष्ट है और जो न रुचे वह अनिष्ट है। तो इष्ट और अनिष्टमे केवल कल्पना है। कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट नही होते है। आपके घरमे जो जीव पैदा हो गये उनको आप इष्ट मानने लगे और जो जीव दूसरेके घरमे पैदा हो गये उनको अनिष्ट मानने लगे। तो जिन जीवोके अज्ञानकी दशा पडी है, जिन जीवोके मोहकी प्रकृति पडी है उनके इष्ट अनिष्टकी बुद्धि है।

ज्ञानकी जो वृत्ति है उसके अलावा और जितने भी परिणाम है वे सब स्थूल या सूक्ष्म आशारूप परिणमन आदि जिनमे हम फँसे है वे सब अज्ञान है। आत्महितकी पद्धति छोडकर घरका जो ज्ञान है वह अज्ञान है, कुटुम्बका ज्ञान अज्ञान है और अन्यत्र ज्ञान भी अज्ञान है, क्योकि उसमे विवादकी भावना रहती है, अहकारकी भावना रहती है, कितने ही पुरुष ऐसे होते है कि वे ऐसा अध्ययन करते है कि हम किसी विवादमे हार न जायें। चार आदमियो मे अपनी शान बनी रहे। यह तो महा मूढता है। चार आदमियोने अगर जान लिया कि ये कुछ नही रहे तो उनके जान लेनेसे क्या तुम्हारी सारी दुनिया बिगड गयी ? किन्तु ज्यो ज्यो कुछ विकास होता जाता है त्यो-त्यो राग आत्मामे घर करता जाता है। जो देहाती लोग होते है। उनको अपनी शानकी परवाह इतनी नही रहती है। मगर यहाँ जो धनमे बढ गये, त्यागमे बढ गये। उनकी अगर कोई बात बिगडती है तो वे कहते है कि मुह दिखानेके काबिल नही है। वे समझते है कि चार आदमियोमे मेरी बात बिगड गयी है। ऐसी जो भावना बनी है यह बडी विकट मूढता है।

भैया ! किसीको अपना इष्ट मान लिया, अपनी पोजीशन रख ली तो उससे क्या होता है ? पोजीशन बनानेमे यह भाव होता है कि हम लोगोमे उच्च कहलावें पोजीशन ऐसे परिणामो वाला है। क्या पोजीशनके कोई हाथ पैर होते है ? तो ये सब कार्य अज्ञानरूप है।

तो यह जीव अपने आप ही आपत्तियोमे पडता है। आपत्तियोमे डालने वाला कोई दूसरा पदार्थ नही है। मेरे औपाधिक विकार, सयोगाधीन दृष्टिमे स्वयको दु:खमे डालने वाला है। किसी पदार्थमे यह शक्ति नही है कि मुझे दुःखी कर सके। मैं ही अपनी कल्पनाएँ करके दुःखी हो जाता हू। बाहरी पदार्थ निमित्त बन जाते है।

वास्तवमे बाहरी पदार्थ निमित्त नही है, निमित्त तो कर्म है। बाहरी पदार्थ नोकर्म कहलाते है। वे आश्रयभूत रहते है। बाह्यपदार्थोमे हम राग करें तो बाह्यपदार्थ हमारे निमित्त बन जाया करते है। जैसे गुहेरा काटता है तो काटनेमे जो उसको जोर पडता है तो उसमें वह मूत्र कर देता है। लोकमे प्रसिद्धि है कि अगर गुहेरा काटकर मूत्र न करे तो आदमी नही बचता है। पर गुहेरा किसीको यह जानकर नही काटता है कि मेरे काटनेसे वह मर जाये, सो मैं लेट जाऊँ। यह तो उसका स्वभाव ही है। अगर उसे मूत्र करना हैं तो वह किसीका भी काटकर मूत्र करे। किसी लकडी, ईंट, पत्थर आदिको भी वह काटकर मूत्र कर लेगा। यह तो उसका स्वभाव ही है। इसी तरह इस जीवमे जब रागभाव आते है तो उसके रागोकी बुद्धि ऐसी है कि पुद्गलोमे बाह्यपदार्थोंका असर बनाकर अपने राग विकार किया करता है। कोई परपदार्थोमे रागद्वेषकी ऐसी बात नही है। इसके ही भीतर जब रागद्वेषोके विकारोकी परिणति होती है तब जाकर बाह्य पदार्थोमे इष्ट अनिष्टकी बुद्धि बनाता है। निमित्त है कर्मों का उदय। जिस कालमे कर्मोंका उदय होता है उस समय इसके हुमुक पैदा होती है। जो भीतरमे हुमुकका विकार है वह विकार इस प्रकार बनाया है कि किसी पदार्थको आश्रयभूत बनाया तो हम और आप जब भी खोटे परिणाम करते है तो बाह्यपदार्थोंको आश्रयभूत बनाकर करते है। ऐसा नही है कि बाह्यपदार्थ स्वयं विकार उत्पन्न करते है। बाह्यपदार्थ स्वयं विकार उत्पन्न करें ऐसी योग्यता उनमे नही है। बाह्यपदार्थ आश्रयभूत हो जाया करते है। आश्रयभूत होनेमे और निमित्त होनेमे अन्तर है। आश्रयभूतमे अविनाभाव नही रहता है। इनमे अविनाभाव नही है कि चीज जैसे ही आ जाय तो उसमे विकार करना ही पडे। कर्मों का उदय एक निमित्तभूत है। कर्मोंका उदय जब आ जाय तो उस कालमे जीवमे विकार उत्पन्न होते है। तो बाहरी पदार्थोसे अपना सुधार बिगाड न समझिये। हम ही जब अपने को बुरा बनानेके लिए उठते है तब बफूडते है दहीकी तरह तो बाहरी पदार्थ तो हमारे विकारोके आश्रय बन जाते है।

भोगश्रमेण दुःखानि भ्रान्त्या भुक्त्वा हतं जगत्।
आयापायेऽपि तापोऽनः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१४॥

भ्रमसे भोगका परिश्रम करना, दुःखका भोग करना, हाय ! यह जगत् बरवाद हुआ,

और तो क्या ? भोगोमे सताप और विनाश उत्पन्न होता है । भोगोके साधक क्या है ? रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द । रूप, रस आदिक पुद्गल द्रव्योमे पाया जाता है । तो उन पुद्गल द्रव्योका इकट्ठा करना यह भोगोकी कमाई है । ये पुद्गल इनको कोई कमाता है तो कमाने वालोसे पूछो कि उनको कितना कष्ट उठाना पडता है ? कमाई हो जाय तो कष्ट उठाना पडता है, रक्षा करने करते भी नष्ट हो जाय तो कष्ट उठाना पडता है, कमाईकी चेष्टा करते भी कष्ट हो जाता है । नष्ट हो जानेके दिनोमे भी कष्ट, स्वागत करते समय भी कष्ट, विदाईके समय भी कष्ट, जिसके मूलमे ही कष्ट है उसको ही भोगा जाता है और उससे ही उन्हे संतोष होता है । भोग्य पदार्थ भोगनेमे नही आते । आत्मा तो अमूर्त है । अमूर्त आत्मा क्या भोग करे ? इस आत्मामे दूसरे पदार्थोंका प्रवेश ही नहीं है, छुआ ही नही है । भोग्य पदार्थ तो पुद्गल है । आत्मा तो अमूर्तिक है । अमूर्तिक आत्मा मूर्तिकका स्पर्श ही नही कर सकता है भोग्य नही होता तो अपने उपभोगमे श्रद्धा बनाता है और जीव स्वयं अपने संकल्प विकल्पो मे महान् परिश्रम करता है और उन्ही क्लेशोको सुख समझता है । ज्ञानकी ज्ञानमे स्थिरता हो, यह तो है शुद्ध आनन्द । इस ज्ञानस्वरूपका ही अनुभव हो यह तो है सुख । खुद बात है कि यह जगत् दुःखमे भी रहकर सुख समझे । यदि यह दुःखोमे रहकर दुःखको ही समझता रहता है तो सुखका मार्ग इसको निकल आता है । दुःखमे ही सुख मान लिया तो सुख का मार्ग कहांसे मिल जाय ? यह जीव रागादिकके परिश्रम करता रहता है । जिसको मान लिया कि यह मेरा परिवार है, मेरा भाई है यह कुछ नही । उससे बढिया बढिया जीव पडे है । अन्यके लिए इसका तन, मन, धन, वचन नही खर्च होता है । जिनको मान लिया कि ये मेरे है, इसके लिए मौका पड जाय तो, बीमार हो जायें तो जो कुछ है वह सब लगा दें तो और यदि कोई पडौसी बीमार हो जाय तो उसके लिए कुछ नही है । धर्मात्मा पुरुष भी अगर बीमार हो जाय तो धर्ममे ममता है सो थोडा बहुत उसमे खर्च कर देते है, पर दूसरोके लिए खर्च नही करते है । कैसे ही धर्मात्मा पुरुष हो, कैसे ही साधु हो, पर बच्चोमे जिस तरहसे खर्च करते है उस तरहसे उन पर न खर्च करेंगे । वह तो ऐसे है जैसे आटेमे नमक । धर्मात्मा पुरुष यदि कोई बीमार हो जाय तो उसके लिए भी जो खर्च करेगा वह अपनी प्रशंसाके लिए करेगा । अरे प्रशंसा क्या है ? यह तो बुरे कर्मोंकी बात है । ज्ञानी और धर्मीजन जो भी है उनका उपकार करना धर्मके लिए अपना प्रथम कर्तव्य है । और अगर ऐसी भावना आती है तो धर्मके लिए सब कुछ ठीक है । अगर कुटुम्ब परिवारमे ही बुद्धि रही तो धर्मकी उपेक्षा है । सो जिस कुटुम्बके लिए तुमने अपना तन, मन, धर्म समर्पण कर दिया है उससे सुख मिलेगा, ये सब झूठ बातें है । उससे सुख न मिल सकेगा । खुद ही मोह

करके, खुद ही कल्पना करके खुदको बरबाद किया करते है । इससे तो आत्मीय सुख नही मिल सकता है । और यदि धर्मात्मा जनोकी सेवामे तन, मन, धन वचन लगा दें तो उन्हे शांति मिलेगी । पर मोहका ऐसा प्रबल उदय जगजनोपर छाया है कि भोगोके ही सुख भोगते है और कुटुम्ब परिवार आदिकके भोग आश्रयभूत है जिसके कारण उनके लिए सब कुछ करनेको तैयार है । यह सब दुर्दशा अपने आपके अश्रद्धानसे है । मैं तो चैतन्य चमत्काररूप होनेके कारण भोग विषय रागादिक भावोको दूर करके अपने चैतन्यभावोमे ही रहूँ और इस विधिसे अपने लोग सुखी हो । अपने सुखके लिए दूसरोमे कोई आशा रखना ऐसी मूढता पर भगवान् ही हस सकेगा, पर संसारके जीव न हँस सकेंगे । बेवकूफी पर ही हसी आती है । अपने लोगोको तो अपनी बेवकूफी दिखती नही । वह भगवान् ही सब कुछ देखता है सो वह ही हसी कर सकेगा । भगवान् हमारी आपकी बेवकूफी पर ही हसते है । सो यह बेवकूफी भी है मोहवश । बिल्कुल कोई मोह छोड दे तो उसको शांति है । इस ससारमे रुलने वाले प्राणियोमे विवेक आना बहुत कठिन है ।

व्रतेप्यह स्वमज्ञत्व स योगी ज्ञे न दुःखभाक् ।
प्रीतिर्मे नास्तु कस्मिंश्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–१२॥

व्रतमे भी यदि अहंका परिणाम है तो वह अज्ञान है । तपस्या करना, परोपकार करना, धर्म साधना करना, इनमे यदि मैं अहबुद्धि करता हू तो यह अज्ञान है, बडी ऊँची तपस्या भी कर ली, बडे अच्छे-अच्छे काम कर लिए, पर यदि अहभाव आ जाय कि मैं तपस्या करता हू, मैंने यह किया, मैंने वह किया, ऊँचे ऊँचे व्रत मैंने ले रखे है, ऐसा श्रद्धान बन जाय तो वहां मिथ्यादर्शन है । श्रद्धान तो यह होना चाहिए कि जैसा आत्माका सहज स्वरूप है वैसा ही देखें । जैसे लोकमे कहते है कि हमारा तो खानेका काम है, हमारा तो ससारमे माया बढानेका काम है सो नही । हमारा आपका तो मुख्य काम आनन्द बढानेका है । हमारा तो आनन्दका काम है । सो आनन्द तो सबसे निराले अपने शुद्ध सहज ज्ञानस्वरूपमे मिलता है तो अन्य प्रकारकी बुद्धि क्यो करते हो ? यदि वह ज्ञानस्वरूप मिल गया तो सारे सङ्कट मिट गये । लोग कभी-कभी सोचने लगते है कि अगर हम अकेले रह गये तो क्या करेंगे ? अरे कोई क्षण ऐसा आ जाय कि अकेले रह जावो तो इससे बढकर और वैभव क्या होगा ? सो अकेलेपनकी बात भी सोचकर लोग दुःख मान लेते है । और अकेले तो सबको होना है । यह जगत् बडा गोरखधंधा है । जितने घरके लोग है उनमेसे अनेक अपने जीवनमे मरेंगे । सो जब वे मरेंगे तब रोवेंगे । अन्य लोग समझाने आयेंगे तो फिर ये महीनो रोते रहेंगे । मरकर तो अकेले ही जायेंगे । क्या ऐसा भी कोई घर है जिसमे मरनेका सिलसिला न हो । प्रीति

करते हो तो वियोग होगा। वियोग होगा तो क्लेश होगा। बुद्धिमानी तो यह है कि मिले हुए समागममें भी प्रीति न करो। केवल ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहो, अनुराग न करो, आसक्ति न करो, तो बाहरी पदार्थोंमे जिनसे मेरा सम्बन्ध नही है, मेरेमे जिनका अत्यन्ताभाव है, ऐसे पदार्थोंमे यदि अहं भाव हो, अहंकारका आश्रय हो तो उस मूढताका कहना ही क्या है। वे योगी नही है, वे ज्ञानी नही है जो अपने इन व्रतादिक परिणामोमे भी अहंका भाव रखते हो। वे दुःखके पात्र है। आत्मानुशासनमे लिखा है कि ज्ञान ध्यानमे आकर मुनि महाराज सोचते है कि मैंने बडे-बडे काम किये, तपस्या की, सामायिक किया, ये सब अज्ञानकी चेष्टाएँ हैं। ऐसा जिन मुनिराजका परिणाम हैं, अभी सोचो कि सामायिकमे बैठे थे, ज्ञान ध्यान किया था तो ऐसा सोचना भी अज्ञानकी चेष्टा है। जो यावन्मात्र आश्रयभूत है वे सब अज्ञान मान गये। निर्विकार ज्ञानका जो शुद्ध विकास है उसको ज्ञान माना गया है। अब आप समझ लें कि अज्ञानका कितना गहरा रंग लोगो पर चढ़ा है। सब अपनी-अपनी चेष्टाओसे समझते है कि हम ज्ञानका काम कर रहे है। कोई अपनेको मूर्ख नही समझता। अपनेको कोई नही समझता कि मैं गलत हूँ। जो चेष्टा करते है उसमे अपना विवेक समझते है कि मैं सही मार्ग पर हू। सही मार्ग कैसा है ? सही मार्ग तो वह है जहाँ किसीका ध्यान नही रहता है। केवल शुद्ध ज्ञानप्रकाश ही सामने रहे। जो व्रतादिककी चेष्टाएँ सामने है वे सब अज्ञानकी चेष्टाएँ हैं। जो चेष्टाएं अरहन्तमे होती है वे ज्ञानकी चेष्टाए है। जब ज्ञानकी चेष्टाए होती है तब किसी परपदार्थका उपयोग नही रहता है। मन, वचन, कायकी चेष्टाए नही रहती है। ऐसी निर्विकल्प दशाको ज्ञान परिणमन कहा गया है। सो मेरी किसी भी पदार्थसे प्रीति न हो, जिससे सब भवोमे भी आत्मीयताका भाव होता रहता है। एतावन् मात्र मैं हू, जाननमात्र ही मेरा परिणाम है, जाननमात्र ही मैं हू। जब ऐसी भावना बनी रहती है कि मैं साधु हूँ, मैं मुनि हूँ, मै त्यागी हू, यह सब अज्ञानका परिणमन है। यह भाव क्यो नही आता कि मैं सबसे निराला एक चैतन्यमात्र सत् हूँ। तुम कौन हो, ऐसा पूछनेपर यह उत्तर आये कि मैं तो एक चैतन्यस्वरूप वस्तु हूँ। लेकिन जिनका यह श्रद्धान रहता है कि मै तो त्यागी हू तो पद-पदपर क्रोध आने लगता है। मेरी समाजमे अच्छी पूछ नही हुई, मै तो त्यागी हूँ, यह विचार बनाने से ही क्रोध आ जाता है। कोई बराबरमे बैठ गया। यह सोचा कि मैं तो त्यागी हू। मेरे बराबरमे कैसे बैठ गये ? बस क्रोध आ जाता है। बोलते है कि तमीज नही है जो कि बराबरमे बैठ जाते हो। अरे तमीज तो उनके नही है जो अपनेको यह सोचते है कि मै त्यागी हू। ऐसा परिणाम रहे कि मै तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हू। जानन ही मेरा कार्य है। इनके अतिरिक्त सब अज्ञान है सो मैं ज्ञानमय परिणामको दूर करू। जो यह संस्कार रहता है कि मैं मुनि

हु, त्यागी हूँ, यदि यह सस्कार है तो आत्माके चैतन्यव्यवहारसे अलग कर देता है। इस कारणसे ऐसा परिणाम, ऐसा व्यवहार भोग नही है वह तो वर्तमानमे भी विकारका खेद कर रहा है, परिश्रम कर रहा है। कितने खेदकी बात है कि परपदार्थोंमे भाव करनेसे निर्विकल्प का मार्ग यह जीव नही ढूंढ पाता है। हे चैतन्यप्रभु! तेरे दर्शन हो तो मेरा सारा भ्रम मिटे। तेरे दर्शनके बिना मैं चाहूँ कि किसी परमानन्दकी स्थितिको मैं पहुंच लूँ सो ऐसा नही हो सकता है। सो अब मेरी किसी भी परपदार्थसे प्रीति न हो, प्रीति हो तो ऐसा दर्शन करने की प्रीति हो कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। जानन मेरा कार्य है और जानन ही मेरा सर्वस्व है। सो मैं अपने आपमे लीन होऊं और सहजमे सुखी होऊ।

कातरो लोकदृष्टयाऽस्मि स्यां लोका न सहाटिन·।
मोहस्वप्नमिद दृश्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१६॥

मै लोककी दृष्टिसे कायर हू तो लोक मेरे साथ तो कुछ भ्रमण करने वाला है नही अर्थात् यदि मैं अपने स्वरूप रमणरूपी धर्ममे लगता हू तो लोगोको ऐसा प्रतीत होता है कि ये कायर है। कुछ करते नही बना और करते नही बना तो त्याग ले लिया। विकल्पोसे लोग मुझे कायर मानते है तो मानो। वे लोग मेरे साथ भ्रमण करने वाले तो नही है। न मेरे साथ आये है और न मेरे साथ जायेंगे। फिर यह सब मोहका स्वप्न है। जो कुछ दिखता है कुछ समयके लिए है, खिर जायगा और जब तक ये सामने है तब तक भी ये मेरे किसी काममे आनेके नही है, क्योकि परपदार्थ अपनी स्वरूप सत्ता रखते है। किसी पदार्थका कोई पदार्थ स्वरूपतः दखल नही है। निमित्त तो भले ही हो जाते है, पर अपना स्वरूप नही सौप देते है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपना ही रहता है। तो ये सारे दृश्य मोहके स्वप्न है। जैसे नीदमे जो स्वप्न देखते है वह यथार्थ तो नहीं है, किन्तु उसकी भित्ति केवल कल्पना पर है। इसी प्रकार जो कुछ ये सब दिखते है यद्यपि वे सब अपने आपमे अपने पर्याय रूप है, पर उनके लिए मेरी तो कल्पनामात्र है, क्योकि किसी परसे कुछ मुझमे सम्बन्ध नही है। मैं अपने गुणोमे हूँ, अपने ही गुणोमे परिश्रम करता हू, परका मैं कुछ काम नही करता। मैं अपना अपने आपमे हू—ऐसा ही जानता हुआ मैं अन्य कुछ परिश्रम न करनेकी श्रद्धा रखकर अपने द्वारा अपनेमे ही अपने विकासके अनुसार गुप्त और सुरक्षित रूपसे अपने आपको पोषणमे लेता हू तो लोग मेरे मन, वचन, कायका बाहरी स्वरूप देखकर ऐसा कह देते है कि ये कायर है। मेरा तो अपना अखण्डस्वरूप है। मै अपने स्वरूपास्तित्व मात्र हू। मैं अन्य कुछ नही हू। लोग मेरे साथ न आये और न जायेंगे। यह सारा मोहका स्वप्न है मैं दूसरो के कहनेमे आकर, दूसरोके कहनेका प्रतिभास अपनेमे विस्तार कर मैं अपनेको कायर क्यो

बनाऊं, मोहांधकारमे क्यो पडू ? क्योकि जो मेरेमे प्रत्यक्षीभूत स्वरूपका अनुभव है बस यही मेरे ज्ञान और सुखका रूप है। सो अपनी सब अवस्थाओंका जिम्मेदार मैं ही हू । मैं सर्व लोगोका निरीक्षण आदि सबको त्यागूं अर्थात् लोग मुझे अच्छा कह दें, इस भावनाको त्यागू, क्योकि उनके अच्छा कह देनेसे मेरेमे सुधार क्या होगा ? आखिर वे भी तो मोही जीव है जो सुख दु:खके भोगने वाले हैं। खुद मोही कलकित जीवोके अच्छा कह देनें मात्रसे यहाँ मेरा कुछ हित नही हो जाना । हित तो मेरा भगवान्की उपासनासे ही होगा । भगवान् तो एक प्रकाशक है । जैसे सूर्य है उसकी मुद्रा हमे सच्चा मार्ग बतानेका कारण है । प्रकाश तो उस सूर्यके निमित्तसे मिला, पर चलना तो हमारा ही काम है । जैसे सूर्यके निमित्तसे हमे प्रकाश मिला और चलना हमारा काम है उसी प्रकार हमे भगवान् जिनेन्द्रदेवका प्रकाश मिला कि सर्व पदार्थ स्वतत्र-स्वतंत्र है । अब उस प्रकाशको लेकर हम लाभ उठायें और उस प्रकाशमे लाभ क्या है ? मैं विषय कषायोको त्यागकर अपना ज्ञानमय परिणमन बनाकर शांत होऊं ।

स्व बाह्ये न हिन किञ्चित्किं कल्पे शृणवानि किम् ।
जानानि किं च पश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१७॥

अपनेसे बाह्यमे कही कुछ हित नही है । फिर मैं क्या सोचू, क्या सुनूं, क्या कल्पनाए करूँ और क्या देखूं ? मैं तो अपने आपमे अपने लिए सुखी होऊं । अपने स्वरूपसे बाहर अपना कही कुछ भी हित नही है, हित तो इसमें ही मात्र है कि बाहरसे दृष्टि हटाकर, अपने शरीरसे भी दृष्टि हटाकर, अपने आपको किसी पर्याय, किसी मुद्रारूप न मानकर केवल अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप ही अपनेको मानें तो इस ही श्रद्धामे, इस ज्ञानमे मेरा हित है और अपने इस उपयोगके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकारकी कल्पनाएँ करना व्यर्थ है । बाह्यका आश्रय बना-कर रहनेमे मेरा हित नही है । हित तो कषायोमे है ही नही । अपने आपको पर्यायोमे अह-कारका भाव न हो । यहाँ तक कि यदि अपने आपमे मैं साधु हू, मैं मुनि हू, मैं क्षुल्लक हू इस प्रकारका यदि प्रत्यय रहे तो वहाँ भी शांतिका मार्ग नही है और इस श्रद्धामे तो सम्यक्त्व भी नही है । जो कुछ मलिनताएं दिखती है वे सब कषायोके परिणाम है । इन कषायोका फल तो आकुलताएं ही है । मैं तो स्वरूपतः ज्ञायकमात्र हूँ । मैं ज्ञायकस्वरूप अपने आपमे अपने आपकी श्रद्धा रखूं तो मुझे शांति प्राप्त हो सकती है । अपनेसे बाहरमे कोई भी मेरा कुछ हित नही है । फिर मैं किसे सोचू ? किसको जानू ? मैं तो अपने आपमे अपने लिए स्वय सुखी होऊं । मेरा हित तो मात्र इसीमे है कि मैं ज्ञाता दृष्टा रहू, अपने आपमे इष्ट और अनिष्टकी बुद्धि न रखू । मैं छोटा हू, मैं बडा हू इस प्रकारकी कल्पनाएं न हो । अपनेको ज्ञानमात्र देखकर ऐसा ही परिणाम बने कि जो चैतन्यस्वरूप है वही मैं हू और वही चैतन्य-

स्वरूप ये है। अपनेसे बाह्यपदार्थोंमे लगनेसे मेरा कोई हित नही है। फिर मैं क्या सोचूं, क्या जानू, क्या देखू ? किसी परपदार्थके सोचनेमे कलुषता ही होती है। मिलता कुछ भी नही है। तो मेरे सोचनेमे परपदार्थ मत आओ। यदि ऐसी स्थिति बन सकती है कि मेरे सोचनेमे कोई पदार्थ न आये और अपनेको सोचूं कि मैं ज्ञानमात्र हू तो मैं सुखी हू। किसीकी बातें सुननेमे कलुषता ही है। अपने ज्ञायकस्वभावमे हमारी इतनी अधिक रुचिपूर्वक दृष्टि हो कि हमारा किसी भी पदार्थके सोचनेको मन न चाहे। मैं किसे सोचू ? किसकी सुनू, किससे कहू और किससे बोलू ? बोलनेसे भी कुछ न कुछ अपने उपयोगमे मलिनता आती है, परकी ओर दृष्टि होती है, फिर भी बोलता हुआ मैं जितना अपने आपका ध्यान रखता हू और जितना मैं परकी ओर लगता हूँ उतना ही यह मैं आत्मा परकी ओर हू। जो कुछ भी कहा उसका अर्थ अपने आप पर घटाओ। जब भी कोई उपदेश देवे, धर्मकी बात कहे तो उसको अपने आपमे घटाओ। यदि वस्तुस्वरूपकी विवेचना करो तो अपने आपका वस्तुस्वरूप झलके, इस प्रकारकी स्थिति बने तो ऐसी पद्धतिसे वस्तुस्वरूपको विवेचना करो कि मेरे करने लायक जो है उसे मै कर सकूं, मुझमे जो वृत्ति है उसको देखनेकी शक्ति बढा सकू, इस प्रकारकी भावनासे दूसरोके चरणानुयोगकी सत्ता द्वारा कोई भी कुछ कहे तो उस कहनेसे क्या धर्म हुआ, क्या अधर्म हुआ ? यह जानकर अधर्मसे तो दूर हो और धर्ममे लगें। अपनी वृत्ति रखें और ऐसा ज्ञान जगायें। इस पद्धतिसे प्रथमानुयोगका उपयोग है। प्रथमानुयोगका उपदेश देते हुए कर्मस्थितिकी जो रचना है उसका वर्णन करें तो उससे भी अपनेमे कुछ शिक्षा लेवें। कैसा यह लोक है ? मैं इस लोकमे परपदार्थोंपर अनन्त बार जन्म ले चुका हू और मरण कर चुका हू। इस जगत्‌मे जो वैभव है, उसे अनन्त बार भोग चुका हू। इस प्रकार दृष्टिसे इस लोककी विवेचना करें और अपने परिणामोके सुधारकी दृष्टिसे अपने परिणामोका वर्णन करें। यो जब हम बोलें तो इस प्रकारके साधन सहित बोलें। आत्मतत्वकी बात पर जो साधक हो उसको ही सुनूँ, उसे ही कहू, फिर सुनता कहता हुआ भी ऐसा विश्वास बनाऊँ कि ऐसा सुनना और ऐसा कहना मेरा स्वभाव नही है, मेरा हित नही है। मैं इस श्रद्धासे विचलित न होऊँ। इस प्रकार मेरेसे बाहर मेरा हित नही है। मैं किसे जानू, किसकी सुनू ? सुनने जाननेमे परपदार्थ आते है तो आवें, परकी ओर आनेमे मुझे क्या मिलता है ? मैं तो एकस्वरूप हू। मै किसे देखू ? मैं तो अपने स्वरूपको जानकर अनुभव करू और अपने आपको देखकर स्वय सुखी होऊ।

देहोऽस्तु वा न को लाभः का हानिर्मे तु शान्तिदा।
ज्ञानदृष्टिः सदा भूयात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-१८॥

देह हो अथवा न हो। इससे मेरा क्या लाभ है ? मेरी तो शांति देने वाली ज्ञानदृष्टि सदा रहे। जितने भी क्लेश होते है वे सब क्लेश केवल अपने कषायोंसे है। बाह्य पदार्थोंसे कोई क्लेश नही, क्योकि बाह्यपदार्थ क्लेश करनेमे समर्थ ही नही होते। वे तो अपने परिणमनमे निरन्तर लग रहे है। मुझे बाह्यमे करनेका कुछ अवकाश ही नही, और कर भी नही सकते। इस तरहसे मै जो कुछ करता हू अपनेमे करता हूँ। अपने ही परिणमनमे निरन्तर लगा रहता हू। मेरेमे तो अवकाश ही नही कि मै किसी पदार्थको देखू, किसी पदार्थमे कुछ करू और मै कुछ कर भी नही सकता। इस कारण बाह्यपदार्थोमे कोई दृष्टि न दे। देह रहे तो क्या, अपनेमे अखण्ड स्वरूपास्तित्व पर इतना दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि मैं सबसे पृथक् अपनी प्रीतिमे रहू। देह अपने पास रहे तो क्या, न रहे तो क्या उससे कुछ लाभ हानि नही हो सकती प्रत्युत हानि हो सकती है। देहकी ओर दृष्टि जाय तो देहको मान लिया कि मै हूं तो इसमे भ्रम और रागका आश्रयभूत हो जाता है। इसलिए देहके सम्बन्धमे हानि तो अनेक है, पर देहके होनेपर इस आत्माको लाभ कुछ नही है। मुझे तो आत्मदृष्टि मिले जो कि शांति देने वाली है। देहके होनेसे तो सब भूख प्यास आदि उत्पन्न होती है। इस शरीर पर दृष्टि जानेमे आत्मविकार होता है और वह आत्मविकार दुःखको ही कारण है। यह देह न रहे तो इसमे ही शांति है। देहके उपयोगमे या यथातथा वृत्तिको देखकर आत्ममात्मे दुःखी होना केवल मोहांधकारमे एक प्रलाप है। यदि इस देहमे दृष्टि न रहे तो यही शांतिकी प्रबल दायिका है मेरी तो ऐसी ज्ञानदृष्टि ही सदा रहे। यही ज्ञानदृष्टि ही हमे शांति देने वाली है। ऐसी दृष्टि उत्पन्न हो, ऐसा भेदविज्ञान उत्पन्न हो जिससे यह स्पष्ट अनुभव हो सके कि यह मै ज्ञानघन अविनाशी अत्यन्त निर्मल सहज आनन्दस्वरूप हू। इस ब्रह्ममे ऐसी दृढ़ प्रतीति रहे जिससे परके लक्ष्यसे बाहर होकर मैं अपने आपमे सहज स्थान पाता हुआ अपने आप सुखी होऊ।

न मे द्वन्द्वो न मे संगः सर्वकृत्य हि मत्पृथक्।
कस्मै स्यामाकुलोऽद्वैतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७·१६॥

मेरा द्वन्द्व नही। द्वन्द्व कहते है दो को। मैं दो नही हूं, मेरे दो कुछ नही हैं, मैं स्वय हू। मेरेमे मैं ही हूं। मेरेमे द्वन्द्व नही, मेरा किसीसे सम्बंध नही। ये सब कार्य इससे पृथक् हैं। जितना जो कुछ है वह सब इससे पृथक् है। अपने आपमे ऐसा प्रज्ज्वलन बनाओ, ऐसा अपने आपको नम्र और विनीत बनाओ, अपने आपमे ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मप्रभुकी उपासना मे अपने आपको इतना नम्र बना डालो कि मान कषाय आदिका कुछ भी उदय न हो सके ऐसी स्थितिमे यह आत्मार्थी पुरुष अपने आपमें बडी सूक्ष्मतासे प्रवेश करता हुआ ऐसी स्थिति

मे प्रवेश पा लेता है कि जिसमे एक सहज आनन्दस्वरूपका अनुभव होता है। ऐसा यह मेरा अपने आपके अनुभवका चमत्कार है। मेरा द्वन्द्व नही है। मेरा परिग्रह सम्बन्ध नही है। बाह्यके सब कार्य मुझसे पृथक् हैं। फिर किसलिए मैं आकुल होऊँ ? अकेला यह मैं आत्मा अपनेमे अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

मैं तो एक स्वयं निर्मल प्रकाशमात्र अखण्ड चैतन्यतत्त्व हू। यदि बाह्य चीजें कुछ मेरी परिग्रह हो जायें तो इसका अर्थ यह निकलेगा कि मै जड बन गया, क्योंकि बाह्यपदार्थ जो दृश्यवान है वे पदार्थ मेरे हो गये। क्योकि जिसका जो होता है उसमे वह तन्मय होता है। पुद्गलका रूप गुण पुद्गलमे तन्मय है। इस तरह यदि पुद्गल मेरे हो जायेंगे तो मै पुद्गलमे तन्मय हो जाऊगा। यह हो नही सकता है। परपदार्थ अपना अस्तित्व लिए हुए है। यदि बाह्यपदार्थ मेरे परिग्रह होते है तो ऐसा नही हो सकता है। मै तो ज्ञानस्वरूप हूँ। सर्वपदार्थ मुझसे पृथक् है। जगत्के जीव सब मुझसे पृथक् है। फिर यहाँ कौन ऐसा पदार्थ है जिसकी प्रीतिके लिए अपनेको केवल व्याकुल करूं। आत्माको कोई पदार्थोंमे हित नही है। तो फिर किस पदार्थसे यह मैं आत्मा आशा रख सकू। मैं सबको छोडकर केवल शुद्ध अत्यन्त हल्के भाररहित, जहाँ तनका भी भार न हो, ऐसी शुद्ध ज्ञानानन्ददृष्टिरूप मेरी स्थिति हो सकती हो तो मै सुखी हो सकता हू। इसके अतिरिक्त कुछ भी सोचें, कुछ भी विकल्प करें उससे तो मेरी सुखकी स्थिति आ ही नही सकती। मै तो ज्ञानस्वरूप हू, सर्व पदार्थ मुझसे अत्यन्त पृथक् है। केवल अपने आपको चेतू कि मै अपने लिए चैतन्य हूँ, सर्व रागादिक भावोसे शून्य हू। यदि अपने आपके स्वरूपका विशद दर्शन करना है तो अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि करो। अपन और भगवान्के स्वरूपमे दृष्टि करो तो अन्तर इतना ही है कि भगवान्का स्वरूप विकसित हो गया है और मेरा जो स्वभाव है वह विकल्पोके कारण तिरोहित हो गया है। यदि मै अपने स्वरूपकी भावना करू तो ये रागादिक दूर होगे और वह समस्त स्वभाव विकसित हो जायेंगे। तो मेरे स्वरूपमे गुप्त स्वरूपमे उपस्थित स्वरूपके विकास स्वरूपकी तुलना करें तो हमे अपने आपके स्वरूपका भान हो सकता है। सो ऐसे अनन्त चैतन्यस्वभावकी दृष्टिके प्रसादसे मै अपने आपके महान् दर्शन करू।

इस ज्ञानानन्दमात्रके अनुभव मे जो उपस्थित होता है वह अनुभव उन अनन्त भवोके कर्मोको काटनेमे समर्थ है और बाह्य क्रियाए शरीरकी, मनकी, वचनकी क्रियाएं—ये भेद कषायोके उदयमे उत्पन्न हुआ करते है। जो ज्ञानप्रकाश है उस ज्ञानप्रकाशके कषायका उदय आवे तो उस कषायमे उस प्रवृत्तिमे भी ज्ञान कषाय सावधान रहता है और कषाय अपने आपकी ओर झुका रह सकता है—यह परखना चाहिए। किन्तु बाहरमे मै अकेला कैसे

उठाऊ ? इस तरहके ध्यानसे हम रत्नत्रयमे नही पहुंच सकते, किन्तु ज्ञानप्रकाशी अपनेको इतना सावधान जानते है कि यदि उनके कषायोका उदय आता है तो कषायोके उदयसे मन, वचन, कायकी चेष्टाए बनती है। ये चेष्टायें कैसे बनती है ? यह देखना चाहिए। यह देखनेसे ज्ञानके प्रति आदर रहेगा। यदि ऐसा न देख सके तो आत्माके आनन्दमे विकासगुणकी दृष्टि नही कहला सकती है। तो सब कुछ अपने आपमे देखो। अपने आपसे बाहर अपना कुछ न निरखे, अपनेसे बाहर अपना कुछ है ही नही इस जगत्मे। भगवान् जिनेन्द्रदेवने आत्मज्ञान किया है, सो वे इस अवस्थामे पहुचे है। अरहत देव भी इस ही पद्धतिसे इस ही श्रद्धा और रमणसे पूज्य बने है। अपनी आत्माको सिद्धकी तरह विचारो और जिस उपायसे वे पूज्य बने है। उस ही उपायके अनुकरणसे विषय कषायोमे अपनी रुचि न जगे। अपने ज्ञानानन्द-स्वरूपके अनुभवमे अपनी रुचि जगे। यदि ऐसा कर सकते है तो समझना चाहिए कि अपना हित है।

सर्वसारमिद कार्यं निवृत्तिः सर्वकार्यतः।
ततो विस्मृत्य सर्वाणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–२०॥

जितने भी आत्माके कर्तव्य है उन सबमे सर्वभूत कार्य यह है कि सर्व कार्योसे निवृत्ति हो जाय। यह आत्मा शरीरसे निवृत्त स्वय है, पर प्रवृत्ति इसकी परमे लगी कैसे ? इस कारण निवृत्ति भी एक काम बन गया है। निवृत्त तो सभी पदार्थ स्वय हैं, इसलिए मै सबको भूलकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ। किसी भी क्रियाको करनेमे परका लक्ष्य कुछ न कुछ रागरहित ही है। जो राग है, विकल्प है, अस्थिरता है वही द्रव्यका हेतु है। यह परपदार्थोंका आश्रय इस जीवके कबसे लगा है ? यह परम्परासे अनादिसे लगा है। जब से कर्मोंका सम्बन्ध है, जबसे कर्मोदय चल रहा है तबसे परका आश्रय लगा हुआ है। राग भाव जितना भी उत्पन्न होता है वह किसी न किसी परपदार्थका विकल्प करते हुए उत्पन्न होता है। जैसे कहा जाय कि भाई किसी परपदार्थका विकल्प न करो, विचार न करो और राग न करो तो कोई कर सकता है क्या ? राग तो करें, स्नेह तो करे, पर किसी परपदार्थ मे न करें तो राग हो सकता क्या ? नही हो सकता है। अपनी आत्माका ही आश्रय रखनेमे रागका विनाश होता है। और जो भी क्लेश है हम आपको, किसी न किसी रागका क्लेश है। किसीको शरीरसे राग है, सो कही मुझे दूसरोसे ज्यादा काम न करना पड़े, कही घरका काम ज्यादा न करना पडे, घरमे और भी तो आदमी है, मै ही ज्यादा क्यो करूँ, ऐसे विकल्प करके दुःखी होना पडता है। मनका राग है, जैसी अपने मनमे बात आये, चाहे कुबुद्धि की है, चाहे सुबुद्धिकी बात मनमे आयी हो, पर यह मोही प्राणी विवेक ही समझता

है। अपने मनकी बातको अविवेक समझ सके यह ज्ञानी पुरुषका काम है। अविवेकसे जो मनमे आये उसको ही समझते है कि मैं ठीक कर रहा हूँ, ठीक सोच रहा हू। मैं बुद्धिमानी का काम कर रहा हूँ। मनमे राग है, वचनमे राग है, जो मुझसे बात निकल गयी उसकी तो पूर्ति होनी ही पडेगी, वचन उलट नही सकते। तो किसी न किसी परपदार्थमे लगे रहते है तो इस रागके कारण उनके आकुलताएं होती हैं। सबसे श्रेष्ठ कर्तव्य हितरूप यह कार्य है कि सब कार्योंसे निवृत्ति हो। दुनिया मुझे न जान सके। दुनियाके जाननेसे मेरी सृष्टिका क्रम नही बदलता। दुनिया मुझे माने न माने, किसीके माननेसे कही मेरा उत्थान नही हो जायगा। मेरा ही आचरण विश्वास यदि शुद्ध है तो मेरा उत्थान है। यह निवृत्ति तो ज्ञायक स्वभावकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परपदार्थोंसे हट गया, किन्तु ज्ञायकस्वभावी आत्मा ज्ञायक रूप रह गया। सो मै बाह्यकी सर्वक्रियावोकी प्रवृत्तिको भूल जाऊँ और हिम्मत करके मनमे किसीको न सोचू, वचनोसे किसीको दु:खी न करू, व्यवहारको न करूं, शरीरसे कोई चेष्टा न करूँ, सबको भूलकर अपने आपमे स्थित हो जाऊ तो ऐसी स्थितिमे जो अनुभव होगा बस उस अनुभवमे ही प्रभुका दर्शन है। यह तो एक मोटीसी बात है कि परिवारका मोह भी करते रहे और परमात्माके दर्शन भी पाते रहे, ये दो बातें नही हो सकती। परिवारमे रहते हुए भी अपना ज्ञान जगावो, क्योकि ससारकी यात्रा बहुत लम्बी चौडी है। केवल इस भवमे मिले हुए समागम ही सब कुछ है। इसलिए मिले हुए समागममे संतोष न करो। सबका विस्मरण करके मै अपने आपमे ही विश्राम पाऊ और सुखी होऊं।

पुण्यार्थ भोग सम्बन्धाः सन्त्यनर्थपरम्परा.।
एषु कृत्यां हित किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७–२१।।

पुण्य, अर्थ और भोगके सम्बंधमे अनर्थकी परम्परा है। पुरुषार्थ चार होते है—धम, अर्थ, काम और मोक्ष। तो इसमे धर्मका तो मतलब है पुण्यसे, क्योकि आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप धर्म मोक्षमे चला गया। मेरा सम्बन्ध मोक्ष पुरुषार्थसे है तो यह धर्मका अर्थ है पुण्यका और अर्थका मतलब है धन कमानेसे और कामका मतलब है पदार्थोंके भोग से, उपयोगसे सो ये तीनो पुरुषार्थ पुण्य अर्थ और भोग अनर्थकी परम्परायें है याने भोग तो अनर्थकी परम्परा है ही। कहते है ना कि बडे-बडे प्रायः नरकमे जाते है। कुछ ऐसे भी होते है कि स्वर्गमे जाते है, मोक्षमे जाते है, पर राजकीय भोगोमे रहकर उपभोग इतना फस जाता है, आरम्भ और परिग्रहमे लिप्त हो जाते है कि उनकी प्राय. दुर्गति होती है। यह दुर्गति क्यो हुई कि उनको भोगोके बडे साधन मिले, भोगोके साधन क्यो मिले कि उनका पुण्यका उदय था। पुण्यका उदय उनको अनर्थमे ले जानेका कारण बन गया और धनका

उपार्जन तो अनर्थकी परम्परा है ही । मित्रोकी मित्रता न कायम रह सके, धनसे कितना अनर्थ हो जाता है । तो धनका पुरुषार्थ भी अनर्थकी परम्परामें ले जाने वाला है । इस तरह ये तीनो पुरुषार्थ अनर्थकी परम्पराके कारण है । इनसे मेरा क्या हित है ? इनको मै क्यों करूं ? इनसे दूर रहकर अपने आपमें सुखी होऊं । ये त्रिवर्ग कहलाते है । गृहस्थीमे त्रिवर्ग होता है, और साधुजन जो मोक्षका पुरुषार्थ करते है और उसके फलमे उन्हे मोक्ष मिलता है । उस मोक्षका नाम है अपवर्ग । अब वे वर्ग खत्म हो गये है पुण्य अर्थ और भोग आदि । ये तीनो अब सिद्ध भगवानमे नही रहे, ऐसी प्रभुकी सिद्ध अवस्थाको अपवर्ग कहते है । सो इससे उठकर मैं अपवर्गके काममे लगूं । यदि गृहस्थीमे हो और अपना हित चाहते हो तो गृहस्थीके प्रपंचोसे अपनेको पृथक् समझो । यदि इस प्रकारसे अपनेको पृथक् समझा तो संसार के मायाजालमे रहकर भी मोक्षके पुरुषार्थमे है । जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि होती है । सो बाहरमें दृष्टि न हो । सांप दूरसे कितना प्यारा लगता है ? चिकना सुन्दर लगता है । भैया, सांप बहुत सुन्दर मालूम होता है । सांपकी सुन्दरताकी वजहसे सांपोको दीवारमे लिखा जाता है । सांप कितना सुन्दर होता है, मगर भीतरसे देखो तो विष भरा है । और जो भैसा इत्यादि है वे इतने सुन्दर पशु नही है । सुन्दरता तो फिर मुकाबले तन मान ली जाती है, पर इनका उपयोग देखो कितना मधुर रस देने वाला होता है । जैसी दृष्टि है भीतरमे, वैसी ही जीवोकी सृष्टि होती है । सो घरमे निवास करते है करते रहो, फिर भी अतरमें यह समझते रहो कि जितना यह संयोग है यह सब मेरेसे भिन्न है और इसी सयोगसे मेरेको कोई लाभ नही है । यदि ऐसी सद्बुद्धि रहेगी तो गृहस्थावस्थामे भी रहकर आप मोक्ष पुरुषार्थके निकट है । सो इन त्रिवर्गोमे अपना हित न मानकर मैं आत्माके स्वभावपथमे विहार करूं अपने आप सुखी होऊं ।

जीवन मरणं कि को लोक. का चास्ति लानता ।
मायारूपाणि सर्वाणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखो स्वयम् ।।७-२२।।

अहो, जीवन क्या है ? मरण क्या है ? लोक क्या है ? लीनता क्या है ? ये सब मायारूप है । जीव कोई यथार्थ पदार्थ नही है । इस जीवका एक भवसे छूटकर दूसरे भवमे आना इसका नाम जीवन है । इस जीवका एक भवसे छूटकर दूसरे भवमे आना इसका नाम जीवन है । मरण कोई यथार्थ पदार्थ नही है, किन्तु इस जीवका इस भवसे संयोग छूट जाना इसका नाम मरण है । इस लोकमे जो कुछ दिख रहे है, ये सब स्कध ही तो दिख रहे हैं । ये स्कंध यथार्थ पदार्थ नही है । अनन्ते परमाणु मिलकर ये स्कध बने है । इसलिए यह स्कंध समुदाय भी नानारूप है और यह लीनता चाहे विषयोकी लीनता हो, चाहे स्वरूपमे लीनता

हो, मगर लीनता पर्याय ही तो है । यह लीनता कोई यथार्थ पदार्थ नही है, ये सबके सब मायारूप है । इन रूपोसे मैं क्या करू ? जो चीज मिट जाने वाली है, उसमे राग करनेसे क्या लाभ है ? जो चीज न मिटे और अपनी हो, उसकी प्रीतिमे तो फायदा है, पर जो चीज अपनी भी नही है, और मिट भी जाने वाली है उस चीजकी प्रीतिसे फायदा नही है । देख लो यह सारा धन वैभव, ये सब समागम मिट जाने वाले हैं और पराई चीज भी है । तुम्हारा तो अपने बच्चोपर भी अधिकार नही है कि जैसा आप चाहे तैसे ही बच्चे चलें । लोग एक इस आशासे बच्चोको पालते है कि बड़े होगे तो मेरे काम आयेंगे, मेरी बुढापेमे सेवा करेंगे । मगर अवसर देख रहे है कि बडे हो जानेपर माता पिताकी सेवा करने वाले कितने हैं ? हिसाब लगा लो, आप लोग तो कुछ आशय वाले लोगोके बीचमे रहते हैं । इसलिए ऐसा अन्दाज लगा लेते है, ऐसा सोचते है कि सभी लोग माता-पिताकी सेवा करते हैं । क्या यह बतला सकते हो कि इस दुनियामे मांस खाने वाले कितने लोग होगे ? अपने हो कुछ लोग ऐसे बसते है, इसलिए ऐसा लगता होगा कि कोई विरला ही मांस खाता होगा ? अगर दृष्टि पसारकर देखो तो आज मांस खाने वाले ६५ प्रतिशत है । ५ प्रतिशत ऐसे है जो मांस खाने वाले नही हैं । इसी प्रकार दुनियामे दृष्टि हो तो लगभग ६० प्रतिशत ऐसे मिलेंगे जो बडे होकर अपने माता पिताकी सेवा करना तो दूर रहा, उनके दुःखके कारण बन जाते है । सो सब मायारूप है । किसी परपदार्थमे विश्वास न रखो । विश्वास रखा तो अपने सदाचार पर । यदि आपका सदाचार है तो आपके सब सहायक बन सकते हैं और यदि सदाचार नही है तो आपका कोई दूसरा सहायक नही हो सकता । यही देख लो कोई मनुष्य पाप करे, किसीकी बहिन बेटीको सताए तो जूते घालना शुरू हो जाता है । इसलिए दूसरे जीवोसे आशा न रखो । तुम्हारे सद्व्यवहार है तो दूसरे लोग भी तुम्हारी ओर झुकेंगे और तुम्हारा ही असद्व्यवहार है तो जगत्मे तुम्हारा कोई सेबक नही है । कोई तुम्हारी खबर लेने वाला नही हो सकता । हम सब पापरूहोसे अपना उपयोग हटाएँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होवें ।

सर्वेचिंता कथा चेष्टाभिरल तासु नो हितम् ।
यतो निष्क्रियभावोऽह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७-२३।।

किसी भी पदार्थका चिंतन करना, किसी भी पदार्थके लिए चेष्टा करना, इनसे कोई लाभ नही है । इससे हित कुछ भी नही है, क्योकि मैं तो निष्क्रिय भावस्वरूप हू । मैं तो एक ज्ञानमय पदार्थ हू । अपने ज्ञानमे अपने ज्ञानके द्वारा अपने ज्ञानमय कार्य करता रहता हू । कभी विकार हो जाय तो भी मुझमे मेरा काम स्वय हुआ । कभी गुस्सा आ गया तो दूसरोके द्वारा नही आया, मेरा काम मुझमे हो हुआ । कोई कितनी ही गालियां दे, कोई

कितनी ही खराब चेष्टाएँ करे तो उन चेष्टाओंसे मेरा बिगाड नही होता। मैंने ही अज्ञानमे, मोहमे, भ्रममे कुछकी कुछ कल्पनाएं कर ली और अपने आपको दु:खी पा लिया। कोई दूसरे जीव मुझे दु.ख नही देते है। इसी तरह सब जीवोको निरखो कि यह भी प्रभुकी भक्तिकी एक पद्धति है। क्योकि सभी जीव प्रभु हैं। इन प्रभुके प्रति ऐसी तो दृष्टि बनाए रहो कि ये प्रभु कोई भी मेरेको दु:ख देने वाले नही हैं। ये स्वयं अपने साथ उपाधि लिए हुए है। सो उन-उन विचित्र उपाधियोका निमित्त पाकर ये स्वयं विकृत हो जाते है। ये मेरा काम कुछ नही करते है। ये विकारी स्वयं अपने आपमे हो रहे है। इनका कार्य इनके ही प्रदेशोमे समाप्त है। मेरा कार्य मेरे ही प्रदेशोमे समाप्त है। मैं अपने प्रदेशोसे बाहर कुछ नही करता और दूसरे प्रभुजन भी अपने प्रदेशोसे बाहर किसी दूसरेका कुछ नही करते। ऐसा अन्य जीवो के प्रति आपका विचार रहेगा तो आप प्रभुकी भक्ति ही कर रहे है। प्रभुकी, सिद्ध प्रभुकी उपासना करते हो और इस जगत्मे जो संसारी जीव भ्रमण कर रहे है उनके प्रति विपरीत धारणा बनी तो आपने प्रभुकी भक्ति नही की। जीव-जीवको हम प्रभुसमान निरखें। भीतर मे प्रत्येक जीवके प्रति उसके सत्यस्वरूपके दर्शनकी भक्ति करें। कोई जीव मेरा शत्रु नही है। बार-बार ऐसी भावना अन्य जीवोके प्रति बनाओ। जिसको भ्रम हो वह भ्रम मिटाकर सुखी हो। जिसके कुबुद्धि आ गयी हो वह कुबुद्धि मिटाकर सुखी हो, जिसके कोई उपद्रव उपसर्ग आ गया हो तो अपने शुद्ध निज आत्मस्वरूपका ध्यान करके सुखी होओ। जगत्का प्रत्येक जीव सुखी हो। सुखी होनेकी भावना करो। यही धर्मका पालन है। कोई अन्य जीव मुझे दु:ख दे नही सकते है। मेरा पूर्वकृत पापोका उदय आ जाय तो उदयमे मुझको पूर्व कर्मोका फल भोगना है ना? तो उस फलके भोगनेके समय हम किसी परका आश्रय करके दु:खी हुआ करते है, और उस कालमे हम जिस किसी प्राणीको अपने दु:खका दाता समझने लगते है, परमार्थसे कोई भी जीव मेरेको दु:खका देने वाला नही है। ऐसा सर्व जीवोके प्रति अपना विश्वास बनाओ तो यह भी प्रभुकी भक्ति है। सो सर्व वितावोको छोडो, क्योकि उनमे तुम्हारा हित नही है। अपने निष्क्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मामे विहार करो और अपने आप स्वय सुखी होवो।

चैतन्ये मयि नो देहो न प्राणा इन्द्रियाणि वा।
रागादिस्तान् कथ यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ७–२४ ॥

अहो! मैं तो एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अर्थ है कि परसे न्यारा और अपने स्वरूपमात्र। शुद्धका अर्थ पवित्र पर्यायसे नही है, किन्तु केवल खालिस रह जाना, परसे जुदा और अपने स्वरूपमात्र रह जाना ऐसा मैं स्वयं शुद्ध हू, जगत्के परपदार्थ अणु-

अणु शुद्ध है। अशुद्ध तो कोई हो ही नही सकता। भले ही परउपाधिका निमित्त पाकर वे विकाररूप परिणम जाये और पर्यायगत अशुद्धता धारण कर लें, किन्तु द्रव्य शुद्धिका वह त्याग कभी नही कर सकता। कौनसा पदार्थ ऐसा है कि किसी दूसरे पदार्थके अस्तित्वमे रम जाय? अगर ऐसा कभी कुछ होता तो आज यह दुनिया देखनेको न मिलती। हम तुमरूप बन गये, तुम हमरूप बन गये तो हम मिटे, तुम भी मिटे। तुम तुम ही रहे, हम हम ही रहे तो हम हम ही रहे, तुम तुम ही रहे। ऐसा शुद्ध मुझ चैतन्यस्वरूपमे है। ऐसा इस शुद्ध आत्मामे शरीर है ही नही। देखो शरीर और आत्मा एकक्षेत्रावगाहरूप ही रहे है, जैसा शरीर का अणु है वैसा आत्माका प्रदेश है। फिर भी शरीरसे न्यारा यह आत्मा है। लोग कहते है कि दालके छिलकोकी तरह आत्मा शरीरसे न्यारा है। मगर दालका छिलका घुसा हुआ नही है। दालके दानेके चारो तरफ छिलका लगा है। ऐसी इस आत्माके बाहर शरीरका छिलका नही है, किन्तु आत्माके रग-रगमे शरीरका परमाणु परमाणु घसा हुआ है और शरीरके परमाणु-परमाणुमे आत्माका प्रदेश धंसा हुआ है तिसपर भी आत्मा शरीरसे अत्यन्त न्यारा है। दोनोका अस्तित्व एक हो ही नही सकता। ऐसी इस मुझ चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मामे शरीर नही है, प्राण भी नही है। प्राण क्या है? ये इन्द्रियबल, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास बल और आयुबल। इस मुझ ज्ञानभाव आत्मामे है नाक, आँख, कान। जाननहार जो यह जीवतत्त्व है उसमे इन्द्रिय नही होती। इस आत्मामे तो ज्ञानका बल है। दो मनका बोरा उठा लिया यह आत्माका बल नही, किन्तु आत्माके सम्बन्धसे क्षयोपशमके अनुसार शरीरके रूपमे विकाररूप बल है। यदि शरीरके बलको आत्माका ही बल समझने लगें तो तुममेसे ज्यादा आत्मबल भैंसेका हुआ। भैंसा तो १० मनका बोरा उठा सकता है। तो शरीर का बल आत्माके सम्बधसे एक विकृत बल प्रकट होता है शरीरसे। वह विकाररूप शरीरबल आत्माका बल नही कहला सकता। इस प्रकार मुझ चैतन्यस्वरूप आत्मामे न तो शरीर है, न प्राण है और न इन्द्रिय है। और रागादिक भाव भी आत्मामे नही है, क्योकि ये रागादिक भी आत्माका स्वरूप नही है, किन्तु जैसे आत्माके सम्बन्धसे शरीरमे बलरूप विकार प्रकट होता है उसी प्रकार इस आत्मामे उपाधि सम्बन्धसे गुण विकार प्रकट होता है। ये सब मेरे स्वरूप नही है। तो मै इनको कैसे दूर करूँ? मैं तो अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी होऊ।

क्षेमकरोऽक्षभोगो न तत्राज्ञः सन् कथ रमै।
क्षेमकर. स्वय स्वस्मै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–२५॥

गृहस्थीके मायाजालमे रहते हुए यह श्रद्धान् रहे कि इन्द्रियोका विषयभोग मेरे लिए कल्याणका करने वाला नही है। मैं तो ज्ञानी हू। मैं विषयभोगोमे क्यो रमण करूँ? मैं तो

अपने लिए अपनेमे स्वयं हितकर होऊँ । आत्माका हित करने वाला यह आत्मस्वरूप है । यदि यह अपने सहजस्वरूपको निरखता है तो कर्मोंका क्षय भी हो रहा है और अनेक सकट भी टल रहे है। शांति भी प्रतिक्षण बढती चली जाती है, किन्तु इन्द्रियोके भोगसाधनोमे अगर हितकी श्रद्धा लगाई तो केवल आकुलताओको ही प्राप्त करोगे । जिन भोगोमे फंस जावो वही ही आपको क्लेशोकी ठोकरे मिलेगी । अपने आपको सभालो, किसी परजीव पर भोगोकी दृष्टि का ध्यान मत दो । ये सब पचेन्द्रियके भोग मेरी दुर्गतिके कारण है । कुछ सोचो, कुछ अपने मनको सयत करो, मनको स्वच्छन्द बनानेमे कोई लाभ न पावोगे । ये इन्द्रियोके भोग और इनके भोगनेका भाव क्षणिक है, औपाधिक है । अव्वल तो देखो इन्द्रियोसे हानि ही है । फिर ये भोग क्षणिक है और किसी प्रकारकी आसक्ति बने यह भी क्षणिक हैं, औपाधिक है, जो नष्ट हो जायेंगे और जो पराई चीज है उसमे रमनेका क्यो भाव करते है ? उसमे हित नही है । वह तो ज्ञानमय परिणाम है । मैं ज्ञानस्वभाव हू । सो मै स्वच्छ विज्ञानघन स्वभाव हूँ । फिर मै अज्ञानी क्यो बन रहा हू ? क्यो विषयोमे ही रम रहा हू ? अरे यदि परलक्ष्यरहित मेरा परिणाम हो जाय तो मै सुखका घर हूँ । मैं तो क्षेमका घर हू, स्वयं हितरूप हू । सो सर्वविकल्पको त्यागकर मै अपने आपमे ही अपने कल्याणकी श्रद्धा करूँ । मै ही मेरे लिए हितकर हू । मै ही मेरा गुरु हू, मै ही मेरा देव हू यह मै ही अपना रक्षक हू, मै ही ज्ञान-स्वभाव भगवान हू । उस भगवान्की श्रद्धा करो और अपने आपमे मै भगवानकी छटाको निरखू । जैसा भगवान् स्वरूप है तैसा ही उपयोग बनाओ और ऐसा अपने ध्यानमे लीन हो जावो कि अपनी खबर भूल जावो । इसीको कहते है परमात्मामे लीन होना । ऐसा लीन होकर मै अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ ।

दृश्योऽरम्यो न विश्वास्यो ज्ञानमात्रमहं यतः ।
विश्वसानि रमै क्वात. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–२६॥

जितने भी पुद्गल पदार्थ है वे सब अरम्य है अर्थात् रमनेके योग्य नही है । जगत्का कोईसा भी पदार्थ ऐसा नही है कि जिसमे रमण करके मनुष्य शांति प्राप्त कर सके और विश्वास भी नही है किसी पदार्थका कि ये दो दिन मेरे साथ रहेगा । रह आये बीसो वर्षोसे मगर विश्वासपूर्वक कोई पदार्थ मेरे साथ रह सके ऐसा नही है । यह दिखने वाली सारी दुनिया एक तो अरम्य है दूसरे विश्वासके योग्य नही है । मै तो ज्ञानमात्र हू । सो अपने ज्ञान का अनुभव करू और बाह्यपदार्थोंकी प्रीतिको छोडू । कही बाहरमे विश्वास करके कहाँ रमण करूं ? अपने जीवनमे भी आप लोगोने सब कुछ अनुभव किया होगा । कोई मनुष्य, कोई स्त्री, कोई पुरुष ऐसा नही मिलेगा जो आपका साथ निभा सकता हो । कषाय सबके जुदा-

जुदा है। कहाँ मैं कषाय करूँ ? मैं ही अपनी संभाल करूँ, कोई मेरी संभाल नही कर सकता। किसी भी पदार्थसे हमे अपनी शांति प्राप्त नही हो सकती। कौनसे पदार्थ विश्वास योग्य है, रमनेके योग्य है। पदार्थोमे कोई रमाई जाने वाली कला नही है, किन्तु ये जीव खुद अपने भावोसे रहते है। परपदार्थोंकी ओर झुका करते हैं, इष्ट अनिष्ट मानते रहते हैं। सो जब यह राग तक भी मेरा हितकारी तत्त्व नही है तो जिस पदार्थमे हम राग करते है तो उस पदार्थसे मेरा कैसे सम्बन्ध हो सकता है ? अगर किसी पदार्थमे आपने राग किया तो न राग आपका भला करता है और न कोई परपदार्थ आपका भला कर सकते हैं। ससारमे यह जीव इस रागद्वेष मोहके कारण ही तो रुलता चला आया है। जब राग भी मेरा हितकारी नही है तो अन्य पदार्थोंमे हितकी क्या आशा करूँ ? जो मेरा है वही मेरा रम्य है। वही मेरा विश्वास्य है। ऐसा कौनसा पदार्थ है जो मेरे साथ त्रिकाल रह सकता हो ? ऐसा पदार्थ मेरा मै ही हूँ, जो मै अपने साथ सदा रह सकता हू। मुझे अपने आपका विश्वास है कि यह मैं मेरेसे अलग कभी नही हो सकता। और निजतत्त्वको छोडकर बाकी किसी पदार्थमे हम विश्वास नही कर सकते कि ये कोई मेरे साथ रह सकें। मैं एक सत् हू जो सदा अपने साथ रहूगा। मैं त्रैकालिक हू, अनादिसे हू और अनन्तकाल तक रहूंगा। सत्का समूल विध्वस नही होता। मैं तो मिट ही नही सकता। मैं मेरे साथ सदैव रहूगा। सो श्रद्धाके योग्य और रमणके योग्य मेरा आत्मा है। ये बाहरी पदार्थ जिनमे स्वय सुख गुण नही है—धन है, मकान है, चांदी है, सोना है इनमे चेतना तक नही है। सुख गुण भी नही है। इनमे ही यह मोही जीव चित्त जमाये हुए है। सो इस मोहको और सर्वविकल्पोको छोडकर अपने अतरमे अपनेको देखो तो सही। यह ज्ञान और आनन्दका निधान जिसकी जगत्मे कही तुलना नही हो सकती, ऐसा मैं स्वय प्रभुस्वरूप हू। इस अपने आपमे रम करके कर्मोंका क्षय करना चाहिए, संकटोको दूर करना चाहिए और सहज सुखी हो लेना चाहिए।

त्यागादाने परे भिन्ने किमौपाधिक एव हि।
हेयोऽनाश्रित्य त तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-२७॥

देखो जितने भी परपदार्थ हैं वे सब मेरे सत्से अत्यन्त जुदा है। शरीरका स्वरूप मेरे स्वरूपसे भिन्न-भिन्न है। शरीर जड है और मै चेतन हू। धन वैभव तो प्रकट जुदा है। मेरे से ये पदार्थ अत्यन्त भिन्न है। इनको मै ग्रहण नही कर सकता हू, यह आत्मा भी ग्रहण नही कर सकता। आत्मा अमूर्तिक है, आनन्दमय है। ज्ञान और आनन्दका जो स्वरूप है वह एतावन्मात्र आत्मा मै हू। यह पैसेको छू भी नही सकता। ग्रहण तो करे ही क्या ? जब मै परपदार्थोंका ग्रहण नही कर सकता तो फिर त्यागूंगा ही क्या ? आत्मा सबसे निराला

निर्लेप अपने ज्ञान और आनन्दभावमे रहने वाला है। यह परपदार्थको न तो ग्रहण करता है और न उनका त्याग करता है। वे सर्वथा भिन्न है। जब उनको ग्रहण नही करता तो उनको त्यागना ही क्या है? तो परपदार्थका न तो ग्रहण है और न त्याग है। पर ग्रहण और त्याग किसका करता है यह जीव? यह जीव अपने ही औपाधिक भावोको एक क्षणके लिए ग्रहण और एक क्षणके लिए त्याग कर देता है। जैसे दर्पणमे सामनेकी चीजकी छाया आ जाती है तो क्या दर्पणने इस खम्भेको ग्रहण किया है? दर्पणमे खम्भेकी छाया आ गयी तो बताओ दर्पणने क्या खम्भेको पकडा है? नही। दर्पण अपनी जगह है, खम्भा अपनी जगह है। दर्पणने खम्भेको नही पकडा तो दर्पण खभेको छोडेगा ही क्या? पर खम्भेका निमित्त पाकर जो दर्पणमे छायारूपका परिणमन हुआ है, जो दर्पणमे छाया बनी है उस छायाको थोडे समय के लिए ग्रहण किया। जितने समय यह उपाधि साथमे है, और उसके बाद त्याग कर दिया तो दर्पण अपने आपमे उठे हुए प्रतिबिम्बका त्याग करता है, फिर नया प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है, फिर त्याग करता है। इसी तरह यह ससारी जीव भी इन बाह्यपदार्थोंको घर, दुकान, परिवार, धन-वैभव किसी भी परपदार्थको यह जीव ग्रहण नही करता। वे परपदार्थ अपनी जगह है और जीव अपनी जगह है। उनका ग्रहण नही करता, किन्तु पदार्थोका निमित्त पाकर, आश्रय करके यह जीव अपनेमे रागभाव बनाता है। सो यह जीव रागविकारको ग्रहण करता है और दूसरे समयमे राग विकारको छोड देता है। तो औपाधिक जो राग परिणाम है वही तो आपत्तियोका कारण है। ये बाहरी पदार्थ आपत्तियोके कारण नही है। ये जो चीजें है, अपनी जगह पर है, मिट जायेंगी या रह जायेंगी, इनका मेरेसे कोई सम्बन्ध नही है। तब अपनेमे उठे हुए औपाधिक भावोका अनाश्रय करके तो मै नही हू। इस वैभवसे निराला ज्ञायकस्वभाव मात्र हू, ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। इस प्रकार इस वैभवसे भी निराला अपने आपको समझना यह अपने आपमे उठे हुए औपाधिक भावोका अनाश्रय कहलाता है। सो उन औपाधिक भावोका अनाश्रय करके स्वय अपने आपके शुद्ध शिव सुन्दर ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करू और स्वय ही सहज अपने आपके ज्ञानबलसे अपने आपके सत्य आनन्दको प्राप्त करूं। इन बाह्यपदार्थोंका और इन औपाधिक भावोका त्याग किए बिना इस आत्मा को शाँति नही प्राप्त हो सकती है।

दृश्य जडमदृश्योऽन्यश्चेतनश्च तथा पृथक्।
कस्मिन् रुष्याणि तुष्याणि स्यां स्वस्मै रवे सुखी स्वयम् ॥७-२८॥

एक बहुत मोटीसी बात है। अपने-अपने ज्ञानसे सोचो कि ये दिखने वाले जो कुछ पदार्थ है ये जड़ है या चेतन हैं? इनमे चेतन तत्त्व दिखता है क्या? जो कुछ दिख रहा है

वह सब जड है । तो दिखने वाले तो जड है और जो चैतन्य है वह दिखता नहीं है । चैतन्य बिल्कुल भिन्न चीजें है । जड बिल्कुल भिन्न चीज है । अच्छा जडमे तुम खुश हो जाओगे । कुछ जडसे मिलेगा क्या ? वे तो जड हैं, थूलमथून पडे हुए है । वे न उससे कुछ पैदा करते । जडपर तुम प्रसन्न हो जाओ तो जड तुम्हे कुछ जवाब देंगे क्या ? या अपना परिणाम कुछ दिखा सकते है ? कुछ भी नही । और जडपर द्वेष कर लो, जड तुम्हारा बिगाड करनेके लिए उद्यम कर सकते है क्या ? यह खम्भा खडा है । बडा सुन्दर दिखता है, इसपर प्रसन्न हो जायें तो यह खम्भा हमको संतोप दिला सकता है क्या ? यह तुम्हे कोई संतोष दिला देगा या कोई चेष्टा करेगा क्या ? इसपर नाराज हो जाओ तो तुम्हारा ये जड क्या बिगाड करेंगे ? ये बाहरी दृश्यमान पदार्थ सब जड है । इनमे रोष करनेसे क्या फायदा और संतोष करनेसे क्या फायदा ? जैसे किसी बच्चेके डेरी लग गयी सिरमे तो मां उस डेरीमे तीन चार तमाचे मारती है और कहती है कि तूने हमारे भैयाको चोट पहुंचायी । तो क्या तमाचा मारनेसे उस डेरीमे रोष कर देनेसे उस बच्चेको शान्ति मिली ? उससे तो कुछ होता नही, पर बालक मनमे यह सोच लेता है कि इसने हमको चोट पहुचायी तो इसे सजा मिल गयी, वह खुश हो जाता है । किसी भी पदार्थसे सुख या दुःख नही होता है । अपने आपमे ही उस प्रकारकी कल्पनायें बनानेसे सुख या दुःख हो गया । तो ये दृश्यमान पदार्थ जड है इनमे मैं क्या रोष करूं ? और इनमे क्या तोष करूं ? चैतन्यतत्त्व तो दिखता नही, सो कहा रोष तोष करू ? किसका रोष करूं ? जीव तो दिखते नही, फिर किसका तोष करूं ? ये जानने देखनेमे जो आ रहे है वे सब जड है । पदार्थ तो दिखनेमे नही आ रहे है । नाक, कान, आख आदि चैतन्य है ? समझदार है क्या ? समझने वाला पदार्थ तो इस शरीरके भीतर इस तरह छिपा हुआ है कि कितने भी उपाय कर लो इन्द्रिय और मनके द्वारा, पर यह चेतन ग्रहणमे नही आता । बाह्यविकल्प छूटें तो यह चेतन अपने आप ग्रहणमे आ जाता है । सो चेतन दिखते नही । फिर रोष किसका किया जाय ? सर्व पदार्थ स्वतन्त्र है । सबके जुदा जुदा प्रदेश है, फिर किसीमे क्रोध करनेसे लाभ क्या ? मान लो जिसकी कल्पनासे आप अपना पुत्र समझते हो और उस पुत्रने कोई विपरीत कार्य भी किया और आप उसपर क्रोध कर रहे है तो क्रोध करनेका फल किसको मिलेगा ? क्रोध तुम्हारी परिणति है तो तुम्हारी परिणतिका फल खुद को मिलेगा । वह तुम्हारा बालक पता नही तुम्हारे क्रोधको देखकर सभलता है या बिगडता है । आपकी परिणतिका प्रभाव आपपर है, दूसरेपर नही । खुद खोटे विचार मनमे आए तो नुक्सान किसको होगा ? खुदका ही नुक्सान होगा । खुदकी खोटी चेष्टाओसे ही खुदका बिगाड होता है । तो मैं किसमे सतोष करूं ? जड पदार्थोंसे तो तुम्हे जवाब नही मिलता । इसमे

रोष-तोषसे कोई लाभ नही । चैतन्यपदार्थ तो दिखते नही। तो फिर रोष-तोष करनेसे कोई लाभ नही । आप प्रभुकी भक्ति करते है और ऐसा सोच रहे है कि मैं जो बोल रहा हूं उसे भगवान सुन रहे हैं और उसको सुनकर भगवान्का हृदय पिघल जायगा और हमारे संकटो को भगवान् दूर कर रहे है । प्रथम तो आपकी बातोको भगवान सुनते नही है, क्योकि भगवान अतीन्द्रिय है, सर्वज्ञ है, अनन्त आनन्दके निधान हैं । भगवानकी बुद्धि अलौकिक है । इस लोकन वे अशुद्ध पदार्थोंको नही जानते है । वे शुद्ध पदार्थोंको जानते है । प्रथम तो आपकी बातोको भगवान सुनते नही है, क्योकि उनके कान नही है । फिर वह भगवान वीतराग हैं, उसके हृदय नही है । वह प्रभु तो ज्ञानका पिंड है । प्रभु अपना ही परिणमन कर अपने ही परिणमनको कर लेता है जिससे अनायास ही सकट टल जाते हैं अपने आपमे शांति का अनुभव होगा । किसी परपदार्थमे रोष करके कुछ लाभ न प्राप्त हो सकेगा । अपने ही औपाधिक भावोको करके ये रागादिक विकार होते है । ये विकार मेरे स्वभाव नही है । ऐसा जानकर अपने आपके गंदे विचारोपर क्रोध करू और अपना जो सहजस्वरूप है ज्ञानमय आनन्दमय उस सहजस्वरूपके दर्शन करू तो उसने मुझे लाभ है । सो मैं औपाधिक भावोकी उपेक्षा करके और ज्ञानमात्र भावोका ज्ञानमे अनुभव करके रोष और तोषके विकारसे भी परे अपने ज्ञायकस्वभावमे रहकर अपने आप मैं सुखी होऊं ।

वृक्षे खगा इवायान्ति क्षरण यान्ति स्वकर्मतः ।
विश्वास्य मे किमत्रातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७-२६।।

जैसे वृक्षपर शामके समय चारो दिशाओसे पक्षी आकर बैठ जाते है और रात्रि व्यतीत होनेपर वे पक्षी अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार अपने-अपने प्रयोजनसे जुदा-जुदा दिशाओ मे उड जाते है इसी प्रकार ससारके ये प्राणी अपने भावोके अनुसार बांधे हुए कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जुदा-जुदा गतियोमे जाकर जन्म ले लेते है । यह जो मेल हो गया है वह कोई ध्रुव नही है । अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही चले जायेंगे । अपने आपमे यह विश्वास रखो कि इन सबका वियोग जरूर होगा । यदि यह विश्वास रखोगे तो वियोग होनेके समय आप विह्वल न होगे । जब परिवारमे किसीको वियोग होगा तो आप ऐसा सोचेंगे कि यह तो हम जानते ही थे । यदि परिवारमे कोई गुजर गया तो आप विह्वल न होगे । आप यह सोचेंगे कि जहाँ सयोग होता है वहाँ वियोग होता ही है । मैं तो समझता ही था किसी दिन मरण हो ही जायगा । अगर यह पूर्ण निर्णय है कि जो जन्मा है वह नियमसे मरण करेगा । तब मेरे विश्वास योग्य ये कौन है ? जिस पदार्थ पर आपकी बडी प्रीति है वह आपके देखते-देखते भी वो मरण कर सकता है और उस समय आप किसका सहारा लेंगे ? अपने आपके

प्रभुके दर्शनका सहारा लेते हो तो बाह्यपदार्थोंके उपभोगका दुःख नही भोगना पडता । बाह्य पदार्थोंके वियोगका दुःख उसको नही होता जो बाह्य पदार्थोंके संयोगमे हर्ष नही मानता । यदि वियोगमे भी देखो कि यह चेतन है, जहाँ संयोग है वहां वियोग होता है । मैं किसी भी पदार्थमे क्यो हर्ष मानूं ? यदि मिले हुए पदार्थोंमे हर्ष मानोगे तो वियोगके समय कोई दुःख जरूर होगा । इस लोकमे सुख तो तिलभर है और दुःख पहाडपर है । तिलभर सुखमे मग्न होनेसे यह पहाडभर दुःख अपने सामने आता है । यदि इस तिलभर सुखमे हर्ष न माना तो पहाड बराबर दुःख आपमे नही आ सकता । पर इतनी बडी तैयारीके लिए ज्ञानबल चाहिए। ज्ञानबल ऐसा हो, भेदविज्ञान ऐसा हो कि सर्व पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं । किसी भी पर पदार्थसे मेरा सम्बन्ध नही है । इतना उत्कृष्ट भेदविज्ञान चाहिए । ऐसा भेदविज्ञान कैसे प्रकट होगा ? उसका उपाय है कि परवस्तुके स्वरूपका यथार्थज्ञान करें, ऐसा अनुभव करके समझें कि परपदार्थ अपने स्वरूपमे है । किसी पदार्थमे किसी दूसरे पदार्थका कोई सम्बन्ध नही है । सभी प्राणी अपने अपने आयुकर्मके उदयसे जन्म लेते हैं और आयुकर्मके उदयसे मरण करते है । ऐसे जन्ममरण करते हुए, इस प्रवाहमे बहते हुए कुछ जीव एक कुटीमे उपस्थित हो गये है । तो कौनसी विश्वासकी बात है ? कुछ समय बाद अपने अपने कर्मानुसार सब जुदा-जुदा बिखर जायेंगे । मेरे विश्वासके योग्य कहां कौन है ? मै किसको शरण समझू ? जिनका वियोग हो चुका है ऐसे बाबा माता पिता जिनका वियोग हुआ है उनके प्रति भी यदि ध्यान करो कि कितना अगाध प्रेम उनके था ? अथवा कितना मै परपदार्थोंमे मोह करता था, पर मै उनकी शरण नही हो सकता और न वे मेरी शरण हो सकते तो मैं सर्व रागभावोको छोड़-कर जन्ममरणरहित, गमनरहित, रागद्वेषरहित निज शुद्ध ज्ञानमात्रमे ठहरूं और अपनेमे अपने आप स्वय सुखी होऊं ।

एकान्तेऽस्तु निवासो मे सर्वविस्मरण भवेत् ।
सयोगेन न मे लाभः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-३०॥

अहो, इन सबसे मुझे क्या लाभ है ? मैं सबमे क्यो रमूं ? उनके रमनेकी प्रवृत्तिसे मेरी किसी गुणकी वृद्धि नही होती, प्रत्युत क्षोभका ही कारण है । मेरी एकतामे ही निवास हो, मै एकतामे ही रहू । एकता कैसे मिलेगी ? क्या घर छोडकर जगलमे ? नही । चाहे जंगलमे रहे, चाहे गावमे रहे, सबको भूलकर केवल अपने आपके सहजज्ञानस्वरूपकी ओर दृष्टि दे तो वह मेरा एकातमे रहना कहलायेगा । जंगलमे रहना एकांत निवास नही कहलाता है । जगलमे रहते हुए भी यदि अपने ज्ञानमे घर-बार, धन दौलत बसा रखा हो तो एकात नही मिलता । वहाँ सबके बीच बस रहे हो और सबको बसा रहे हो तो वहाँ एकांत नही

मिलता है। एकांत तो आत्मध्यानमे मिलता है। इस शरीरसे दृष्टि हटे, केवल ज्ञानस्वरूप का ही जानन रहे तो ऐसी स्थिति एकांतके निवासकी स्थिति कहलाती है। मेरा इस एकांतमे ही निवास है। किसी अन्य पदार्थके सोच-विचारमे मेरा कोई उत्कर्ष नही है। परका सोच-विचार तो निरतर किया करते है, पर उस सोच विचारमे क्या वे परपदार्थ इच्छाके अनुसार बनेंगे। सोच विचारसे अब तक भी आपने अपनेमें उन्नति पायी ? अर्थात् मिलेगा कुछ नही। हम तो ज्योके त्यो रीते है। जैसे तैसे सोचते हुए बीसो वर्ष बीत गये, पर आकुलताएँ आज भी है। गत बीस वर्षोंमे बहुत उद्योग कर डाला, पर आज आकुलताए तो नही मिटी। इससे ज्ञात होता है कि किसी परके सोच विचारसे आकुलताएं घटती नही हैं, बल्कि बढती है। मेरा किसी भी संयोगसे लाभ नहीं है। मै तो अपने अनन्तगुणोके चितनमे रहू। मैं सबसे जुदा हू, किन्तु अपने ज्ञान साधन आदि अलौकिक चमत्कारोमे तन्मय हू। ऐसे इस चैतन्यब्रह्म के ध्यानमे ही सर्वलाभ है। सो बाह्य पदार्थोंके सोच विचारकी प्रवृत्ति छूटे और अपने आपमे बसे हुए ज्ञानानन्द निधानकी याद रहे तो अपने इस आत्मचिंतनके द्वारा मैं सकटोको पार कर सकता हू। सकट हम और आपपर कुछ नही है। केवल मोह रागद्वेषकी जो तरंग है यही संकट है। घर जो गिर गया, वे ईंटें भिन्न थी, खिसक गयी। उनके गिर जानेसे अपने को क्या सकट आया ? पर उस घरके प्रति जो ममता है, जिस ममताके कारण हम अनेक कल्पनाए करते है। वह ममता ही हमे दुःख दे रही है। ये बाह्यपदार्थ मुझे दुःख देनेमे समर्थ नही है। सकट केवल अपनी कपल्नाओसे है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करो कि ये कल्पनाए मिटें और जैसे सर्वपदार्थ है वैसी समझ बनी रहे लो सब संकट दूर हो गये। मोह कटेगा तो सकट मिटेंगे। मोहके रहते हुए तो सकट बने ही रहेगे। क्योकि मोह स्वय विकट संकट है। मोहकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह सकटोको उत्पन्न कर देता है। ऐसे सकटोसे दूर होना है तो सिद्ध पुरुष बनो और इस मोहके लगावका विनाश करो। निर्मलतामे ही शाँति प्राप्त हो सकती है।

भोगाः भुक्ता मुहुस्त्यक्तास्तानुच्छिष्टान् किमर्थये।
ज्ञानमात्र हि भुञ्जानः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–३१॥

कहते है ये भोग तो बराबर भोगे है और भोगकर छोडे है। और छोडे हुए फिर मिले तो झूठे ही तो मिले कहलाते है। कहते हैं ये ज्ञानानन्दघन प्रभु होकर इन झूठे भोगो को क्यो चाहू ? जैसे कोई भोजन कर लेता है और करके फिर छोड देता है, वमन कर देता है, सो वमन किए हुए भोजनको क्या कोई चाहता है ? नही। और अगर कोई चाहता है तो मूर्ख कहलायेगा। इसी तरह समस्त पुद्गल दिखनेमे जो आ रहे हैं ये अनेक बार भोगे

और भोगकर छोडे । अब तो छोडे हुए झूठे भोगोंकी रुचि करें गे यह मूर्खता ही है । मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ । उन झूठे भोगो ो मैं क्यो चाहू ? अनादिकालसे इस लोकमे अनेक बार जन्म मरण करते हुए भव बिताने वाले इम मुझ जीवने नाना प्रकारके गेग भोगे और वे अपने परिणमनसे छूट गये । तब समझ लो कि जो कुछ सम्पदा हमे मिली है वह सब झूठ ही तो है । उसको मैं क्यो चाहूँ ? सत् पुरुष झूठे भोजन को वाँछा तो नही करते । इसलिए मैं इन भोगोको नही चाहता हू । मै तो ज्ञानमात्र स्वभावी हू । मेरा जो स्वरूप है वह अनादिसे अनन्तकाल तक एक रूप है । ज्ञानमात्र कैसा विलक्षण है यह चैतन्यपदार्थ कि यहाँ तक ज्ञान प्रकाशके अतिरिक्त और कुछ प्रतीत ही नही होता । ऐसा विलक्षण भावात्मक मैं ज्ञानमात्र तत्त्व हू । इसका कभी वियोग नही होता । इन भोगोका तो वियोग हो जाता है । ये पर-पदार्थ है, भौतिक हैं, पर मेरा आत्मा मुझसे कहाँ अलग जायगा ? यह तो मै हू । ऐसा नही है कि मेरा यह स्वरूप यह ज्ञानतत्त्व पहिले मुझमे न था, बादमे कहीसे मुझमे आया जो मुझमे नही था और इसमे वह मेरा स्वरूप नही है । वे पर औपाधिक चीजें हैं । ऐसा यह मैं ज्ञानमात्र स्वरूप हूँ । इसको ही मैं भोगूँ । मैं बाह्यपदार्थोंको तो भोग भी नही पाता । भोग के परिणाम उत्पन्न होते है और उन परिणामोके विषयभूत ये बाह्यपदार्थ होते है । इसलिए अपने आपमे बुद्धि न ठहरकर बाहरी पदार्थोंमे दौडती है और यह मान लेते है ये मोही कि मैं इन पदार्थोंको भोगता हू । किन्तु मेरा अस्तित्व तो बाह्यपदार्थोंमे है ही नही । मैं बाह्य पदार्थोंको कैसे भोग सकूँगा ? अपनी कल्पनाओंसे भोगता रहता हू । अपने आपमे अपने विकार करता हू और उन विकारोमे ही रमता रहता हू । इन बाह्यपदार्थोंको न भोगना हो तो इनको अपनेमे स्थान न दो । मेरा यह ज्ञानरूप सिंहासन प्रभुके स्वरूपको विराजमान करनेके लिए है । ये जगत्के मायावी, मोही, कषायवान जीवोके ठहरानेके लिए यह ज्ञान सिंहासन नही है । सिंहासन कहते है श्रेष्ठ आसनको सो इस उपयोगमे मै किसी बाह्यपदार्थको न बसाऊ और राग द्वेषादिक आकुलतारहित निजब्रह्मको ठहराता हुआ अपनेमे अपने आप सुखी होऊ । ये भोग तो अनेक बार भोग डाले । अब इन भोगोकी प्रीतिसे लाभ नही है । ऐसा जानकर कि शुद्ध आनन्दस्वरूप ज्ञानमय अपना जो सहजस्वभाव है, उस सहजस्वभावकी उपासना करूँ और अपनेमे अपने आप सहज सुखी होऊ । आनन्दका उपाय एक अपने आत्मदेवकी श्रद्धाके अतिरिक्त और कुछ नही है ।

भुक्त्वा त्यजानि भावोऽयं सव्याजो निवृतिं सदा ।
भावयेय निवृत्याह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥८–३२॥

कोई यह सोचे कि पहिले मै भोग लूं, फिर इन भोगोको छोडूगा । ऐसा परिणाम

छलसहित है । भोग भोगे और भोगनेके कालमें हम भोगोकी निवृत्तिकी आशा करें, यह कैसे हो सकता है ? भोग भोगनेमे मोहवश जो यह मौज मानेगा, फिर क्या उस मौजको छोडनेकी चाह करेगा ? जैसे अभी भी अनेक गृहस्थियोको देख लो, अनेकोने जो पांच सात वर्ष पहिले यह मनमे धारणा की होगी कि लडका जरा समर्थ हो जाय, थोडासा ऐसा काम हो जाय, साल-दो सालकी देर है, फिर मै सब त्याग दूगा और निर्विकल्प होकर धर्मसाधना करूँगा, ऐसे है आजकल अनेको कि नही ? उनके दो साल क्या, पांच–सात साल हो गये, जितने फँसे पहले न थे उससे अधिक फसे आज अनुभव करते है । वे दिन निकल गये । अब तो बडी बड़ी कठिनाइयां है । कोई दृढ़बन्धनकी अनुभूति कर रहा है । उन भोगोका भोग करूँ, फिर इन्हे छोड़ूगा, ऐसी आशा करना व्यर्थकी बात है । ज्ञानका उदय होता है तो अभी छोडो जितना छोड सकते हो । अपने पैरोको कीचडमे फँसा दें, फिर निकालकर अच्छी तरह धोवेंगे ऐसा सोचकर पैरोमे कीचड लपेटने वाले क्या विवेकी कहला सकते है ? अरे किसी कारणसे कीचडमे गिर पडे है, अब उसके बाद कीचडको साफ करें, तो क्या यह विवेक है ? अगर कोई प्रोग्राम ही पहलेसे बनाया कि मैं तो कीचडमे घुसुंगा और उसके बाद फिर साफ करूँगा तो ऐसा प्रोग्राम बनाने वालेको क्या आप विवेकी कह देंगे ? नही । उन भोगोको भोगकर फिर छोड़ूगा, इस प्रकारका जो भाव है वह छलसे भरा हुआ है, क्योकि वर्तमान परिणामो वालेकी भोगोके प्रति रुचि है । वर्तमान परिणमन कैसे हो रहा है ? क्या उस रुचि वाले परिणामोके आधार पर यह आशा की जा सकती है कि भोगोको छोड देंगे, एक चीज । दूसरी बात यह है कि जो त्याग करनेकी योग्यता रखता है ऐसे पुरुषकी भी आयुका भरोसा नही है । पांच सात वर्ष और काम करते रह जाये, भोग भोगते जायें, फिर छोड देंगे । तो क्या तुम्हे कलकी खबर है कि आयु रहेगी अथवा न रहेगी । जो कुछ करना हो सो अब कर लो, कलकी भी आशा न रखो । अपनी शक्तिके अनुसार जितना आपका परिणाम बन सकता है अभी बना लो । अगले सालकी आशा मत रखो । सो प्रथम तो यह बात है कि भोग भोगने की रुचिका परिणाम वर्तमानमे है तो उससे यह नही कहा जा सकता कि आगे छोड भी सकेंगे । दूसरे यह भी भरोसा नही है कि हम कब तक जीवेंगे ? कदाचित् इस ही कल्पनामे रहते रहते आयु समाप्त हो गयी तो त्यागकी यह कथा यहाँ ही धरी रह जायगी । इसलिए अभी ही निवृत्त होकर मैं अपने आपकी भावना करूँ, सर्व रागादिकोसे रहित जो चैतन्यस्वरूप मुझमे अनादि अनन्त अत प्रकाशमान है उसकी ही दृष्टि करूँ । अन्य सर्व वांछावोको त्यागूं और जितनी शक्ति है, जितना उपयोग चले, मोहसे हटाकर अपने उपयोगको मैं ज्ञानके स्वरूपमे ले जाऊँ, भगवान भी ज्ञानका स्वरूप है और हम आप भी ज्ञानके स्वरूप है । भग-

वानके स्वरूपको सोचो तो आप ज्ञानस्वरूपमे पहुचे । अपने ज्ञानविकल्पोको त्यागकर अपने ज्ञानस्वरूपमे ठहरता हुआ सर्व रागादिक विकल्पोका त्याग करूं और अपने आपमे सहज सुखी होऊ ।

निरायूरंचये हेतो कालस्येच्छा हि तृष्णया ।
तृष्णां स्वनाशिनी मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-३३॥

तृष्णाका नाच देखो, साहूकार लोग व्याजपर रकम देते है ना । एक हजार रुपया दिया आठ आने सैकडे ब्याज पर तो एक वर्षमे कितना व्याज आ गया, ६० रुपया । एक हजार रुपया देकर साहूकार यह प्रतीक्षा करते है कि यह साल जल्दी व्यतीत हो तो ६० रु० मिल जायेंगे । सो वे दिन गुजारनेकी इच्छा रखते हैं । जैसे ही महीना गुजर गया वैसे ही लाभ मिल गया । सो एक साल व्यतीत होनेका वे मन करते है । एक साल व्यतीत हुआ । एक साल व्यतीत होनेपर क्या होगा ? ६० रुपये मिल जायेंगे । इन ६० रुपयोसे क्या होगा कि जीवन खोटा और गंदे विचारों वाला बीतेगा । उनकी तो ६० रुपयो पर ही दृष्टि है । तो इस तृष्णाका नाच देखो कि जो तृष्णा अपना नाश कराने वाली है इस ही तृष्णासे अधिक प्रीति है कि अपने नाशकी भी परवाह नही करते और धनपर दृष्टि देते है । ये सब पर्याय बुद्धिके भाव है । अभी किसीसे पूछें कि तुम्हारा भैया कितने वर्षका हो गया ? तो आप खुश होकर ढंगके साथ बोलते है कि हमारा मुन्ना तो ११ वर्षका हो गया । उसका अर्थ क्या है कि जितने दिन तक जीना था उसमेसे ११ साल नष्ट हो गये है । अर्थ तो यह है, मगर आप लोग बडे ढगसे बोलते है कि मेरा मुन्ना तो ११ वर्षका हो गया है । अपने आपकी उम्रको देखकर गर्व करते है कि अब मै २५ वर्षका हो गया, २८ सालका हो गया, हो क्या गया ? २८ साल गुजर गये, २८ साल मर गये, अब बुढापेकी उम्र आती है तब ख्याल होता है और ऐसी प्रार्थना करते है कि भगवान यह सूर्य अस्त न हो, नही तो हमारी आयु जल्दी घट जायगी, हम जल्दी मर जायेंगे । यह तृष्णा अपने आपको नाश करने वाली है । इस तृष्णा को छोडो, पच परमपद परमेष्ठीपद ये तुम्हारे ही पद है । इस रूप तुम्हारी ही स्थिति होगी । इस पचपरमेष्ठी पदोका ध्यान करो । स्वरूपसे डिगकर धर्मकी और प्रीति बढाओ । इन भोगी और मोही जनोसे प्रीति करके कुछ लाभ नही होगा । धन्य है वे बड़भागी पुरुष जो सर्व प्रकारकी तृष्णाओका उच्छेद करके धर्मी और धर्मात्मा जनोसे नेह लगाते है, वे पुरुष धन्य है । प्रत्येक धर्मात्मा जनोसे स्नेह करके निष्कपट होना चाहिए । उनमे किसी प्रकारके धनके पानेकी लालसा नही होती । किसी प्रकारका स्वार्थ न हो, केवल उन धर्मात्मा पुरुषोके आत्मा के रत्नत्रयको जानकर उस रत्नत्रय धर्ममे भक्ति रखकर प्रेम हो । धर्मात्मा जनोको देखकर

गद्‌गद् हो जावो । प्रीति करो तो धर्ममें और धर्मात्मावोमें, किन्तु यह संसार उन मोही जनो मे प्रीति करता है जो स्वयं अज्ञानी ता है ही, मगर आपको भी दुर्वचन बोला करते है, कष्ट दिया करते है, परवाह नही करते, इज्जत नही रखते । वे मोहीजन हैं, फिर भी ऐसे मोहियो से ही प्रीति जोडते हैं । इन तृष्णावोका नाश करो, मोहका उच्छेद कर अपने आपके धर्ममे और धर्मात्माओके स्वरूपमे आदर प्रीति रखो और परचिन्तावोमे विमुक्त होकर अपनेमे अपने आप सुखी होगो ।

परान् पश्यामि व्यापन्नान् तथा पश्यानि स्वं यदि ।
दोषमुक्तः स्वलक्ष्यः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-३४॥

जिस प्रकार दूसरे जीवोको आपदामे पड़ा हुआ देखते हो उसी प्रकार यदि अपने आपको ससारकी नाना आपत्तियोमे पडा हुआ देखो तो उस आपदासे मुक्त होकर निज शुद्ध आत्माका लक्ष्य करके अपनेमे अपने आप स्वय सुखी हो सकते हो । जैसे कोई जंगल जल रहा है उस जंगलके बीच कोई पुरुष पहिलेसे था । वह जंगलमे जलती हुई आगको देखकर भागकर किसी पेडपर चढकर शाखाओपर बैठ गया । वह बैठे बैठे चारो ओर देखता है कि आग लग रही है, लो वह देखो खरगोश जल गया, वह हिरण मर गया, वह गाय मर गयी । दूसरे जीवोको तो आपदामे पडे हुए देख रहे है और यह समझ रहे है कि आग बढकर इस पेड़मे भी आयगी और इस पेडको भी भस्म करेगी, फिर मैं कैसे जीवित रह सकूंगा ? यह देख रहा है कि आपत्ति तो हमारे ऊपर भी दूसरे जीवोकी तरह आयेगी । इसी तरह जगत्के ये ससारी मोही प्राणी दूसरोको तो विपत्तियोमे घिरा हुआ देख रहे है, देखो इनका यह टोटा पड गया, इनके ये माता-पिता गुजर गये, इनका देखो इकलौता बेटा गुजर गया । कैसा दुःखी है ? इनको चोर डाकुवोने लूट लिया, ये खानेको भी मोहताज हो गये, सो नाना प्रकारसे आपत्तियोमे फसा हुआ देख रहे है सबको, पर अपने आपको नही जानते कि आज ठीक पुण्य का उदय है सो मनको स्वच्छन्द चला लिया, जिस पर चाहे हुकूमत कर लिया, दुःखी कर लिया, पर कदाचित् पापोका उदय आ गया तो उसमे कौन साथी होगा ? वे सब संकट तो अकेले ही भोगने पडेंगे । दूसरे जीवोको यह जीव आपत्तियोमे घिरा हुआ देख रहा है, पर अपनेको भी तो यह जीव समझे कि इस जीवके मायाका कुछ भरोसा नही है । जो सम्पदासे भरपूर है तो एक रातके बाद दूसरे दिन क्या होगा ? इसको कोई कुछ नही कह सकता है । कितनी आपदा घिरी हुई है ? जब श्री रामचन्द्रजी को राज्याभिषेक होनेको था तो सभी जुड़ गये । अभिषेकमे राज्यसिंहासनपर आसीन करनेका पूरा प्रोग्राम बन चुका । कोई पन्द्रह-बीस मिनटकी देर होगी । किसको कल्पना थी कि अब यहां अनहोनी क्या गुजरेगी ? अचानक

क्या हुआ कि दशरथ जी कहते हैं कि यह राज्य भरतको मिलेगा। अब भरतका अभिषेक होगा। एकदम इतनी बात किसी भी आत्माकी कल्पनामे न थी। सबसे बडे भाई राम और भरत उनसे छोटे किसीको भी कल्पना न थी कि दशरथ महाराज यो बोल देंगे। वे क्यो बोल गये, यह बात अलग है। कारण वहाँ यह था कि दशरथ रामचन्द्रजी को राज्य देकर संन्यास लेने वाले थे और पिताका सन्यास देखकर भरत भी सन्यास लेने वाले थे। केकईको पुत्रका व्यामोह हो गया कि मेरे पति भी मुझसे जुदा हो रहे है और मेरा पुत्र मुझसे जुदा हो रहा है। कुछ स्मरण आ गया कि मेरा वचन महाराजके पास धरोहरमे रखा है। केकईने रथको सग्राममे इस प्रकार चलाया था कि उस संग्राममे दशरथकी विजय हो गयी थी। उस समय दशरथने वर दिया था कि जो मांगोगी सो मिलेगा। सो केकईने क्या मागा कि यह राज्य भरतको दिया जायेगा। किसलिए मागा? रामचन्द्रजी को दु.खी करनेके लिए नही, रामचन्द्रजी को वनमे भेजनेके लिए नही, बल्कि भरतको अपने घरमे रोकनेके लिए। हुआ क्या कि रामचन्द्रजी प्रसन्नचित्त होकर वहासे चल दिये। यह सोचकर कि यदि इन महलोमे मै रहूगा तो मेरे रहते हुए भरतकी प्रतिष्ठा नही हो सकेगी। लोगोका झुकाव मेरी ओर रहेगा। फिर एक राजा महाराजा बनकर भरत जो रह सकें, यह मुश्किल हो जायेगा। इसलिए वन को चल दिये थे। क्या हो रहा था, आध ही घटेमे क्या हो गया? यह बात उन महापुरुषो को भी विदित न हुई। हम आप छोटे पुण्य वाले, छोटी वैभव सम्पत्ति वाले इस सम्पत्तिके प्रति ऐसे भाव बनाए हुए है कि ये मुझसे अलग कैसे हो सकेंगे? सो भाई जैसे दूसरे पुरुषो को विपदाओमे ग्रस्त देख रहे हो उसी प्रकार अपने आपको भी विपदाओमे ग्रस्त देखो। मैं कर्मोंसे घिरा हुआ हू। अनन्त भवोके जो कर्म बांधे थे उनकी भी सत्ता मुझमे भरी हुई है। किस समय किन कर्मोंका उदय आयेगा तो क्या स्थिति हो जायगी? अपने आपको विपदाओ से ग्रस्त देखो और साथ ही उन सब विपदाओको एक क्षणमे ही छुटा देने वाला जो अपना ज्ञानानन्दमय प्रभुत्व है उस भगवती शक्तिको तो देखो। अपने आपमे घट-घटमे बसी हुई इस भगवती चेतनशक्तिके दर्शनके प्रसादसे ससारके सारे संकट टल जाया करते है। ऐसी विचित्र भगवती शक्ति अपने आपमे है। उसको मैं निरखूं और अपने ही ज्ञानबलसे अपनेमे अपने आप सुखी होऊं।

स्वोणादादेन जायतेऽर्था जायन्तां न वा तत ।
हित नैव निजं दृष्ट्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७·३५॥

हम और आपपर सकट है तो अज्ञानका सकट है, मोहका सकट है। औरका किसी

चीजमे नाम ही नही है। जगत्के प्रत्येक पदार्थ स्वरूपास्तित्व लिए हुए हैं। सभी पदार्थ अपनी योग्यताके अनुसार अपना परिणमन करते चले जा रहे है। कोई पदार्थ अपनी परिणतिसे किसी दूसरे पदार्थको बदल नही सकता। कोई किसीका कुछ हो नही सकता। ऐसा सहज स्वरूपास्तित्व है उन पदार्थोंका, वे पदार्थ परिवर्तनशील है। स्वतंत्र पदार्थ है इस कारण वे अपने-अपने उपादानसे उत्पन्न हो रहे है। प्रत्येक पदार्थमे प्रतिसमय नवीन-नवीन परिणमन होता है। जैसा आमका फल देखा है ना। पहिले वह हरा है, उसके बाद पीला होता है, लाल होता है, पक जाता है, मिट्टीमे मिल जाता है। उसकी दशाएँ प्रतिसमय नवीन-नवीन होती है। जैसे यह मनुष्य है ना, पहले बच्चा हुआ, फिर जवान हुआ, फिर बूढा हुआ। बदलता रहता है। सर्व पदार्थ प्रतिक्षण परिणमते रहते है। परिणमना तो उस द्रव्यकी अवस्था है। वह अपने आपमे से परिणमन बनाता है। दूसरे पदार्थका परिणमन ग्रहण नही करता। जैसे दो स्नेही मित्र किसी वियोगकी घटनासे दुःखी है, मिल गए तो परस्पर गलेसे मिलकर रोने लगे, दुःखी होने लगे। वहाँ एक दूसरेकी आत्माका दुःख नही है, किन्तु अपने अपने कषायोके अनुसार अपने आपमे अपनी कल्पना बनाकर स्वय व्याकुल हो रहे है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही उपादानसे परिणमते है। किसीको न मैं परिणमा सकता हू और न कोई मुझे परिणमा सकता है। सब अपने-अपने उपादानसे उत्पन्न होते है। होते है हो, उत्पन्न न होते हो न हो। यद्यपि ऐसा नही है कि कोई पदार्थ ध्रुव अपरिणामी रह जाय परिणमे ही नही, परिणमेगा। लेकिन परपदार्थोंके परिणमनसे यहाँ क्या हित है? कोई परपदार्थ किसी रूप परिणम रहा हो, परिणमा करे, वह इस प्रकार परिणमे तो क्या और अन्य प्रकार परिणमे तो क्या? जो चीज चलती है चलो उससे मेरा कोई हित नही है, ऐसा सर्वपदार्थोंको अहितकर देखकर उनसे विरक्त हो, उनमे न लगो। परसे कुछ न चाहो। ये लोग मुझे कुछ समझ लें, जान जायें ऐसी वाञ्छा न करो। दूसरे समझ जायेंगे तो वे मुझे नही समझेंगे। वे अपने ज्ञेयाकारको समझेंगे। उनका जो विचार बना उन विचारोको ही वे समझ सकते है। दूसरे मुझे कुछ समझ हो नही सकते। कदाचित् मान लो मुझे जान जायें अर्थात् मेरे बारेमे कल्पनाएँ कर डालें तो उनकी कल्पनायें किए जानेसे क्या मेरा कुछ सुधार बिगाड हो जायगा? मैं अपने श्रद्धान, ज्ञान, आचरणसे रहू तो मेरा सुधार है और मै विपरीत श्रद्धान, ज्ञान, आचरणमे रहूँ तो मेरा बिगाड है। सबको अपनेसे जुदा समझो ज्ञानज्योति जगावो। जैसे जगत्के अनेक प्राणी अपनेसे पृथक् है वैसे ही घरके १०-५ लोग भी अपनेसे अत्यंत जुदे है। ऐसा सबसे अपनेको न्यारा जानकर उनसे उपेक्षा भाव धारण करो। परकी प्रीतिसे लाभ न मिलेगा,

क्योंकि वे पर ही है, वे कब तक तुम्हारा साथ देंगे ? वे सब बिछुड जायेंगे । उनमे आपका रंच भी अधिकार नही है । परपदार्थ अपने ही उपादानसे परिणमते है, आते हैं, जाते हैं, रहते है । उन बाह्यपदार्थोंमे आपकी कोई करतुत नही चल सकती । इस कारण परपदार्थों का व्यामोह तजकर मैं स्वयं सुखी होऊं । मै स्वयं हितमय हू, सो मै अपने इस निजतत्त्वको ही देखू और निज चैतन्यभावोमे मग्न होकर सर्व रागादिक भावोसे पृथक् होकर अपनेमे अपने ज्ञानरसके अनुभवसे लिप्त होऊँ, संतुष्ट होऊँ और ससारके कर्मरूपी सकटोका क्षय करनेमे मैं स्वयं समर्थ होऊ । बाह्य पदार्थोंका मोह छोडो और अपने आपके स्वभावमे अपना उपयोग जोड़ो, इसमे ही अपना हित है ।

आसमस्मि भविष्यामि सुखे दुःखेऽहमेकक. ।
परयोगे न लाभो मे स्या स्वस्मं स्वे सुखी स्वयम् ॥७-३६॥

मै सुखमे और दुःखमे एक अकेला ही था, अकेला ही हूँ और अकेला ही रहूगा । परपदार्थोंके सयोगसे कोई भी लाभ नही । यह बात उन पुरुषोके हृदयमे रहती है जिनका परपदार्थोंका स्वरूपास्तित्व भिन्न निर्णीत हो चुका है । जगत्मे कोई भी जीव किसी भी जीव को न करता है, न मानता है, न राग करता है, न द्वेष करता है । कोई जीव किसी दूसरे जीवपर कुछ चाहता ही नही है । क्यो नही करता कि जीव अपने प्रदेशोमे मेरा गुण मेरे ही प्रदेशमे है और उन गुणोका जो परिणमन हो सकता है वह भी अपने ही प्रदेशोमे है अर्थात् किसी भी जीवका द्रव्य अपने स्वरूपसे बाहर नही है । गुण अपने प्रदेशसे बाहर नही और क्रिया अपने प्रदेशोसे बाहर नही । तब रागद्वेष, इच्छा चारित्रगुणकी क्रिया है । चारित्रगुण आत्माके प्रदेशोमे है और मेरा परिणमन अपने आपमे ही है तो जीव इच्छाएँ करता है तो वह अपने आपकी ही इच्छायें करता है । राग करता है तो अपने आपको रक्त करता है । द्वेष करता है सो अपने आपको द्विष्ट करता है अर्थात् रागका प्रयोग दूसरे जीवपर कोई नही कर सकता । जैसे किसी अनहोनी घटनामे दो भाई दुःखी हो गए अथवा एक भाईकी तकलीफ के कारण दूसरा भाई दुःखी हो गया तो वहाँ यह नही है कि एक भाईने दूसरेको दुःखी कर दिया या बडी घनिष्ट मित्रतासे दो भाई रह रहे हो तो वहाँ यह नही है कि एक भाई दूसरे भाईको चाह रहा है । दूसरेको चाह ही नही सकता । क्योंकि चाह जीवका एक परिणमन है और वह चाह उस जीवमे ही समाप्त हो जायेगी । उसका परिणमन उसके बाहर नही है । जीवने चाहा तो अपने कषाय परिणमनको चाहा, दूसरे आत्माको नही । यह वस्तुगत स्वरूप की कथा है । यदि मेरे दुःखके कारण आपको दु ख उत्पन्न होता है तो मै आपको दु'खी नही करता, किन्तु मेरे दु'खको देखकर आप स्वय अलगसे दुःखी हो जाते है । कभी किसीके यहाँ

फेरा करने कोई रिस्तेदार जाता है। फेरा क्या कि किसीके मरनेपर उसके घर रिस्तेदार लोग जाते है तो उनको घरके लोग देखकर ज्यादा दुःखी हो जाते हैं, और उनको अत्यधिक रुलाई आ जाती है। वहाँ यह नही है कि रिस्तेदारोने उसे दु.खी कर दिया। वास्तवमे रिस्तेदारोने उनके दुःखको बाँट नही लिया। पर रिस्तेदार भी दुःखी हो गये, वे भी दुःखी हो गये। दोनो अपने आपमे दुःखी हो रहे हैं। कोई किसी दूसरेके दु.खसे नही दुःखी हो रहा है। मैं जब दुःखी था तब अकेला ही दुःखी हो रहा था। जब सुखी था तव अकेले ही सुखी हो रहा था। मिलकर कोई सुख दुःख नही करता। सुख और दुःख कोई बांटता नही है। सब अपने-अपने बारेमे दुःखी होते और अपने अपने बारेमे सुखी होते है। जैसे मैं अकेला ही दुःखी था, इसी प्रकार आगे भी अकेला ही दुःखी होऊँगा। जिसे लोग सम्वेदना कहते है, उसको देखकर बडी सम्वेदना उत्पन्न होती है, बडा दुःख होता है। ऐसा अभिप्राय जाहिर किया। उसको एक दुःख नया लग गया। मेरे दुःखमे दुःखी नही होता। उसी तरह दो आदमी मिलकर किसी काममे सुखी होते है तो दूसरेके सुखसे यह सुख नही होता, किन्तु इसे अपना एक सुख और मिलना है। प्रत्येक जीव अपने ही सुखसे अकेला ही सुखी है, अपने ही दुःखसे अकेला ही दुःखी है। किसी परके सयोगसे मेरा कोई लाभ नही। मैं अपने द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भाव से परिपूर्ण हू। जैसे चूल्हे पर बटलोही रख दिया भात बनानेके लिए। नीचे आग जल रही है। आग अपने स्वरूपसे अपनेमे पूर्ण है और पानी अपने स्वरूपसे अपनेमे पूर्ण है। आगका संयोग पाकर पानी गर्म हो जाता है तो पानी अकेले ही अपनी ही परिणतिसे शीतपर्याय को छोडकर गर्म हो जाता है। तो अग्निने पानीको गर्म नही किया। ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि सन्निधान पाये तो पानी गर्म हो जाता है। ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि अपने इष्ट रिस्तेदारको देखा तो अपना दुःख सुख उमड आता है। कही मेरे सुख दुःखसे बाहर में सुख दुःख न होगा। वास्तवमे मै अकेला ही हूँ। जितने भी दुःख है वे परपदार्थोंके संयोग से होते हैं, किन्तु परपदार्थोसे नही होते। मै तो केवल एक ज्ञानदर्शन प्रकाशरूप हूँ। अब मैं यह समझूँ कि मेरा लोकमे कही कुछ नही है, न कोई जीव मेरा है, न कोई अणु मेरा है। मै अपनी ओरसे ही कल्पनायें बनाकर सुखी दुःखी होता हूँ। इस कारण सर्व परपदार्थों की प्रतीक्षाको मै त्याग दूं। शुद्ध आनन्द, सत्य आनन्द केवल ज्ञानमात्र अपनेको निरखनेमे होता है। जिस क्षण ऐसी दृष्टि होती है कि मै अपने आपको केवल जानन स्वरूप ही देखू, उस क्षण जो आनन्द होता है वह शुद्ध और सहज है। वह आनन्द तो स्वाधीन है, परकी उपेक्षासे उत्पन्न नही होता है। जो सुख परकी उपेक्षासे उत्पन्न होता है वह सुख सुख नही है, दुःख ही है। क्योकि परके परोक्ष करनेमे क्लेश ही होते हैं। परकी आशा रखनेसे सक्लेश

ही मिलते है। इसलिए ऐसे सुखकी दृष्टि हमे करनी चाहिए जो स्वतंत्र है, अपने आपसे अपने आपमे प्रकट होता है। ऐसे सुखस्वरूप निज चैतन्यब्रह्ममे ठहरकर ज्ञातामात्र रहकर अपने आप सुखी होऊं।

खेदेन विषये वृत्तिर्वृत्तौ पश्चाच्च खेदता।
भोगः खेदमयस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम ॥७-३७॥

देखिये जगतके जीव विषयोमे ही मौज मनाते है, मगर विषयोका प्रसंग दु.खसे आदि मे, मध्यमे और अतमे भरा हुआ है। विषयोकी प्रवृत्ति तब है जब कि वेदना हो। बुखारमे कम्बल कब ओढते है? पसीना निकालनेके लिए कम्बल ओढा जाता है। इसी प्रकार विषयो मे जितनी प्रवृत्ति है, वह खेदके कारण होती है। क्षुधाकी वेदना न हो तो खानेकी क्या आवश्यकता? खानेसे पेट भरा हो तो खानेकी क्या आवश्यकता? खानेकी प्रवृत्ति वेदनाके कारण होती है। उसी प्रकार पचेन्द्रियके विषयोमे जो प्रवृत्ति होती है वह खेदके कारण होती है। खेद न हो तो विषयोमे कौन लगे? अभी यहाँ बैठे हैं, रेडियो सुनना है तो रेडियो सुनने की प्रवृत्ति क्यो हुई? कोई मनमे खेद नही है। बाह्यप्रवृत्ति जितनी होती है, वह खेदपूर्वक होती है। हम बोलने लगे कोई खेद है तो बोलने लगे। आप सुनने लगे, कोई खेद है तो सुनने लगे। आप घर गए तो कोई खेद होनेसे, आप घरसे हटे तो कोई खेद होनेसे। जितनी बाह्यप्रवृत्ति होती है वह किसी न किसी खेदके कारण होती है और उस खेदके मिटानेका इलाज है, विषयोकी निवृत्ति। यह तो है विषयोके प्रारम्भकी बात, मगर विषयोमे जब लगते है तो उन विषयोके कालमे भी बहुत खेद है। हलुवा, पूडी, मिष्ठान्न आदि जब खाते हैं तब समतासे नही खाते हैं, लप-लप जल्दी-जल्दी मौजसी मनाते हुए खाते है। कोई समतासे धीरे धीरे चबाकर, जैसे कि कुछ खानेकी इच्छा ही नही है, इस तरहसे नही खाते है। इसी प्रकार विषयोके भोगके समय भी लपलप करते हुए एक उचटसी दिलमे रहती है, एक जल्दबाजी करते है, वहाँ भी तो खेद हो रहा है और जब विषय भोग चुकते हैं तो उसके बाद भी खेद होता है। जैसे आजकल गर्मी है, खूब डटकर खा लिया, पेटमे पानी भर लिया, फिर भी गला सूख रहा है, दुःखी हो रहे है। पानी भीतर नही जाता है और प्यासकी वेदना लग रही है। कोई भी भोग हो, उसे भोगनेके बाद भी खेद होता है। ये विषयोके भोग दु खके ही कारण है। भोगते समय खेद होता है, पीछे भी खेद होता है, प्रारम्भसे लेकर अत तक खेदमय ही है। दुःखोके बिना विषयोकी प्रवृत्ति नही होती। आवश्यकता क्या है? अगर समता रससे पूरित है, ज्ञान भावनासे तन्मय है, आनन्दरसको चख रही है, तो विषयोमे प्रवृत्ति किसलिए होगी? इसलिए ये विषयभोग नियमसे त्याज्य है। इन विषयभोगोके त्या-

गनेमे ही शांति है । अभी यह भीतरका रोग है । सब अपने-अपने रोगमें बस रहे होंगे । भले ही ऊपरसे कुछ मुद्रामें बडप्पन बना लिया गया हो, कुछ वेशभूषा, शृङ्गार बडा बनने वाला झलका लिया हो, पर अंदरसे तो अपने इस रागका अनुभव करते ही जा रहे है । इच्छा ही एक रोग है, जो संसारसे रुलाने वाली है ।

शसकाः मां न पश्यन्ति पश्यन्तो व्यक्त्यलक्षकाः ।
कौ का निष्ठानिजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–३८॥

एकत्व भावना दुःखोको दूर करने वाली और शांतिको उत्पन्न करने वाली है । जब यह जीव अपनेको अकेला अनुभव करता है तब यह शांति प्राप्त होती है । जब यह अपनेको परमे लगा हुआ, परसे बँधा हुआ मानता है तो इसको आकुलतायें उत्पन्न होती हैं । किसी को मरण पर बडे दुःखकी पीडा हो, उन मनुष्यको कोई समझाता है तो इन्ही बातोंको समझाता है कि भाई सब अकेले ही है, तुम भी अकेले हो । जो गुजर गया है वह तुम्हारा साथी न था, न होगा । तुम अकेले ही आये हो, अकेले ही रहोगे, मोहको छोडो । शांतिके लिए मोहको छुटानेका उपदेश दिया जाता है । घरमे सब कुछ है, वैभव है, परिवार है, सर्व कुछ संयोग है, किन्तु उनपर दृष्टि रहेगी तो आकुलतायें ही हाथ आयेंगी । उनसे रहित एकाकी ज्ञानमात्र जब अपने लक्ष्यमें अपनी आत्मा आती है तब उसे एक अद्भुत शांति प्राप्त होती है । इसी प्रसगमे इस प्रशसाका भी प्रसग है । दूसरे प्राणी प्रशंसा करते है तो यह मानते है कि लोग मेरी प्रशसा करते है । किन्तु प्रशसा करने वाले पुरुष दूसरेकी प्रशंसा नही करते है । जैसे भगवान्को पूजन वाले भक्त भगवानको नही पूजते हैं, किन्तु भगवानका स्वरूप इस प्रकार है ऐसी उस भक्तके ज्ञानमे बात जची जिससे आनन्दित होकर वह अपनी चेष्टा करता है । अर्थात् वह अपने गुणोके उत्कर्षको पूजता है । भगवानको नही पूजता है । अपने गुणोके उत्कर्षके पूजनके समय विषयभूत भगवानका स्वरूप है । इसलिए भगवानके स्वरूपको पूजने का उपचार किया जाता है । वस्तुतः पूजने वाला अपनेको ही पूजता है, प्रशसा करने वाला पुरुष अपने आपको ही प्रशसता है । कोई मुझे प्रशंसित नही करता । मेरी प्रशसा करने वाला पुरुष क्या मुझे जानता है ? नही । मैं तो ज्ञानमात्र आत्मा हू, जिसका नाम नही है । जैसे सभी चेतन है तैसा यह मै भी चेतन हू । दूसरोमे और मुझमे कोई अन्तर नही है । सब एक समान है । ऐसा ज्ञायकस्वभावी चैतन्यतत्त्व मैं हूं । क्या मुझको प्रशंसा करने वालेने जाना है ? नही जाना है । जब मुझे नही जाना और इस शरीरसे ही कल्पना कर रहे है कि यह अमुक है । ऐसा समझकर यदि प्रशसा कर रहे है तो करें । उसने मेरी प्रशसा नही की, वह मुझे पहिचानता ही नही है तो प्रशंसा करेगा ही क्या ? यदि उस प्रशसा करने वालेने मुझे

जान लिया है तो उस जाननेके साथ ही वह पुरुष ज्ञानमे प्रवृत्ति करने लगेगा। वह स्वय ज्ञानमय हो जायेगा। वह प्रयत्न कर ही नही सकता। प्रशंसा करने वाले लोग मुझे जानते नही है तो प्रशसा कर ही क्या सकते है? इसलिए मै किस पुरुषकी ओर आकृष्ट होऊँ, किसमे अपनी निष्ठा बनाऊं? किसमे अपना विश्वास समझूं? अरे अपना ही आदर एक सच्चा आदर है। अभी लोकव्यवहारमे देखो, कोई पुरुष किसी पुरुषकी प्रशंसा करता है तो वह सर्व प्रशसा निन्दारूप है। प्रशसा कोई नही करता। प्रशसा करनेके लिए वह खडा होता तो है, मगर निन्दा कर बैठता है। पर-प्रशसा निन्दा है। कोई क्या प्रशसा करेगा? कोई किसी सेठको कह दे कि यह सेठ साहब बडे मान्य व्यक्ति है। इनके चार लडके है—एक मिनिस्टर है, एक बडा डाक्टर है, एक ऊँचा प्रोफेसर है, एक बैरिस्टर है। ऐसी अगर किसी ने प्रशसा कर दी तो इसका मतलब क्या हुआ कि सेठ साहब कोरे बुद्धू हैं। इनके लडके तो बुद्धिमान है, मगर सेठ साहब कुछ नही है। यह तो उनकी बुद्धिकी तारीफ हुई। यह हो गई निन्दा, मगर ये मानते है अपनी प्रशसा याने इनके लडकोमे तो ये गुण है पर इनके पास कुछ गुण नही। तो यह हो गयी निन्दा और क्या बोलते हैं कि इनके पास ६-७ खण्ड तक की हवेलियाँ है, बडी सुन्दर हैं। तो यह हो गई सेठकी निन्दा कि हवेलियोमे तो सुन्दरता है, पर सेठजी मे कुछ सुन्दरता नही है। मकान तो बढिया है, इसके अमुक दरवाजे पर बड़ी सुन्दर नक्काशी खुदी है। तो परमार्थसे यह हो गई सेठकी निन्दा। खैर आप कहेगे कि सेठ जी बडे परोपकारी हैं। दूसरोके उपकारके लिए अपना तन, मन, धन सब लगा देते हैं। क्योजी, यह प्रशसा हुई कि निन्दा? अगर वह सेठ ज्ञानी है तो वह सोचेगा कि यह केवल मेरा जाननमात्र है और परपदार्थोके कर्तृत्वका अपराध मुझपर लगाते है कि यह परका कर्ता है। यह स्वरूप तो प्रभुके स्वरूपको बतंने वाला है और यह परपदार्थोमे कर्तृत्वकी बुद्धि लिए है। मुझपर यह आरोप करते हैं कि इनमे परकर्तृत्वकी बुद्धि है। तो यह प्रशसा नही हुई, यह हुई निन्दा। तीसरी बात यह है कि प्रशसा करने वालेने आपमे आनन्द उपजाया कि क्लेश उपजाया, इसका भी निर्णय करो। प्रशंसा करने वाला तो आपसे अपनी खुदगर्जीकी पूर्ति करना जानता है और उस अपने स्वार्थमे आपकी प्रशसा करेगा। अब उसको सुनकर आप यह चाहेगे कि यह बडा भला है, मैं इसको कितना सुखी कर दूं? क्या-क्या कर दूं तो प्रशसा करने वालेके पीछे आप बडा परिश्रम करते है। उसने क्या किया? दो बातें बोल दी और आप उसके लिए बिक गये। ये बच्चे लोग अपने माता-पिताके खिलाफ चलकर व्यर्थ ही दुःखी होते है। अरे जो ये २०-२५ सालके बच्चे है वे अपने पिताकी जरा बात तो मान लें, थोडासा हाथ जोड लें, इतना ही तो श्रम करना है, फिर तो बच्चे लोगोको सुखी करने

के लिए यह बाप तुम्हारे पीछे कष्ट उठायेगा । उस बच्चेको सुखी ही देखना चाहेगा । जरासी दवा है, जरा प्रेमसे बोलना है, पैर छू लेना है, बात मान लेना है, फिर तुम्हें सुखी करनेके लिए यह बाप जी जान छोडकर श्रम करेगा, आनन्दसे रखना चाहेगा । जरासी बात नहीं करते तो खुद दुःखी होते है । बापको तो दुःखी करते ही है । तो क्या है ? प्रशंसा होनेसे मनुष्यको लाभ कुछ नही है । उससे केवल खेद ही होता है । चौथी बात क्या है कि प्रशंसा सुनकर यह मनुष्य अपने सन्मार्गसे हट गया । अब यह ऐसे मौजमे आ गया कि सत्कर्म करना, पापोसे छूटना, इन बातोकी सावधानी उसके नही रहती । जब अपने माफिक यह समझ लिया कि मैंने अपने जीवनको सफल कर डाला । प्रशंसा चाहता था और प्रशंसा मिल गई तो इससे बढकर जीवनमे अब करना क्या है ? ऐसी जहाँ बुद्धि आ जाती है वहाँ सम्मानका चलना समाप्त हो जाता है । यह प्रशंसा हमारे अहितके कारण है । प्रशंसाकी जैसी बात है ऐसी ही इस सम्पदाकी बात है । यह सम्पदा भी हमारे अहितका कारण है । अगर सम्पदा अहितका कारण न हो तो बडे-बडे चक्रवर्ती, तीर्थंकर इस सम्पदाको त्यागकर, वस्त्र तकको त्यागकर संगमे कुछ भी तिलभर न रखकर केवल अपने ज्ञानकी उपासनामें क्यो लगे । शुद्ध आनन्द तो केवल अपने आपकी दृष्टिमे भरा है, किसी पदार्थसे आनन्दकी आशा न करो और न आनन्दकी श्रद्धा रखो । यह बात मूलमे होती है । हम यदि सुखसे रीते हैं तो सैंकडो आदमी भी उद्यम कर डालें तो सुख नही उत्पन्न हो सकता । यदि हम सुखसे भरपूर है तो हमें दूसरोसे सुखकी क्या आशा करना है ? अपने इस शुद्धस्वरूपका यथार्थ निर्णय किए बिना शांतिका मार्ग नही मिल सकता है । वे स्वयं भिखारी बने है जिनसे सुखकी आशा करते है । किसी दूसरेसे हित और सुखकी आशा न करो । यह आतमा सिद्ध प्रभुके समान अनन्त ज्ञान सुखका धारी है, किन्तु 'आशवश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ॥' ऐसी इसकी स्थिति बन रही है । अपने स्वरूपको सभालूँ तभी मैं सुखी हू । ये प्रशंसकजन मुझे नही देखते है । तो ये प्रशंसा क्या करेंगे ? यदि मुझे देखते है तो मेरे शुद्ध ज्ञायकस्वभावको जान लिया । उनकी दृष्टिमे मैं व्यक्ति न रहा । यह आवांतर सत् न रहा, एक विशिष्ट सत् न रहा । उसके लिए एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश ही रहा तो शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिकी कौन प्रशसा कर सकता है और कौन निन्दा कर सकता है ? प्रयोजन यह है कि अन्य कोई प्राणी मेरा कुछ नहीं करता, मैं दूसरे का कुछ नही करता । मैं अपने आपमे स्वयं कल्पनायें, विचारधारायें बनाता रहता हूं । मेरा असर मुझपर होता है किसी दूसरेपर मेरा असर नहीं होता है । ऐसा अत्यन्त एकाकी अपने आपको समझने वाला ज्ञानी पुरुष मोक्षके मार्गको प्राप्त करता है और जो अपनेको अकेला ही समझ सकता है वह संसारमे क्लेशोको नही पाता है । एकत्व भाव है—आप अकेले ही अव-

तरे, अकेले ही आपका मरण होता इस जीवका कोई साथी नही होता, ऐसा यदि ज्ञान है तो सारे सकट टल जाते है। क्योकि संकट किसी दूसरे पदार्थसे नही आते। किसी बाह्य पदार्थ से सुखकी, हितकी आशा करनेसे सकट उत्पन्न होते हैं। जहाँ अपने आपको एक अकेला विचारा वहाँ सारे संकट समाप्त हो जाते है। ऐसा उद्योग करके एकत्व भावनामे लगना चाहिए।

भिन्नपूतितनोरास्था स्वं किं लाभयते ततः।
को का निष्ठा निजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-३६॥

यह शरीर जहाँ कि आसक्ति और आदर है वह आपसे अत्यन्त जुदा है, अत्यन्त भिन्न है। जीव तो एक ज्ञानस्वभावात्मक पदार्थ है। उसमे जाननके अतिरिक्त अन्य कुछ प्रतीति नही आती और जब मात्र जानन रहता है तब इसको निराकुलता होती है। इस प्रकार ज्ञान और आनन्दभावस्वरूप तो यह जीव है और यह शरीर जड है। रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है, अत्यन्त भिन्न है। दूसरी बात यह शरीर अपवित्र है। देखो ना इस शरीर में ठीक मध्यसे लेकर वीर्य, फिर हड्डी, मांस-मज्जा, खून और चमडी, अदरसे लेकर बाहर तक सब अपवित्र चीजें है। तो क्या मै ऐसा अपबित्र हूँ? मै शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव वाला हूँ। मैं अपवित्र नही हूँ। ऐसी अपविश्रतामे आसक्ति होना, इसको कितना व्यामोह कहा जाय? अपने आपकी पवित्रताका भान नही हो पाता है। यह कितने खेदकी बात है। हम आप सब आत्मा पूर्ण सुखी है। सुखसे तो स्वरूप ही रचा गया है। अपने स्वरूपको छोडकर बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि देनेसे तो हानि ही है। शरीरके आदरसे क्या कुछ प्रतिष्ठा भी होती है? जो मनुष्य अपने शरीरका अधिक व्यामोही है वह न परोपकार कर सकता है और न परका उपकार कर सकता है। इसलिए शरीरका आदर करना विवेक नही है, किन्तु अपने आपके स्वरूपका आदर करना विवेक है। कितना ही समय गुजार दें, कितना ही सयोगोमे अपना समय व्यतीत कर लें, मगर शांति न मिलेगी। शांति तो अपने आपके आत्मावलोकनमे ही मिलेगी। यह जीव पूजा क्यो करता, भगवानके दर्शन क्यो करता? यही ख्याल करनेके लिए कि हे प्रभु ज्ञान और आनन्दकी जिसको चाह है उसे सब यही प्राप्त होता है। वह ज्ञान और आनन्द अपने आपमे ही है, पर कैसा मोहजाल है कि अपने इस स्वरूपको भूलकर बाहरमे दृष्टि लगाता है। क्या किया जाय? शरीरका सम्बन्ध है, मोहका प्रताप है, मोह बसा हुआ है। अनेक ऐसे कारण जुटे है जिनके कारण हम अपने आपके स्वरूपको नही जान पाते है। बाहरमे अपनी दृष्टि फसी रहती है। इस शरीरके आदरसे लोग अपनेको भूल जाते है। शरीर के आदरसे ही अपना आदर मानते है। किसीने कुछ कह दिया, कुछ शब्द बोल दिया तो

आप आकुलित हो जाते है। आत्मामें तो उन शब्दोंका प्रवेश नही होता है, लेकिन यह सोच-कर आकुलित हो जाते है कि मुझे कुछ कह दिया है। वे अपने स्वरूपसे च्युत हो जाते है। ये स्वयं अपराधी हैं ना ? सो दूसरोकी चेष्टाओका अर्थ अपने आपपर लगाते हैं। जैसे एक बार तीन चोर चोरी करनेके लिए गये। एक चौथा नया चोर रास्तेमे मिला। बोला कि हमे भी साथ ले चलो। वे चोरी करने गये। जब चोरी कर रहे थे तो इतनेमे घरके मालिक की नीद खुल गयी। तीन चार चोर तो भाग गये। अब एक रह गया। अब कहाँ छिपे ? तो जिसे न्यारी बोलते है, घरके ऊपर तो उस बल्लीमें वह जाकर बैठ गया। लोग आये उस बूढे मालिकसे पूछते हैं कि कहाँसे चोर आये थे ? क्या ले गये ? कितने थे ? दसों बातें पूछी तो वह बूढा अंतमे बोला—अरे मुझे क्या मालूम है ? यह सब तो ऊपर वाला जाने। उसका कहनेका मतलब था भगवानसे, पर ऊपर बैठा हुआ चोर स्वयं कल्पनायें बनाकर कहता है कि हूं हमीं क्यो जानें, वे तीन साथ वाले चोर क्यों न जानें ? वह पकड़ लिया गया। हम आप अर्थ अपने आप ही लगा लेते हैं। सबसे बडा काम है अपना अपराध क्षमा करना। मेरा अपराध क्या है ? अपराध है यही राग द्वेष, मोह, इष्ट बुद्धि, अनिष्ट बुद्धि जो मिल गये उनको ही अपना मान लिया, यही हमारा अपराध है। यह अपराध क्यो है कि अपने आपके अनन्त ज्ञानानन्द घनी इस प्रभुकी प्रभुताको बरबाद कर डाला। यही अपने आपके प्रभुपर इतना बडा अन्याय है। ऐसा अन्याय करते हुए हम आप हिचकिचाते नही हैं। विषयोमे मौज मानते हुए चले जाते है। अपने आपपर शुद्ध दृष्टि नही करते। इस अपवित्र शरीरको देखकर ही यह व्यवहार हो रहा है। अच्छा बोलना, बुरा बोलना, मित्र मानना, शत्रु मानना ये सब इस शरीरको देखकर ही हो रहे हैं। अरे इस भिन्न अपवित्र शरीरकी आत्मासे क्या कोई लाभ हो सकता है ? क्या इस शरीरके आदरसे प्रतिष्ठा हो सकती है ? नही। केवल ज्ञानस्वरूपका आदर करो और प्रभुसे बार-बार यही प्रार्थना करो कि हे प्रभु मैं और कुछ नही चाहता हू। केवल यही चाहता हू कि मैं अपने ज्ञानस्वरूपको ताकता रहूं। उससे जो अमृत बरसता है उससे अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, मैं आनन्दमें लीन रहूं। इतना ही अपने प्रभुसे प्रार्थनीय होता है। यह पर्याय उपाधिकृत है। इस तरह सर्व प्रकारको परिणमन करने की दृष्टि हो जाय और अपने आपके सहजस्वरूपमे विश्राम लेकर सुखी होऊं।

नामाक्षरैर्न सम्बन्धो आत्मनः किं तदाख्यया।
कौ का निष्ठा निजास्थास्था स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७–४०॥

निश्चयसे देखो तो इस आत्माका क्या नामक अक्षरोंसे सम्बन्ध है ? जिसके जो नाम है तीन चार छः अक्षरोका, अपने नामके तीन शब्दोंको बोलकर विचार करो तो सही, क्या

उस नामके अक्षरोसे आत्माका कोई सम्बध है ? कुछ भी तो सम्बन्ध नही, किन्तु विडम्बना इतनी बडी बन गयी है कि नामके अक्षरोके लिए सब कुछ बरबाद कर डालने है। क्या बरबाद होना कोई बरबादी नही है, किन्तु अपने आपकी श्रद्धा और ज्ञानावरणमे च्युत हो जाते है। ऐसा नाम रखा हुआ आखिर स्वर व्यञ्जनसे ही तो निकला हुआ शब्द है। इतना बडा नाम शब्द बन गया। सर्व शब्दोसे हमारा सम्बध है क्या ? नही हैं, किन्तु उन नामके अक्षरो मे इतनी अधिक आसक्ति हो गई है कि बहुतसे नाम लिखे हो, उनमे आपका भी नाम लिखा हो तो अपने नामको बहुत जल्दी देख डालने है। बडी जल्दी पच जाता है। कोई आपके नामको धीरेसे कहकर बुलाए तो बडी तेजीसे सुननेमे आ जाता है। अभी नीदमे सोये हुए हो तो उस नामको सुनकर बहुत जल्दी उठ जाते हैं, और बातोसे नही उठते। कोई खटपट हो रही हो तो उससे नही जागते। इतनी नामके अक्षरोमे आसक्ति है। इन अक्षरोसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नही। मेरी आत्माका तो कोई नाम ही नही है। यह तो एकचित् वस्तु है। ज्ञान और आनन्दस्वभावको प्रकट करने वाला एक पदार्थ है। जो है सो है, इसका नाम नही है, नाम तो लोकव्यवहारके लिए रखते है। आत्मा तो कोई व्यवहार नही करता, इसलिए आत्माका कोई नाम नही है। इस असमान चेतन द्रव्यपर्यायको लोकव्यवहार कहते है। यह जो शरीर बैठा हुआ है, यह न तो जीवकी चीज है, न कर्मोकी चीज है, न आहार वर्गणाओ की चीज है, किन्तु सबके संयोगसे होने वाली एक मायारूप चीज है। इससे आत्माका कोई सम्बध नही है। फिर नामके अक्षरोसे कोई प्रतिष्ठा इस पृथ्वी पर होगी क्या ? अरे अपनी ही आस्था करो, अपने आपकी स्वय अपनेमे प्रतिष्ठा करो तो इससे ही आनन्प प्राप्त होता है। यह मोहजाल बडा विकट बन्धन है। मोहमे अपने आपकी गल्ती अपने आपको नही मालूम देती है। अपने आपकी ही गल्ती अपने आपको नही मालूम पड सकती, ऐसी परिस्थितिको मोह कहते है। गल्ती करते हुए यह ध्यान यदि रह सके कि यह गल्ती है तो वहाँ मोह नही है, गल्ती जरूर है। मोह बडी गल्ती कहलाती है, अन्य गल्तियाँ कम गल्ती कहलाती है। हम भगवानकी भक्तिका आनन्द नही पा सकते है। भगवान्की भक्तिका आनन्द हमे तब मिले जब मैं भगवानके स्वरूपको अपने आपमे बसाऊँ। जहाँ इतना व्यामोह है कि धन वैभव, परिवार आदि अनेक चीजे अपने आपमे बसाए हुए है वहाँ भगवानकी भक्ति नही हो सकती। यही तो देख लो — कोई मनुष्य अपने मित्रके शत्रुसे भी प्रेम करता हो तो मित्र के द्वारा क्या आदर पा सकता है ? नही। भगवानका शत्रु कौन है ? विषयकषाय या विषय कषायोका शत्रु कौन है ? भगवान। तो भगवानके दुश्मन विषय कषाय है, भगवानके शत्रु विषय कषायोसे हमारी रुचि हो तो क्या भगवानकी भक्ति बन सकती है ? नही बन सकती

है । तो हम इतना परिश्रम रोज करते है । सुबह मंदिर आना, नहाना, पूजा करना, स्वाध्याय करना, इतना श्रम करते है, पर इस श्रमसे लाभ नही ले पाते है । यदि इस श्रमके समय हम अपने चित्तसे अपने सब पदार्थोंको हटा दें, केवल भगवानका ही अनुभव बनाएँ तो भगवानकी भक्तिसे कुछ लाभ मिल सकता है, किन्तु अपने इस पुरुषार्थमें इतना तेज, इतनी बुद्धि है कि लोग अपनी प्रतिष्ठाओंके लिए नामोको पत्थरोपर जडवाते है, उल्लिखित करते है । काठ या पत्थर पर नामके अक्षर लिखवाते है । उन अक्षरोसे आत्माका क्या सम्बन्ध है ? यह तो देखो कि शब्द जड़ है और आत्मा चेतन । शब्द तो क्षणिक है, यह आत्मा ध्रुव है । इतनी भिन्नता आत्मा और उन नामके अक्षरोमे है । इतना ख्याल न करके मोहीजन उस नामके लिए कितनो श्रम करते है । एक सुनारिन थी । तो बहुत दिनोके बादमे सुनारसे कहा कि कई वर्ष आपको धन कमाते-कमाते हो गये, पर हमको एक भी गहना नही बना । हमको बखौरा बनवा दो । बखौरा मोटे, टेढे किसी प्रकारके उसे बनवा दिये । अब इन देहातोमे तो मोटी धोती पहिननेका रिवाज है और बडी धोती पहिननेका रिवाज है । उसकी वजहसे उसके बखौरे कोई दूसरा देख नही सकता था । एक दिन सोचा कि कितना हठ करके बनवाया, किसीने यह न कहा कि बडे सुन्दर बखौरे है, कब बनवाये ? उसके मनमे गुस्सा आ गया । गुस्सेमे न जाने क्या कर दिया जाय ? उसने झट अपनी झोपडीमे आग लगा दी । जब आग लग गयी तब उसका दिमाग खुला, सो लोगोको बुलाती है, चिल्लाती है—अरे दौडो, झोपडो जल गयी, वहाँ बाल्टी है, वह कुआँ है, वह रस्सी है, हाथ फटकार-फटकार रोती थी । लोग आए, बुझाने लगे । जब बखौरोसे धोती हट गयी तो एक औरतने देख लिया, बोली—अजी ये बखौरे तो बडे सोने है । इनको कब बनवाया ? वह भी बोली—अरी रांड, अगर यही शब्द पहिले कह देती तो झोपडीमे आग क्यो लगती ? खूब धन है, भोजनके साधन है, पहिननेके साधन हैं, सब साधन है, फिर भी ये जीव कुढे जा रहे है । मेरा नाम अधिक नही हो पा रहा है, मैं अधिक धनी नही हू, मैं कैसे बडा बनू ? अरे सबसे बडा बन लो, पर अंतमे तो मरण होगा ही । सब कुछ यही छोड़ जाना पडेगा । बडे बनना है तो ज्ञानका स्वाद लो, अपनी शुद्ध दृष्टि बनाओ । अपनी ज्ञान ज्योतिको जगाओ कि मेरा अनुभव अलौकिक आनन्द हमे बराबर मिलता रहे । ऐसा स्वानुभव यदि बन सकता है तो आत्मजीवनकी सफलता है । नही तो बाहरी बातोमे क्या है ? सब मिट जाने वाली बातें है । जिन लोगोके अन्दरकी चाह करते है वे लोग भी मिट जाने वाले है । किनमे तुम आदर चाहते हो ? जिनसे किसी भी परपदार्थको अपने उपयोगमे स्थान दो । अपने स्वरूपको देखो । अपनी आस्था करो तो यह अपनी आस्था ही अपने आपका अर्थ करनेमे समर्थ है ।

न किमेकदशारूपोऽनाद्यजनन्तस्तदा रुचिः ।
काऽस्तु मे लोकनिक्षेपे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७४१॥

मै किसी भी एक दशारूप नही हू । क्या मैं मनुष्य हूँ ? कुछ वर्षोंके लिए मनुष्य हू । फिर तो मनुष्य न रहेगे । मैं जो भी बन गया, क्या वह मै हू वह भी कुछ समयके लिए चीज है हमेशा न रहेगी । मै किसी एक दशारूप नही रहता हू, इसलिए दशा मैं नही हू । मैं तो स्वयं हूँ जो अनादिकालसे रहने वाला हू, अनन्तकाल तक रहने वाला हूँ । जो मिट जाने वाला है वह मैं नही हू । मै किसी भी एक दशारूप नही हू तब मेरी व्यवहारकी क्या रुचि हो । यह श्रद्धा हो कि यह मैं नही हू । बडा संकट जीव पर छाया है । क्या सकट जीवपर छाया है ? अपनी टेकका, कुटेवका । परवस्तुकी वांछा न त्याग सकना, परवस्तुकी वृद्धिमे ही अपना बडप्पन समझना, ये कुटेब नही छोडे जा सकते है तो यही बडा संकट है । जो चाहते है वह नही हो पाता है तो भीतरमे क्लेश मचाते है । धन्य है वे सम्यग्दृष्टि जन जो तीन लोककी सम्पत्तिको भी कागकी बीटके समान छोड देते हैं व उनका श्रद्धान दृढ है । दृढ श्रद्धान हो कि मैं आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप हू, मेरा ज्ञान और आनन्द मेरे स्वभावसे ही परिणमता है । किसीकी आशा रखना व्यर्थ है, आशा रखो तो प्रभुसे रखो । प्रभुसे कैसी आशा करो कि हे प्रभु ! आपके स्वरूपको देखकर आपकी भक्तिके प्रसादसे केवल अपने ज्ञान के अनुभवका स्वाद लेता रहू । इससे बढकर और जगत्मे कोई सुख व शांतिका उपाय नही है । अपना तो यह विश्वास हो कि जिससे आपकी अधिक प्रीति है उसके प्रेमसे आपको क्या मिलेगा ? प्रीति करते जावो वर्षो तक । एक दिन भी यदि उनसे बिगाड हो गया, वर्षों तक का प्रेम सब कूडेमे मिल जायगा । प्रेम कर रहे है और कही गडबडी हो जाय तो क्या सम्भव नही है ? मनका न मिलना, मेल हो जाना यह तो बहुत कुछ सम्भव है ना ? सब पृथक्-पृथक् है । अपने-अपने कषायोकी पूर्तिमे लगें यह तो सभव है ना ? एक दिन भी बिगाड हो गया तो वर्षों तकका श्रम मिट्टीमे मिल गया और यदि बिगाड हो गया तो उसके फलमे क्या शाति मिलेगी ? नही । अशांति ही मिलेगी । किसीपर विश्वास न रखो । किसीसे मेरा हित होगा, सुधार होगा, आनन्द होगा, ऐसा विश्वास न रखो । मान जावो भगवान आचार्यदेवका कहना । मान जावो जिनवाणी माताका उपदेश । किसी भी परपदार्थमे विश्वास न रखो । आपका गुजारा नही चलता है परपदार्थोंके बिना तो गुजारा चलावो, वहाँ रहना पडता है रहो, वहाँ लगना पडता है लगो, किन्तु अतरङ्गमे यह विश्वास तो बनाए रहो कि मेरा हित, मेरा सुख किसी परपदार्थसे न होगा । किसी परपदार्थमे ऐसा विश्वास न रखो । विश्वास रखो तो अपने आत्मस्वरूपमे, आत्मदेवमे । इतनी बात यदि नही कर सकते तो धर्म रंच भी नही हो सकता । मूल बात धर्मकी यह है । शरीरसे, वचनोसे कितना ही धर्मके लिए श्रम

किया जाय उससे धर्म नही होता, उससे शाँति नही मिलती। धर्म तो अपने अन्तरके ज्ञानके प्रकाशसे होता है। किसी वस्तुपर मोह न ठहर सके, ऐसा शुद्ध ज्ञान जग रहा हो तो वहाँ धर्म हो सकता है। तुम यहाँ आकर मदिरमे अधिकाधिक यही यत्न करो कि सब बाह्यपदार्थों को भूल जावो। बैठ जावो अपने हृदयमे, किसी भी परवस्तुका ध्यान न रखो। कोई पर-पदार्थ तुम्हारे आचरणमे आने लगते हो तो तुम परपदार्थोंको हृदयसे निकाल दो। ऐसा सोच-कर कि इसमे हित क्या होगा ? ये क्षणिक चीजें है, इनमे विकल्प है, ये मिट जायेंगे, ये बरबाद हो जायेंगे। किसी भी परपदार्थको अपने उपयोगमे स्थान न दो। अपने आपमे सहज विश्राम करो तो ज्ञानका अनुभव होगा, आनन्दका अनुभव होगा। इस आनन्दके प्रतापसे कर्म कटेंगे। इस आत्मामे शाँतिके लिए नाना कर्म किए, किन्तु यह एक कार्य करके भीतरमे देखो। भीतरका कार्य केवल भावोका कार्य है। केवल भावोका साहस चाहे समस्त परपदार्थों को अपनेसे खुद त्यागकर समझ लो। कोई सोचे कि हम धीरे-धीरे मोह काट लेंगे तो मोह धीरे-धीरे नही कटता है। मोह मिटता है तो एकदम ही मिटता है, धीरे-धीरे नही मिटता है। मोह जब तक रहता है तब तक पूरा रहता है और जब कटता है तब पूरा कटता है। रागोकी बात जरूर है कि धीरे-धीरे कटते है। राग धीरे-धीरे कटते है, पर मोह एकदम कटेगा। घरमे रहते हुए, घरके सब काम करते हुए भी एक काम तो कर ही लो कि मोह किसीके रंच न रहे। आप कहेगे कि क्या ऐसा हो सकता है कि मोह न रहे और घरमे बने रहे ? तो ऐसा भी हुआ करता है। मोह न रहे, किन्तु परिस्थितिवश घरमे रहना पडता है। यह नियम नही है, पर विरले ही प्राणी ऐसे है कि मोहके दूर होते ही घरको एकदम छोड सकते है। यदि साझेदारीका व्यापार है, उसमे किसी साझेदारका छल मालूम पड गया तो अहो, इसने इतना कपट किया, इसमे २० हजारकी हानि होने वाली है। तो जब ऐसी बात होती है तो उसमे साझेदारसे मोह रहता है क्या ? यह अच्छा है, यह भला है, इससे सब कुछ है, ऐसा मोह नही रहता है, किन्तु आज ही यदि उस साझेदारसे बिगाड करते है तो २० हजारका नुक्सान होता है, इसलिए मोह न होते हुए भी साझेदारसे राग किया जा रहा है। ऐसा व्यवहार किया जा रहा है कि जिससे वह घटा हुआ न समझकर और समयपर रागोंको भी छोड देता है। अनेक दृष्टांत है। मुनीमको देखो दुकानपर बैठकर कितना काम करता है ? सेठ तो नही करता है और लोगोसे यह भी कहता है कि मेरा तुमपर इतना गया, तुम्हारा मुझपर इतना आया, ऐसा भी कहता है। यद्यपि उसका नही गया, मुनीमका नही गया, मगर कहना तो पड़ता है, तिजोरीकी रक्षा करता है। सब कुछ करता है, पर अन्तरमे क्या यह मोह है कि यह मेरी सम्पत्ति है ? मुनीमके अन्दर मोह कतई नही है। यही देख लो,

लडकियोकी शादी हो गई। चार छः वर्ष हो चुके है। इसके बाद जब लडकी मां बापके घर से ससुरके यहां जाती है तो रुदन करती है, पर क्या उस लडकीके पिताके वैभवमे मोह है ? रच भी तो मोह नही है। उसे मोह लगा है अपने घरका। घरसे खीचना चाहती है। बहुत दिन हो जायें, माता-पिताके घरमे रहती हो तो यह कोशिश करती है खबर पहुचाकर कि मुझे जल्दी लिवा ले जावें। और जब लिवाने जायेंगे तो उस समय भी रुदन मचाती है। रोना ही पडता है, पर अन्तरमे मोह है क्या ? नही। एक नही बीसो उदाहरण ले लो। अतरमे मोह नही है, फिर भी परिस्थितिवश राग करना पडता है। हम आपको ही कहते हैं, आप अपनी अच्छी परिस्थितिमे रह रहे हो, रहन सहन खान पान अच्छा है, सभी बातें हैं। आपके ज्ञान जग जाय, मोह हट जाये तो मोह हटनेपर एकदम आपको लगोटी और चद्दर बांधकर चलनेकी हिम्मत नही पडती है। परिस्थिति ही ऐसी है। आपके रहन सहनका ढग ऐसा है कि नही निकलने पाते हैं और ऐसा नियम नही है निकल भी जाते है। पर मोह न रखो। घरमे रहना पडता है रहो, पर चित्तमे ऐसा विश्वास रखो कि मेरा हितकारी तो मैं ही हू। मेरा हितकारी कोई दूसरा नही हो सकता। मेरा शरीर भी तो मेरा हितकारी नही। ये सब परिणतियां है, प्रवाह है, पर्याय हो जाती है, मगर किसी पर्यायमे मोह करनेसे हम ससारमे अटक जाते है। आप झांसीसे बबईको जाना चाहते है। रेलमे बैठ गये। बीचमे कई सुन्दर जगहे मिलती है। ये फुलवाड़ी है, ये बेल है, यह पताका लगी है, सुन्दर मकान बने हुए है। क्या आप किसी बीचकी स्टेशनको सुन्दर देखकर रेलसे उतर जाते है ? यह स्थान मुझे सुन्दर लग रहा है, मैं तो यहीपर जमूगा। तो क्या उस स्थानपर जमते हो ? नहीं, केवल आखो देख लेते हो कि बडी सुन्दर स्टेशन है। ऐसा भाव बनाकर आगे चल देते हो। क्यो जी, उस छोटीसी स्टेशनको सुन्दर जानकर आप उतर जायेंगे तो क्या होगा ? आप अटक जायेंगे या आपका काम बनेगा ? आप अटक जायेंगे तो आपको दुःख होगा। जितने बाहरी पदार्थ है सबको देख भर लो, ज्ञाता द्रष्टा रह जावो। उनको छुए न रहो, पकडे न रहो। केवल ज्ञाता द्रष्टा रह जावो। यदि इतना उद्यम बना सकते हो तो आप बम्बई पहुच सकोगे। इसी प्रकार अपना लक्ष्य होना चाहिए प्रभुकी तरह पूर्ण ज्ञान और आनन्दके विकासमे मग्न रहनेका। इस उद्देश्यको लेते हुए आप चलिए। आपको नये-नये भव मिलते है, सुन्दर स्टेशन मिलते है। यदि सुन्दर रूप पाया हो, सुन्दर समागम पाया हो, धन वैभव पाया हो तो उस सुन्दरता पर मत रीझो। ये बीचके स्टेशन तो छूट जाने वाले है, इनमे आसक्ति न रखो, फिर अपने वाहनको तेज कीजिए। फिर अपनी भावनाकी सवारीको तेज बनाओ कि मुझे मोक्ष जाना है, मुझे केवल बनना है, मुझे पूर्ण ज्ञानानन्दमय होना है। अपनी इस यात्राको

आगे बढाओ । बीचके भवोकी सुन्दरता पर मत रीझो । आज मान लिया ५० हजारकी जायदाद पायी, एक लाखको जायदाद पायी तो क्या यह नही हो सकता था कि आप १०० रुपट्टी वाले रह सकते ? जब १००-२०० की पूंजी वाले रहते तो क्या गुजारा न करते ? कदाचित् इतना वैभव मिल गया है । उसमे अपनी हिकमत मत समझो, उसमे अपनी कला न समझो । पूर्वमे धर्म किया था उससे ही यहाँ यह वैभव मिल गया है । आपके हाथ-पैरोसे वैभव नही मिला, किन्तु पूर्वकृत कर्मोका सब फल है । दो प्रकारके पुरुषार्थ है—एक संसारी वैभव सम्बन्धी और एक मोक्ष सम्बन्धी । सांसारिक वैभवका आधार तो पुण्यका उदय है और मोक्ष जानेका आधार आत्माका पुरुषार्थ है । भाग्य और पुरुषार्थ—जिसको तुम पुरुषार्थ कहते हो वह पुरुषार्थ नही है, वह खोटा उदय है, वह विपरीत उदय है । पुरुषका जो स्वरूप है उसको पुरुषार्थ कहते हे । आत्माका जो पद है उसके लिए जो परिश्रम होता है भावात्मक उसे पुरुषार्थ कहते है । यहाँ जो कुछ मिला है सो पुण्यके उदयका फल है । उस पुण्यके उदय के साथ थोडा श्रम हो जाता है, पुण्यका उदय न हो तो कितना ही श्रम करो । तो उससे धन नही प्राप्त हो सकता है । उदयके साथ ही आपके पास ऐसी बुद्धि आती है कि वह चीज आपको मिल जाती है । वह वैभव कैसे मिलता है ? जब पुण्यका उदय है तो वह लक्ष्मी मिलती है । जब आप लक्ष्मीसे मुख मोडकर चलें तो ऐसी स्थितिमे पुण्य विशेष बधता है । जैसे छायाके पीछे दौडो तो छाया नही पडती और उससे विमुख होकर चलो तो वह पीछे चलती है । लक्ष्मीसे यदि आप विमुख रहे तो आपके पीछे चलती है । अपने सबसे भिन्न मात्र स्वरूपका आदर करो, प्रभुकी भक्ति करो तो तुम्हारा पुण्य होता है और लक्ष्मी पीछे-चलती है । तो इसका कारण पुण्य है । पुण्यका कारण तेज ज्ञान है और उसका कारण वस्तु स्वरूपका बोध हे । इसलिए लौकिक जीवो और अलौकिक जीवो दोनोके लिए यह कर्तव्य है कि वस्तुस्वरूपका ज्ञान करो, अपने प्रभुकी भक्ति करो, फिर उस भक्तिमे ही लीन रहो । बाहरी वस्तुवें जो प्राप्त होती है उनका आदर इस लोकव्यवहारमे न हो और अपने ज्ञानानद स्वरूपका आदर हो ।

रागवह्नीन्धन दृश्य किं सचित्येन्धन स्वयम् ।
शीतलोऽपि पतान्यग्नौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७-४२।।

यह दिखने वाला समस्त जगत् रागरूपी आगके लिए ईंधन है । जैसे ईंधन आगके प्रति क्या काम करता है ? आगको संतुष्ट करता है क्या ? संतुष्ट नही करता, किन्तु आगको बढाता है । इसी प्रकार ये जगत्के विषय राग बढानेके कारण बनते है । रागको संतुष्ट नही कर सकते । जैसे इस परिग्रहसे कभी सतोष हो सकता है क्या ? ऐसी आशा की, कहा कि

री आशा तेरी पूर्तिके लिए बहुत साधन जुटाये, परिग्रह जुटाया, पर तू संतुष्ट हुई अथवा नही ? यदि तू सतुष्ट हो गयी हो तो अब जा और सतुष्ट न हुई हो तो तुझे संतुष्ट होना ही नही है । चाहे तीन लोकका परिग्रह एकत्रित कर लिया जाय, पर संतोष नही होता है । ये सब दृश्यमान पदार्थ रागरूपी अग्निके लिए ईंधन है । यह जीव कितनी ही बार धनी हुआ है, राजा महाराजा भी हुआ है, फिर भी जिस भवमे जैसे कि इस ही भवमें जो कुछ थोडा साधन पाया है, उसमे भी ऐसा राग करता है जैसा कि उसे कभी कुछ मिला ही न हो । अब इस वार जो कुछ मिला है सो उससे परिग्रहमे खूब आसक्ति कर ले । अरे जैसा परिग्रह पाया है उससे लाख गुणा परिग्रह कई भवोमे पा लिया है, उनसे भी संतोष नही हो सका था । मगर ऐसी आदत पडी है जैसे भूख लगती है ना ? जैसे आज उडदकी दाल रोटी खायी, वैसे ही रोज खाते हैं, वैसी ही रोटी दाल कल भी खायी थी । तो रोटी दाल दूसरे दिन वही वही खाते है, पर रोज-रोज अनोखी लगती है । इसी प्रकार कई भवोमे पायी हुई सम्पदाके वाद इस जीवको इस भवमे जितनी सम्पदा मिली है वह इसे अनोखी लगती है । इस आत्म-देवपर वड़े संकट हैं । वह संकट है परकी दृष्टि । परकी दृष्टि हटे तो इसके सकट दूर हो सकते है । सम्बन्ध कुछ नही है, परिग्रह भी अटसंट आता है । आपके आया है । विचारनेकी कला से नही आता है । पूर्वकृत पुण्यका उदय था, इसलिए यह आ गया है । एक दृष्टिमे जिसे जो कुछ मिलता है यो मुफ्त ही मिलता है । उसमे मेरी आत्माका बल प्रविष्ट नही होता है और जब जायेगा तो यो ही मुफ्त जायगा । एक चोर था, वह राजाकी अश्वशालामे चला गया । एक बहुत बढ़िया काला घोडा चुराकर ले आया । बाजारमे खडा कर दिया, जहां पशु विकते थे । लोग आये, घोडा देखा, सुन्दर था ग्राहक बोले—घोडा वेचोगे ? बोला—हां, बेचनेको ही आया हूँ । तो कितनेका बेचोगे ? था ३०० रुपयेका और बताया ९०० रु० का, ताकि यह न जान सकें कि यह चोरीका है । सात-आठ ग्राहक निकल गये ।

अब एक बूढा चोर निकला, पूछता है घ डा बेचोगे ? बोला—हां । कितनेका ? ९००) मे । जब यह आवाज सुनता है तो जान जाता है कि यह चोरीका है । बोला—भाई इसमे ९००) की क्या कला है ? अजी इसकी चालकी ऐसी कला है कि ९०० रुपये क्या, कई ९०० रु० न्योछावर हो जायें । कहा—अच्छा देखें, यदि अच्छा है तो ९०० क्या सवा नौ सौ देंगे । बूढा चोर जो मिट्टीका हुक्का लिए था सो उसे पकडा दिया था और स्वयं घोडेपर वैठकर उसे उडा ले गया । अब थोडी देरमे पुराने ग्राहक आते है । पूछते है कि क्या घोडा बिक गया ? हां बिक गया । कितनेमे बिक गया ? जितनेमे लाये थे उतनेमे बिक गया । तो मुनाफा क्या मिला है ? मुनाफामे मिला है एक तीन आनेका मिट्टीका हुक्का, सो इसी तरह

ये सारे भौतिक पदार्थ जिनमे आत्माके प्रदेशोका प्रवेश नही, बलका प्रवेश नही, ये यो ही ही मुफ्तमे मिले है और यो ही मुफ्त जायेंगे । मुनाफेमे कुछ मिलेगा क्या ? मुनाफेमे मिलेगा क्या ? कर्म । कर्मबधन पापका हुक्का मिलेगा याने जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमे जो ममता है उस ममता परिणामके कारण जो पापोका संस्कार बना वह मरनेपर साथ जायगा । बाकी परपदार्थोंके परिग्रह ये मेरे साथ नही जायेंगे । ये मुफ्त ही मिले है, मुफ्त ही चले जायेंगे । बुद्धिमानी इसमे है कि परिग्रहकी बुद्धि न करो । मुझे अपना सदुपयोग करना चाहिए । उसमे यह नही ध्यान रखना चाहिये कि ये घरके लोग है ये ही मेरे सर्वस्व है उनके लिए सब कुछ है और अन्य लोगोंके लिए एक पाई भी नही है । इतनी आसक्ति किसीमे न होनी चाहिए । जीव है उनकी यह व्यवस्था है । आपने अपने घरके ५-७ लोगोकी व्यवस्था कर ली सो यह व्यवस्थाकी लिहाजसे तो ठीक है, पर इतनी आसक्ति नही होनी चाहिए कि मेरा तन, मन, धन सर्वस्व इन दो-चार घरके प्राणियोके लिए है और दूसरोंके लिए इसमेसे फूटी पाई भी नही है । इतनी आसक्ति नही होनी चाहिए, क्योकि यह अन्याय है अपने आपके प्रभुपर । ये घरके ही दो चार लोग तुम्हारे कैसे हो गए और भी अनन्त जगत्के जो जीव है । उनमेसे यह छटनी बड़ी जल्दी कर लेते है कि ये चार लोग मेरे हैं । यह अपने आपके प्रभुपर बडा अन्याय है । इससे जीवोका उत्थान न होगा । ऐसी अनुदारतासे, व्यवस्थाके आदरसे परिवार की सभाल की जानेपर परिवारमे इतनी आसक्ति न रखो कि सब कुछ इन्हीके लिए है । यह समस्त दृश्यमान जगत् इस रागरूपी अग्निके लिए ईंधन है । ईंधनको बटोरकर यह मैं शीतल स्वभावी होता हुआ ऐसी अग्निमे क्यो गिर रहा हू ? रागोमे क्यो पतित हो रहा हू ? दृष्टि ही का तो फेर है । सर्व कुछ करनेपर भी आप यो समझें कि हमे यो करना पडता है ।

जैसे कहावतमे कहते है कि गले पडे बजाय सरे । इसका मतलब यह है कि दोस्तोने एक दोस्तको नीचा दिखानेके लिए एक ढोलक गलेमे डाल दी ताकि वह झेंप जाय । तो वह दोस्त भी बड़ा चतुर था । उसने दो लकडियां उठायी और प्रेमसे ढोलक बजाने लगा ताकि झेंप न लेना पडे और मजाक करके बढ रहा है । तो गले पड़े बजाय सरे । इसी प्रकार आज गृहस्थीमे सम्बन्ध हो गया है सो गृहस्थीको निभानेसे ही सरेगा । पर आसक्ति न रखो कि ये मेरे सब कुछ है । ज्ञान जगाते रहो, यह ज्ञान ही मेरा सब कुछ है । जैसे ये घरके लोग हैं वैसे ही और जीव है । जगत्के अनन्त जीवोको माना कि ये मेरे कुछ नही है और घरके चार जीवोको मान लिया कि ये मेरे है । इस जीवका विषय त्याग नही हो सका, इसलिए घर बसाना पडा और यह कुटुम्ब बना । तब मेरा भार हमपर है । हम मेरी रक्षा करते है, पर मेरे ये कुछ नही है । ऐसा भीतरमे श्रद्धान रखो । घरमे इस तरह न बोलो नही तो लड़ाई हो जायेगी कि तुम मेरे कुछ नही हो, तुम सब नरकमे ही ले जानेके कारण हो ।

बोलनेकी आवश्यकता नही है । आप अपने अन्दर मनमे ठीक भावनाएँ बनाओ तो मोह अंध-कार नही रहता है । विवेक जगता है तो गृहस्थावस्थामे भी रहकर आप कर्मोंकी निर्जरा कर रहे है । इस तरह मोक्षमार्गमे चल रहे है । जगत्के जो कुछ परपदार्थ है वे सब मेरे रागरूप अग्निको बढानेके लिए ईंधनकी तरह है । ये सब सुखके लिए नही है । ऐसा अन्तरमे दृढ विश्वास होना चाहिए । मैं क्यो इस राग आगमे जलूं ? सो इस रोग दाहको तजो । यह रागरूप आग सदा जीवको जला रहा है । सो क्या करना चाहिए ? समतारूप सम्बन्धका सेवन करो । विषय कषायोको छोड दो । और अब तो अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनमे आवो । शास्त्र पढना, पूजा करना, त्यागियोकी सेवा करना, धर्मचर्चा करना, इनको इसी रूपमे न समझो, किन्तु इन सब बातोसे अपना धर्म हित समझो । मैं अपनेमे बसे हुए ज्ञानामृतका कैसे पान करूँ ? कैसे मेरी स्थिति आवे कि मै केवलज्ञानका अनुभव रखू ? ऐसी उत्सुकतासे इस ही प्रयोजनके लिए सत् आवश्यकताका निर्वाह करना चाहिए । केवल पूजाका काम है, पूजा करते है, किसलिए करते है कि उस समय अपने आपमे ऐसा अनुभव करे कि यह मैं केवल ज्ञानशरीरी हू । ज्ञान ही इसका शरीर है, कलेवर है । ज्ञानके अतिरिक्त मै और कुछ नही हू । मैं ज्ञानका ही कर्ता हू, ज्ञानका ही भोक्ता हू, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरा पिता है, ज्ञान ही मेरा रक्षक है, गुरु है, मित्र है, भगवान् है । इस ज्ञानस्व-रूपमे मैं स्थित होऊँ । भगवान्की पूजा, स्वाध्याय, सत्सग इन सबका उपयोग करो और यह बहुत बडी समस्या है इस जीवकी कि इस जीवनके बाद और उत्तम जीवन पाऊँ, मोक्षमार्गमे लगूँ, ससारके संकटोसे दूर होऊँ । इस परिवारको, वैभवको, इन सब लौकिक सम्पदाओको सोचने विचारने, सचित करनेसे इस जीवको लाभ क्या होगा ? किन लोगोमे हम बडप्पन चाहते है । ये ही दुःख इस ससारमे रुलाने वाले है, स्वयं ही ये अपनी बरबादी करने वाले है । इनमे अपना बडप्पन चाहनेसे क्या लाभ है ? कोई मेरी इस आत्माको मत जानो, कोई न पहिचानो । मुझे जो भी ससार है उसकी आवश्यकता नही है । मैं अपने आपके ज्ञानस्वरूप को निहारूँ और सदाके लिए ससारके झंझटोसे मुक्त होऊँ ।

मृत्यै के ह्यु द्यता. मृत्युरायात्याकस्मिकं तत ।
सदिग्धायुषि सद्दृष्ट्या स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-४३॥

मृत्युके लिये कोई तैयार होकर बैठता है क्या ? कोई जैसे विवाहोमे महीनो पहिलेसे कार्ड बनाए जाते है, निमन्त्रण भेजे जाते है । शादी फलां दिन फलां तारीखको इतने बजे होगी । इस प्रकारसे मृत्युकी भी ६ माहसे तैयारी की जाती है क्या कि फलां दिन फलां तारीखको इतने बजे हम मरेंगे । क्या मृत्युके लिये कोई तैयारी की जाती है ? यह मृत्यु तो

आकस्मिक हो जाती है, मर गया तब पता पडता है कि मरण आ गया। ऐसी आयुका इतना बडा संदेह है कि किस समय क्या हो जाय इस जीवनका—ऐसे संदिग्ध जीवनमे क्या करना चाहिए ? इसका विचार करना है। हमे अपनी दृष्टि सत्य बना लेनी चाहिए। इस संदिग्ध जीवनमे गदी दृष्टि प्राप्त कर ली तो क्या लाभ है ? धन वैभवके लिये होड नही मचाना चाहिए। यह जगत तो असार है, यह आयु संदिग्ध है किनसे होड मचा रहे हो ? और उदय के अनुसार जो कुछ प्राप्त हुआ है उसके ही विभाग कर लो। एक धर्मका विभाग, एक दान का विभाग, एक कुटुम्ब पोषणका विभाग, एक आगामी कार्योंके लिए सञ्चयका विभाग। और ऐसे विभाग करके रहनेसे यदि कभी सूखी रोटियां भी खाकर गुजारा करना पड़े तो उसमे प्रसन्न रहो और उसमे भी समझो कि मेरी क्या हानि है ? मेरा जीवन तो धर्म-धारणके लिए है, मेरा जीवन शुद्धाचरण निभानेके लिए है। कोई परवाहकी बात नही है। लोकमे निन्दा का भय है। इन लोककी बातोमे न आ जाओ। यहाँ कोई भी तो नही रहेगा। सब सिनेमा के जैसे चित्र होते है, आये और चले गये। यह जगत पूरा सिनेमाकी तरह है यहाँ कोई कुछ नही कर रहा। ये सब चीजें ज्ञानियोके ज्ञानसे परे है। यहाँ किसीका संकोच नही करना, किन्तु अपने आपके आत्माके सुधारकी बातपर ध्यान दो तो कल्याण है।

ज्ञातुं कथं श्रमं कुर्या ज्ञेया भान्ति स्वयं ततः।
सर्वं श्रमं परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७ ४४॥

ओह ! मैं किन्ही पदार्थोंके जाननेके लिए श्रम क्यो करूँ ? यह मेरे ज्ञानका स्वभाव ही ऐसा है कि जो इसमे सत् है वह स्वय ज्ञात होता है। यह समस्त ज्ञेय ज्ञानका विषयभूत है, आधारभूत नही है। उनमे मेरा ज्ञान प्रकट होता है ऐसी बात नही है कि ज्ञानका स्वय ही स्वभाव है कि जो कुछ विश्वमे सत् है वह सब ज्ञेय हो जाता है। यह ज्ञानकी स्वच्छता का प्रताप है। मैं किन्ही पदार्थोंको जाननेके लिए क्यो श्रम करूँ। यह ज्ञेय तो स्वय मुझसे प्रतिभास होता है। सर्व आश्रयोको छोडो। ओह, जाननेका भी तो हमे परिश्रम नही करना है। इस असार जगतमे क्या करना है ? समस्त पदार्थोंको छोडकर एक क्षण स्वविश्राममे रत हो जावो तो अपने आपमे बसा हुआ सहज आनन्द प्रकट हो जायगा। समस्त गुणोको छोडकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

न भोगो भोक्तुमायाति सन् बुद्धिस्थोऽघकारणम्।
किं तं बुद्धिगतं कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-४५॥

ये भोग मेरे भोगनेमे नही आते। खूब ध्यानसे सोचिये, ये पंचेन्द्रियोके भोगोके साधन रूप, रस, गध, स्पर्श वाले पौद्गलिक पदार्थ ये मेरे भोगनेमे नही आते, किन्तु उनके बारेमे मैं

भुगता हूँ, कल्पनाएँ करता हू । सो उस बुद्धिमें भोगनेकी बात लेकर केवल पापोका कारण बनता हू, वैसे भी भजनमे बोलते हैं—'भोगे तो भोग क्या है ? भोगोने भोगा तुमको ।' कहते कि भोगोसे तुम खुद भुग जाते, भोग नही भोगे जाते । तो उन पुद्गलोकी पकडमे खुदका बिगाड होगा । भोगके साधन र्ता ज्योके त्यो अपनी सत्तामे पडे हैं अर्थात् भोगनेमे वे स्वयं कुचले जाते है जो भोग करते है । भोजन जब किया जाता है तो कुचलनेसे वह पानी बन जाता है । कुछ भी पौद्गलिक पदार्थोंका बिगाड नही रहा । मेरी आसक्तिने हो मुझे तिरोहित कर दिया । तो भोगोके भोगनेपर हमारा ही बिगाड होगा, भोगोका बिगाड नही होगा। तो हमने भोग नही किया, भोगोने हमको भोगा । मैंने स्वय अपनेको बरबाद कर डाला । भोग हमारे भोगनेमे आ रहे है और हम पापोके कारण बनते है । मैं कुबुद्धि करके उन भोगो को क्यो करूँ ? मै तो उन भोगोको तजकर अपनेमे अपने लिए, अपने आप स्वय सुखी होऊँ । दो ही तो बातें है जीवके लिए । एक ज्ञान बढाना और दूसरा भोग भोगना । इन दो मे ही तो उत्सुकता होती है । भोग भोगनेकी उत्सुकतामे तो यह जाननेका केवल श्रम करता है । मै ज्ञानस्वरूप हूँ । ज्ञानका स्वभाव ही ऐसा है कि जो सत् ही स्वय ज्ञानमे आ जाता है । अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञानोकी बडी प्रशसा की जाती है । बात क्या हुई ? प्रशंसा की कुछ बात नही । ज्ञानका स्वभाव ही ऐसा है कि सामने हो, पीछे हो, भूतमे हो, भविष्य मे हो, सत्तायुक्त हो वह ज्ञानमे आयेगा ही । इस ज्ञानके बाधक आवरण कर्म है । ऐसा हमे ज्ञानमे नही आता और उसमे ही आश्चर्य करते है । यह तो अपने आप ज्ञानमे आता है । रही भोगोकी बात, भोगोको हम नही भोगते, किन्तु भोगनेके अभिप्रायमे उन भोगोसे हम खुद भुग जाते है । सो मैं सर्व भोगोमे बुद्धि क्यो करूँ ? मैं अपनेमे अपने आप विश्राम पाकर स्वयं सुखी होऊँ ।

कल्पनया यया प्राप्तोऽकल्प्यः सापि न मे यदा ।
कोऽन्यो भव्यः पुनस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७-४६॥

अहा, मैं आत्मा अकल्प्य हूँ । मैं स्वभावसे स्वत सिद्ध हू, एकस्वरूप हू । मेरा पता सही तब पडता है जब किसी प्रकारकी मुझमे कल्पनाएँ उठती है, विकल्प तरगें नही उठती है । आज सुबह एक भाई साहबने प्रश्न किया था कि जीवको हम विशद नही जान पाते हैं, चर्चासे ही समझते है । जीवको समझनेका उपाय चारित्रसे है । मतलब किसी वस्तुका मोह न हो, राग न हो, द्वेष न हो, विकल्प न हो, ऐसी स्थितिमे परम विश्रांति रहती है । इस विश्रामसे यह आत्मा विशद ज्ञात हो जाता है । तो आखिर कुछ भी तो कल्पनाएँ नही करते है । किसी कल्पनाके द्वारा ही तो उस अकल्प्य आत्माको प्राप्त किया जाता है । ये कल्पनायें

भी मेरी नही हैं तो परपदार्थ मेरे क्या होगे ? जैसे कहते हैं ना कि शरीर ही मेरा नही है तो धन मेरा क्या होगा ? इससे भी बढकर सोचो, रागद्वेष ही मेरे नही है तो बाह्यपदार्थ मेरे क्या होगे ? जिस रागसे हम बाह्यपदार्थोंसे प्रेम करते है वे राग मेरे नही है तो परपदार्थ मेरे होगे ही क्या ? इससे भी बढकर सोचिए कि जिन कल्पनाओसे, विचारसे, वितर्कोसे इस आत्माको समझ पाते है वह ज्ञान वितर्क भी मेरा नही है तो जगत्के अन्य पदार्थ मेरे क्या होगे ? सो भाई बाह्यपदार्थ तो मेरे है ही नही । मैं शब्द विभक्त अपने आपके स्वरूपरत चैतन्यमात्र जीव हू । सो उस चैतन्यस्वरूप पर ही झुकाव करो, बाहरी पदार्थों पर झुकाव न करो । इस ममताका बडा खोटा फल है । इस ममताके प्रसादसे ये पुद्गल बनते है, कीडे मकौडे बनते है । जो हम दुःखी हो रहे है वह ममताका ही प्रसाद है । इस कारण ममताको न करो, सब जीवोको समान निरखो और अपने आपमे यथासम्भव अधिकसे अधिक समय तक निरीक्षण किया जाय । अपने आप पर हम दया कर सकें तो अपने आपमे हम कुछ लाभ पा सकेंगे, अन्यथा यह जीवन पर्वतसे गिरने वाली नदीकी तरह वेगपूर्वक चल रहा है । वह समय निकट है जब कि मृत्यु हो जायगी । इस दुर्लभ नर-जीवनको व्यर्थ न गंवाओ । अपने कल्याणकी भी बात सोच लो ।

—: समाप्त :—

न्यायतीर्थ, सिद्धान्त–न्याय–साहित्यशास्त्री
श्रीमत्सहजानन्द महाराज
द्वारा विरचितम्

...परमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः, प्राप्स्यन्ति चापुरचल सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्टचाम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधि ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं य ।
सहजानन्दसुवन्द्य स्वभावमनुपर्यय याति ॥९॥